श्री सीताराम आश्रम का मुख्य द्वार

स्वामी सहजानन्द सरस्वती विद्या मंदिर का मुख्य भवन

ब्रह्मर्षि वंश विस्त

श्रीसहजानन्दसरस्वती ।

श्री सीताराम आश्रम ट्रस्ट प्रकाशन
बिहटा, पटना, (बिहार)

श्रीः

ब्रह्मर्षि-वंश-विस्तर ।

श्रुति, स्मृति, इतिहास और पुराण आदि सिद्ध अयाचक
और याचक द्विविध ब्राह्मण प्रदर्शन पूर्वक, उनके धर्म,
आचार, व्यवहार एवं पदवियों आदि की विवेचना,
अयाचक ब्राह्मणों के साथ याचक ब्राह्मणों के विवाह
सम्बन्ध आदिका प्रदर्शन, आधुनिक
इतहिास, व्यवस्थापत्र आदि प्रमाण-
निरूपण और विविध आक्षेप-
निराकरण आदि अति
प्रयोजनीय विषयों की
सविस्तरमीमांसा ।

श्री मत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्री १०८ दण्डि
स्वामी सहजानन्द सरस्वती, काशी द्वारा
लोकोपकारार्थ विरचित ।

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा ।
वितथैः सदृशाः सन्तोऽवितथा इव लक्षिताः ।।

श्री सीतारामाश्रम ट्रस्ट प्रकाशन
बिहटा, पटना (बिहार)

प्रकाशकीय : दो शब्द

परम पूज्य ब्रह्मलीन श्री श्री १०८ श्री स्वामी सहजानन्द सरस्वती जी की ११५वीं जयंती के अवसर पर उनकी अमर कृति "ब्रह्मर्षि वंश विस्तर" के छठे संस्करण का प्रकाशन करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है। समाज द्वारा इस पुस्तक की जबरदस्त माँग ने इस पुस्तक के छठे संस्करण को प्रकाशित करने के लिये ट्रस्ट को प्रेरित किया।

इस संस्करण के प्रकाशन में सहयोग के लिये **श्री सीताराम आश्रम ट्रस्ट, बिहटा, मान्नीय श्री यशवन्त सिन्हा, विदेश मंत्री, भारत सरकार का विशेष रूप से आभारी है**, जिनके सहयोग से इसका प्रकाशन इतना जल्द संभव हो सका।

साथ ही स्थानीय समाजसेवी श्री अजित कुमार सिंह, सुपुत्र श्री शिव प्रसाद सिंह, बिहटा (पटना), ऐडवोकेट श्री शशि कुमार ठाकुर, सुपुत्र स्व० डा० एस०एन० ठाकुर, जगदेव पथ, बैंक कॉलोनी, पटना एवं श्री राकेश कुमार सिंह, सुपुत्र श्री विनेश कुमार सिंह, ग्राम-पल्टू छतनी, नौबतपुर ने भी इस पुस्तक के प्रकाशन में प्रशंसनीय सहयोग दिया है जिसके लिये ट्रस्ट उनका आभारी है।

समाज के हित के लिये पूज्य स्वामीजी की इस पुस्तक को मूल रूप में बिना किसी प्रकार का हेर-फेर किये ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित कराया गया है, जिससे समाज को अधिक से अधिक लाभ मिल सके। समाज के सहयोग से ट्रस्ट उनकी अन्य कृतियों को भी यथाशीघ्र प्रकाशित कराने का प्रयास करेगा।

केदारनाथ सिंह
सचिव
श्री सीताराम आश्रम ट्रस्ट
राघवपुर, बिहटा (पटना)

रामावतार शर्मा
अध्यक्ष
श्री सीताराम आश्रम ट्रस्ट
राघवपुर, बिहटा (पटना)

प्रकाशक:

श्री सीतारामश्रम ट्रस्ट
बिहटा, पटना (बिहार)

संस्करण : **छठा संस्करण, 1 फरवरी 2004**

सहयोग राशि : 75.00 रु० (**पचहत्तर रुपये**)
10 डॉलर (**डाक व्यय अलग से**), **विदेशों में ।**

प्रकाशकीय : दो शब्द

परम पूज्य ब्रह्मलीन श्री श्री १०८ श्री स्वामी सहजानन्द सरस्वती जी की ११५वीं जयंती के अवसर पर उनकी अमर कृति ''ब्रह्मर्षि वंश विस्तर" के छठे संस्करण का प्रकाशन करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है । समाज द्वारा इस पुस्तक की जबरदस्त माँग ने इस पुस्तक के छठे संस्करण को प्रकाशित करने के लिये ट्रस्ट को प्रेरित किया ।

इस संस्करण के प्रकाशन में सहयोग के लिये **श्री सीताराम आश्रम ट्रस्ट, बिहटा, मान्नीय श्री यशवन्त सिन्हा, विदेश मंत्री, भारत सरकार का विशेष रूप से आभारी है**, जिनके सहयोग से इसका प्रकाशन इतना जल्द संभव हो सका ।

साथ ही स्थानीय समाजसेवी श्री अजित कुमार सिंह, सुपुत्र श्री शिव प्रसाद सिंह, बिहटा (पटना), ऐडवोकेट श्री शशि कुमार ठाकुर, सुपुत्र स्व० डा० एस०एन० ठाकुर, जगदेव पथ, बैंक कॉलोनी, पटना एवं श्री राकेश कुमार सिंह, सुपुत्र श्री विनेश कुमार सिंह, ग्राम-पल्टू छतनी, नौबतपुर ने भी इस पुस्तक के प्रकाशन में प्रशंसनीय सहयोग दिया है जिसके लिये ट्रस्ट उनका आभारी है ।

समाज के हित के लिये पूज्य स्वामीजी की इस पुस्तक को मूल रूप में बिना किसी प्रकार का हेर-फेर किये ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित कराया गया है, जिससे समाज को अधिक से अधिक लाभ मिल सके । समाज के सहयोग से ट्रस्ट उनकी अन्य कृतियों को भी यथाशीघ्र प्रकाशित कराने का प्रयास करेगा ।

केदारनाथ सिंह
सचिव
श्री सीताराम आश्रम ट्रस्ट
राघवपुर, बिहटा (पटना)

रामावतार शर्मा
अध्यक्ष
श्री सीताराम आश्रम ट्रस्ट
राघवपुर, बिहटा (पटना)

विषयानुक्रमणिका

पृ०

ब्रह्मर्षि वंश-विस्तर

इसके सिवाय किनवार, सकरवार, बेमुवार, बरुवार, कस्तुवार, कुढ़नियाँ, तटिहा, सोनपर्कारया, भृगुवंशी जिझौतिया, दंसवार, एकसरिया, सहदौलिया, जैथरिया, अरापै, पनचोभै, परहापै सहस्रागे नोनहुलिया, भरद्वाज, कौशिक, सावर्णियाँ, नेकतीवार, करमाई और गौतम आदि शब्दों का भी सविस्तार निरूपण है।

भूमिका

श्रीगणेशाय नमः ।।

गता गीता शास्त्रं क्वचिदपि पुराणं व्यपगतम् ।
विलीनाः स्मृत्यर्था निगमवचनं दूरमगमत् ।।
इदानीं रैदासप्रभृतिवचनान्मोक्षपदवी ।
न जाने को हेतुः शिव शिव कलेरेष महिमा ।।१।।
विद्वांसो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः ।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमंगे सुभाषितम् ।।२।।

आजकल का समय बहुत ही विलक्षण है। जिधर दृष्टिपात करिये उधर ही विचित्र लीलाएँ दृष्टिगोचर हो रही हैं। 'अपनी-अपनी डफली और अपने-अपने गीत' की ध्वनि, जिधर आँख उठाइये और कान दीजिये, उधर ही गूँज रही है। सभी लोग डेढ़ चावल की खिचड़ी पका रहे हैं। जो बात सामने आती है उसी का चटपट मनमाना फैसला कर देना प्रत्येक व्यक्ति के लिये एक साधारण बात हो रही है। सभी अपनी-अपनी उच्छृङ्खल और अनिश्चयपूर्ण सम्मति, हर बात में, देने को लालायित हो रहे और दे रहे हैं। जिसके मन में जो ही धुन समाई उसने चट लेखनी उठाई और उसे ही लिख मारा। जानने को तो संस्कृत का काला अक्षर भैंस बराबर, परन्तु बड़ी-बड़ी व्यवस्थायें लिखी जाने लगी हैं। कोई तो अंग्रेजी की दो-चार किताबें पढ़ चट धर्म तथा जाति-पाँति के निर्णय करने का बीड़ा उठा लेता है और कोई थोड़ा-सा केवल ज्योतिष, व्याकरण अथवा काव्यादि ही पढ़कर पूर्वोक्त विषयों में मनमानी बकने लगता है। आजकल की बड़ी-बड़ी समस्यायें शीघ्रबोध और मुहूर्तचिन्तामणि से ही हल होती हैं। पुराणों के आधार पर बड़े-बड़े तान टूटते हैं, परन्तु पुराणों में उनकी गन्ध भी नहीं है। कितने ही नूतन काल्पनिक पुराणों की रचनायें और तान्त्रिक तथा पौराणिक ग्रन्थों के नाम पर दो-चार श्लोकों का जिस किसी विषय में लिख देना ही आजकल के प्रखर पाण्डित्य का प्रतिफल है और इसी टट्टी की ओट में शिकार खेल कर अपने दिल की पुरानी कान निकाली जाती है, बापदादों के बदले चुकाये जाते हैं। इतना ही नहीं, इन्हीं कल्पित श्लोकों और दोहे चौपाइयों के आधार पर दूसरे ग्रन्थ बनाये जाते हैं, और उन्हीं के आधार पर तीसरे इत्यादि। वाह रे मानसिक प्रासादकल्पना ! बस अब क्या है; इन्हीं कल्पित पोथों को लेकर पण्डित से मूर्ख तक सब विषयों की व्यवस्थायें करने लग जाते हैं। क्या कहें, पढ़े लिखे संसार में ही अन्धेर मच रही है। चाँदनी रात में भी डाके पड़ना यह विचित्र और अघटित घटना आज देखने में आ रही है। जिस समाज के लोग आजकल के जैसे चार अक्षर पढ़े-लिखे भूत नहीं हैं उसकी तो दुर्दशा है; उसके लिये तो 'अन्धे की गैया राम रखवैया' की बात है। सुना करते थे कि सरकारी बन्दोबस्त के समय चतुर

जमींदार सैकड़ों वर्ष के अनपढ़ और सीधे-सादे काश्तकारों को शिकमी लिखा लिया करते थे, या करते हैं। परन्तु वह बात तो आज जाति-पाँति निर्णय के विषय में आँखों देखी जा रही है। पाठकों को उदाहरणार्थ 'वर्ण विवेक चन्द्रिका' नामक चार पन्ने की पुस्तक का तत्त्व दिखलाते हैं। उसमें लिखा है कि, **"पुराणं शूकराख्यं वै तंत्रं भुवलसंज्ञकम् । विलोक्य जातिबोधाय रच्यते वर्णचन्द्रिका ।।२।।"** इसका अर्थ है कि 'शूकर (वाराह) पुराण और भुवलतन्त्र को देखकर जातियों का ज्ञान होने के लिये, वर्ण (विवेक) चन्द्रिका नामक ग्रन्थ बनाता हूँ। परन्तु यदि ग्रन्थकर्त्ता महाशय के बताये हुए वाराह पुराण को देखिए तो उसमें जाति-विचार का गन्ध भी नहीं है, निरूपण तो दूर रहा। जिसको इसकी जांच करनी हो, वह अन्यत्र मुद्रित तथा 'एसियाटिक सोसाइटी' कलकता मुद्रित पुस्तक का अवलोकन करे। उसमें प्रत्येक अध्याय के विषयों का पृथक सूचीपत्र भी दिया हुआ है और सम्पूर्ण पुराण का सारांश प्रति अध्याय के विषय सूचन द्वारा संक्षिप्त गद्यात्मक संस्कृत के ६० या ७० पृष्ठों में लिखा है। पं० ज्वाला प्रसाद का 'पुराणदर्पण' देखने से भी शीघ्र उक्त पुराण के विषयों का ज्ञान हो सकता है, और आद्योपान्त पुस्तक देखने से तो शंका भी नहीं रह सकती है। यह तो हुई महाशयजी के बताये पुराण की कथा। अब दूसरे आधार 'भुवल तन्त्र' को देखिये। प्रथम तो यह नाम ही विचित्र है। क्योंकि ह्रस्व भु शब्द वाला नाम अप्रसिद्ध है। यदि 'भूवल' ऐसा नाम होवे तो 'बृहज्जोतिषार्णव' ग्रन्थान्तर्गत पृथ्वीनिरूपण प्रकरण में तीन ग्रन्थ इस तरह के मिलते हैं, (१) भूगोल वर्णनाध्याय, (२) भूवल निरूपणाध्याय, (३) मानाध्याय गणित नाममालाध्याय। परन्तु इन ग्रन्थों में जातिनिरूपण प्रसंग ही नहीं। इस बात को लोग क्रमिक तीनो नामों,प्रसंग तथा ग्रन्थ नाम से भी अच्छी तरह समझ सकते हैं। साथ ही, यह भी याद रखना चाहिये कि ग्रन्थकर्त्ता ने जाति विषयक दो प्रकरण अलग ही बनाये हैं, (१) ब्राह्मणोत्पत्तिमार्त्तण्ड, (२) वर्णसंकरजातिनिरूपण। यदि ऐसा कहा जावे कि इस नाम का कोई तंत्र ग्रन्थ है सो भी ठीक नहीं मालूम होता। क्योंकि मिथिला तथा अन्य देशीय बड़े-बड़े पण्डितों और तांत्रिकों से पूछने पर भी इस नाम के तंत्र ग्रन्थ का पता न लगा। मुद्रित तन्त्र ग्रन्थों में तो इसका नाम भी नहीं है। क्योंकि मुद्रित तन्त्र ग्रन्थ ये हैं, (१) आश्चर्य योग रत्नमाला, (२) आसुरी कल्प, (३) इन्द्रजाल, (४) उड्डीश, (५) काम रत्न, (६) क्रियोड्डीश, (७) गुप्तसाधन, (८) गौतम, (९) गन्धोत्तमनिर्णय, (१०) दत्तात्रेय, (११) धन्वन्तरितंत्र शिक्षा, (१२) महा निर्वाण, (१३) मंत्रमहार्णव, (१४) मन्त्रमहोदधि, (१५) माहेश्वरी, (१६) मेरु, (१७) योगिनी, (१८) योगमाला, (१९) वन्ध्या, (२०) सिद्धशंकर इत्यादि। इनके अतिरिक्त 'एसियाटिक रिसर्चेज' (Asiatic Researches) नामक अंग्रेजी ग्रन्थ में, जो संन् १८०१ ई० में छपा है, हिन्दू जातियों के निरूपण प्रकरण के पृष्ठ ६२ में कुछ तन्त्रग्रन्थों के नाम 'दुर्गामहत्त्व' नामक तन्त्र के आधार पर गिनाये हैं, जिसका भावार्थ यह है कि (१) काली, (२) मुण्डमाला, (३) तारा, (४) निर्वाण, (५) सर्वरसरण, (६) वीर, (७) शृङ्गार्चन, (८) भूत, (९) उड्डीशान, (१०) कालिकाकल्प, (११) भैरवी तंत्र, (१२) भैरवीकल्प, (१३) तोडल, (१४) मातृबृहदज्च, (१५) मायातन्त्र, (१६) वीरेश्वर, (१७) विश्वेश्वर, (१८) समय तन्त्र, (१९) ब्रह्मयामल, (२०) रुद्रयामल, (२१) शंकरयामल, (२२) गायत्री, (२३) कालिकाकुलसर्वस्व, (२४) कुलार्णव, (२५) योगिनी तन्त्र, (२६) महिषमर्दिनी। हे भैरवि ! यही तन्त्रग्रन्थ सर्वसाधारण में प्रचलित हैं। इनके अतिरिक्त तन्त्र ग्रन्थों का पता नहीं चलता। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जाति-निरूपण का जहां कहीं प्रसंग आया है, चाहे संस्कृत,

हिन्दी अथवा अंग्रेजी ग्रन्थों में, वहाँ केवल रूद्र यामल का ही लोग नाम लेते हैं। इससे यही स्पष्ट झलकता है कि जैसे वाराहपुराण का नाम ग्रन्थकर्त्ता महाशय ने झूठ-मूठ लिया है वैसे ही या तो तंत्र ग्रंथ का कल्पित नाम रख दिया है, अथवा यदि ऐसा ग्रन्थ कहीं पर्वतादि की गुफाओं में मिले भी तो उसमें जाति का विचार नहीं हैं। उसका नाम यों ही धोखा देने के लिये लिया गया है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि 'वर्ण-विवेक चन्द्रिका' बहुत ही अल्प काल हुए वेंकटेश्वर प्रेस में छपी है। यदि ग्रन्थकार को अन्य ग्रन्थों का प्रमाण देना था तो उनके अध्याय आदि का तो नाम, कम-से-कम, दे देते। क्योंकि आजकल की प्रथा ऐसी ही है। परन्तु उन्हें तो लोगों को भुलावा देना था, इसलिए तन्त्रग्रन्थ का नाम लिया। क्योंकि वे आजकल प्रायः अप्रचलित हैं, इसलिये झुठाई का पता न लगेगा। परन्तु यदि इस प्रकार से लिखना हो, तो जिस किसी के भी विषय में तन्त्रादि के नाम से बहुत से कल्पित श्लोक आदि कहे जा सकते हैं, जिससे हाहाकार मचने के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता है। ऐसे ही स्वार्थान्ध और दुर्बुद्धि महाशयों ने पुराण आदि का नाम भी बदनाम कर दिया है। अतः उधर से लोगों को अश्रद्धा होने लग गई है। अस्तु, इसी 'वर्ण-विवेक चन्द्रिका' के आधार पर पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र ने 'जातिनिर्णय' नाम का ग्रन्थ बनाया है। या यों कहना चाहिये कि भाषा में उसकी टीका करके कुछ इधर-उधर से भी उसमें पेबन्द लगा दिया है। उस ग्रन्थ में आप बहुत जगह लिखते हैं कि 'इति वर्ण विवेक चन्द्रिका'। क्या वर्ण विवेक चन्द्रिका भी कोई आर्ष ग्रन्थ है जिससे वह भी स्वतन्त्र प्रमाण मानी जावे? तो फिर कबीर साहब की साखी और दादू साहब की बानी तथा गुलबकावली आदि को भी क्यों न मानेंगे? बल्कि बाइबिल और कुरान को भी मान कर जाति पांति को ही धो देना चाहिये। यदि संस्कृत श्लोक या गद्यों ही पर अन्ध विश्लवास होवे तो बाइबिल आदि का भी संस्कृत अनुवाद संतोष के लिये मिल सकता है। जातिनिर्णय ग्रन्थ को बनाकर विद्यावारिधिजी ने अपनी विद्यावारिधिता का खूब ही परिचय दिया है ! यदि वर्णविवेकचन्द्रिका के श्लोकों को पुराणदि के वाक्यों द्वारा प्रमाणित कर देते तो, और भी आपका यश नभो-मण्डल में छा जाता। परन्तु दुर्भाग्य हम लोगों का कि वारिधि मिलने पर भी प्यासे ही रहना पड़ा ! वारिधिजी की ज्वाला का विशेष परिचय आगे इस ग्रन्थ में ही कराकर आपका तथा वर्ण विवेक चन्द्रिकाकार का विशेष परिचय वहीं देंगे। दूसरी पोथी 'भूमिहारोत्पत्ति' नाम की लक्ष्मीवेंकेटेश्वर प्रेस बंबई में छपी है, जिसके अन्त में लिखा है कि 'इति श्रीस्कन्दपुराणे पाताल खण्डे धर्मारण्यमाहात्म्यवर्णने भूमिहारोत्पत्ति वर्णनं नामैकादशोऽध्यायः,। बस, अब क्या है, लोग देखते ही समझेंगे कि जिस विषय में ग्रन्थ और उसके अध्याय आदि तक लिखे हुए हैं, उस विषय की पोथी कब झूठो हो सकती है? परन्तु यदि स्कन्दपुराण में ऐसी पंक्ति ११वें अध्याय में या अन्यत्र देखकर कोई इस ग्रन्थ की सत्यता की परीक्षा करना चाहे, तो सिवाय पोल खुलने के और कुछ हाथ न लगेगा। प्रथम तो प्राचीन हस्तलिखित स्कन्दपुराण में इन सब विषयों का जिक्र ही नहीं है। वहाँ तो धर्मारण्यखण्ड में अथवा ब्रह्मखण्ड में प्रदोष, शिवरात्रि आदि का निरूपण है। रह गई स्कन्दपुराण के नाम से वेंकटेश्वर प्रेस में छपे पुराण की बात। उसके भी १०वें अध्याय में गोभुज बनियों का वर्णन तो अवश्य है, परन्तु न तो उसमें कहीं भूमिहार शब्द ही आया है और न इस विषय का कुछ पता ही है और अन्त में ऐसा भी नहीं लिखा है, जैसा 'इति श्रीस्कन्दपुराणे' इत्यादि ऊपर दिखला चुके हैं। साथ ही उसमें भी जो बहुत से कुचर इत्यादि शब्द और श्लोक मिलाकर मनमाना अर्थ किया है, उसका पर्दा उखेड़ प्रसंगवश पुस्तक में

ही करके ग्रन्थकार का पूर्ण परिचय देंगे। ऐसा ही 'जगतराय दिग्विजय' नामक ग्रन्थ में भी बिना प्रसंग के ही झूठ-मूठ कुछ लिख मारा है। क्योंकि जिस 'जगतराय' का दिग्विजय उसमें वर्णित है, वह कोई ऐसा प्रतापी राजा नहीं हुआ है, जिसके यहां काशिराज मिलने को गये थे। और जो तिथि जगतराय के काशी में आने की उसमें लिखी है, उस समय काशी में कोई हिन्दू राजा ही नहीं था। इस बात को ग्रन्थ में ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा दिखलाकर उस ग्रन्थ के वाक्यों की भी कठिन समालोचना की जावेगी। अन्त में मैं एक-दो हिन्दी के ऐतिहासिक ग्रन्थों का दिग्दर्शन कराकर इस विषय को यहीं आगे के लिये छोड़ना चाहता हूँ। पहला ग्रन्थ 'विशेनवंश वाटिका' नाम का है जो खड्गविलास प्रेस में १८८७ में छपा है। इसके विषय में इस जगह मुझे यही कहना है कि उस ग्रन्थ के नाम पर ग्रन्थकर्ता को केवल अपनी योग्यता की नोटिस देनी थी, क्योंकि ग्रन्थ के टाइटिल पेज पर आपने अपने सारे विशेषण लिखे थे ही, फिर उन्हीं की आवृत्ति ९० वें पृष्ठ से लेकर प्रायः दो परिच्छेदों में की। परन्तु जब उससे भी संतोष न हुआ तो पुस्तक के अन्त में भी अपनी प्रशंसा की बहुत-सी सनदें पेश कर डालीं। दूसरी बात यह है कि आप उसी पुस्तक के ४५, ४६ पृष्ठों में लिखते हैं कि 'शंकर दिग्विजय से स्पष्ट जाना जाता है कि मयूरभट्ट ही के समय में शंकराचार्य भी उत्पन्न हुए थे और शंकराचार्य को एक हजार वर्ष से कम न हुए, इसी से मयूरभट्ट के भी समय का अनुमान किया जा सकता है।' और फिर ५३ से ५५ पृष्ठ तक मयूरभट्ट से लेकर ११४ राजाओं की वंशावली लिखी है और इस विषय में ईलियट साहब की भी सम्मति पृष्ठ ४९ में दिखलाई है कि 'वर्तमान राज्यकर्त्ता मयूरभट्ट से ११५ पीढ़ी में हैं।' पाठक इस जगह ही ग्रन्थकर्त्ता महाशय की सुबुद्धि का पता लगा कर सम्पूर्ण ग्रन्थ की बातों की सचाई-झुठाई समझ सकते हैं। बात यह है कि मयूरभट्ट से आज तक ११५ राजाओं को गिनाकर भी उनका समय १००० वर्ष बताना, या उसे बताकर उन राजाओं को गिनाना उनकी अलौकिक बुद्धिमत्ता का फल नहीं तो और क्या हो सकता है? नहीं मालूम कि ग्रन्थ लिखने के समय दिमाग आकाश में चक्कर लगा रहा था या और कहीं गया था। ऐसी दशा में उनकी पवित्र लेखनी से जो कुछ भी न लिखा गया होवे, उसी में आश्चर्य है। एक जगह आप लिखते हैं कि 'यह महाशय (मयूरभट्ट) उसी ऋषिकुल के हैं, जिस ब्रह्मवंश में द्रोणाचार्य, भीष्माचार्य और रामाचार्य हुए, वाह-वाह क्या ही बुद्धिमत्ता है.? मयूरभट्ट वत्सगोत्री भृगु, वत्स, च्यवनादि के वंश में हो सकते हैं। परन्तु द्रोणाचार्य जी का भारद्वाज गोत्र था, क्योंकि महाभारत, आदिपर्व के १६८ वें अध्याय में भरद्वाज से घृताची अप्सरा द्वारा उनकी उत्पत्ति लिखकर लिखा है कि **'वनन्तु प्रस्थितं रामं भरद्वाजसुतोऽब्रवीत्। आगतं वित्तकामं मां विद्धि द्रोणं द्विजोत्तम ॥९॥** अर्थ यह है कि 'जब परशुरामजी पृथ्वी निःक्षत्रिया करके उसे कश्यपादि ब्राह्मणों को देकर वन जाने लगे, तब भरद्वाज के पुत्र ने उनसे जाकर कहा कि हे द्विजोत्तम ! मैं द्रोण हूँ और धन की इच्छा से आया हूँ।' फिर दोनों एक कुल के कैसे हुए? उस पर भी तुर्रा यह है कि उसी वंश में क्षत्रिय वंशोद्भव भीष्म पितामह तथा श्री रामजी को भी आप लिख रहे हैं। वाह-वाह क्या ही अच्छा शास्त्र तथा व्यवहार का परिशीलन है? एक जगह आप लिखते हैं कि यद्यपि मिस्टर ईलियट के कथनानुसार मझौली राज्य मयूरभट्ट ने ही प्राप्त किया। परन्तु पुराने कागजों से विशेन का ही प्राप्त करना सिद्ध होता है। तथापि यह विरोध ऐसा नहीं है जिससे अर्थभंग हो। एक तो आपको ऐसी दशा में, जब प्रबल इतिहासज्ञ अंग्रेज के साथ विरोध पड़ता है, तो जैसे ग्रन्थान्त में आपने अपनी सनदें पेश की हैं, वैसे ही उस

कागजी प्रमाण को भी लिख देना था। क्योंकि आपके निज के सार्टिफिकेट से वह अधिक उपयोगी है। परन्तु आपके पास तो कुछ है नहीं। केवल जगह-जगह कागजी प्रमाण कहकर लोगों को डरवाते और श्रद्धा पैदा करना चाहते हैं। दूसरे, यदि ऐसे विरोध से ऐतिहासिक अर्थ का भंग नहीं, तो आप भंग मानते हैं किससे.? एक दूसरे से बिल्कुल विरुद्ध कहे और फिर भी अर्थ भंग नहीं? बस, इसे यहीं रहने देते हैं। अवशिष्ट वक्तव्य प्रसंगवश आगे प्रकाशित करेंगे। क्योंकि बुद्धिमान इतने ही से उस ग्रन्थ की बातों का तत्त्व जान गये होगें। दूसरा ग्रन्थ निरंजन मुखोपाध्याय रचित 'भारतवर्षीय राजदर्पण' है। यद्यपि इस ग्रन्थ की बातों का खंडन आगे करेंगे। परन्तु उसका परिचय इसी जगह करा देना उचित होगा। ग्रन्थावलोकन से यह स्पष्ट झलकता है कि उसका लेखक काशिराज का निपट द्रोही था। अतएव जिस किसी ग्रन्थ में भी उनकी प्रशंसा की बात लिखी गई है वह चाहे कितनी ही सत्य क्यों न हो, उस पर आक्षेप करना उसका मुख्य उद्देश्य प्रतीत होता है। बनारस सूबे के इतिहास का जो प्रथम खण्ड आयरलैण्ड के इनवर्नेस प्रदेश में छपा है और जिसके प्रत्येक पृष्ठ में हर बात पर सरकारी कागजों का नोट दिया हुआ है, उसके विषय में यदि कुछ भी बुद्धि न चली है तो भूमिका पृष्ठ ४ में लिख दिया है कि महाराज ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह ने अपने वंश को बढ़ा कर लिखवाने के लिये उसे छपवाया है और कहीं-कहीं वार्नहेस्टिंग्ज के समय के कागजों से उसको प्रमाणित करने की चेष्टा की गई है। यह लेख कहां तक सत्य है वह उस पुस्तक के देखने से विदित हो जायेगा। फिर आगे भूमिका पृष्ठ ५ में आप लिखते हैं कि "जब से मनसा राम मझवां ग्राम के पहलवान सिंह की नौकरी छोड़कर आधे ग्राम के चतुर्थांश के एक अंश की मलिकाई से ऊँचे दर्जे पर चढ़े, तब से उन्होंने और उनके वारिसों ने सब तरह से स्वाधीन राजाओं के माफिक इज्जत के लिये कोशिश की है लेकिन उसे सरकार ब्रिटिश गवर्नमेंट ने कभी मंजूर नहीं किया है।" देखिये, इन कलुषतापूर्ण शब्दों से कैसा द्वेष झलकता है? विवेकी ऐसे शब्दों का प्रयोग कभी नहीं कर सकते। ब्रिटिश गवर्नमेंट ने इसको कभी नहीं स्वीकार किया है, यह कहना तो उन्हीं महाशय को शोभा देता है। क्योंकि यदि गवर्नमेंट उसे न मानती तो द्विजराज महाराज काशिराज को स्वतन्त्र क्यों कर देती? हाँ, जब तक महाराज ने न चाहा था, तब तक गवर्नमेण्ट को इससे मतलब ही क्या था, कि उनको स्वतन्त्र राजा कहती फिरे? उसी जगह आपने फिर लिखा है कि 'वार्नहेस्टिंग्ज ने भी राजा चेतसिंह के साथ बराबर वैसा ही बर्त्ताव किया था जैसा जमीन्दार के साथ करना चाहिये।' परन्तु जब आपने राजा चेतसिंह के बारे में कौन्सिल में वार्नहेस्टिंग्ज द्वारा कही हुई बातों का पृष्ठ २१ में उल्लेख किया है, तो वहाँ लिखते हैं कि हेस्टिंग्ज साहब ने कहा कि राजा के साथ एक निरूपित मालगुजारी पर इस्तमरारी बन्दोबस्त किया जावे और उनके इलाकों के तमाम अख्तियार उन्हें दे दिया जावे जिसमें किसी तरह से पीछे उस पर दस्तन्दाजी करने का अख्तियार न रह जावे और इलाके में रेजीडेण्ट भी न रहे। वे कम्पनी को पटने के इलाके में मालगुजारी दाखिल किया करें। क्योंकि रेजिडेण्ट मोकर्रर होने से वे राज्य और राजा पर अपना अख्तियार जारी करने की कोशिश करेंगे और उसमें राजा के साथ उनका विवाद होकर कौन्सिल में हमेशा नालिश आया करेगी, जिसमें रेजिडेण्ट की बात में निःसन्देह विश्वास करके राजा के विपक्ष सब फैसला होवेगा और पश्चात् एतद् द्वारा उनका सब नुकसान करके उनको साधारण जमींदार की अवस्था में घटा ले आवेगा। साथ ही, आप राजा चेतसिंह की सनद पेश करते हुए उनके

दीवानी आदि के अधिकारों को भी स्वीकार करते हैं। फिर यह लिखना कि वार्नहेस्टिंग्ज का व्यवहार उनके साथ साधारण जमींदारों का सा था कितनी बड़ी घृष्टता और द्वेष का फल है? आप सुबहान अली के बलवंतनामे की निन्दा करते हैं, क्योंकि उससे काशिराज के महत्त्व की सूचना होती है। इसीलिये उस पर दिलोजान से रंज हैं। परन्तु खैरुद्दीन के बलवन्तनामे की आपने खूब प्रशंसा की है और उसे प्रामाणिक भी ठहराया है। तो भी कई जगह उसके भी विरुद्ध लिख कर काशिराज की निन्दा करने से न हटे। दृष्टान्त के लिये हम रुस्तम अली के मामले को उपस्थित करते हैं। पृष्ठ ६ में आप लिखते है कि 'सन् १७३४ ई० में जब अवध के नवाब ने रुस्तम अली पर खफा होकर उन्हें बनारस से निकालने के लिये अपने नायब सफदर जंग को भेजा, तो रुस्तम अली ने मनसा राम को अपनी तरफ से उनको मनाने के लिये जौनपुर भेजा। परन्तु मनसाराम ने अपने मालिक के साथ दगाबाजी करके सफदरजंग के पास से बनारस, जौनपुर और चुनार के परगने अपने बेटे बलवन्त सिंह के नाम बन्दोबस्त करवा लिये' इत्यादि। अच्छा, अब खैरुद्दीन के बलवन्तनामे को देखिये, जो गवर्नमेण्ट प्रेस प्रयाग में १८७५ ई० में छपा है। उसके ८ और ९ पृष्ठों में लिखा हैं कि "However, in 1150 Hijree, being summoned by the Emperor Mahomed Shah to Delhi, he went, leaving his son-in-law, Nawab Abdul Munsur Khan, as his deputy. The enemies of Roostum Alee, finding this an opportunity, poured their complaints and accusations into the ears of Sufdar Jung, asserting that Roostum Alee paid no attention to state business, but spent all his time in persuit of pleasure; that he entertained enemity towards the servants of the state and meditated encroachment on the prerogative of Meer Murtaza; and thus they succeeded in causing Sufdar Jung to mistrust him. When Nawab Abdul Munsur Kban got wind of these accusations, he became greatly irritated and at once started from Fyzabad to infict chastisement. When he had reached Jaunpore, the wellwisher of Roostum Alee, who always had spite against Munsaram, insinuated that he was the originator of all this ill-feeling; that openly he professed friendship but in his heart was contriving schemes to injure; and that he it was who had excited Sufdar Jung against him (Roostum Alee). Roostum Alee was thunder-struck at hearing all these stories and asked Raja Munsaram what they meant. Munsaram, a clever and open-minded man, assured Roostum Alee that it was imposible for him, whom he had raised from nothing, to be guilty of such treachery, and that it was merely the invention of enemies who were envious to Roostum and also wished to injure him (Munsaram). To this Roostum Alee replied that if such was really the case, some steps must be taken to induce Sufdar Jung to return at once from Jaunpore to Fyzabad. Munsaram answered that any direct application to that effect would not do; but if Roostum would permit, he himself would proceed to the Nawab by making things smooth with the Nawab's ministers and

presenting gifts to remove his suspicions; but he added that he felt doubtful about Roostum's feelings towards him while absent; that it was likely his enemies would take this chance of misrepresenting all his actions, and thus cause a coldness to arise between them in which case his efforts would be fruitless. Roostum Alee apporoved of Munsaram's plan, and assuring him of the continuance of his friendship, sent him with costly presents to the Nawab. Rajah Munsaram, on his arrival at Jaunpore and obtaining an audience, laid these presents from Roostum Alee before the Nawab, and by his address and knowledge of affairs, completely cleared the mind of the Nawab from the doubts he had regarding Roostum Alee, and brought him to look again with favour upon the latter, During the discussions about these affairs, Munsaram had offered an increase of Four Lakhs of rupees in revenue, if the four Surkars were continued to Roostum Alee, When a letter came from Boorhanoolmoolk to Sufdar Jung to the effect that the Ghazipur province was to be given to Sheikh Abdoollah. Munsaram, on hearing of this project, without consulting Roostum Alee strongly objected and the argument between the Nawab's ministers and Munsaram waxed hot on the point, when suddenly Sheikh Abdoollah appeared on the scene and bid eight lakhs additional for the four Surkars. Munsaram's enemies about Roostum Alee represented to him that all these proceedings were merely dodges of Munsaram, and succeeded in causing Roostum Alee to suspect him. An angry correspondence then began. Roostum showed displeasure openly to Bulwant Singh who was at his court, and permitted the enemies of Munsaram to attend and take part in his councils. By their advice, he sent another envoy to the Nawab, who was directed to carry on the negotiation, without consulting Munsaram, throught some ot the Nawab's ministers; and by no means to allow Munsaram to interfere. These things were soon known to Munsaram and grieved him greatly; he consulted those of his friends who were at Nawab's court, and was advised by them that, since his principal had thrown him over, his best plan was to act for himself in the business to spend money, and court the favour of the Nawab. According, as he fully perceived that his power in the country and influence with Roostum Alee would go with his loss of favour, and not liking to fall back into a position of inferiority, he made overtures to Nawab's ministers and obtained their consent to getting the three Surkars by paying 13 Lakhs of rupees revenue........."

भावार्थ यह है कि "११५० हिजरी अर्थात् १७३२ ई० में बादशाह मुहम्मद शाह के बुलाने से नवाब सआदत खाँ अपने दामाद अब्दुल मंसूर खाँ (सफदरजंग) को अपना नायब

बनाकर दिल्ली चला गया। यह मौका पा रुस्तम के शत्रु सफदरजंग के कानों में शिकायतें यह कहकर भरने लगे कि रुस्तम अली राज्य कार्य की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देता, विषयासक्ति में अपना सब समय बिताता, राज्य के नौकरों से शत्रुता रखता और मीरमुर्तजा के अधिकारों को दबा लेने के लिये सोचा करता है। इस प्रकार से उन्होंने सफदरजंग के दिल में रुस्तम अली की ओर से अविश्वास पैदा कर दिया। जब नवाब सफदरजंग (अब्दुल मंसूर खाँ) के पास ये शिकायतें पहुँचीं, तो बहुत ही रंज हुआ और तुरन्त रुस्तम अली को दण्ड देने के लिये फैजाबाद से रवाना हुआ। जब वह जौनपुर पहुँच गया, तो रुस्तम अली के खैरख्वाह ने, जो मनसा राम से सदा विरोध रखता था, धीरे से यह उकसाया कि मनसा राम ही इस शत्रुता का कारण है जो बाहर से मित्रता सूचित करता है, परन्तु हृदय में आपके सताने की युक्तियाँ सोचा करता है। यही, शख्स है जिसने सफदरजंग को आपके विरुद्ध उभाड़ा है। रुस्तम अली इन बातों को सुनकर भौंचकसा रह गया और उसने मनसा राम से पूछा कि इन सब बातों का अर्थ क्या है? मनसा राम ने, जो चतुर और प्रतिभाशाली पुरुष था, रुस्तम अली को निश्चय करवाया कि मेरे लिये इन सब छल-कपटों का अपराधी होना असम्भव है, जिसे आपने एक तुच्छ दर्जे से ऊँचे पर चढ़ाया है। यह केवल शत्रुओं की मिथ्या कल्पना है, जो आपके द्वेषी हैं और मुझे भी सताना चाहते हैं। इस पर रुस्तम अली ने उत्तर दिया कि यदि सचमुच यह बात है तो सफदरजंग को जौनपुर से फैजाबाद तुरन्त लौट जाने को राजी करने के लिये कोई उपाय करना चाहिये। मनसा राम ने कहा कि इस विषय में सीधा यत्न कुछ काम न करेगा। लेकिन यदि आप आज्ञा देवें तो मैं स्वयं नवाब के मन्त्रियों से मिलकर नवाब के पास जाऊँ और उसे नजर देकर उसके सन्देह दूर करूँ। लेकिन अपनी अनुपस्थिति में मुझे अपने साथ आपके बर्ताव का सन्देह है; क्योंकि यह हो सकता है कि ऐसे समय में मेरे शत्रु मेरे सब कामों को आपकी दृष्टि में उलटा जँचा देवें और इस तरह से मेरे-आपके बीच मनोमालिन्य पैदा कर देवें; जिस दशा में मेरा यत्न निष्फल हो जायगा। रुस्तम अली ने मनसा राम के उपाय को पसन्द किया और अपनी मैत्री के स्थिर रखने का विश्वास दिलाकर बहुत सी बहुमूल्य भेंट के साथ मनसा राम को रवाना किया। मनसा राम ने जौनपुर पहुँच अवसर पाकर दरबार में इन सब भेंटों को नवाब के सामने रख दिया और अपनी बातचीत और कुशलता से नवाब के चित्त को रुस्तम अली सम्बन्धी सब सन्देहों से बिल्कुल रहित कर दिया और रुस्तम पर उसकी कृपादृष्टि उत्पन्न कर दी। जब इसी विषय के विवाद के समय मनसा राम ने कहा कि यदि चारों सरकारें रुस्तम अली के ही अधिकार में रहने दी जावें, तो मैं चार लक्ष अधिक दूँगा, उसी समय एक पत्र बुरहानुल मुल्क (सआदत खाँ) के पास से सफदरजंग के नाम इस बात का आया कि सूबा गाजीपुर शेख अब्दुल्ला को दिया जावेगा। जब मनसा राम को यह मालूम हुआ तो रुस्तम अली से पूछे बिना ही इस बात को उसने बहुत ही रोका और मनसा राम तथा नवाब के मंत्रियों के बीच इस विषय पर बहुत कड़ा वाद-विवाद हुआ। परन्तु उसी समय अकस्मात् शेख अब्दुल्ला पहुँच गया और उसने चारों सरकारों के लिये ८ लाख और देने को कहा। इसी समय मनसा राम के शत्रुओं ने रुस्तम से कहा कि ये सब कार्रवाइयाँ केवल मनसा राम के छल हैं और ऐसा कहकर रुस्तम अली का उसकी ओर से शक पैदा कर दिया। उस समय चिढ़ाचिढ़ी की लिखापढ़ी होने लगी। रुस्तम ने बलवन्त सिंह के प्रति, जो उस समय दरबार में उपस्थित थे, अपनी अप्रसन्नता सूचित की और मनसा राम के शत्रुओं

को दरबार में भाग लेने और उपस्थित होने की आज्ञा दे दी और उन लोगों की राय से दूसरा राजदूत नवाब के पास भेजा, जिसको समझा दिया कि बिना मनसा राम के पूछे ही नवाब के कुछ मन्त्रियों द्वारा बातचीत करे और किसी प्रकार से भी मनसा राम को दखल देने न देवे। जब यह बात मनसा राम को मालूम हुई तो उसको बहुत ही दुःख हुआ। उसने अपने मित्रों से जो नवाब के दरबार में थे, सलाह की। उन्होंने राय दी कि, जब आपके मालिक ने आपको बेइज्ज़त या अलग कर दिया, तो आपके लिये सबसे अच्छी बात यह है कि अपने ही लिये इस विषय में यत्न करें, रुपये खर्चे और नवाब को अपने पक्ष में लावें। इसी के अनुसार जब मनसा राम ने भी खूब विचार किया कि मेरे ऊपर रुस्तम की नामिहर्बानी के साथ उसके ऊपर मेरा प्रभाव और देश के ऊपर अधिकार भी जाता रहेगा और तुच्छ होकर रहना भी अच्छा नहीं है, तो उसने नवाब के मन्त्रियों से बातचीत की और १३ लाख रुपये मालगुजारी पर तीनों सरकारों के पाने की मन्जूरी उसने कर ली।''

बस, अब पाठक ही निरञ्जन मुखोपाध्याय की दी हुई इस मामले की तारीख और इस मामले का मिलान कर लेवें। आपने यह भी भूमिका में ही लिख दिया है कि खैरुद्दीन ने चेत सिंह के परम विश्वासी बाबू औसानसिंह की जो शिकायत की है उसे छोड़कर और सब कुछ उनका लिखा ठीक है। परन्तु आगे चलकर आप ही लिखते हैं कि बनारस राज्य के असली अधिकारी मनिहार सिंह को छल-कपट से हटाकर ही औसान सिंह ने चेत सिंह को राजा बनाया। दूसरी जगह और भी लिखते हैं कि वार्नहेस्टिंग्ज की तरफ २०००००) के लिये हुकुम आदि जारी करवाना बाबू औसान सिंह का ही छल तथा द्वेष था। क्योंकि उनको गद्दी दिलवा कर उनके ऊपर अधिकार आदि जमाने की इच्छा किये हुए थे। भला इसको निन्दा नहीं कहते हैं, तो क्या कहते हैं? बलिहारी है ऐसे पूर्वापर विरुद्ध लेखक की बुद्धि की! आप लिखते हैं कि मनसा राम ने बलवन्त सिंह के साथ १७३८ ई० में धूमधाम से राजा के ठाटबाट में काशी में प्रवेश किया। परन्तु उसी बलवन्तनामे के दसवें पृष्ठ में लिखा है कि 'Rajah Munsaram arrived at Benares on the 21st day of the month Safar in the year 1151, Hijree, and at once entered upon the Government of his three provinces....' अर्थात् राजा मनसा राम ११५१ हिजरी (सन् १७३३ या ३४) के सफर महीने की २१वीं तारीख को बनारस पहुँचे और उसी समय अपनी तीनों सरकारों के राज्य पर अधिकार किया इत्यादि।' इसी से विचारा जा सकता है कि ऐसे लेखक महाराज द्विजराज श्री काशिराज, अथवा भूमिहार ब्राह्मण समाज मात्र के विषय में या दूसरों ही के विषय में जो कुछ न लिख डालें, उसी में आश्चर्य है। परन्तु उनकी बात कहाँ तक सत्य हो सकती है इसके कहने की अब आवश्यकता नहीं है। विशेष रीति से निरञ्जन मुखोपाध्याय के वाक्यों का विचार ग्रन्थ में ही चलकर करेंगे। आश्चर्य तो इस बात का है कि ऐसे आदमियों के वाक्यों को भी ऋष्यादि वाक्यों की तरह प्रामाणिक मान और हवाला देकर बाबू हरिश्चन्द्र ऐसे लेखक भी अकाण्ड ताण्डव करने में न चूके। नहीं तो भला बताइये, मुद्रा राक्षस की टीका करने में भूमिहार ब्राह्मणों की उत्पत्ति लिखकर राक्षसी मुद्रा दिखलाने की क्या आवश्यकता थी? यदि हँसुए के ब्याह में खुरपे का गीत ही गाना था, तो आपने अपने ही घर का विचार करके सन्तोष क्यों न कर लिया?

बाबू रामदीन सिंह तो उनके गहरे चेले ही थे, अतः उनसे भी बिहार दर्पण में गुरुजी का अनुसरण किये बिना न रहा गया। क्या बिहार में आपका और गुरुजी का वंश नहीं है?

यदि बड़े भाई योग्य हुए तो घर तथा गुरु घराने के ही इतिहास भवन में दीपक क्यों न जलाया? यदि हम भी 'शठे शाठ्यं कुर्यात्' के अनुसार ऐसा ही करने लग जावें, तो जीवितों के कौन कहे, मरे हुओं के भी कलेजे फट जावें, और हाहाकार मच जावे। परन्तु हमको इस व्यर्थ तथा निष्प्रयोजन झगड़े से मतलब ही क्या है? बहुत-सी बेसिर पैर की तथा द्वेषपूर्ण व्यर्थ बातों का लिखना एवं निष्प्रयोजन किसी का कलेजा दुखाना आप जैसे ही सत्पुरुषों को मुबारक हो। बस, यहाँ इतना ही। आप लोग घबरायें न। आप लोगों का विशेष विचार प्रकृत विषय को लेकर ग्रन्थ में ही किया जायेगा।

एक और महात्मा का नाम प्रसंगवश याद आ गया। अतः पाठकों को उनका भी कुछ परिचय करा देना उचित समझता हूँ। आपका शुभ नाम था पं० दुर्गादत्त परमहंस। आप डुमराँव के निवासी थे और अपने विषय में बहुत डींगें हांका करते थे, जैसा अपनी दिग्विजय में लिख दिया है। आप अपनी दिग्विजयनाम्नी उस पुस्तक में जगत्प्रसिद्ध धुरन्धर विद्वानों की भी अवहेलना करने में न चूके। आप लिखते हैं कि हमने श्रीयुत गंगाधर शास्त्री, श्रीयुक्त राजाराम शास्त्री तथा श्री बालशास्त्री प्रभृति गणनीय विद्वानों को परास्त किया। भला, इतने ही अल्पकाल की बात की ऐसी बनावट! आपने इसके गवाह न लिख दिये, जिससे सम्भवतः किसी को शंका होती तो मिट जाती। ऐसा करने में शायद आप समझते थे कि हाल की बात है। इसलिये ढँकी ढँकाई बातों का भण्डाफोड़ हो जावेगा, तो फिर चेलों में अप्रतिष्ठा हो जायेगी। यदि आप ऐसे अद्वितीय विद्वान थे, तो आपकी प्रसिद्धि ब्रह्माण्डान्तर तक होनी चाहिए थी; क्योंकि पं० बालशास्त्री आदि को ही समग्र भारतवर्ष जानता है और ठहरे आप उनके विजेता! परन्तु शोक है कि आपको तो दूसरे जिले के भी लोग प्रायः न जानते होंगे।

एक बात और भी आप लिखते हैं कि उनके ही समय में भोजेन्द्र नाम का राजा डुमराँव में था, जो प्रति नूतन श्लोक के लिये एक लाख मुद्राएँ देता था इत्यादि। भला इस बात का कोई ठिकाना है? उस समय तथा पूर्व और बाद के डुमराँव नरेशों को कौन नहीं जानता? आप समझते थे कि भारतवर्ष भोलाभाला ही है। हमारे बराबर भी किसी को सुबुद्धि नहीं है। सब लोग भोज के नाम पर ही भूल जावेंगे। इसीलिये सरासर असत्य भाषण में जरा भी न हिचके। आपने अपनी परमहंसता खूब ही दिखलाई! अब, ऐसे महात्मा पुरुष जिस किसी के विषय में जो कुछ लिख देंगे उसमें कितना लेश सत्य का होगा इसे बुद्धिमान लोग स्वयं समझ लेंगे। आपकी विशेष लीला आगे आपके बनाये भानमती के पिटारे को ही खोलकर दिखलावेंगे।

यह तो हुई संस्कृत और हिन्दीदांओं की विचित्र कथा। अब अंग्रेजीदांओं का भी थोड़ा परिचय कर लीजिये। आजकल के लोग परछिद्रान्वेषण में बहुत तत्पर हो रहे हैं और 'अपना ढेढ़र न देखकर दूसरे की फुल्ली निहारने' वाले किस्से को चरितार्थ करने में जरा भी संकोच नहीं करते। बस, चटपट किसी अंग्रेज की बनाई किताब की दो-चार बातें किसी जाति के विषय की देखकर तदनुसार ही फोनोग्राफ की तरह स्वर भरने लग जाते हैं। इतना भी नहीं विचारते कि मेरे विषय में उन्हीं अंग्रेजों ने क्या लिखा है, उसे भी तो जरा देख लूँ। उन्हें इससे मतलब ही क्या है? दूसरे का झूठमूठ हँसी ठट्ठा करके केवल अपने पवित्र चित्त को सन्तुष्ट करना है। उन्हें बकरे की जान की क्या पड़ी है? केवल अपनी लोलुप जिह्वा के स्वाद से ही प्रयोजन है। साथ ही, यह भी बात है कि यदि वे लोग अपनी जाति तथा दूसरे की दुर्दशा उन्हीं अंग्रेज लिक्खाड़ों द्वारा की गई देख लेवें, तो फिर उनकी आई-बाई हजम

हो जावे; और लिखने का रोजगार ही मारा जावे; जिससे दूसरों के सामने पूँछ हिलाकर चार पैसे कमा सकना भी असम्भव हो पड़े। क्योंकि दूसरे की निन्दा करने से ऐसी दशा में वे इसलिये डरेंगे कि इन्हीं ग्रन्थों को देखकर दूसरे भी धज्जियाँ उड़ाने लग जावें। अतः वे लोग कूपमण्डूक बनना ही अपने रोजगार कायम रखने के लिये पसन्द करते हैं। अथवा बहुतेरे जानबूझकर भी अपनी सज्जनता का परिचय इसलिये देते हैं कि कोई मेरे विरुद्ध लिखेगा ही क्यों कर? क्योंकि वे इस मद में फूले रहते हैं कि ये पुस्तकें देख ही कौन सकता है? और यदि कोई लिखेगा भी तो यह कहकर निकल जावेंगे कि 'जूते तो उसने अवश्य मारे, परन्तु वे लाल थे।' परन्तु इसको बुद्धिमानी और भलेमानुसी नहीं कहते।

लेखक को चाहिये कि जो कुछ लिखे उसका पूर्वापर विचार लेवे। केवल अंग्रेज लेखकों की दो-चार बातों पर भूलकर किसी का दिल व्यर्थ ही दुखाना या उसके हँसी ठट्ठा करना अच्छा नहीं है। क्योंकि किसी देश के रस्मरिवाज तथा जातिपाँति के विषय में लिखने वाले अंग्रेजों का यह पूर्व से ही अटल सिद्धान्त रहता है कि जैसे हम लोगों में इसका विचार नहीं है वैसे ही भारतीय देशों में भी प्रथम नहीं था। बस, इसी सिद्धान्त की पुष्टि के लिये वे लोग दिलोजान से परिश्रम करते और छिद्रान्वेषण करते रहते हैं। अन्त में पुराणादि के दो-चार आख्यानों तथा आचार-व्यवहारों को पढ़-सुनकर सब जातियों के धोने में अग्रसर हो जाते हैं। उनको इस प्रकार सब जातियों को हलकर एक सिद्ध करने में जन-साधारण की कल्पित किम्वदन्तियाँ बड़ी ही सहायक हुआ करती हैं। इसीलिये इस तरफ उनका ध्यान बहुत ही रहा करता है और प्रायः उनकी सभी पोथियों में इनकी ही भरमार पाई जाती है और इन्हीं तथा दो चार वर्त्तमान आचारों के आधारों पर वे अपने मनोराज्य किया करते और तदनुगुण सिद्धान्तों को निकाला करते हैं। यदि आगे प्रसंग होगा तो हम उनकी इस किम्वदन्ती आदि वाली शैली को स्पष्ट रूप से दिखलावेंगे। लेकिन इनके आधार पर उनके ऐसा करने में उनका अपराध ही क्या कहा जा सकता है? अपराध तो सरासर हम भारतीयों का है, जो एक दूसरे के निपट द्रोही बने हुए हैं। जहाँ एक ही जाति में एक दूसरे को नीच बनाने का रात-दिन यत्न हो रहा है और इसकी पूर्ति के लिये मनगढ़न्त पुस्तकें लिखी तथा नई-नई किम्वदन्तियाँ गढ़ी जा रही हैं, वहाँ एक जाति दूसरे के साथ ऐसा करे इसमें आश्चर्य ही क्या है? अन्त में फल इसका यह होता है कि जो दूसरे की निन्दा के लिये ऐसी कुछ कल्पना करता है वह भी उसकी निन्दा के लिये ऐसा ही किया करता है और ऐसा करने में बड़े-बड़े ग्रन्थ पुराण तथा उपपुराणों के नाम से रच दिये जाते हैं। कहीं-कहीं प्राचीन ग्रन्थों में ही कुछ मिला दिया जाता है या बड़े-बड़े कल्पित इतिहास तथा उपन्यास तैयार कराकर उनमें ही कुछ-न-कुछ सटा दिया जाता है। जिसका प्रतिफलरूप महान् अनर्थ यह हो जाता है कि वे वैदेशिक लोग उन्हीं बातों तथा किम्वदन्तियों को ले उड़ते और उसी आधार पर सभी जातियों को स्वाहा कर डालते हैं और उन्हीं की कल्पित बातों को लेकर आजकल के हमारे नई रोशनी वाले बहुत से अंग्रेजी तथा हिन्दी ग्रन्थों, समाचार पत्रों और पत्रिकाओं के मनमाने लिक्खाड़ भी फैसला करने लग जाते हैं। धिक्कार है हम लोगों की आर्यता भारतीयता और हिन्दूपन को ! हम इस प्रकार दूसरे के पाँव चलने वाले हो गये कि अन्त में जातिपाँति और धर्म के विषय में उन्हीं के ग्रन्थों का प्रमाण देते हुए लज्जा भी नहीं करते और न पूर्वापर विचार ही करते हैं।

वैदेशिक लोग यदि हमारे ही देश में जन्म बितावें तब भी हमारे आचारों तथा विचारों

के पूरे-पूरे ज्ञाता नहीं हो सकते। फिर दो-चार या दस-बीस वर्ष ही रहने वालों की बात ही क्या है ! परन्तु हम लोग तो इतने बह गये हैं कि इस विषय में भी उन्हीं का उच्छिष्ट स्वीकार करने लग गये हैं। हमारी बुद्धि इस प्रकार मारी गयी है कि हम अपने ही देश, जाति और कुल के मनुष्यों को नीच बनाने के लिये सहस्रों कुकल्पनायें तथा रचनायें करने में तनिक भी नहीं हिचकते; जिसका फल यह होता है कि हम भी उसी अन्धकूप में बलात् ढकेले जाते हैं। क्या ब्राह्मणों में ही परस्पर एक-दूसरे को सवालक्खी बनाने वाले यह नहीं जानते कि वह भी हमारे विषय में ऐसी ही कुछ कल्पनायें करेगा? और जब साक्षात् या परम्परया हमारे साथ उसका ब्याह-सम्बन्ध या खान-पान है तो फिर हम क्या होंगे? परन्तु फिर भी द्वेष या पक्षपात ऐसी वस्तु है कि उनसे यह बात करवा ही डालती है। जिसका फल यह होता है कि उनको लाचार होकर वैदेशिकों की दुरुक्तियों तथा निन्दाओं का लक्ष्य बनना पड़ता है। ऐसी ही दशा अन्य जातियों के भी विषय में तथा परस्पर दो जातियों की भी जाननी चाहिये। हाँ, ब्राह्मणों में जरा इसकी विशेषता होते-होते पराकाष्ठा हो गई है। क्योंकि उन्हें तो **'ब्राह्मणो ब्राह्मणं दृष्ट्वा श्वानवद् गुर्गुरायते'** अक्षरशः सिद्ध करना है और अब विशेष योग्यता के रह जाने से, अविद्यान्धकार की बहुलता और व्यक्तिगत स्वार्थान्धता के कारण एक-दूसरे की आँखें तेली के बैल की तरह बन्द करके ही अपना कार्य साधना चाहते हैं; छल-कपट तथा दम्भ से ही अपनी पूर्व प्रतिष्ठा रखने का अब यत्न किया जाता है।

बस, इन्हीं सब बातों को देखकर वैदेशिक लोग इन्हें किताबों में ज्यों-की-त्यों लिख पुरोहित दल को स्वार्थी कहकर उसकी मिट्टी पलीद किया करते हैं। अंग्रेजों के ग्रन्थों में से दो-एक को छोड़कर सभी के देखने से यही सिद्ध होता है कि याचक ब्राह्मण (पुरोहित), भाट, नाई, बारी, भर और कुर्मियों आदि; राजपूत जाट, कहार, भर, राजभर, अहीर, पासी और कुर्मियों; एवं कायस्थ, भड़भूंजा और कहारादि में कुछ भी भेद नहीं है। यही लोग क्रमशः याचक ब्राह्मण, राजपूत तथा कायस्थादि बन गये हैं। अतः इनको प्रमाण मानकर उसी आधार पर किसी की जाति का निर्णय करना सभी जातियों की संकरता का सूत्रपात करना है। अतः मेरी समझ में कम-से-कम जाति तथा धर्म के विषय में इनका नाम भी लेना उचित नहीं है। हाँ, ऐतिहासिक अंश में वे प्रमाण माने जा सकते हैं, जिसको उन्होंने पाली तथा ग्रीक आदि ग्रन्थों और प्राचीन शिलालेखों आदि के आधार पर लिखा है। परन्तु उस आधार पर जो सिद्धान्त (theory) वे निकालने लग जाते हैं, उस अंश में वे माने नहीं जा सकते। अतएव मैं इस ग्रन्थ में केवल ऐतिहासिक अंश में जहाँ तहाँ उनकी सम्मतियाँ प्रमाण रूप से उद्धृत करूँगा। हाँ, उनके जो कुतर्क और कुकल्पनाएँ कहीं-कहीं अयाचक ब्राह्मण समाज के विषय में आपाततः लक्षित हुई हैं, अथवा उन्हीं भित्तियों पर हमारे देशीय नवीन बाबुओं ने जो मानसिक प्रासाद खड़े किये हैं, उनके ध्वंस करने के लिये 'मियाँ जी की जूती और मियाँ जी का ही सिर' इस न्यायानुसार उनका अवलम्बन कहीं-कहीं करूँगा, न कि स्वतन्त्र प्रमाण रूप से। अथवा दो-एक जगह 'तुष्यतु दुर्जन' न्याय से ही उन महाशयों का नाम स्मरण करूँगा, क्योंकि आजकल के अर्द्धदग्ध बाबू लोग उन्हीं के वाक्यों को इस विषय में भी ब्रह्मा, व्यास तथा वसिष्ठादि के वाक्यों से बढ़कर मानने वाले हैं और उन्हें उनके बिना सन्तोष नहीं होता, उनके मनाने को दूसरा उपाय ही क्या है? और हमको तो मनाना ठहरा सभी को।

यद्यपि ऐतिहासिक अंश में भी हम उन्हें न मानते; यदि हमारे घर में ही पूर्ण सामग्री उसकी भी होती। परन्तु हम लोगों ने तो पौराणिक काल के बाद से या तो इतिहासों का

लिखना ही छोड़ दिया या लिखा भी तो उसे भी उपन्यास, नाटक, अथवा प्रहसन ही बनाने में दत्तचित्त होकर सत्यांश को बिल्कुल तिलांजलि ही दे दी, और राग-द्वेष में आकर जिसके विषय में जैसा मन में आया लिखकर बदला चुका लिया। इसलिये हार मानकर तत्त्वजिज्ञासुओं को आजकल के इतिहास को श्रृंखलाबद्ध करने के लिये पाली, ग्रीक तथा तन्मूलक वैदेशिक वाक्यों का अवलम्बन करना पड़ता है और ऐसा करने में कुछ हानि भी नहीं है। परन्तु धार्मिक तथा जातीय अंश में तो उनको मानने में विशेष कर या तो उच्च जातियों की दुर्दशा है, या जिनकी किसी प्रकार से प्रसिद्धि है और संसार में किसी-किसी अंश अथवा बहुत से अंशों में प्रतिष्ठित समझे जाते हैं उनकी। जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय वा राजपूत, अगरवाले खत्री और कायस्थादि।

मैंने अंग्रेजी ग्रन्थों में लिखा हुआ प्रत्येक जाति का तत्त्व जानने के लिये जिन ग्रन्थों का प्रायः आद्योपांत अवलोकन किया है, उनके नाम ये हैं :– (१) टाड साहब का राजस्थान (Tod's Rajasthan), (२) डबल्यू० एच० ईलियट कृत भारतवर्ष का इतिहास (W. H. Elliot's History of India), (३) सन् १८६५ से १९११ तक की भिन्न-भिन्न प्रान्तों तथा समस्त भारतवर्ष की मनुष्यगणना का विवरण (Census report of India, from 1865 to 1911), (४) नेविल का संयुक्त प्रांत का गजेटियर (Nevill's Gazetteer of N. W. P.) (५) फिशर का संयुक्त प्रांत का गजेटियर (Fisher's Gazetteer of N.W.P.) (६) शेरिंग का भारतीय जाति विवरण (Tribes and Castes of India by M. A. Sherring), (७) रिजले का भारतीय मनुष्य (H. H. Risley's People of India), (८) डबोइस कृत भारतीय मनुष्य सम्बन्धी रस्मरिवाज आदि का विवरण (Description of the Character, Manner and Customs of the People of India by J. A. Dubois), (9) क्रुक का संयुक्त प्रान्तीय जाति विवरण (Crooke's Tribes and Castes of N. W. P.), (१०) नेस्फील्ड का संयुक्त प्रांतीय संक्षिप्त जाति विवरण (Brief views of the Caste System of N. W. P. and Oudh by J. C. Nesfield M. A.), (११) डाक्टर विल्सन कृत भारतीय जाति (Dr, Wilson's Indian Caste), (१२) डा० ओल्डहम कृत गाजीपुर आदि का विवरण (Dr. Oldham's Memoir of Ghazipur etc.), (१३) ईलियट की सप्लीमेंटल ग्लासरी (H. M. Elliot's Supplemental Glossary), (१४) बौद्धकालिक भारत (The Buddhist India by Rhys David), (१५) प्राचीन भारत, मेक्क्रिन्डिल कृत (Ancient India by J. W. Mc. Crindle), (१६) एलफिन्स्टन कृत भारतीय इतिहास (History of India by Hon. Elphinston), (१७) बलवन्तनामा (Bulwant Namah Translated by Fredrick Curven), (१८) आईन अकबरी (Ain. i. Akbari Translated by Col. Jarrett.), (१९) एसिया सम्बन्धी अन्वेषण (Asiatic Researches by Jonaathan Duncan etc.) इत्यादि।

इनके अतिरिक्त और भी बहुत-सी छोटी-बड़ी अंग्रेजी किताबों का अवलोकन किया है। जिनमें केवल प्रायः शेरिंग को छोड़कर (क्योंकि उन्होंने बहुत जाँचकर जैसा पाया है, वैसा ही लिख दिया है और उससे कोई सिद्धांत (theory) सिद्ध नहीं किया है। अतः उनका लेख प्रायः विश्वसनीय है) सब ने प्रसिद्ध जातियों का विशेष कर बहुत ही परिहास किया है और बहुत-सी किम्वदन्तियों आदि के आधार पर सभी को जैसा पहले कह चुके हैं, एक सिद्ध करने का खूब ही यत्न किया है। बल्कि एक प्रकार से अयाचक ब्राह्मणों (भूमिहार आदि

ब्राह्मणों) को बाल-बाल बचा दिया है। क्योंकि इनके विषय में दो-एक किम्वदन्तियाँ मात्र कहीं-कहीं लिख भर दी हैं और फिर उनका खण्डन भी अपने आप ही कर दिया है, जैसा आगे चलकर विदित होगा। परन्तु उन किम्वदन्तियों के आधार पर इनके विषय में कोई सिद्धांत (theory) नहीं निकाला है। बल्कि खुले शब्दों में स्वच्छ आर्य सन्तान कहा और चेहरे मोहरे तथा चाल व्यवहार से सिद्ध भी कर दिया है। परन्तु याचक ब्राह्मण, राजपूत तथा कायस्थादि के विषय में बहुत-सी किम्वदन्तियों तथा आचार व्यवहारों को लिखकर उनके आधारों पर बहुत से सिद्धांत निकाले हैं और इस तरह सभी को रसातल पहुंचाने तथा संकर कर देने में कुछ भी नहीं छोड़ रखा है। इसलिये मैं अथवा कोई आस्तिक पुरुष उनके वाक्यों को इस विषय में प्रमाण मानने का साहस भी नहीं कर सकता, उनके आधार पर किसी बात का निर्णय करना तो दूर रहा। मेरा विचार जहाँ तक है, ऐसी दशा में किसी जातिपाँति के मानने वाले असली भारत सन्तान की लेखनी केवल उनके आधार पर नहीं उठ सकती और यदि उठेगी तो उसकी भारत-संतानता में ऐसी दशा में अवश्य सन्देह किया जा सकता है और किया जायगा।

सारांश यह है कि उनके आधार पर कुछ भी किसी समाज के विषय में लिख डालना प्रबल निर्लज्जों का ही काम है, न कि भद्र पुरुषों का। इसलिये अन्त में मेरी प्रार्थना उन सज्जनों से, जिनको फिर भी उन्हीं आधारों पर लिखने की असदाग्रहपिशाची ग्रसे हुए है, यही है कि वे लोग किसी समाज का व्यर्थ दिल दुखाने के लिये कुछ वाक्यबाण चलाकर अपनी सज्जनता का परिचय अवश्य देवें। परन्तु लिखने से पहले उन सभी ग्रन्थों में अपने समाज का भी किया गया सत्कार पूर्ण रीति से देख लेवें। नहीं तो मुँहकी खानी पड़ जावेगी और लेने के देने भी पड़ जावेंगे। किं बहुना 'रोजा को गये नमाज गले पड़ी' वाली कहानी चरितार्थ होने लग जावेगी।

एक बात और भी विचारने की है कि वायुपुराण के अध्याय ५९ में लिखा हुआ है कि **'इज्यावेदात्मकः श्रौतः स्मार्तो वर्णाश्रमात्मकः।३९।'** अर्थात, 'यज्ञ तथा वेदादि का पढ़ना वगैरह श्रौत (श्रुतिसिद्ध) धर्म हैं और वर्णाश्रम विभागादि स्मार्त्त (स्मृति सिद्ध) धर्म हैं। याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है कि **'पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्रांग मिश्रिताः। वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश। ३।' भाव यह है कि** 'पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र चारो वेद और षडंग ये ही विद्या और वर्णाश्रमादि धर्म के स्थान हैं।' मनुजी ने भी लिखा है कि **'वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः। एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।'** अ० २ श्लो० १२। जिसका अर्थ है कि 'वेद, मन्वादिस्मृति तथा पुराणादि, सत्पुरुषों का आचरण और जहाँ दो कामों में से किसी एक को करना हो वहाँ अपनी इच्छा ये ही साक्षात् जाति, वर्णादि धर्मों के बताने वाले हैं।' सबका तात्पर्य यह है कि वर्ण, आश्रम आदि विभाग, जातिपाँति का विचार तथा प्रत्येक के धर्म ये सब श्रुतियों स्मृतियों और पुराणादि द्वारा ही जाने जाते हैं; क्योंकि ये सब विभाग आधुनिक लोगों के बनाये हुए नहीं हैं किन्तु प्राचीन महर्षियों के ही किये हुये हैं। इनके नियमादि और पहचान पुराण तथा स्मृतियों में उन्होंने लिख दिये हैं न कि अंग्रेजी पोथों में इनका वर्णन किया गया है। अतः जिसको जाति विभाग तथा उसके धर्म आदि जानने की इच्छा होवे वह उन्हीं आर्ष ग्रन्थों का परिशीलन करे तभी इन सब के यथार्थ स्वरूप को जान सकेगा, न कि अंग्रेजी ग्रन्थों और अंग्रेजी महावाक्यों के भक्त होने से। अतएव भगवान श्रीकृष्ण का गीता में यह अमृतोपदेश है कि **'यः**

शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्त्तते कामकारतः। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परं गतिम॥२३॥ तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ। ज्ञात्वाशास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्त्तुमिहार्हसि॥ २४॥ अध्याय॥१६॥ जिसका भाव यह है कि जो कोई श्रुति, स्मृति, पुराणादि प्रतिपादित धार्मिक व्यवस्था को छोड़कर मनमाने डेढ़ चावल की खिचड़ी पकाता है, उसके न तो किसी कार्य की सिद्धि ही होती है, न उसे इस संसार में सुख मिलता है और न अन्त में मोक्ष ही। इसलिये अच्छे और बुरे सभी कार्यों में इन शास्त्रों को ही प्रमाण मानकर उन्हीं के अनुसार कार्य करना उचित है। मनुजी ने भी कहा है कि **योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयात् द्विजः। स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः। अ० २। ११।**

अर्थात् 'जो आधुनिक काल्पनिक कुतर्कों के बल से धर्म के मूलभूत उन श्रुति-स्मृतियों का निरादार करके मनमानी करता है, सत्पुरुषों को उचित है कि उसे समाज से बाहर कर देवें क्योंकि वह वेदादि का निन्दक होने से नास्तिक है। अब आप ही लोग बतायें कि वैदेशिक ग्रन्थों के आधार पर जाति और धर्म की व्यवस्था करने वाले मानने योग्य हैं या नहीं और उनका यह कर्त्तव्य कहाँ तक समुचित है। इसलिये हम इस पुस्तक में, जैसा प्रथम भी सूचित कर चुके हैं, केवल श्रुति, स्मृति, सदाचार और दार्शनिक विचारों से प्रायः सर्वत्र काम लेंगे। केवल इतिहासांश में कुछ-कुछ अन्य ग्रन्थों का अवलम्बन करेंगे, परन्तु प्राधान्य सर्वदा श्रुति-स्मृतियों का ही रहेगा। यों यदि प्रासंगिक वैदेशिक ग्रन्थों के भी वाक्य लिख दिये जावें सो दूसरी बात है। और हमारी अल्प बुद्धि जहाँ तक जाती है, इस विषय में सभी लोगों को ऐसा ही करना उचित है। अस्तु अब हम अपने प्रिय पाठकों को प्रकृत विषय तथा ग्रन्थ का कुछ परिचय कराकर अपने वक्तव्य को यहीं समाप्त करना चाहते हैं। यद्यपि हमारे इस लेख से बुद्धिमानों को इस ग्रन्थ के लिखने का कारण विदित हो ही गया होगा, तथापि थोड़ा-सा कह देना कोई अनुचित बात न होगी। यह बात तो सबको विदित ही है कि अयाचक ब्राह्मण समाज प्राचीन काल से भूम्यधिकारी होने और विशेष कर राजकीय झंझटों से अधिक सम्बन्ध रखने के कारण संस्कृत से प्रायः रहित सा हो रहा है। क्योंकि जमींदारी तथा राजपाट और संस्कृत विद्या का विशेष कर इस समय में, नितान्त विरोध है,जिसका अनुभव प्रत्येक मनुष्य करता है।

जिनकी जीविका आजकल केवल उस विद्या पर निर्भर है, वे ही जब वास्तव संस्कृत ज्ञान से शून्यप्राय हो रहे हैं; शीघ्रबोध, मुहूर्तचिन्तामणि, कुछ व्याकरण, और सत्यनारायण तथा दुर्गापाठ ही अनाप सनाप घोखघाख कर काम चला रहे और अर्थ का अनर्थ कर रहे हैं, जो सभी के नेत्रों के सम्मुख ही हैं। तो फिर जिनको उसका पढ़ना जीविका के लिये नहीं, वरन पारलौकिक कार्यों के ही लिये है और साथ ही बबुआनी जैसी पिशाचिनी ग्रसे हुए है तथा निरक्षर भट्टाचार्य पुरोहित जी एवं गुरुजी भी, यह विचार कर कि यदि हमारे यजमान या शिष्य बाबू साहब चार अक्षर पढ़ जावेंगे तो फिर हमारे बैल न रह जावेंगे, और हमारी हर बात में नुक्ताचीनी करके हमारी फजीहत करते रहेंगे, जिससे हम मनमाने लूट न सकेंगे इत्यादि, यही दिनरात ठसने तथा पोथों में लिख तक डालते हैं कि आप तो बाबू हैं, आपको केवल साधु ब्राह्मणों की सेवा करना तथा अंग्रेजी-फारसी आदि पढ़नी चाहिये। संस्कृत तो भिखमंगी विद्या है। इसे पढ़कर आप क्या करेंगे? क्या आपको दुर्गा और सत्यनारायण बाँचने, मुहूर्त्त देखना या कथा बाँचनी और पत्रे उलटने हैं? इत्यादि; उनके लिये इसका पढ़ना ही आश्चर्य है। जब पुरोहित एवं गुरुजी ही सन्ध्या; गायत्री के ब्याज से केवल झूठे

नाक दबाना और चिड़िया उड़ाना ही जानते हैं तो बाबू साहब क्योंकर जानने लगे ? और उन्हें यह शिक्षा ही कौन देवे ? हां, कोई परोपकारपरायण विद्वान सन्यासी (दण्डी) इसका उपदेश कर सकता और संस्कृताध्ययन में बाबू साहब को लगा सकता है। परन्तु मूर्ख पुरोहितों और गुरुओं ने, यह समझकर कि विद्वान् महात्मा के प्रवेश होने से हमारी टिक्की ही उड़ जावेगी, और यदि बारातों में वे लोग आकर धर्म का उपदेश करेंगे तो बहुत जगह के लोगों को एक ही साथ ज्ञान हो जावेगा, पहले ही से यह भरना प्रारम्भ कर दिया कि उनका दर्शन महा अमंगल है। यदि वे लोग श्राद्ध में आ जावें तो पितृलोग भाग जावें इत्यादि। फिर क्या है? अब वहाँ दण्डीजी की कौन गिनती? उनकी प्रतिष्ठा वहां कुत्ते से भी बढ़कर की जाने की तैयरियाँ होने लगीं। अब आप ही लोग विचारिये, इस सीधे-सादे अयाचक बाबू-मण्डल में अज्ञानान्धकार न छा जावे तो क्या होगा? जहाँ श्राद्ध में संन्यासियों (दण्डियों) के विषय में ऐसा लिखा हुआ है कि :—

अकाले यदि वा काले श्राद्धं कुर्यादतन्द्रितः।
पितृणां तृप्तिकामस्तु यतीन्प्राप्य द्विजोत्तमः। ब्रह्मांडपुराण।
बिना मांसेन मधुना बिना दक्षिणयाशिषा।
परिपूर्णं भवेछ्राद्धं यतिषु श्राद्धभोजिषु। दक्ष।
मुण्डं यतेन्द्रियं शान्तं ध्यान भिक्षुमकल्मषम्।
तान्नित्यं भोजयेछ्राद्धे दैवे पित्र्ये च कर्मणि। स्कन्दपुराण।
निवेशयेत्तु यः श्राद्धे पितृकर्मणि भिक्षुकम्।
आकल्पकालिका तृप्तिः पितृणामुपजायते। पराशर।

अर्थात् ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है कि यदि किसी काल में संन्यासी द्वार पर आ जावे, तो पितृ तृप्ति के लिये अवश्य श्राद्ध करे। दक्षस्मृति में लिखा है कि यदि दण्डी श्राद्ध में भोजन कर लेवे तो बिना दक्षिणा तथा मधु आदि के ही श्राद्ध पूर्ण समझा जाता है। स्कन्दपुराण में लिखा है कि एक दण्ड वाले शान्त और ध्यानरत संन्यासी को नित्य ही श्राद्ध और पितृ कर्म में भिक्षा करानी चाहिये। पराशर ने लिखा है कि जो पितृ कर्म में भिक्षु (दण्डी) को खिलाता है, उसके पितरों की तृप्ति एक कल्प भर होती है इत्यादि, वहाँ संन्यासी को देखकर पितरों के भाग जाने की शिक्षा जो अनर्थ न करवा देवे उसी में आश्चर्य है। संन्यासी लोग स्वंय श्राद्धान्न को गर्हित समझ कर नहीं ग्रहण करते यह दूसरी बात है। बारातों या अन्य कार्यों में संन्यासी का उपदेश के लिये भी जाना अमंगल है यह बात तो कहीं मनु आदि धर्मशास्त्रों या अन्य ग्रन्थों में नहीं लिखी हुई है। फिर यह निर्मूल प्रलाप सर्वथा अनादर योग्य और नाश करने वाला है। संन्यासी का दर्शन तो शुभ कार्य में निषिद्ध नहीं है, परन्तु नीचों और शूद्रों की पुरोहिती और उनके अन्न से पेट भरने वालों का यदि मुख कहीं दीख पड़े, तो वह महा अमंगल है, जिसके लिये मनु भगवान ने डंका पीट दिया है। परन्तु उसको तो बलात् याचक ब्राह्मणों ने सिर पर प्रायः धारण कर लिया है और अपने मुख से पण्डित कहते तथा अन्यों से कहवाते हुए जरा भी नहीं हिचकते। वे लोग न जाने किस प्रकार मुख दिखलाने और बोलने का साहस करते हैं? यदि संन्यासी का दर्शन

अमंगल भी मानें तो उसका अर्थ तो है नहीं कि वह अमंगल बाँधे फिरता है। किन्तु आँख आदि अंगों का अकस्मात् फड़कना जिस प्रकार अनिष्ट का सूचक है न कि स्वाभाविक आँखों का हिलना भी, उसी प्रकार यदि अकस्मात् संन्यासी का दर्शन हो जावेगा तो उससे सूचित हो जावेगा कि तुम्हारा कोई अनिष्ट होने वाला है, सजग हो जाओ, ऐसी चेतावनी उसे मिल जाती है और वह होशियार कर देने से उपकारक ही है। परन्तु यदि जान बूझकर संन्यासी को कहीं लावेगा तो उससे अमंगल की सूचना भी कैसे होगी? क्या अपने से आँख हिलाने पर भी अमंगल की सूचना समझी जाती है? यदि गेरुआवस्त्र निषिद्ध है तो फिर विवाहों में उससे ही मकान क्यों रंगते हैं? संन्यासी मुर्दा समान है इस निर्मूल बात के कहने वाले ही मुर्दे हैं। यदि मुर्दा भी है तो अच्छा ही है, क्योंकि मुर्दे का दर्शन तो मंगल सूचक है। यदि कहीं पर भी काषाय वस्त्रधारी का निषेध मान भी लेवें तो वह लड़के-लड़की वाले गुसाइयों का होगा, क्योंकि वे लोग शास्त्र से अति निन्दित सिद्ध होते हैं।

दूसरा कारण अयाचक ब्राह्मणों के संस्कृत न पढ़ने का यह भी है कि राज्य तथा जमींदारी का सम्बन्ध होने से यवनों से बहुत काल तक विशेष सम्बन्ध रहा, जिससे **'संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति,** अर्थात् 'तुख्म तासीर सुहबत असर' के अनुसार उन्हीं यवनों के बहुत से गुण आने लग गये। जैसा फारसी पढ़ना, राय, सिंह, ठाकुर, चौधरी और बाबू आदि शब्दों से ही प्रसन्न होना, न कि पाण्डे, तिवारी आदि शब्दों से, तम्बाकू पीना और सलाम करना करवाना इत्यादि। जैसा आज तक अन्य ब्राह्मणों में भी पाया जाता है, जिसको आगे चल कर प्रसंग से दिखलावेंगे। और जब यह भी नीति है कि **''राजानमनुवर्त्तन्ते, यथा राजा तथा प्रजा'** तो इन ब्राह्मणों के इन सब आचारों के विषय में सन्देह करना और उसका और अर्थ लगाना नितान्त भ्रम है। क्योंकि मिथिलादि देशों को लीजिये, तो जहाँ प्रथम यदि १०० पढ़ने वाले होते थे तो सभी संस्कृत ही पढ़ते थे, वहाँ अब केवल संस्कृत पढ़ने वाले कठिनता से १०० में १० मिलेंगे, जिनका चित्त भी अंग्रेजी की ओर लगा हुआ रहता है और अन्ततोगत्वा कुछ-न-कुछ उसे पढ़ लेते ही हैं और ९० तो उधर ही लगे हैं। यह बात क्यों होती है? आजकल सभी का सम्बन्ध अंग्रेज जाति के साथ समान और घनिष्ठ है और जो ही उसे पढ़ता है वही उनके दरबार में प्रतिष्ठित है। इसीलिये सब लोग उधर ही टूटते हैं। ठीक ऐसा ही यवन काल में भी जान लीजिये। हाँ, उस समय इतना विशेष अवश्य था कि जो ही फारसी पढ़ लेवे उसी की प्रतिष्ठा नहीं होती थी, क्योंकि वे लोग अंग्रेज लोगों जैसे विद्या के प्रेमी न थे। किन्तु बड़े-बड़े बाबुआनों की ही प्रतिष्ठा थी। इसीलिये और राजकार्य के भी उसी विद्या में होने से उन्हें फारसी अवश्य पढ़नी पड़ती थी। इसीलिये अन्य ब्राह्मण या तो कुछ पढ़ते ही न थे,अथवा यदि दो-एक पढ़ने वाले होते भी थे तो लाचार होकर उसी संस्कृत को ही जिलाये रखते थे।

जब इस प्रकार से अयाचक ब्राह्मण दल में संस्कृत का प्रायः अभाव हो गया और उसकी विरोधिनी वह फारसी पिशाची उसकी जगह बैठी, तो उन लोगों को ब्राह्मण किसे कहते हैं, कौन ब्राह्मण श्रेष्ठ कहा जा सकता है और उसके धर्म या कर्म कौन से हैं इसका यथार्थ ज्ञान न हो सका। बल्कि उसका होना एक प्रकार से असम्भव सा हो गया। क्योंकि ये सब बातें बिना संस्कृत के जानी नहीं जा सकतीं, इनका वर्णन केवल संस्कृत ग्रन्थों में है। और धीरे-धीरे उनमें से प्रायः बहुतेरे ऐसा समझने लगे (जैसा मुसलमान लोग समझते थे और समझते हैं तथा प्रायः अंग्रेजी ग्रन्थकारों की भी अब तक वही धारणा है) कि जो पुरोहिती आदि करे और प्रतिग्रहादि तथा भिक्षा से अपना जीवन व्यतीत करे उसे ही पक्का

ब्राह्मण कहते हैं। हम लोग भी ब्राह्मण ही हैं। परन्तु पक्के नहीं, किन्तु राजा, बाबू, जमींदार हैं। उसी दिन से विशेष कर जमींदार ब्राह्मण कहने की प्रथा पड़ गई, जैसी आज भी प्रयाग, बाँदा तथा पूर्वीय अन्य प्रान्तों में पाई जाती है। इस विषय का मुझे स्वयं अनुभव हुआ है।

मैं रेलवे ट्रेन से जाता था। इतने में दरभंगा प्रान्त के बछवारा जंक्शन के पास बाजिदपुर (विद्यापतिनगर) स्टेशन पर एक मनुष्य गाड़ी पर इण्टर क्लास में चढ़ा। उसके चेहरे से प्रतीत होता था कि ब्राह्मण है। मैंने पूछा कि क्या आप मैथिल ब्राह्मण हैं? उसने कहा कि हाँ, हम मैथिल ब्राह्मण हैं परन्तु जमींदार हैं, न कि साधारण मैथिल, और जाले जलैवार मूल के हैं। पाठक उसके इस वाक्य का अर्थ लगा लेवें। क्या मेरे बतलाये हुए अभिप्राय से दूसरा है? बस, इस निश्चय को गुरु और पुरोहित भी बहुत दिनों तक पक्का करने लगे और धीरे-धीरे कहने लगे कि ब्राह्मण क्या, आप तो राजा बाबू हैं और बाबू साहब भी इसी पर फूलने लगे। थोड़े दिन तक ऐसा ही होते-होते जब कुछ प्रमाद और बढ़ गया और संस्कृत का एकदम अभाव होकर प्रचण्ड मूर्खता सिर पर सवार हो गई और उधर पुरोहितजी वाला वह उपदेश कि ब्राह्मण क्या आप तो राजा, बाबू, जमींदार हैं, खूब दृढ़ हो गया, तो उन बाबुओं को यह निश्चय हो गया कि पुरोहिती आदि करने, प्रतिग्रह लेने और भिक्षावृत्ति से जीविका करने वाले को ही ब्राह्मण कहते हैं, हम लोग तो जमींदार हैं। इस निश्चय के दृष्टान्त आज भी पाये जाते हैं। क्योंकि जब कोई किसी के द्वार पर गिरता, भिक्षादि लेने में विशेष आग्रह करता और जान देने पर तैयार हो जाता है तो उसी समय लोग कहते हैं कि यह 'बम्हनई' करता है। सदाचारी और पण्डित के व्यवहार पर 'बम्हनई' शब्द का प्रयोग नहीं होता। दरभंगा प्रान्त में किसी मैथिल ब्राह्मण ने किसी पश्चिमा ब्राह्मण से कहा कि आप ब्राह्मण हैं या बाभन? तो उसने चट उत्तर दिया कि मैं तो बाभन हूँ, ब्राह्मण आप ही हैं। जब फिर उसने कहा कि ऐसा क्यों साहब? तो उसने उत्तर दिया, क्योंकि 'बराह यानी शूकर की तरह जिसका मन हो उसे ब्राह्मण कहते हैं, अर्थात् जैसे शूकर विष्ठा की ओर दौड़ा करता है, वैसे ही जो दिनरात खाने के पीछे दौड़ा करे और प्रतिग्रह कमाता फिरे उसे ब्राह्मण कहते हैं और मैं वैसा नहीं हूँ।' क्या ये सब बातें उपरोक्त सिद्धान्त को अक्षरशः सिद्ध नहीं करतीं?

बस, इन्हीं दिनों से अयाचक ब्राह्मण दल में केवल जमींदार शब्द का प्रयोग चला जो आज तक भी बहुत जगह पाया जाता है। कुछ दिन के बाद उसी दल के (अयाचक ब्राह्मण दल के) कुछ लोगों ने विचारा कि जमींदार तो सभी जातियों को कह सकते हैं, फिर हममें और अन्य जातियों में, जो जमीन वाली हैं, भेद क्या रह जावेगा? और थोड़े दिन बाद गड़बड़ मचने लग जावेगी। इसीलिये जमींदार शब्द के ही अर्थ में संस्कृत भूमिहार शब्द का प्रयोग अपने समाज में करना प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि भूमिहार और जमींदार शब्दों के अर्थ एक ही हैं, तथापि पृथक् संकेत कर लेने से अब सब के मिलने का डर न रह गया। क्योंकि जैसे नमस्कार और प्रणाम शब्दों के अर्थ एक ही हैं तथापि ब्राह्मण ही परस्पर एक दूसरे को नमस्कार करते हैं और दूसरे लोग प्रणाम ही कहते हैं। मिथिला में तो यहाँ तक प्रचार है कि शूद्र तथा अन्त्यज भी ब्राह्मणों को प्रणाम ही करते हैं परन्तु यदि अन्य जाति नमस्कार शब्द का प्रयोग कर देवे तो दंगा मच जावे। हालाँकि दोनों के अर्थ में कुछ भी भेद नहीं है, परन्तु सांकेतिक भेद मान लिया गया है। बस, यही दशा भूमिहार और जमींदार शब्दों की है। केवल सांकेतिक भेद मान लिया गया है जिससे भूमिहार कहने से अयाचक ब्राह्मणदल का बोध होता है, न कि जमींदारादि शब्द कहने से। इसके विषय में विशेष विचार तथा इसका प्रयोग

कब से हुआ इस विषय में भी अच्छी तरह से विचार ग्रन्थ में ही आगे चलकर किया जावेगा।

इसी जगह इतना और समझ लेना चाहिये कि यवनादि काल में जहाँ इन ब्राह्मणों का प्राधान्य नहीं रहा है, किन्तु राजपूत आदि जातियाँ ही प्रधान रही हैं, वहाँ ये लोग अबतक उसी पाण्डेय, तिवारी, चौबे, दूबे तथा मिश्रादि नामों से शाहाबाद आदि प्रान्तों में कहे जाते हैं, क्योंकि वहाँ डुमराँव राज्य का ही प्राधान्य रहा है। ऐसे ही अन्यत्र भी उन्हीं पाण्डेय आदि के घनिष्ठ सम्बन्ध से लोग प्रधान होने पर भी उसी पुराने नाम से कहे जाते हैं।

बस, अब क्या है? इसी अविद्यान्धकार में स्वार्थान्ध, द्वेषी और पराहितकारी डाकुओं की बन पड़ी और बहुत-सी किताबें लिखी जाने और किम्वदन्तियां रची जाने लगीं जिनका मुख्य उद्देश्य यह था और है कि और बातों में तो वे लोग बढ़े ही हैं, परन्तु बबुआई ठाट में विद्या नहीं पढ़ते। यहाँ तक मस्त हैं कि अंग्रेजी का भी नाम नहीं लेते। इसलिये सहस्रों कुकल्पनायें करके इन्हें जाति में ही नीचा कर दो, जिसे ये लोग समझ भी न सकें और हम लोगों का स्वार्थ भी सिद्ध हो जावे और फिर इन्हें लूटकर खा जावें। क्योंकि यदि सिंह को यह अभिमान हो जावे कि मैं गीदड़ हूँ फिर उसकी पीठ पर बोझ लादने में क्लेश ही क्या हो सकता है? इसी प्रकार ये लोग यदि जात्यभिमान में नीचे पड़ जावेंगे, तो इनकी सब योग्यता मिट्टी में मिल जायगी। और हम स्वार्थी गुरु, पुरोहित तथा कर्मचारियों की खूब बन पड़ेगी, फिर जैसा चाहेंगे 'चें में' बोलाया करेंगे। इसीलिये बड़े-बड़े छल से ऐसी-ऐसी पुस्तकें बनीं जिनमें यह तो स्पष्ट रूप से लिख अथवा लिखवा दिया गया कि आप लोग केवल ब्राह्मणों की सेवा के लिये बनाये गये हैं इत्यादि। और वे अविद्याग्रस्त होने से उस आन्तरिक छल-कपट और द्वेष को या तो समझ ही न सके, अथवा इन्हें यह अवसर और सौभाग्य ही न प्राप्त हुए कि उन ग्रन्थों को देखें भी। उधर मनुष्यगणना के विवरण तथा अन्य वैदेशिकों के ग्रन्थों में भी लोगों ने कुछ झूठ साँच कह सुनकर छल-कपट से उलटा-पलटा कुछ का कुछ लिखवा दिया। इधर दोनवार, किनवार तथा गौतमादि नाम देख अंग्रेजों के साथ मिलकर यह विचार और निर्णय किया जाने लगा कि ये लोग क्षत्रिय हैं इत्यादि। इसी तरह की बहुत सी स्वार्थ और द्वेषपूर्ण कल्पनायें होने लगीं जिनकी विस्तरशः समालोचना आगे की जायगी। बड़ा भारी आश्चर्य तो यह है कि ये जितनी बातें की गईं वे सब इस समाज के सामने न की जाकर चोरी से परोक्ष में की गईं। इसीलिये अंग्रेज लोग अपनी किताबों में यही लिख गये हैं कि 'Their Brahman and Chhatri neighbours insinuate etc......'– जिसका तात्पर्य यह है कि 'इन (भूमिहार ब्राह्मणों) के पड़ोसी ब्राह्मण और राजपूत चुपके से इशारा करते या उकसाते हैं कि–।' इसीलिये साफ दिल होने से अन्त में लिख भी दिया है कि' To this view, however, there is no evidenec' 'अर्थात् लेकिन उन लोगों की इन उक्तियों में कोई भी प्रमाण नहीं है।'

भला जहाँ किसी अज्ञानान्धकार में पड़े हुए सर्वोच्च और प्रतिष्ठित समाज को नीचा दिखलाने के लिये इस प्रकार छल-कपट और चोरियां की जाती हैं वहाँ कल्याण की कौन-सी आशा की जा सकती है? इन्हीं सब अनर्थों को देखकर एक ऐसे ग्रन्थ के बनाने की आवश्यकता हुई, जिसमें इन सब मिथ्या कुकल्पनाओं की खुले शब्दों में निष्पक्षपात भाव से समालोचना की जावे और इस विषय पर आज तक जितनी कुशंकाएँ हुई हैं या हो सकती हैं उनका मुँह तोड़ उचित समाधान कर दिया जावे, जिसमें भविष्य के लिये मार्ग साफ रहे।

और श्रुति, स्मृत्यादि प्रमाणों से अयाचक ब्राह्मणों का उज्ज्वल और सर्वोत्तम स्वरूप प्रकाशित कर दिया जावे, जिसमें अकारण द्वेषी और स्वार्थी लोग चूँ न कर सकें।

एक बात और भी है कि जैसे अन्य ब्राह्मणों तथा दूसरे समाजों का कुछ न कुछ इतिहास लिखा हुआ है इसी कारण से उनके ऊपर विशेष रूप से कोई आक्रमण करने का साहस नहीं कर सकता। क्योंकि जागने वाले के गृह में चोरी करने का साहस कौन कर सकता है? वैसे ही यदि अयाचक ब्राह्मण समाज का कोई निज का टूटा-फूटा भी सच्चा इतिहास होता, तो आज इसकी ऐसी दुर्दशा न होती और जो ही चाहता वही मनमानी निन्दाएँ करने का साहस नहीं करता। इसलिये इस महती त्रुटि की पूर्ति के लिये भी ऐसे ग्रन्थ की नितान्त आवश्यकता थी।

सबसे बड़ी बात यह है कि जिस जाति, देश या समाज का इतिहास नहीं होता, वस्तुतः उसकी स्थिति संसार में रह ही नहीं सकती। इसीलिये जो समाज जिसको दबाना चाहता है, वह प्रथमतः उसके इतिहास को ही बिगाड़ता है, यह विषय इतिहासवेत्ताओं को परोक्ष नहीं है। क्योंकि किसी समाज का सच्चा इतिहास ही उसके पूर्वोत्तर पुरुषों की स्थिति का परिचय कराता हुआ गिरे हुओं को उठाने में संजीवनी बूटी का-सा काम करता है। क्योंकि वह हमें सिखलाता है कि हमारे पूर्व पुरुष अमुक-अमुक कार्य से उन्नति के शिखर पर आरूढ़ थे। इसलिये हमको भी उन्नति प्राप्त करने के लिये वैसे ही कार्य करने चाहिये। हम मृगराज के वंशज हैं, न कि शृगाल के। अतः हमको अपने वास्तव गौरव और स्वरूप का स्मरण करना चाहिए इत्यादि।

इन्हीं सब उद्देश्यों को लेकर मेरी प्रवृत्ति इस ग्रन्थ में हुई है। ताकि अयाचक ब्राह्मण समाज के सुचारु इतिहास भवन की प्रतिष्ठा (नींव) तैयार हो जावे, जिसमें भित्ति आदि द्वारा उस सुशोभापूर्ण रमणीय भवन के निर्माण करने वालों को भविष्य में सौकर्य हो। इस महा विशाल इतिहासागार की प्रतिष्ठा (नींव) सुदृढ़ और सुचारु रूप से बननी चाहिए। अतः उसकी दृढ़ता के लिये मैं उन्हीं श्रुति, स्मृति, पुराण तथा शिष्टाचार प्रमाणरूप अमूल्य पाषाणों का अवलम्बन करता हुआ विषय विवेचन करूँगा। विषय का सम्यग्विभाग रहे और जनसाधारण भी उसको पूर्णतया हृदयंगम कर सके इसके लिये मैं इस ग्रन्थ को पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध इन दो विभागों में विभक्त करूँगा और अन्त में परिशिष्ट रहेगा। जिनमें से पूर्वभाग का नाम द्विविध ब्राह्मण विचार और उत्तर का नाम कण्टकोद्धार होगा। द्विविध ब्राह्मण विचार प्रकरण में श्रुति, स्मृति, पुराण तथा सदाचारादि प्रमाणों से अयाचक और याचक इन दो प्रकार के ब्राह्मणों के स्वरूपों का सुस्पष्टतया निरूपण होगा और उसकी पुष्टि में साम्प्रतिक परस्पर दोनों के नमस्करादि के पत्रों, समाचार पत्रों तथा बड़े-बड़े विद्वानों के हस्ताक्षर युक्त बड़ी-बड़ी व्यवस्थाओं का प्रदर्शन किया जायेगा और जो सबसे प्रबल और सम्प्रति विद्यमान प्रमाण इस विषय में परस्पर विवाह-सम्बन्ध है, जो जमींदार, भूमिहार, पश्चिमी ब्राह्मणों का सर्यूपारीणों, कान्यकुब्जों तथा मैथिलों के बड़े-बड़े कुलीनों के साथ होता था और हो रहा है और त्यागी ब्राह्मणों का गौड़ ग्राही ब्राह्मणों के साथ हो रहा है और जिसे मैथिल महासभा, मिथिला मिहिर पत्र तथा भारत मित्रादि पत्रों ने भी बिना रोक-टोक स्वीकार किया है, उसके भी विस्तरशः प्रदर्शन पूर्वक रहस्यों का उद्घाटन करेंगे। इसके अतिरिक्त इस प्रकरण

में बहुत से छोटे-छोटे अवान्तर प्रकरण होंगे, जिनमें वैदिक समय से लेकर आज तक के शृंखला-बद्ध ब्राह्मणों के स्वरूप तथा आचार, व्यवहार और जीविका रूप इतिहास का वर्णन स्वदेशी तथा विदेशी प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर होगा। जिसका प्रदर्शन विस्तरशः वैदिक, स्मार्त्त, पौराणिक, बौद्ध, यवन और ब्रिटिश काल क्रम से किया जावेगा। साथ ही, भूमिहार, पश्चिना, जमींदार, त्यागी, महियाल वगैरह संज्ञा संबंधी कालादि का भी विशेष विचार करते हुए ब्राह्मणों के जीविकार्थ तथा धार्मिक कर्मों का निरूपण किया जावेगा और ठाकुर आदि उपाधियों का विवेचन करते हुए साम्प्रतिक आचारों का भी दिग्दर्शन कराकर उनके औचित्यानौचित्य का विचार किया जावेगा और उनके कारण भी दिखलाये जावेंगे इत्यादि।

एवं द्वितीय प्रकरण में, जिसका नाम कण्टकोद्धार होगा, इस ब्राह्मण समाज पर आज तक जितने अनुचित और भ्रममूलक मिथ्या आक्षेप हुए हैं, उनके प्रदर्शन पूर्वक उनकी कड़ी समालोचना करते हुए उनका उचित समाधान किया जावेगा और उसके बहुत से छोटे-छोटे अवान्तर प्रकरणों में अयाचक ब्राह्मणों के उत्पत्ति विषयक प्रश्नों की समालोचना होगी और इस विषय पर कल्पित ग्रन्थों की निस्सारता का सुचारु रूप से निरूपण होगा। इसके बाद इस विषय की तथा अन्य विषयक जितनी किम्वदन्तियाँ आदि और तन्मूलक स्वदेशी तथा विदेशी सज्जनों के जो वाक्य-बाण हैं उनके लिये उचित और अभेद्य रक्षा स्थान बनाया जावेगा। किनवार, दोनवार, सकरवार तथा गौतमादि सदृश नाम रूप दोषों के ज्ञान चक्षु में लग जाने से लोगों को जो भ्रम उत्पन्न हो गये हैं और उसी दशा में जो कुछ वे लोग बक गये हैं, उसके लिये उचित अंजन तैयार किया जावेगा और वह ऐसा होगा कि एक बार उसके लगा देने से फिर भविष्य में ऐसे रोग कभी हो ही न सकें। इसके अतिरिक्त जो स्फुट अनेक प्रकार के प्रश्न हुआ करते हैं, उनकी भी उचित मीमांसा की जावेगी।

ग्रन्थान्त में परिशिष्ट होगा जिसमें सम्पूर्ण कथन के चरम परिपाक के प्रदर्शन पूर्वक अवशिष्ट, अत्यन्तोपयोगी और अवश्य वक्तव्य तथा कर्त्तव्य विषयों का निरूपण करते हुए ग्रन्थ की समाप्ति की जावेगी।

अन्त में जगदाधार सर्वान्तिर्यामी से यही प्रार्थना है कि वह इस ब्राह्मण समाज तथा भारतवर्ष की अज्ञान निद्रा को भंग करके सबको यथार्थ ज्ञान और द्वेष तथा पक्षपात शून्य बात बोलने और लिखने की सुबुद्धि प्रदान करे और साथ ही मेरे इस अल्प परिश्रम से लोगों को लाभ उठाने की भी सुमति देवे, जिसमें मेरा केवल परोपकारार्थ यह दीर्घ काल का श्रम सफल होवे। सब के पश्चात् मैं इसके अवलोकन तथा समालोचना करने वालों से यह प्रार्थना करता हूँ कि लोग यद्यपि इसमें दोषोद्घाटन तो अवश्य करेंगे। क्योंकि वे भी अपनी अपरिहार्य्य छिद्राऽरोपिका प्रकृति रमणी के किंकर हैं। परन्तु ऐसा करने से पूर्व इस ग्रन्थ को निष्पक्षपात भाव से सम्यक्तया आलोडन कर लेवें और मेरे तात्पर्य को भलीभाँति हृदयंगम करके उचित दूषण देवें तो मैं उसे सहर्ष शिरोधारण करने के लिये सर्वदा कटिबद्ध हूँ। क्योंकि तात्पर्य को समझ कर दूषण देने से दुःख नहीं होता। अब मैं श्रीयुत कुमारिल स्वामी तथा रघुनाथ शिरोमणि भट्टाचार्य के इसी विषय के वचनों को पाठकों के सम्मुख प्रदर्शित करके अनुरोध के साथ अपने इस वक्तव्य को यहीं समाप्त करता हूँ और आशा करता हूँ कि आप लोग इस धृष्टता को क्षमा करेंगे। वे वचन निम्नांकित है :—

[1] नचात्रातीव कर्त्तव्यं दोषदृष्टिपरं मनः।
दोषोह्यविद्यमानोऽपि तद्दृष्टीनां प्रकाशते॥
मान्यान्प्रणम्य विहिताञ्जलिरेष भूयो,
भूयो विधाय विनयं विनिवेदयामि।
दूष्यं वचो मम परं निपुणं विभाव्य,
भावावबोधविहितो न दुनोति दोषः॥ इति॥

॥ ॐ शम् ॥ —लेखक।

१. तात्पर्य यह है कि सभी जगह अत्यन्त दोष नहीं करना चाहिए,क्योंकि जिसकी दृष्टि में दोष (पित्त रोग) हो जाता है, उसे वस्तुओं में न रहने वाला भी दोष (पीलापन) मालूम हो जाता है।

॥ श्रीहरिः ॥

ब्रह्मर्षि वंश विस्तर

निर्भीतिभूषितकरात्स्फटिकाभगात्रा–
दाशाम्बरादरुणपद्मदलाधरोष्ठात्
राकेशसुन्दरमुखात्सरसीरुहाक्षा–
च्छम्भोः परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ॥ १ ॥

कलेः प्रभावादवलोक्य हानं धर्मस्य देवैर्मुहुरर्द्यमानः ।
समावतीर्णोम्बुधिदेश्यवर्गैर्यः शंकरो धर्मगुपेसनोऽव्यात् ॥ २ ॥
तस्यैव वैनेयपरम्परायामन्तर्गतोऽन्त्याश्रमसंश्रितायाम् ।
श्रीविश्वरूपोनुविश्वरूपोयोऽभूदहंप्राञ्जलिरानतस्तम् ॥ ३ ॥
यस्येति वाक्यात्तत्पादपद्मेभृंगायमाणं तमनन्यभावम् ।
तच्छिष्यमानौमि गुरुं गुरोर्मे भूमादिमानन्दसरस्वती वै ॥ ४ ॥

क्रीडन्तमद्वयानन्देऽद्वैतानन्दसरस्वतीम् ।
तुर्याश्रमस्थं तुर्यम् स्वं देशिकं प्रणमाम्यहम् ॥ ५ ॥
क्रियते सहजानन्दसरस्वत्याख्यदण्डिना ।
ब्रह्मर्षि वंशविस्तारोन्वसौ सर्वाङ्गसंयुतः ॥ ६ ॥

पूर्वार्द्ध-द्विविध ब्राह्मण विचार

ब्राह्मणा द्विविधा राजन् धर्मश्च द्विविधः स्मृतः ।
प्रवृत्ताश्च निवृत्ताश्च निवृत्तोऽहं प्रतिग्रहात् ॥ (म. शां.)

(१) ब्राह्मणलक्षण

श्रुति, स्मृति तथा पुराणादि के अवलोकन से स्पष्ट है कि मैथुनी सृष्टि से पूर्व विराट् भगवान अथवा हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा वा प्रजापति) ने सांकल्पिक (मानसिक) सृष्टि की और तदनुसार ही ब्राह्मणादि वर्णों को परस्पर विलक्षण सूचित करने के लिये मुखादि भिन्न–भिन्न अंगों से उत्पन्न किया। जैसा शुक्ल यजुर्वेद के ३२वें अध्याय के १२वें मन्त्र से स्पष्ट है :–

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्ययद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥

जिसका तात्पर्य यह है कि 'हिरण्यगर्भ वा प्रजापति के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, जांघ से वैश्य और पाँव से शूद्र उत्पन्न हुए।' क्योंकि इसके बाद के मन्त्र **'चन्द्रमा मनसो**

जातः' में पंचम्यन्त पद **'मनसः'** रक्खा है, जिसका अर्थ यही हो सकता है कि मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई। तदनुसार ही इस पूर्व मन्त्र में भी अर्थ करना चाहिए। इस स्थान पर जो लोग यह कहा करते हैं कि ऐसा अर्थ करने से सृष्टि क्रम से विरोध पड़ता है, क्योंकि आजकल मुखादि अंगों से किसी की उत्पत्ति नहीं देखते। उनसे पूछना चाहिए कि अच्छा, तो फिर सृष्टि प्रारम्भ काल में प्रथम स्त्री-पुरुष थे ही नहीं तो सृष्टि कैसे हुई ? इसलिये यह मानना ही पड़ेगा कि प्रथमतः ईश्वर ने कुछ स्त्री-पुरुषों को संकल्प से ही उत्पन्न किया। तदनन्तर सृष्टिक्रम उन्हीं से चला जो आज तक है। अतः मानसिक सृष्टि के विषय में जिसका मानना अत्यावश्यक है, यह शंका हो ही नहीं सकती। मनुजी भी स्पष्ट रूप से प्रथमाध्याय के ३१वें श्लोक में यही बात कहते हैं। जैसा लिखा है :–

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्त्तयत् ॥

इस श्लोक में तो स्पष्ट रूप से **'मुखबाहूरुपादतः'** इस पंचम्यन्त पद का प्रयोग है। यदि मुखस्थानापन्न ब्राह्मण हुए इत्यादि रूप अर्थ पर ही आग्रह होवे तो भी हमारा कोई विरोध नहीं है। इस मानसिक सृष्टि के बाद उन्हीं से उत्पन्न स्त्री-पुरुष व्यक्तियों द्वारा मैथुनी सृष्टि हुई और यद्यपि मानसिक सृष्टि में भी वर्णों का विभाग था, जैसा अभी कह चुके हैं, अतः उसके अनुसार भी जातियों का नियम हो सकता है, या था। तथापि आजकल के जीवों में मुख आदि से उत्पत्ति नहीं पाई जाती है। इसलिये महर्षियों ने 'मुख से जो उत्पन्न हुआ उसे ब्राह्मण कहते हैं' इत्यादि जातियों का लक्षण न करके **'ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनैवमुत्पन्नो ब्राह्मणः स्मृतः'** (हारीतस्मृति १ अ० १५) अर्थात् 'ब्राह्मणी के रज और ब्राह्मण के वीर्य से जो विधिवत् उत्पन्न होता है, उसे ब्राह्मण कहते हैं, इत्यादि रूप ही लक्षण किया है। ऐसी दशा में किसी का यह कथन कि 'क्योंकि तुम दान नहीं लेते और पुरोहिती नहीं करते हो, अतः ब्राह्मण नहीं हो केवल मूर्खता है। क्योंकि जब उसकी उत्पत्ति ब्राह्मण से है तो उसकी ब्राह्मणता में सन्देह ही क्या हो सकता है ? हाँ, इतना अवश्य हो सकता है कि यदि वह ब्राह्मणोचित कर्म न करेगा तो पतित अथवा हीन ब्राह्मण समझा जा सकता है। परन्तु प्रतिग्रहादि तो ब्राह्मणोचित कर्म नहीं हैं, प्रत्युत ब्राह्मणत्व को सत्यानाश में मिलाने वाले हैं। जैसा मनुजी ने कहा है और अन्यत्र भी लिखा है कि :–

प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसंगं तत्र वर्जयेत् ।
प्रतिग्रहेणह्यस्याशु ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति ॥ म. ४। १८६
पौरोहित्यमहं जाने विगर्ह्यं दूष्यजीवनम् । स्कन्दपु०

अर्थ यह है कि 'यदि प्रतिग्रह करने में सामर्थ्य भी रखता हो (अर्थात् उससे होने वाले पाप को हटाने के लिये बहुसंख्यक गायत्रीजप और तपस्यादिक भी कर सकता हो) तो भी प्रतिग्रह का नाम भी न लेवे, क्योंकि उससे शीघ्र ब्रह्मतेज (ब्राह्मणता) का नाश हो जाता है। ब्राह्मण कहता है कि हम पुरोहिती को निन्दित और जन्म को दूषित करने वाली जानते हैं।' जैसा रामायण में स्पष्ट लिखा है कि 'उपरोहिती कर्म अतिमन्दा। वेद पुराण स्मृति कर निन्दा'। इत्यादि। इसका विस्तारपूर्वक विचार आगे होगा। ऐसी दशा में प्रतिग्रह या पुरोहिती से रहित किसी शुद्ध ब्राह्मण या ब्राह्मण समाज को ब्राह्मण न कहना, या हीन ब्राह्मण कहना केवल मूर्खता, द्वेष, नास्तिकता और धृष्टतामात्र है। यदि प्रतिग्रह या पुरोहिती ब्राह्मणोचित कर्म मान

भी लिये जावें तो भी उनका न करने वाला ब्राह्मण क्यों न कहा जावेगा ? क्योंकि कर्म करने से जाति मानना विधर्मियों का सिद्धान्त और अनभिज्ञता है। सनातन धर्म का तो अटल सिद्धान्त है कि आम्र के बीज से जो उत्पन्न होगा वह आम्र ही होगा चाहे उसका सिंचन आदि करिये या न करिये। श्रुति भी यही कहती है कि **'अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयीत तं चाध्यापयोत' अर्थात् आठ वर्ष के ब्राह्मण का उपनयन संस्कार कराकर उसे पढ़ावे'। और मनुजी भी कहते हैं कि 'गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्'।** २ अ० ३६। अर्थात् 'गर्भ से आठवें वर्ष ब्राह्मण का उपनयन करावे।' यद्यपि उपनयन संस्कार से पूर्व उसने कोई ब्राह्मणता-सम्पादक कर्म नहीं किये हैं और न भविष्यत् का ही निश्चय है, तथापि उसे ब्राह्मण ही, स्पष्ट शब्दों में, कह दिया है। इसलिये यही सिद्धान्त है कि ब्राह्मणी और ब्राह्मण द्वारा जिसकी उत्पत्ति शास्त्रीय रीति से हो उसे ही ब्राह्मण कहते हैं। जिसके धर्म संध्या-वंदनादि हैं न कि पुरोहिती या प्रतिग्रह आदि।

(२)ब्राह्मण धर्म

(क) धर्मार्थ कर्म—अब यहां यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि अच्छा, ब्राह्मण जाति का यही सामान्य स्वरूप रहे। परन्तु उसमें उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ भाव किस प्रकार से हुआ और हो रहा है ? क्या लोगों की यह धारणा कि अमुक विप्र उत्तम है और अमुक मध्यम इत्यादि, मिथ्या ही है ? इस प्रश्न के हल करने का सबसे उत्तम उपाय यही है कि ब्राह्मणों के स्वरूप का विचार, उनके आचार-व्यवहारों की देखभाल और उनके धर्मों के विषय में शास्त्रों की आज्ञाओं का परिशीलन (मीमांसा या विचार) कर लिया जावे कि याज्ञवल्क्यादि महर्षियों के समय से आज तक वे लोग किस मार्ग का अवलम्बन करने से कैसे माने गये हैं। उन्होंने धर्म और जीविका के लिये किन किन कर्मों का आश्रय लिया है, उनमें से किसे उत्तम, मध्यम अथवा हीन समझा है और भविष्य के लिये कौन से शिक्षा रूप बीज बोये हैं। क्योंकि शिष्टों (श्रेष्ठ पुरुषों) के आचार भी प्रमाण माने जाते हैं। अतएव पूर्व मीमांसा दर्शन के प्रथमाध्याय के तृतीय पाद के अष्टम अधिकरण में **अनुमानव्यवस्थानात्तत्संयुक्तं प्रमाण स्यात् ॥ १५ ॥** इत्यादि सूत्रों द्वारा होलिका आदि शिष्टाचारों को प्रमाण मानकर उनके विषय में विशेष विचार किया गया है और उसी पाद के ५वें अधिकरण में दाक्षिणात्य ब्राह्मणों में प्रचलित शिष्टाचार के अनुसार मामा की कन्या के साथ विवाह को लोग उचित न समझ लेवें इसके लिये,

मातुलस्य सुतामूढ्वा मातृगोत्रां तथैव च।
समानप्रवरां चैव त्यक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

on Marriage

अर्थात् मामा की लड़की, माता के गोत्र की लड़की और अपने गोत्र वाली लड़की से भूल कर ब्याह कर लेने पर भी उसे छोड़कर चान्द्रायण व्रत करे, इस स्मृति वचन के विरुद्ध होने से उस आचार को उन्होंने अप्रामाणिक ठहराया है। परन्तु आजकल तो इतनी प्रबल मूर्खता हो गई है कि अज्ञानवश अथवा तृष्णादि में पड़कर प्रायः सभी ब्राह्मण एवं अन्य जातियाँ अपने और माता के गोत्र में विवाह करने में नहीं हिचकतीं।

अस्तु, अब देखना चाहिए कि श्रुति तथा मनु आदि महर्षियों की आज्ञाएँ ब्राह्मणों के प्रति धार्मिक विषयों में—विशेष कर जीविका और धर्म के लिये किये जाने वाले कर्मों के विषय में कैसी हैं। इस जगह इतना और भी स्मरण रखना होगा कि सभी धर्म अनापत्कालिक (जो

बिना किसी दबाव या मजबूरी के किये जा सकें—) और आपत्कालिक (जो तकलीफ या दबाव पड़ने पर हार कर किये जावें) इन दो प्रकार के हैं। इससे विषय के विवेचन (निर्णय) में आसानी होगी।

छान्दोग्योपनिषत् के द्वितीय प्रपाठक के २३वें खण्ड में लिखा है कि—

त्रयोधर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमः।

जिसका भाव यह है कि नित्य नैमित्तिकादि धर्म रूप वृक्ष की तीन बड़ी-बड़ी शाखाएँ हैं, जिनमें पहली शाखा यज्ञ, वेद और शास्त्रों का पढ़ना और दान रूप है। इन्हीं में संन्ध्या और अग्निहोत्र वगैरह भी आ गये, क्योंकि अग्निहोत्र यज्ञ का स्वरूप ही है और गायत्री का जप भी उससे बाहर नहीं है। जैसा गीता में भगवान श्रीकृष्ण जी ने कहा है—

द्रव्ययज्ञास्तोपज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे। (अ० ४।२८)

भावार्थ यह है कि 'कोई द्रव्यों (काष्ठ, घृत आदि) से यज्ञ करते, कोई गायत्री जप एवं व्रतादि रूप जो तप कहलाते हैं उन्हीं यज्ञों को करते और कोई समाधि रूप ही यज्ञ करते हैं।' यदि अध्ययन को भी यज्ञ में मिला लेवें तो कोई हानि नहीं है परन्तु पढ़ने का फल, यज्ञ है इसलिये उसे श्रुतियों और स्मृतियों में यज्ञ से पृथक् ही गिनाया है। मनुस्मृति में जो लिखा है कि—

अध्यापनमध्ययनं याजनं यजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव षट् कर्माण्यग्रजन्मनः। १०।७५

'Karm' of Brah

अर्थात् 'पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान और प्रतिग्रह ये छह कर्म ब्राह्मणों के हैं'। उसका भी यही आशय है कि अध्ययन (पढ़ना), दान और यज्ञ करना यही तीन कर्म धर्म के लिये हैं, शेष तीन तो जीविका के ही लिये हैं। परन्तु जगदुत्पत्ति प्रकरण प्रथम अध्याय में इन छः उत्पत्ति साथ ही कही गई है। इसलिये यहाँ भी सभी का नाम प्रायः उसी उत्पत्ति प्रकरण के श्लोक द्वारा लिया है। वास्तव में तो यह प्रकरण (मनुस्मृति का दसवाँ अध्याय) उन कर्मों का है जो आपत्काल में जीविका के लिये किये जा सकते हैं। इसीलिये अगले श्लोक में लिख दिया है—कि

षण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका।
याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्चप्रतिग्रहः ॥ म. १०।७६

अर्थात् 'पूर्वोक्त छह कर्मों' में से यज्ञ कराना, पढ़ाना और शुद्ध जनों का प्रतिग्रह करना ये कर्म तो जीविका के लिये हैं। परन्तु यदि इन तीनों को यहाँ लिखते और पढ़ने, यज्ञ करने और दान को छोड़ देते तो जैसा लोग फिर भी आज समझने लग गये हैं; समझने लग जाते कि आपत्ति काल में पढ़ने, यज्ञ करने और दान देने की कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि मनुस्मृति में उसकी आज्ञा नहीं है। इसलिये मनु भगवान ने इन तीनों को साथ ही लिख दिया है। अत्रिजी भी लिखते हैं कि,

कर्म विप्रस्य यजनं दानमध्ययनं तपः।
प्रतिग्रहोऽध्यापनं च याजनं चेति वृत्तयः ॥ १३ ॥

तात्पर्य यह है कि 'ब्राह्मण के कर्म (धर्म) तो यज्ञ, दान और अध्ययन ये तीन ही हैं, प्रतिग्रह, पढ़ाना और यज्ञ कराना ये तीन तो जीविकाएँ हैं। ब्राह्मण के धर्मार्थक कर्म यज्ञ,

अध्ययन और दान तीन ही हैं। गीता में भी लिखा है कि:–

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥ १८॥ ४२

अर्थ यह है कि 'मन और इन्द्रियों का विषयों से रोकना, तपस्या, आभ्यन्तर और बाह्य शौच, क्षमा, नम्रता, शास्त्र-ज्ञान और अनुभव रूप (साक्षत्कार रूप) ज्ञान ब्राह्मणों के स्वाभाविक धर्म हैं। इनमें याजन अथवा अध्यापन के तो नाम भी नहीं हैं। पराशर स्मृति के प्रथमाध्याय में भी लिखा है कि :–

संध्या स्नानं जपो होमो देवतानां च पूजनम्।

आतिथ्यं वैश्वदेवं च षट्कर्माणि दिने दिने॥ ३९॥

अर्थात् 'रात और दिन की सन्धि समय में स्नान, गायत्री का जप, अग्निहोत्र, शिवविष्णवादि देवों का पूजन, यथाशक्ति अतिथि का सत्कार और बलिवैश्वदेव ये छह कर्म ब्राह्मणों को नित्य करने चाहिए। मनुजी अन्त में भी १२वें अध्याय में लिखते हैं कि :–

यथोक्तान्यपि कर्माणि परिहाय द्विजोत्तमः।

वेदाभ्यासे शमे च स्यादात्मज्ञाने च यत्नवान्॥ ९२॥

जिसका भाव यह है कि ब्राह्मणों के लिये जो बहुत से कर्म बतलाये गये हैं उनका त्याग भी करके वे वेदाभ्यास, चित्तनिरोध (समाधि) और आत्मज्ञान के लिये यत्न करें। इससे स्पष्ट ही है, कि मनुजी को वेदाभ्यास प्रभृति कर्मों की ही प्रधानता विवक्षित है, जिनके अन्तर्गत संध्या और अग्निहोत्र भी हैं। याज्ञवल्क्य जी ने भी आचाराध्याय में कह दिया है कि :–

जपन्नासीतसावित्रीं प्रत्यगातारकोदयात्॥ २४॥

संध्यां प्राक्प्रातरेवंहि तिष्ठेदासूर्यदर्शनात्।

अग्निकार्यं ततः कुर्यात् सन्ध्ययोरुभयोरपि॥ २५॥

अर्थात् 'सन्ध्या समय पश्चिम मुख बैठकर तारा के निकलने तक और प्रातः पूर्व मुख बैठकर सूर्योदय पर्यन्त गायत्री जप करे। उसके बाद दोनो सन्धिकाल में अग्निहोत्र करे'। श्रुतियों में यही अनुशासन (आज्ञा) अन्यत्र भी है, जैसा शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थों में लिखा है कि :–

'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' 'अहरहः सन्ध्या-

मुपासीत,' 'अग्निहोत्रं जुहुयात्'।

अर्थ यह है कि 'वेद नित्य पढ़ना और सन्ध्या अग्निहोत्र नित्य करना चाहिए'। इत्यादि शतशः श्रुति स्मृत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है कि ब्राह्मणों के लिये धर्मार्थक कर्म केवल अध्ययन, सन्ध्यानुष्ठान, अग्निहोत्र और वैश्वदेव आदि हैं, न कि अध्यापन (पढ़ाना) और याजन (यज्ञ करोना) आदि भी। याज्ञवल्क्य स्मृति, आचाराध्याय के ५५८वें श्लोक के व्याख्यान मिताक्षरा में साफ-साफ लिख दिया है कि :–

तत्र त्रीणीज्यादीनि धर्मार्थानि त्रीणि प्रतिग्रहादीनि वृत्त्यर्थानि। षण्णान्तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका। याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः (१०।७६) इति मनुस्मरणात्, अत इज्यादीन्यवश्यं कर्त्तव्यानि न प्रतिग्रहादीनि। द्विजातीनामध्ययनमिज्यादानं ब्राह्मणस्याधिकाः प्रवचनयाजनप्रतिग्रहाः पूर्वेषु नियमः (१० अ०) इति गौतमस्मरणात्।

जिसका अर्थ यह है कि 'छह कर्मों में से यज्ञ, अध्ययन और दान ये तीनो धर्म के लिये और याजन, अध्यापन एवं प्रतिग्रह ये तीनो केवल जीविका (पेट पालने) के लिये हैं, क्योंकि मनुजी ने कहा है कि छह कर्मों में से विशुद्ध प्रतिग्रह आदि तो केवल जीविका के निमित्त हैं। इसीलिये यज्ञ, अध्ययन और दान अवश्य करने चाहिये, न कि प्रतिग्रह वगैरह भी, क्योंकि गौतमस्मृति के दशम अध्याय में लिखा है कि द्विज मात्र के लिये यज्ञ, अध्ययन और दान ये तीन कर्म हैं, और ब्राह्मणों के लिये यद्यपि याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह भी हैं, तथापि उनका करना आवश्यक नहीं है, किन्तु यज्ञ आदि का ही'। यह मिताक्षराकार की सम्मति इस विषय में है। हाँ, जीविका के लिये प्रतिग्रह कर सकते हैं। परन्तु सो भी आपत्काल में जब उञ्छ, शिल, कृषि और वाणिज्यादि एक भी न हो सके जैसा आगे चलकर विदित होगा। इतने पर भी प्रतिग्रह के बाद प्रायश्चित अवश्य करना होगा। क्योंकि मनुस्मृति चतुर्थ अध्याय में लिखा है कि–

अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः।

अम्भस्यश्मप्लवेनेव सह तेनैव मज्जति॥ १९०॥

अर्थात् 'जो ब्राह्मण वेदादि शास्त्रों को पढ़ने और तपस्या करने वाला नहीं है वह यदि प्रतिग्रह करे तो प्रतिग्रह के साथ ही उसका नाश वैसे ही हो जाता है, जैसे पत्थर की नाव चढ़ने वाले के साथ डूब जाती है। इसका विशेष विचार फिर करेंगे। एक बात और भी विचारने योग्य है। वह यह कि किसी प्रसंग में सबसे प्रथम प्रधान वस्तु का ही नाम लिया जाता है, जैसे सभा में सभापति का इत्यादि। अब यदि इन षट् कर्मों के बतलाने वाले वाक्यों को देखते हैं तो सभी में प्रथम यजन, अध्ययन और दान के नाम आते हैं, पश्चात् याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह के। इतनी बात अवश्य है कि अध्यापन (पढ़ाना) तीन प्रकार के होते हैं जैसा हारीत स्मृति के प्रथम अध्याय में लिखा है :–

अध्यापनं च त्रिविधं धर्मार्थं मृक्थ कारणात्।

शुश्रूषाकरणं चेति त्रिविधं परिकीर्त्तितम्॥ १८॥

अर्थ यह है कि 'अध्यापन' तीन प्रकार के होते हैं, (१) धर्म के लिये, (२) सेवा कराने के लिये, (३) धन प्राप्ति के लिये। अतः प्रथम के दो अंशों को लेकर अध्यापन भी याजन (यज्ञ कराने) और प्रतिग्रह की अपेक्षा उत्तम है। इसीलिये कहीं कहीं अध्यापन को भी प्रथम लिख देते हैं। जैसा–

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।

दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥ मनु॥

यदि यज्ञ भी केवल परोपकारार्थ कराया जावे न कि दक्षिणा लेकर, तो वह भी किसी प्रकार अच्छा कहा जा सकता है। अतएव कहीं कहीं एकाध स्थल में उसका नाम भी प्रथम लिया है। जैसा हारीतस्मृति के प्रथम अध्याय में लिखा है :–

अध्यापनमध्ययनं याजनं यजनं तथा।

दानं प्रतिग्रहश्चैव षट् कर्माणीति प्रोच्यते॥ १८॥

परन्तु प्रतिग्रह का नाम तो कहीं प्रथम नहीं आया है। इसलिये वह महानिकृष्ट है। अध्ययन, यजन और दान इन तीनों में से भी अध्ययन (पढ़ना) सर्वोच्च है, क्योंकि उससे

परमात्मा के ज्ञान द्वारा मुक्ति मिल सकती है और शास्त्र एवं कर्मों के ज्ञान से यज्ञादि का अनुष्ठान भी हो सकता है। इसलिये यज्ञ उससे मध्यम ठहरा, क्योंकि यह उसका फल है। यज्ञ में दान भी होता है और जप, हवन् आदि भी। अतएव यज्ञ का एक भाग होने के कारण दान यज्ञ से भी मध्यम अर्थात् कनिष्ठ हुआ। इस तरह से ये अध्ययन, यज्ञ और दान उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ धर्म हैं। इसी से पूर्वोक्त श्लोकों में प्रथम अध्ययन, बाद यज्ञ और उसके अनन्तर ही दान का नाम आया है। इस प्रकार तीन प्रकार के धर्मों के हो जाने पर अब चौथे प्रकार का धर्म कहाँ से आ सकता है? क्योंकि संसार की सभी वस्तुएँ या तो उत्तम या मध्यम अथवा कनिष्ठ इन तीन ही प्रकारों की होती हैं। इसलिये जो धर्म होंगे उनका इन्हीं तीन अध्ययन आदि में अन्तर्भाव (मिलाव) करना होगा। परन्तु प्रतिग्रह वगैरह तो इन तीनों में से किसी में भी मिल नहीं सकते। अतः वे सब कर्म धर्म के लिये नहीं हो सकते। अतएव मनु भगवान ने कहा है किः–

वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च रक्षणम्।
वार्ता कर्मैव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु॥ १०८॥

इसका तात्पर्य यह है कि 'ब्राह्मण के कर्मों में वेदाभ्यास सबसे उत्तम है। एवं क्षत्रिय के कर्मों में रक्षा करना और वैश्य के कर्मों में व्यापार सर्वश्रेष्ठ है। अर्थात् इन तीन ब्राह्मणादि वर्णों को क्रम से वेदाभ्यास आदि तीनों में विशेष ध्यान देना चाहिए। अतएव अब इस शंका का भी अवसर न रहा कि यदि ब्राह्मण के भी तीन कर्म हैं।और क्षत्रिय, वैश्य के भी तीन ही तो फिर उनमें भेद ही क्या रहा ? क्योंकि यद्यपि तीनों के लिये अध्ययन आदि समान ही धर्म है तथापि ब्राह्मण का प्रधान धर्म वेदाभ्यास है, क्षत्रियों का तीनों से अतिरिक्त रक्षा ही प्रधान धर्म है, एवं वैश्य का व्यापार। क्योंकि यदि क्षत्रिय रक्षक और वैश्य वाणिज्यकर्त्ता न होवे तो विविध उपद्रव और धन की कमी से सब धर्म ही मिट्टी में मिल जावें। इसलिये क्षत्रिय और वैश्य के लिये इन्हें ही प्रधान कर्म बतलाना बहुत ही युक्तिसंगत है और इन प्रधान कर्मों के भेद से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की परस्पर विलक्षणता हो गई। दूसरी बात यह है कि यदि ये धर्मार्थक कर्म तीनों के समान भी हो जावें तो भी जीविका के कर्म तीनों के भिन्न-भिन्न हैं। अतः उन्हीं के भेद से तीनों का परस्पर भेद हो सकता है। क्योंकि ब्राह्मणों के ही लिये शिल, उञ्छादि बतलाये गये हैं न कि क्षत्रिय और वैश्यों के लिये भी वे जीविकाए हैं। बल्कि हमारी समझ में ऐसी शंका करनी ही न चाहिए। क्योंकि हम लोग (सनातनधर्मानुयायी) जन्म से ही जाति भेद मानते हैं, न कि कर्मों से। नहीं तो ब्राह्मण और क्षत्रियों की एकता न हो जावे इस डर से यदि ब्राह्मणों के षट् कर्म अवश्य माने जावें, तो यह पूछ सकते हैं कि अस्तु, यही बात रहे, परन्तु क्षत्रियों और वैश्यों में परस्पर भेद कैसे रहेगा ? क्योंकि उन दोनों के लिये तो धार्मिक कर्म अध्ययन, यजन और दान तीन ही हैं। अतः ऐसी शंका करना अनभिज्ञता मात्र है। याज्ञवल्क्य स्मृति के आचाराध्याय में भी लिखा है कि–

प्रधानं क्षत्रिये कर्म प्रजानां परिपालनम्।
कुसीदकृषिवाणिज्यं पाशुपाल्यं विशः स्मृतम्॥ ११९॥

अर्थात्, 'क्षत्रिय का प्रधान कर्म प्रजारक्षण और वैश्य के प्रधान कर्म सूद पर रुपया देना, कृषि, वाणिज्य एवं पशुपालन हैं। इसी जगह मिताक्षरा में लिखा है कि :–

क्षत्रियस्य प्रजापालनं प्रधानं कर्म धर्मार्थं वृत्यर्थं च।वैश्यस्य कुसीदकृषिवाणिज्य पशुपालनानि वृत्यर्थानि कर्माणि।

अर्थात्, 'क्षत्रिय का प्रजापालन ही प्रधान कर्म है, जो धर्म और जीविका दोनों के लिये है एवं वैश्य के सूद पर रुपया देने, कृषि, वाणिज्य और पशुपालन प्रधान कर्म है। इससे यह भी सूचित होता है कि कृषि वाणिज्यादि ब्राह्मणों के अप्रधान कर्म अवश्य है, हाँ, वे प्रधान नहीं हो सकते यह दूसरी बात है। इन वाक्यों तथा गीता के १८वें अध्याय के ४२, ४३ और ४४ श्लोकों में भी लिखे गये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के धर्मों को देखकर मूर्ख से भी मूर्ख को यह शंका नहीं हो सकती कि 'ब्राह्मणों के तीन ही कर्म मानने से क्षत्रिय और वैश्यों से उनका भेद न रह जायगा।' इसलिये ब्राह्मणों को त्रिकर्मा कहना बहुत ही युक्तियुक्त है, न कि जीविका के कर्मों को मिलाकर षट्कर्मा। क्योंकि ऐसी दशा में शतकर्मा या सहस्रकर्मा क्यों न कहना चाहिए ? क्योंकि मनुस्मृति चतुर्थाध्याय के अनुसार, जैसा अभी जीविकार्थक कर्मों के प्रकरण में दिखलायेंगे, शिल, उञ्छ, कृषि, वाणिज्य और सूद पर रुपये देना भी ब्राह्मणों की अनापत्ति काल की जीविकाए हैं। बल्कि प्रतिग्रह वगैरह ही आपत्ति काल की जीविकायें हैं, जैसा वहीं विदित होगा एवं पुराण, इतिहास तथा पराशर आदि स्मृतियों और शिष्टाचारों द्वारा भी राज्य, कृषि, सेनापति के कार्य और युद्धादि भी ब्राह्मणों के कर्म बतलाये जावेंगे। यदि जीविका के कर्म भी परस्पर या धर्मार्थक माने जावें, तो स्नान तथा मलमूत्रादि के त्याग प्रभृति भी उसी में आ जावेंगे, जिससे बलात् षट्कर्मा मानने के बदले शत या सहस्रकर्मा मानना ही पड़ जावेगा। अतः यह निर्विवाद सिद्ध है कि वास्तव में ब्राह्मण त्रिकर्मा ही होते हैं, जैसे आजकल अयाचक (भूमिहार, पश्चिमा, तगे या दान-त्यागी, महियाल, नागर, प्रायः कान्यकुब्ज और बहुत से पंक्तिबद्ध सर्यूपारी) ब्राह्मण पाये जाते हैं। अथवा यों कहना चाहिए कि सभी प्रान्तों में किसी-न-किसी नाम या रूप में त्रिकर्मा अथवा अयाचक ब्राह्मण पाये जाते हैं।

यदि षट्कर्मा ही मानने में आग्रह होवे तो सच्चे षट्कर्मा क्यों नहीं मानते ? जैसे अयाचक ब्राह्मण भी पाये जाते हैं। क्योंकि मनुजी ने चतुर्थाध्याय के प्रारम्भ में शिल, उञ्छ, याचित, अयाचित, कृषि और वाणिज्य रूप छह जीविकाओं को ब्राह्मणों के निमित्त गिनाकर कहा है कि–

षट्कर्मैको भवत्येषां त्रिभिरन्यः प्रवर्त्तते।
द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रेण जीवति॥ ९॥

अर्थ यह है कि 'इन पूर्वोक्त चतुर्विध ब्राह्मणों में कोई तो षट्कर्मा होता है, अर्थात् पूर्वोक्त शिल, उञ्छ आदि छह जीविकाएँ करता है, कोई प्रथम के शिल आदि तीन ही, कोई दो ही और कोई शिल और उञ्छ में से एक ही करता है।' इस वचन के अनुसार षट्कर्मा भी मानिये, हमें त्रिकर्मा ही मानने में आग्रह नहीं है। क्योंकि ये छह कर्म याचक और अयाचक ब्राह्मणों में समान ही हैं, किसी में कुछ भी कमी नहीं है।

अथवा पराशरस्मृति में कहे गये सन्ध्या-स्नान आदि छह कर्मों को जिनका वर्णन प्रथम कर भी चुके हैं और जो केवल धर्मार्थक ही है, लेकर भी दोनों प्रकार के (अयाचक और याचक) ब्राह्मण षट्कर्मा कहे जा सकते है। क्योंकि यह नियम भी है कि "**कलौ पाराशराः स्मृताः**" अर्थात् 'कलियुग में पराशर स्मृति में कहे गये धर्म ही माने जा सकते हैं' और

उन्होंने स्पष्ट रूप से **'षट्कर्माणि दिने दिने'** 'अर्थात् सन्ध्या-स्नानादि छह कर्म प्रतिदिन करने चाहिए' ऐसा लिख दिया है। इसलिये इन धार्मिक षट् कर्मों को लेकर ही षट्कर्मा मानना बहुत ही उचित होगा जैसा दिखला चुके हैं। अतः अयाचक ब्राह्मण त्रिकर्मा या षट्कर्मा दोनो कहे जा सकते हैं और साथ ही, अन्य ब्राह्मण भी। इस विषय का अवशिष्ट विवेचन अगले ग्रन्थ में चल कर होगा। उपसंहार में हम केवल इतना और कह देना चाहते हैं कि जब मनु जी स्वयं लिख देते हैं कि **'धर्मस्तु दानमध्ययनं यजिः'** (१०।७९) अर्थात् 'धर्मार्थक अथवा स्वयं धर्म स्वरूप कर्म तो दान, यज्ञ और अध्ययन (पढ़ना) ये तीन ही हैं, तो फिर इस विषय में विवाद ही क्या है ? क्या इनमें कुछ ऐसी विशेषता है कि क्षत्रियादि के लिये ये धर्म होवें न कि ब्राह्मणों के लिये। क्या किसी विचारहीन के केवल कथन से प्रतिग्रह आदि भी अपने वास्तव कलुषित स्वरूप को (जैसा कि सभी जानते और मानते हैं) छिपाकर धर्म बन जावेंगे? क्या लोग नहीं जानते हैं कि धर्म के नाम पर प्रतिग्रह लेना केवल फिर धोने के लिये पंक में पाँव को घुसेड़ना है और धर्म-शास्त्रकार चिल्ला-चिल्ला कर उन्हें रोकते हैं कि ऐसा न करो? क्या कोई विचारवान् और नैष्ठिक ब्राह्मण प्रतिग्रह को उचित समझता है ?

इस विषय में एक बात और कहकर इस प्रकरण की समाप्ति और जीविकार्थक कर्मों के विचार के प्रकरण का आरम्भ करेंगे। वह यह कि अध्यापन (पढ़ाना), याजन (यज्ञ कराना) आदि कर्म काम्य हैं, अर्थात् इच्छा रहने पर ही किये जा सकते हैं। परन्तु अध्ययन (पढ़ना) आदि तो नित्य हैं, अर्थात् उनके करने की इच्छा न रहने पर भी उन्हें करना ही पड़ेगा। इसीलिये अध्यापन आदि करने के लिये शास्त्र बाधित नहीं कर सकता बल्कि अपनी इच्छा के अनुसार ही लोग उसे कर सकते हैं या नहीं। क्योंकि काम्य कर्मों में यथानुष्ठान-शक्ति का नियम है, जिसका तात्पर्य यह है कि जिस काम्य कर्म के करने की इच्छा हो उसके सांगोपांग अनुष्ठान और प्रायश्चित्त वगैरह करने की शक्ति यदि हो तो उसे करे नहीं, तो उसे न करे। परन्तु नित्य कर्मों को तो अवश्य करना होगा। इसलिये उनके विषय में यथाशक्त्यनुष्ठान का नियम है; जिसका भाव है कि नित्य कर्मों को जीवन पर्यन्त करना आवश्यक है। परन्तु जीवन भर सब अंगों सहित करने की शक्ति नहीं रह सकती। क्योंकि जरावस्था में स्नान या प्राणायाम आदि नहीं कर सकते। इसलिये प्रधान कर्म को न छोड़कर उसे करते हुए स्नान प्रभृति उसके अंगो को यथाशक्ति करना चाहिए। इसीलिये यद्यपि नित्य और काम्य दोनो प्रकार के कर्मों के फल होते हैं, तथापि दोनों में भेद होता है। इसी बात को श्री पार्थ सारथि मिश्र ने अपने मीमांसा ग्रन्थ **'न्यायरत्नमाला'** में इस प्रकार लिखा है कि,

काम्ये तु निमित्तवाक्यस्य कश्चिद्विरोधो नास्तीत्यंगान्य पेक्षितान्युपसंहियन्ते इति निखिलांग युक्तस्यैव प्रयोगः, नित्ये तु यथोक्तन्यायेनांगानां यथाशत्क्युपसंहार इति ॥

तात्पर्य यह है कि जब काम्यकर्मों में सांगोपांग का ही अनुष्ठान करने में किसी निमित्त के साथ कोई विरोध नहीं है, (क्योंकि जीवन रूप निमित्त तो वहाँ है ही नहीं, कि जीवन भर सब अङ्गों के न कर सकने से विरोध होगा, और कामना रूप निमित्त तो आवश्यक नहीं है, क्योंकि यदि सांगोपांग कर्म को नहीं कर सकते तो कामना को छोड़ भी सकते हैं) इसलिये सभी अपेक्षित अंगों को करना ही पड़ता है, न कि उन्हें छोड़कर भी। परन्तु नित्य कर्म तो पूर्वोक्त प्रकार से जीवन भर सब अंगों सहित लोग नहीं ही कर सकते हैं ; अंगों के लिये प्रधान कर्म का भी त्याग उचित भी नहीं है और जीवन रूप निमित्त अपरिहार्य हैं। अतः वहाँ यथाशक्ति ही अंग किये जाते हैं। इससे तो स्पष्ट ही है कि अध्यापन आदि कर्म उसी दशा में

किये जा सकते हैं जब उनके करने का सामर्थ्य और कामना हो, न कि उनके करने के लिये शास्त्र अवश्य बाधित कर सकते हैं। जैसा स्वामी चित्सुखाचार्य जी ने अपने **'चित्सुखी'** (तत्त्व प्रदीपिका) ग्रन्थ में स्पष्ट ही लिख दिया है कि,

किंच तमध्यायपयीतेति च नायमध्यापने विधिर्वृत्त्यर्थत्वेनाध्यापनस्य याजनवत्, प्राप्तत्वात् उक्तं हि षण्णांतु कर्मणामस्य त्रीणिकर्माणि जीविका। याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रह इति, तस्मात् यथैतयाशाद्यकामं याजयेदित्यादिषु याजनं न विधीयते, किन्त्वेतयाऽन्नाद्यकामोयजेतेति वाक्यार्थस्तथेहाप्यवर्षो ब्राह्मण उपगच्छेत्, सोधीयीतेति वाक्यार्थः स्वीकार्य इति ॥

इसका अर्थ यह है कि **'अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयीत तमध्यापयीत'** इस श्रुति में उपनयन संस्कार करवाने और पढाने की आज्ञा नहीं है, क्योंकि जैसे यज्ञ करवाना जीविका है, इसलिये उसका करना लोगों के लिये स्वतः (आप ही आप) सिद्ध है, न कि उसके लिये शास्त्राज्ञा की आवश्यकता है, वैसे ही अध्यापन (पढ़ाना) भी जीविका के ही लिये है, क्योंकि मनुजी ने कहा है कि छह कर्मों में से अध्यापन आदि तीन कर्म तो केवल ब्राह्मणों की जीविकाए हैं। इसलिये जैसे **'एतयान्नाद्यकामं याजयेत्'** इस श्रुति में यह आज्ञा नहीं है कि अन्नादि चाहने वाले से **'अवेष्टि'** नामक यज्ञ करवावे, क्योंकि यज्ञ करवाना तो बिना कहे ही सिद्ध है, किन्तु वहाँ यज्ञ करने की ही आज्ञा है कि अन्नादि चाहने वाला **'अवेष्टि'** नामक यज्ञ करे, यज्ञ करवाने की आज्ञा केवल ऊपर से प्रतीत मात्र होती है। उसी प्रकार यहाँ भी यही आज्ञा है कि आठ वर्ष का ब्राह्मण गुरु के पास जावे और विद्या पढ़े, न कि गुरुओं के लिये पढ़ाने की आज्ञा है, वह तो प्रतीत मात्र होती है।

इसी **'चित्सुखी'** ग्रन्थ की टीका **'नयनप्रसादिनी'** में उसी जगह स्पष्ट शब्दों में लिख दिया है कि,

यथाहि न तावद्यथाश्रुति याजनं विधातुं शक्यं वृत्त्यर्थत्वेन तत्र स्वतः एव प्रवृत्तत्वात्, अतोऽप्राप्तप्रयोज्यरूपसाक्षात् कर्तृव्यापारयागपरो विधिस्तथेहाप्यन्तोऽप्राप्तप्रयोज्यमाण वकव्यापाराबुपगमनाध्ययने विधीयेते इत्यर्थः ॥

जिसका अर्थ यह है कि जैसे 'अवेष्टि यज्ञ करवाने की आज्ञा नहीं हो सकती, क्योंकि वह तो जीविका है, इसलिये बिना कहे ही उसे लोग कर सकते हैं। किन्तु यज्ञ करने की ही वहाँ आज्ञा है। ठीक वैसे ही गुरु को अपने पास विद्यार्थी लाने और उसके पढ़ाने की आज्ञा शास्त्रों में नहीं दी गई है। क्योंकि विना शास्त्राज्ञा के ही गुरु लोग ऐसा करने में जीविका के लिये तत्पर होते हैं किन्तु विद्यार्थी स्वयं गुरु के पास जावे और पढ़े यही वेद की आज्ञा है। क्योंकि ऐसी आज्ञा के बिना कोई पढ़ नहीं सकता, जबकि हजार शास्त्राज्ञा के होते भी शास्त्र का पढ़ना दुःसाध्य हो रहा है। पढ़ाना जीविका है, इसे तो बहुत अच्छी तरह दिखला चुके हैं।

परन्तु यदि कोई यह कहे कि पढ़ाना या यज्ञ करवाना आदि काम्य कर्म नहीं हैं, तो उसके लिये भी **'चित्सुखाचार्य'** जी ने पूर्वोक्त प्रसङ्ग में ही लिखा है कि :—

तत्र संमाननोत्सञ्जनाचार्यकरणेतिसूत्रेणाचार्यकरणे नयतेरात्मनेपद विधानात्, उपनयीत तमध्यापयीतेतिचोपनयनाध्यापनयोरेकप्रयोगतावगमा दुपनय पूर्वकाध्यापनसाध्याचार्यत्वप्रतीतौ तत्कामिनो नियोज्यत्वावगमात्। अपि चाध्ययनं नित्यं, 'योऽनधीत्य द्विजोवेदानन्यत्र कुरुते

श्रमम्। स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वय' इत्यादिनाऽकरणेप्रत्यवायस्मरणात्, अध्यापनं चानित्यंकाम्यत्वात्।

जिसका भावार्थ यह है कि **'उपनयीत'** इस क्रियापद में जो **'आत्मनेपद'** संज्ञक प्रत्यय लगा है वह **'संमाननोत्सञ्जनाचार्यकरण ज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु नियः ।१।३।३६'** इस पाणिनीय सूत्र के अनुसार आचार्यता सम्पादन के अर्थ में हुआ है जिसका तात्पर्य यह है कि विद्यार्थी के उपनयन संस्कारपूर्वक पढ़ाने से वह पुरुष उसका आचार्य हो सकता है, क्योंकि उपनयन और अध्यापन (पढ़ाना) ये दोनो एक ही पुरुष के कर्त्तव्य प्रतीत होते हैं। अतः जिसको गुरु (आचार्य) बनने की इच्छा होवे वही शिष्य का उपनयन संस्कार और अध्यापन कर सकता है और भी बात है कि अध्ययन (पढ़ना) नित्य कर्म है, क्योंकि उसके न करने से मनुस्मृति में यह दोष लिखा है कि जो ब्राह्मण वेदों को न पढ़कर दूसरे विषय में परिश्रम करता है वह जीता ही सपरिवार शूद्र सदृश हो जाता है और नित्य कर्मों के ही न करने में दोष हुआ करता है, क्योंकि उनका लक्षण ही यही है कि जिनके न करने में दोष होवे। परन्तु अध्यापन तो नित्य नहीं है, क्योंकि उसे कामना रहने पर ही कर सकते हैं।

इससे सिद्ध हो गया कि ब्राह्मण के लिये अध्ययन (पढ़ना), यजन (यज्ञ) और दान ही धर्म हैं। उन्हीं का करने वाला श्रेष्ठ समझा जा सकता है। प्रतिग्रह, याजन (यज्ञ करवाने) और अध्यापन (पढ़ाने) के लिये शास्त्रों की आज्ञायें तो नहीं हैं, हाँ, जो चाहे वह जीविका के लिये उन्हें उस दशा में कर सकता है जब अन्य कृषि आदि उपाय न हों। इसी से वैसा करने से उत्तम न होकर मध्यम या कनिष्ठ (हीन) ही हो सकता है, जैसा विदित हो गया और होगा भी कि उनमें प्रायश्चित वगैरह के बखेड़े लगे हुए हैं, जिनका कर सकना प्रायः सब प्रतिग्राहियों के लिये असम्भव है। और यह भी विदित हो गया कि इन्हीं प्रतिग्रह आदि तीन कर्मों के न करने और करने से दो प्रकार के ब्राह्मण सृष्टि काल से ही चले आते हैं, एक निवृत्त और दूसरे प्रवृत्त, अथवा अयाचक और याचक। क्योंकि **'रुचीनां वैचित्र्यात्'** अर्थात् 'सबकी रुचि एक प्रकार की नहीं हो सकती, इस नियम के अनुसार बहुत से विचारशील और शास्त्र तत्त्व के जानने वाले पुरुष पुरोहिती और प्रतिग्रह वगैरह से अलग होने लगे, जैसी इच्छा प्रथमतः वशिष्ठ और विश्वरूपजी ने भी प्रकट की थी और अब तक भी अलग होते जाते हैं, जिन अयाचकों में ही पश्चिमा, भूमिहार, त्यागी, जमींदार आदि ब्राह्मणों को भी समझना चाहिए। इसके विपरीत बहुत से ब्राह्मण विचार और शास्त्र से काम न लेकर लोभ और आलस्य वश उन्हीं पुरोहिती और प्रतिग्रह वगैरह कर्मों में प्रवृत्त हो गये और हो रहे हैं, जिसमें से ही आजकल के भिक्षुक याचक या पुरोहित दलवाले ब्राह्मण हैं। इसका विशेष विवरण आगे के प्रकरणों में मिलेगा।

(२) ब्राह्मण धर्म

(ख) जीविकार्थक–अब प्रसंगवश इस विषय का विचार करना हम उचित समझते हैं कि ब्राह्मण किस जीविका को किस दशा में कर सकता है और साधारणतः कौन-कौन-सी जीविकायें श्रेष्ठ हैं।

यहां इस बात के स्मरण रखने से प्रकृत विषय के समझने में सुगमता होगी कि मनुष्य मात्र के, अतएव ब्राह्मण के भी, सभी धर्म दो प्रकार के होते हैं, एक आपत्कालिक और दूसरा अनापत्कालिक। इसका तात्पर्य यह है कि कुछ धर्म ऐसे होते हैं जिन्हें मनुष्य उसी दशा में

कर सकते हैं जब दूसरा कोई उचित उपाय न मिले, अर्थात् उनके किये बिना किसी प्रकार काम न चल सके। जैसे, यद्यपि सन्ध्या करने के लिये स्नान आदि का करना आवश्यक है, तथापि, रोगावस्था में बिना जल स्नान के भी सन्ध्या का करना आपत्कालिक धर्म है। दूसरे प्रकार के धर्म वे हैं जो बिना किसी रोक-टोक, दबाव या शर्त के ही सर्वदा किये जा सकते हैं, जैसे अध्ययन (पढ़ना) या सन्ध्यानुष्ठान वगैरह। इन्हें अनापत्कालिक धर्म कहते हैं। बस, इसी तरह जीविका के लिये भी जिन उपायों को शास्त्रों में बताया है, उनके भी आपत्कालिक और अनापत्कालिक ये दो विभाग किये गये हैं, जो सर्वमान्य मनु भगवान द्वारा मनुस्मृति के चतुर्थ और दशम अध्यायों में क्रमशः सुस्पष्ट रीति से वर्णित हैं। वे चतुर्थ अध्याय के प्रारम्भ मे ही लिखते हैं कि–

चतुर्थमायुषोभागमुषित्वाऽऽद्यं गुरौ द्विजः।
द्वितीयमायुषोभागंकृतदारो गृहे वसेत्॥ १॥
अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः।
या वृत्तिस्तां समास्थायविप्रोजीवेदनापदि॥ २॥

जिसका अर्थ यह है कि ब्राह्मण अपनी सम्पूर्ण आयु का प्रथम चतुर्थांश ब्रह्मचर्य आश्रम द्वारा गुरु के पास बिताकर द्वितीय चतुर्थांश में विवाह करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे और ऐसी दशा में जब उसके ऊपर किसी प्रकार की आपत्ति या दबाव न होवे, अर्थात् अनापत्काल में (जैसा ऊपर दिखला चुके हैं) ऐसे-ऐसे उपायों द्वारा जीविका करे जिनसे अन्य प्राणियों को या तो पीड़ा ही न होवे, या होवे भी तो बहुत थोड़ी। क्योंकि शिल और उञ्छ आदि में भी प्राणियों की पीड़ा अनिवार्य है। फिर लिखते हैं कि–

यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं स्वैः कर्मभिरगर्हितैः।
अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसंचयम्॥ ३॥

अर्थात् शरीर यात्रा के लिये ऐसे विहित उपायों द्वारा धन एकत्र करे जिनसे बहुत क्लेश न होवे, (क्योंकि प्रतिग्रह आदि लेने में प्रायश्चित्त करने पड़ते हैं, जिनसे शारीरिक क्लेश होता है और अपने हाथों से ही हल जोतने में भी) और जिनका धर्म शास्त्रों में निषेध न होवे, (क्योंकि अपने हाथों हल जोत कर कृषि करने और प्रतिग्रह इत्यादि का निषेध है। जैसा विदित होगा)। प्रथम दो श्लोकों में जिन उपायों का सामान्य रूप से वर्णन किया है उन्हीं को मनु भगवान इन अगले श्लोकों में विशेष रूप से गिनाते हैं। जैसा–

ऋतामृताभ्यां जीवेत्तु मृतेन प्रमृतेन वा।
सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्त्या कदाचन॥४॥

अर्थ यह है कि 'अनापत्काल में ब्राह्मण ऋत, अमृत, मृत, प्रमृत और सत्यानृत नामक उपायों द्वारा शरीर यात्रा करे, परन्तु श्व (श्वान) वृत्ति नामक जीविका का तो कभी अवलम्बन न करे।' फिर भी मनुजी ने यह विचारा कि कदाचित् ऋत आदि शब्दों के अर्थ लोग व्याकरण आदि के बल से मनमाना करने लग जावें (जैसी कुल्लूकभट्ट प्रभृति टीकाकारों ने फिर भी टांग अड़ाई है), इसलिये अगले श्लोकों में आप ही उन शब्दों के अर्थ बतलाते हुए यह सूचित करते हैं कि वे ऋत और अमृत आदि नाम वैसे ही हैं, जैसे अश्वगन्धा, शालपर्णी मण्डप, ओदनपाकी और गदहपूर्णा वगैरह नाम ओषधियों आदि के हैं, न कि यौगिक हैं अर्थात् उनके अक्षरों से अर्थ निकाले नहीं जा सकते, ऐसा करना नितान्त भूल है क्योंकि

गदहपूर्णां का यह अर्थ कभी नहीं हो सकता कि गदहों से भरी हुई, या मण्डप शब्द का अर्थ 'मांड़ पीने वाला' नहीं हो सकता। वे श्लोक ये हैं:—

ऋतमुञ्छशिलं ज्ञेयममृतं स्यादयाचितम्।
मृतं तु याचितं भैक्ष्यं प्रमृतं कर्षणं मतम्॥ ५॥
सत्यानृतं तु वाणिज्यं तेन चैवापि जीव्यते।
सेवाश्ववृत्तिराख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत्॥ ६॥

तात्पर्य यह है कि 'ऋत नाम उञ्छ और शिल वृत्तियों का है, **('उञ्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलम्'** इस वृद्ध वचन के अनुसार अन्न विक्रय के स्थान तथा खेतों में पड़ी हुई बालों और दानों के चुनने को उञ्छ और शिल कहते हैं) बिना माँगे यदि कुछ अन्न केवल भोजनार्थ मिल जावे तो उसे अमृत, भ्रमर की तरह द्वार-द्वार पर जाकर माँगने से जो मिले उसे मृत, और कृषि (खेती) को प्रमृत कहते हैं। वाणिज्य अर्थात् व्यापार और उचित सूद पर रुपये देने को सत्यानृत कहते हैं। ये सभी जीविका के उपाय ब्राह्मणों के लिये हैं। परन्तु श्व (श्वान) वृत्ति तो नौकरी का नाम है, अतः उसका परित्याग कर देना चाहिए। इन पाँच नामवाली अनापत्कालिक पांच जीविकाओं में से जिसे चाहे उसे ही ब्राह्मण जब चाहे तभी कर सकता है, इनमें से किसी के करने से उत्तम या मध्यम नहीं समझा जा सकता। क्योंकि आगे चलकर मनु भगवान ही स्पष्ट रूप से लिखते हैं :—

अतोऽन्यतमयावृत्त्या जीवंस्तु स्नातको द्विजः।
स्वर्गायुष्ययशस्यानि व्रतानीमानिधारयेत्॥ १३ अ० ४॥

अर्थात् 'इसलिये गृहस्थ ब्राह्मण पूर्वोक्त पाँच जीविकाओं में से मन चाहे जिसे करता हुआ (क्योंकि इस श्लोक में 'अन्यतम' शब्द का प्रयोग है, जो ऐसी जगह बोला जाता है जहाँ बहुत सी बराबर वस्तुओं में से जिसे दिल चाहे उसे स्वीकार कर सकें । हिन्दी में इसकी जगह 'इनमें कोई' बोला जाता है) स्वर्ग, आयु और यश को देने वाले आगे कहे गये व्रतों का पालन करे।' हाँ इतनी बात तो अवश्य है कि जो प्राचीन महर्षियों (क्योंकि ऋषि भी संन्यासी न थे, प्रत्युत गृहस्थ ही थे, कारण सन्तान वाले थे) की तरह उपराम रहना पसन्द करें, एवं अहर्निश शास्त्रचिंता तथा अरण्य निवास को ही रुचिकर और सुखद समझें, उनके लिये उस दृष्टि से शिल, उञ्छ आदि ही श्रेयस्कर (कल्याण साधक या उत्तम) हो सकते हैं, यह दूसरी बात है। परन्तु जो संसार में प्रवृत्त हैं, उनके लिये तो सभी बराबर हो सकते हैं और हैं भी।

यहाँ इतना और समझ लेना चाहिए कि प्रवृत्ति वाले जो ब्राह्मण कृषि, वाणिज्य आदि करते हैं और जो निवृत्ति वाले केवल उञ्छ, शिल वगैरह करते हैं उन दोनों में से किसी अंश को लेकर प्रथम श्रेणी के श्रेष्ठ हैं और किसी अंश में द्वितीय श्रेणी के। परन्तु प्रवृत्ति वाले होकर भी केवल शिल, उञ्छ करने वाले तो किसी गिनती में नहीं हैं। इसीलिये भगवान मनु ने चतुर्थ अध्याय में ही लिखा है कि—

कुसूलधान्यको वा स्यात् कुम्भीधान्यक एव वा।
त्र्यहैहिको वापि भवेदश्वस्तनिक एव वा॥ ७॥
चतुर्णामपि चैतेषां द्विजानां गृहमेधिनाम्।
ज्यायान्परः परो ज्ञेयो धर्मतो लोकजित्तमः॥ ८॥

याज्ञवल्क्य स्मृति के आचाराध्याय में लिखा है कि—

कुसूलःकुम्भोधान्यो वा त्र्याहिकोऽश्वस्तनोऽपि वा।
जीवेद्वापि शिलोञ्छेन श्रेयानेषां परः परः॥ १२८॥

सब वाक्यों का तात्पर्य यह है कि गृहस्थ ब्राह्मण चार प्रकार के होते हैं, कोई तीन वर्षों तक के लिये बड़े-बड़े कोठों में अन्न एकत्रित रखते हैं, कोई बारह या छह मासों के लिये, कोई तीन दिनों के ही लिये और कोई एक दिन के लिये भी नहीं। इन चारों में से जो एक दूसरे से परे हैं वे श्रेष्ठ हैं। क्योंकि वे धर्म द्वारा स्वर्ग आदि लोकों या ब्रह्मलोक को प्राप्त कर सकते हैं। इसके दो अभिप्राय हैं। एक तो यह है कि ७वें श्लोक में गिनाए हुए ब्राह्मणों के प्रकार ८वें श्लोक की अपेक्षा ज्यों-ज्यों दूर होते गये हैं त्यों-त्यों श्रेष्ठ हैं। अर्थात् एक दिन के लिये भी न रखने वाले से तीन दिन के लिये अन्न रखने वाले श्रेष्ठ हैं; उनसे छह मास वाले और उनसे भी तीन वर्ष वाले। क्योंकि जिसके पास जितना ही अधिक धन होगा वह उतना ही दान और यज्ञ वगैरह अधिक करके स्वर्ग आदि लोकों में जावेगा, तथा ज्योतिष्टोम आदि विशाल यज्ञों द्वारा भी वही उन विलक्षण-विलक्षण लोंको को प्राप्त कर सकेगा। क्योंकि लिखा है कि—

त्रैवार्षिकाधिकान्नो यः स हि सोमं पिबेद्द्विजः।
प्राक्सौमिकीः क्रियाः कुर्याद्यस्यान्नं वार्षिकंभवेत्॥ १२४ या०॥
यस्य त्रैवार्षिकं भक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये।
अधिकं वापि विद्येत स सोमं पातुमर्हति॥ ७॥ म. अ. ११
त्रैवार्षिकाधिकान्नस्तुपिबेत्सोममतन्द्रितः॥ १६॥ शं. अ. ५

जिसका अर्थ यह है कि जिस ब्राह्मण के पास तीन वर्षों या उससे अधिक तक के लिये भोजन वगैरह के सामान अन्न आदि होवें वह ज्योतिष्टोम यज्ञ करे। परन्तु जिसके पास एक ही वर्ष के लिये हों वह केवल अग्निहोत्र तथा दर्शपूर्ण मास आदि कर्म करे। यही अर्थ दूसरे और तीसरे महर्षि वचन रूप श्लोकों का भी है। दर्शपूर्णमास या ज्योतिष्टोम याग करने से स्वर्ग आदि लोकों की प्राप्ति होती है, इस बात में बहुत-सी स्मृतियाँ और दर्श पूर्णमासाभ्यां स्वर्ग कामो यजेत् 'ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत्' अर्थात् स्वर्ग की इच्छा करने वाला पुरुष दर्शपूर्णमास और ज्योतिष्टोम यज्ञ करे इत्यादि श्रुतियाँ भी प्रमाण हैं। इस प्रकार से बहुत धनी कृषि और वाणिज्य आदि करने वाला गृहस्थ ब्राह्मण ही उत्तम हुआ।

दूसरा अभिप्राय उन पूर्वोक्त वाक्यों का यह है कि जो एक के बाद दूसरे उस श्लोक में लिखे हुए हैं वे क्रमशः श्रेष्ठ हैं। अर्थात् तीन वर्ष वालों से छह मास वाले, उनसे तीन दिन वाले और उनसे भी, जिनके पास एक दिन के लिये भी अन्न वगैरह नहीं हैं वे श्रेष्ठ हैं। इसी अर्थ को कुल्लूकभट्ट नामक टीकाकार ने पसन्द किया है। परन्तु जब उनके ऊपर यह संकट आ पड़ा है कि ऐसे लोग उन स्वर्ग आदि लोकों को कैसे प्राप्त कर सकते हैं जिनके प्राप्त करने से ही मनुजी ने इन्हें उत्तम बतलाया है ? क्योंकि आप जिन्हें श्रेष्ठ बताते हैं वे तो क्रमशः बिल्कुल ही धनहीन हैं। तो उन्होंने कहीं से कुछ प्रमाण न देकर (जैसा पूर्व के अर्थ में स्वयं मनुजी के वचन ही प्रमाण स्वरूप दिखलाये गये हैं और अन्य ऋषियों के भी) वहाँ केवल इतना लिख दिया है कि **'वृत्तिसंकोचधर्मेण स्वर्गादिलोकजित्तमो भवति'।** जिसका भाव यह है कि 'वह जीविका के संकोच रूप धर्म के बल से स्वर्ग आदि लोकों को प्राप्त कर सकता है'।

परन्तु इतने से तो काम चल सकेगा नहीं; क्योंकि केवल भीख माँगने से स्वर्ग मिलता है इस बात में तो भगवान मनु तथा अन्य महर्षियों की सम्मति कहीं नहीं पाई जाती। इसीलिये यह दूसरे अभिप्राय वाला पक्ष दुर्बल और प्रथम ही पक्ष प्रबल अथवा ठीक है। यदि दूसरे अभिप्राय को भी मानने में आग्रह होवे तो केवल कुल्लूकभट्ट के कथन से काम न चलेगा। हाँ, इतना अवश्य होगा कि जब जीविका का सङ्कोच होते-होते ब्राह्मण चतुर्थ प्रकार का हो जावेगा, अर्थात् उसके पास एक दिन के लिये भी भोजन आदि का सामान न रहेगा, तो जैसा छान्दोग्योपनिषद् के पंचम प्रपाठक के ९वें खण्ड में लिखा है कि :–

तद्यइत्थं विदुर्येचेमेऽरण्ये श्रद्धातप इत्युपासते,
तेऽर्चिषमभिसम्भवन्ति... ब्रह्मगमयति इत्यादि ॥

जिसका भावार्थ यह है कि 'जो गृहस्थ शास्त्राभ्यासी और पूर्वोक्त पञ्चाग्नि विद्या के उपासक होते हैं, तथा जो वानप्रस्थ एवं ब्रह्मचारी आदि जंगलों में श्रद्धापूर्वक तप करते हैं, वे अर्चिरादि मार्ग (उत्तरायण) द्वारा क्रमशः ब्रह्मलोक में जाते हैं।'

अथवा जैसा शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि **'स घृतकुल्या पितृंस्तर्पयति'** इत्यादि। अर्थात् 'नियम पूर्वक प्रतिदिन वेदादि का अभ्यास करने वाला सभी कर्मों के फल प्राप्त कर लेता है,' इसके अनुसार वही प्रथम प्रकार का ब्राह्मण ब्रह्मलोकादि प्राप्त कर सकता है, न कि दूसरे और तीसरे भी। इसीलिये यद्यपि इस द्वितीय अभिप्राय के वर्णन में मनुजी के भाव का संकोच अवश्य होता है तथापि हम इस अभिप्राय को भी स्वीकार कर लेने में कोई बाधा उपस्थित नहीं करते। अतः सिद्ध हो गया कि कृषि आदि के करने वाले भी ब्राह्मण न करने वालों से किसी प्रकार से हीन नहीं हैं। किन्तु दोनों समान हैं। उञ्छ, शिल आदि करने वाले विशेष रूप से शास्त्राभ्यास और उसके द्वारा उत्तम-उत्तम फल प्राप्त कर सकते हैं यह दूसरी बात है। एतावता वह जीविका मन्वादि महर्षियों की दृष्टि में मध्यम नहीं है।

जब यह विचार उठा कि पूर्वोक्त चतुर्विध ब्राह्मण किन-किन उपायों द्वारा अन्न संग्रह कर सकते हैं, तो मनुजी स्वयं उत्तर देते हैं कि :–

षट्कर्मैको भवत्येषां त्रिभिरन्यः प्रवर्त्तते।
द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रेण जीवति॥ ९॥

इसका अर्थ मेधातिथि ने ऐसा लिखा है कि :–

कुसूलधान्यादीनां मध्यादेकः कुसूलधान्यकः प्रकृतैरुञ्छशिलायाचितयाचितकृषिवाणिज्यैः षट्कर्मा भवति षड्भिर्जीवति। अन्योद्वितीयः कुम्भीधान्यकः कृषिवाणिज्ययोर्निन्दितत्वात् तत्त्याग उञ्छ शिलायाचितयाचितानां मध्यादिच्छातास्त्रभिर्वर्त्तते॥। एकस्त्र्यहैहिको याचित लाभं विहायोञ्छशिलायाचितानां मध्यादिच्छया द्वाभ्यां वर्त्तते। चतुर्थः पुनरश्वस्तनिको ब्रह्मसत्रेण जीवति। ब्रह्मसत्रंशिलोञ्छयोरन्यतरावृत्तिर्ब्रह्मणोब्राह्मण्स्यसततभवत्वात्सत्रम्।

इसका मर्मानुवाद यह है कि **'कुसूलधान्यादि संज्ञक** चार प्रकार के ब्राह्मणों में से कुसूलधान्यक पूर्वोक्त उञ्छ, शिल, अयाचित, याचित, कृषि और वाणिज्य से जीविका करता हुआ षट्कर्मा कहलाता है। कुम्भी धान्यक कृषि और वाणिज्य को छोड़कर शेष चार में से तीन ही करता है, क्योंकि अपने हाथों उनके करने का निषेध है (और अन्य द्वारा करवाने में पराधीनता होती और द्रव्य व्यय होता है) जैसा आगे विदित होगा। तीसरा त्र्यहैहिक नाम वाला याचित को अच्छा न समझ अवशिष्ट तीन में से दो ही करता है और अश्वस्तनिक

नाम का तो केवल शिल अथवा उञ्छ करता है, जिनका नाम ब्रह्मसूय है, क्योंकि वे ब्रह्म अर्थात् ब्राह्मण के लिये सतत (सदा) होते हैं। यह मेधातिथि का ही अर्थ यहाँ उचित है। क्योंकि इस श्लोक के अन्त में जब उनके मत से शिल, उञ्छ का वर्णन आया है, तभी अगले श्लोक के साथ सङ्गति (सम्बन्ध) भी होती है। कारण, उस श्लोक में भी शिल, उञ्छ का नाम लेते हुए उसके साथ कुछ विशेष बातें कही गई हैं, जैसाः–

वर्तयंश्च शिलोञ्छाभ्यामग्निहोत्रपरायणः।
इष्टीः पार्वायानान्तीयाः केवला निर्वपेत्सदा॥

जिसका अर्थ यह है कि 'शिल, उञ्छ वाले के पास बहुत धन न होने से वह बड़े-बड़े यज्ञ नहीं कर सकता। इसलिये वह केवल अग्निहोत्र और दर्शपूर्णमास तथा आग्रायण यज्ञ करे।'

'पूर्वोक्त षट्कर्मैको' इत्यादि श्लोक के अर्थ में कुल्लूकभट्ट ने जो याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह का नाम लिया है वह उनका अकांडतांडव मात्र है। क्योंकि याजन आदि का तो चतुर्थ अध्याय में प्रसङ्ग ही नहीं है। उनकी यह आशा कि 'अद्रोहेणैव' इत्यादि श्लोक से इनकी सिद्धि हो सकती है, निराशा मात्र है। क्योंकि वे कहते हैं कि इस 'अद्रोहेणैव' श्लोक में याजन आदि का भी सामान्य रूप से संग्रह है। यदि ऐसी बात न होती और आगे कही हुई मात्र जीविकाओं का सामान्य रूप से इस श्लोक में कथन होता तो फिर इस श्लोक की आवश्यकता ही क्या थी ? परन्तु विचारने की बात तो यह है कि यदि इस युक्ति से इस श्लोक से ऋत आदि से भिन्न याजन आदि की सिद्धि मानी जावे तो इससे अगले 'यात्रामात्र प्रसिद्ध्यर्थं' इस श्लोक से भी किसी और जीविका की सिद्धि होनी चाहिये। परन्तु इस श्लोक में तो वे भी यही मानते हैं कि आगे कहे हुए उपायों का साधारण रूप से कथन है।

अतएव टीका में आप ही लिखते हैं कि **'कैःकर्मभिरित्यत्राहऋतामृताभ्यामिति।'** अर्थात् पूर्व श्लोकों में जो 'कर्मभिः' यह पद पढ़ा है उससे किन-किन कर्मों को लेना चाहिए इस तात्पर्य से मनुजी 'ऋतामृताभ्यां' यह अलग श्लोक पढ़ते हैं। इससे स्पष्ट है कि 'अद्रोहेणैव' इस श्लोक में भी केवल ऋत आदि का सामान्य रूप से कथन करते हुए यह शिक्षा दी गई है कि प्राणियों की पीड़ा का ध्यान सर्वदा रखना चाहिए और 'यात्रामात्र' इस श्लोक में 'अगर्हितैः' यह विशेषण देकर निन्दित अर्थात् अपने हाथों हल जोतकर खेती करने आदि को मना किया है। बस, इतनी विशेषता इन दोनों श्लोकों के पृथक बनाने में है। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि शास्त्रकारों का यह नियम सर्वदा रहता है कि प्रथम सामान्य रूप से वस्तु को कहते हैं, फिर विशेष रूप से। क्योंकि सामान्य ज्ञान बिना उसकी विशेषता की जिज्ञासा ही नहीं होती। जो आम को ही नहीं जानता वह कभी यह प्रश्न नहीं कर सकता कि वे कितने प्रकार के होते हैं। इसीलिये सृष्टि प्रकरण में प्रथम सामान्य रूप से यह कह दिया है कि,

मां वितास्य सर्वस्यस्रष्टारं द्विजसत्तमाः। १अ० ३३ म.।

अर्थात् 'मुझे इस सम्पूर्ण सृष्टि का कर्ता जानो'। फिर उसी बात को विशेष रूप से कहने लगे कि **'अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु'** इत्यादि। अर्थात् 'मैं सृष्टि की इच्छा से' इत्यादि। इसी प्रकार से न्याय आदि दर्शनों में प्रथम द्रव्य, गुण आदि पदार्थों को सामान्य रूप से कहकर फिर द्रव्य आदि के विशेष पृथ्वी और जल आदि को कहा है, न कि प्रथम सामान्यतया द्रव्य कहने

से पृथ्वी आदि से भिन्न ही कोई वस्तु समझी जाती है।

दूसरी बात यह है कि अध्यापन आदि आपद्धर्म हैं। क्योंकि मनुस्मृति में दो ही जगह इनके नाम आये हैं, प्रथम और दशम अध्यायों में। उनमें भी प्रथम अध्याय में तो उनके करने की आज्ञा नहीं है, किन्तु उत्पत्ति प्रकरण होने से उनकी उत्पत्ति मात्र लिख दी गई है। इसीलिये आज्ञा वाचक शब्द का प्रयोग भी नहीं है, किन्तु केवल उनको उत्पन्न कर दिया ऐसा लिखा है। जैसा,

अध्यापनमध्ययनं याजनं यजनं तथा।

दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ १।८८ ॥

अर्थात् 'अध्यापन आदि षट्कर्मों को उत्पन्न कर दिया।' यही बात इस श्लोक की टीका में कुल्लूकभट्ट ने भी लिखी है, जैसा–

अध्यापनादीनामिह सृष्टिप्रकरणेसृष्टिविशेषतया

ऽभिधानं विधिस्तेषामुत्तरत्र भविष्यति ॥

अर्थात् इस सृष्टि प्रकरण में सृष्टि विशेष होने से ही अध्यापन आदि का कथन किया गया है, उनके करने की विधि तो आगे चल कर दसवें अध्याय में होगी। पुनः दशम अध्याय आपद्धर्म प्रकरण में इनके नाम लिये हैं और वहाँ पूर्व के ही श्लोक में आज्ञा दे दी है कि,

ते सम्यगुपजीवेयुः षट्कर्माणि यथाक्रमम् ।१०।७४।

अर्थात् वे ब्राह्मण आगे कहे हुये षट्कर्मों द्वारा जीवें। तदनन्तर ७५वें श्लोक में उन कर्मों के गिना लेने पर जब यह शङ्का हुई कि यज्ञ, अध्ययन और दान ये तीन क्योंकर जीविकाएँ हो सकती हैं? क्या इन्हें भी आपत्ति काल में ही करना चाहिए? तो 'षण्णांतुकर्मणामस्य' इस ७६ वें श्लोक में दिखला दिया कि तीन ही कर्म जीविकाएँ हैं और उन्हें ही आपत्काल में करना चाहिए। शेष तीन तो धर्मार्थक कर्म नित्य के हैं (जैसा प्रथम ही कह चुके हैं)। परन्तु जब उत्पत्ति प्रकरण में इन छहों को साथ ही इसी श्लोक में पढ़ दिए था, अतः उसी श्लोक को यहाँ भी पढ़ मात्र दिया है, न कि छहों को ही आपत्ति काल में करने में तात्पर्य है। इसके अतिरिक्त चौथे ही अध्याय में मनु भगवान लिखते हैं कि :–

राजतो धनमन्विच्छेत् संसीदन् स्नातकः क्षुधा।

याज्यान्तेवासिनोर्वापि न त्वन्यत इतिस्थितिः ॥३३॥

अर्थ यह है कि 'जब ब्राह्मण क्षुधातुर होवे तभी राजा के धन का प्रतिग्रह करे अथवा पढ़ा और यज्ञ कराकर जीविका (धनप्राप्ति) करे और आपत्ति काल में भी जब तक इन तीन उपायों से धन प्राप्त कर सके तब तक अन्यों से न करे।' यद्यपि चतुर्थ अध्याय आपद्धर्मों का प्रकरण नहीं है तथापि, इस श्लोक का तो स्पष्ट रूप से ऐसा ही अर्थ है, और यह स्नातक के व्रत का प्रकरण था, इसलिये व्रत के अन्तर्गत होने से यह बात भी यहाँ कहनी पड़ी। इसीलिये अगले श्लोक में स्पष्ट कह देते हैं कि यह आपद्धर्म है। क्योंकि लिखते हैं कि,

न सीदेत् स्नातको विप्रः क्षुधा शक्तः कथंचन।

न जीर्णमलवद्वासा भवेच्च विभवे सति ॥ ३४ ॥

अर्थात् जब तक सामर्थ्य रहे तब तक गृहस्थ ब्राह्मण भूखों न मरे और धन रहने पर पुराने एवं मैले वस्त्र न पहने। इसससे तो स्पष्ट ही है कि तभी भूखों मरेगा जब कोई दूसरा

उपाय न हो और जब यह बात हुई तो उसके ऊपर आपत्ति आ गई। इसलिये उस दशा में याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह से जीविका करेगा। इसी तरह जब तक इन तीनो उपायों से धन मिलेगा तब तक और उपाय न करेगा। परन्तु इनके भी न होने पर दशम अध्याय में लिख दिया है कि 'सर्वतः प्रति गृह्णीयात्' अर्थात् 'सभी से प्रतिग्रह करें' और क्षत्रिय एवं वैश्य के कर्मों को भी करने की आज्ञा दे दी गई है। इसलिये वहाँ जो अन्य का निषेध किया है वह तीन उपायों के होने की ही दशा में है, न कि सदा के लिये। अतः 'सर्वतः प्रतिगृह्णीयात्' के साथ इसका कोई विरोध नहीं है।

इसके अतिरिक्त अध्याय के अन्त में भी लिखा है कि,

एते चतुर्णां वर्णानामापद्धर्माः प्रकीर्त्तिताः।

यान् सम्यगनुतिष्ठन्तो व्रजन्ति परमां गतिम् ॥ १०।१३०

जिसका तात्पर्य यह है कि इस अध्याय में पूर्वोक्त चारो वर्णों के आपद्धर्म कहे गए हैं, जिनको अच्छी तरह से करने वाले ज्ञान द्वारा मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। यदि मनुजी को यह विदित होता कि अध्यापन आदि अनापत्तिकाल के धर्म हैं, तो चौथे अध्याय में इनके नाम क्यों न लेते? जैसा कृषि आदि को कहा है। इससे तो स्पष्ट ही है कि वे धर्म ब्राह्मणों के लिये आपत्तिकाल में ही हो सकते हैं। हाँ, जिन क्षत्रिय आदि के किसी धर्म को प्रथम नहीं कहा है उनके प्रजापालनादि धर्म जो दशम अध्याय में कहे गए हैं उनको यदि अनापत्तिकालिक मान लेवें और उनका यह कथन प्रसंगवश कहें तो उचित भी है। परन्तु ब्राह्मण धर्मों के विषय में यह बात नितान्त असम्भव है। क्योंकि उनके मुख्य कर्मों को चौथे अध्याय में ही कह चुके हैं। यदि प्रसंगवश यहाँ कहना भी मानें तो फिर सभी को क्यों न गिनाया? किन्तु जिन्हें कह चुके थे उन्हें कहा ही नहीं, बल्कि विलक्षण कर्मों को ही कहा। इससे इनके आपद्धर्म होने में कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। याज्ञवल्क्यजी भी इस विषय में उदासीन हैं। क्योंकि उन्होंने सामान्यतः इन धर्मों को गिना भर दिया है, उन्हें आपद् या अनापद्धर्म नहीं कहा है। प्रत्युत प्रायश्चित्ताध्याय के ३५वें श्लोक में लिखते हैं कि,

क्षात्रेण कर्मणा जीवेद्विशां वाप्यापदिद्विजः।

अर्थात् आपत्तिकाल में ब्राह्मण क्षत्रियों और वैश्यों के कर्मों द्वारा भी जीवें। इस जगह 'भी' के अर्थ में जो 'अपि' शब्द है उससे अनुक्त याजन आदि का भी समुच्चय उनको इष्ट है, जैसी रीति स्मृतियों में सर्वत्र है। अतः जब तक कृषि आदि हो सके तब तक याजन आदि से जीविका ब्राह्मण न करे। क्योंकि अनापत्तिकाल में आपत्तिकालिक जीविका का निषेध मनुजी ने ११वें अध्याय के २८ और ३० श्लोकों मे किया है। यदि हम 'तुष्यतु दुर्जन' न्याय से यह भी मान लेवें कि याजन आदि को आपत्तिकाल से भिन्न काल में भी कर सकते हैं, तो भी कृषि-वाणिज्यादि की तुलना ये कभी कर ही नहीं सकते। क्योंकि इनका निषेध मनु आदि महर्षि बहुत ही करते हैं, जैसा उनके 'अतपास्त्वनधीयानः' और 'प्रतिग्रह समर्थोऽपि' इत्यादि श्लोकों का अर्थ करते हुए दिखला चुके हैं।

'प्रतिग्रह समर्थोऽपि' श्लोक में एक और विचित्रता है। वह यह कि जो प्रतिग्रह में समर्थ भी होवे वह भी उसका नाम तक न लेवे, इस कथन से स्पष्ट है कि प्रतिग्रहादि का करना आवश्यक नहीं है। क्योंकि आवश्यक और नित्य कर्मों में सामर्थ्य नहीं देखते बल्कि उनके न करने से पातक होता है। हाँ, काम्य कर्मों में सामर्थ्य की आवश्यकता है जैसा प्रथम लिख

चुके हैं। इसलिये प्रतिग्रह करना शास्त्र प्रेरित न होकर अपनी इच्छानुसार है, चाहे करे या न करे। परन्तु यदि करे तो उससे होने वाले पापों के प्रायश्चित्त का सामर्थ्य होना चाहिए। इसलिये जो इस प्रकार के तप आदि सामर्थ्य से हीन हो वह तो इच्छा होने पर भी नहीं कर सकता। सारांश यह है कि **'प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम्'** अर्थात् कीचड़ में पाँव डालकर धोने से उसका न डालना ही उत्तम है, इस न्यायानुसार प्रतिग्रहादि का न करना ही अच्छा है। अतएव पार्थ सारथि मिश्रजी ने कुमारिल स्वामी रचित मीमांसा दर्शन वार्त्तिक की टुप्टीका की टीका तंत्ररत्न के चतुर्थाध्याय के द्वितीयाधिकरण के **'यस्मिन्प्रीतिः पुरुषस्य तस्य लिप्सार्थलक्षणा'** इस सूत्र में लिखा है कि, **किमिदानीं प्रतिग्रहः प्रत्यवायक्षयकरः? यद्ये वमजस्रमेव यथाशक्ति प्रतिग्रहीतव्यं स्यात्, तन्न, प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसंगं तत्र वर्जयेदितिप्रतिषेधात्, तेन दायशिलोञ्छायाचिताभावे यथा कथंचिद् द्रव्योपादानेऽवश्यम्भाविनि प्राप्ते प्रतिग्रहादिनैव कुर्वतोऽदृष्टसिद्धिरिति कल्प्यते।'**

जिसका भावार्थ यह है। इस ग्रन्थ में प्रथम यह विचार हो चुका है कि जैसे सन्ध्यादि के न करने से जो पाप होते हैं वे उनके करने से होते ही नहीं हैं। उसी तरह से अन्य अविहित उपायों से द्रव्यार्जन में जो पाप हो सकते हैं वे प्रतिग्रहादि करने से उत्पन्न ही नहीं होते। इसी पर यह शंका उठी कि तो क्या अब प्रतिग्रह को पाप का नाशक समझना चाहिए? यदि ऐसी बात होवे तो नित्य जहाँ तक हो सके अवश्य प्रतिग्रह करना चाहिए। इसका उत्तर देते हैं कि यह बात नहीं है, क्योंकि **'प्रतिग्रहसमर्थोऽपि'** इस वाक्य द्वारा मनुजी ने उसका निषेध किया है। इसलिये पूर्व कथन का तात्पर्य यह है कि जब ऐसी आपत्ति का समय आ जावे कि दायभाग (पितादि की जमींदारी या धन आदि), शिल, उञ्छ और अयाचितादि कोई उपाय धनप्राप्ति का हो न सके और किसी प्रकार से धनार्जन अत्यन्तावश्यक होवे तो यदि प्रतिग्रहादि द्वारा प्राप्त किया जावे तभी उससे यज्ञादि करने से अदृष्ट (पुण्य) हो सकता है। क्या इस कथन से यह स्पष्ट नहीं है कि प्रतिग्रहादि नहीं करने चाहिए, क्योंकि वे आपत्तिकाल के धर्म हैं इत्यादि? इस विषय में गौतम स्मृति और मिताक्षराकार की सम्मति प्रथम ही दिखला चुके हैं। याज्ञवल्क्य स्मृति आचाराध्याय में लिखा है कि—

विद्यातपोभ्यां हीनेन नतु ग्राह्यः प्रतिग्रहः।
गृह्णन्प्रदातारमधो नयत्यात्मानमेव च॥ २०२॥
प्रतिग्रहसमर्थोऽपि नादत्ते यः प्रतिग्रहम्।
ये लोकादानशीलानांसतानाप्नोतिपुष्कलान्॥२१३॥

अर्थ यह है कि 'जो विद्या और तप से रहित होवे वह कभी न प्रतिग्रह करे, क्योंकि ऐसा करने से अपने आप और दाता दोनों को नरक में ले जाता है। जो प्रतिग्रह करने में सामर्थ्यवान् होकर भी उसे नहीं करता वह उन बड़े-बड़े लोकों में जाता है जिनमें दान देने वाले जाया करते हैं।' इसका तात्पर्य स्पष्ट ही है। लघुविष्णु स्मृति में लिखा है कि :—

प्रतिग्रहं न गृह्णीयात्परेषांकिंचिदात्मवान्।
दाता चैव भवेन्नित्यं श्रद्धधानः प्रियंवदः॥८॥अ०३॥

अर्थात् 'विचारशील और आत्मज्ञानी किसी का प्रतिग्रह न करे और प्रिय वचन तथा श्रद्धापूर्वक दूसरों को नित्य ही कुछ देवे।' अत्रिस्मृति में भी यही लिखा है कि :—

पावका इव दीप्यन्ते जपहोमैर्द्विजोत्तमाः॥
प्रतिग्रहेण नश्यन्ति वारिणा इव पावकः॥१४१॥
तान्प्रतिग्रहजान्दोषान्प्राणायामैर्द्विजोत्तमाः।
नाशयन्ति हि विद्वांसो वायुर्मेघानिवाम्बरे॥१४२॥

भावार्थ यह है कि श्रेष्ठ ब्राह्मण जप और अग्निहोत्रादि करने से अग्निवत् तेजस्वी हुआ करते हैं। परन्तु प्रतिग्रह से ऐसे ही निस्तेज हो जाते हैं जैसे पानी से अग्नि। इसलिये कदाचित् प्रतिग्रह कर लेने से जो पाप हो जाते हैं उनका नाश प्राणायाम द्वारा विद्वान ब्राह्मण ऐसे ही कर डालते हैं जैसे प्रचण्ड वायु आकाश में रहने वाले बादलों का नाश कर देता है। श्रीमद्भागवत में भी प्रसंगवश ११वें स्कन्ध के १७वें अध्याय में लिखा है कि,

प्रतिग्रहं मन्यमानस्तपस्तेजोयशोनुदम्।
अन्याभ्यामेवजीवेतशिलैर्वादोषदृक्तयोः॥ ४१॥
सीदन्विप्रोवणिग्वृत्त्यापण्यैरेवापदं तरेत्।
खड्गेनवापदामन्तो नश्ववृत्त्या कदाचन॥४७॥

जिसका अर्थ यह है कि आपत्ति काल में भी प्रतिग्रह को तप, तेज और यश का नाशक समझ ब्राह्मण याजन और अध्यापन से ही जीविका करे, अथवा उनको भी दुष्ट समझ कर शिल आदि वृत्तियों से ही शरीर यात्रा करे और वाणिज्यवृत्ति से पदार्थों को बेचकर क्षत्रिय धर्म से तलवार लेकर अर्थात् युद्ध करके भी जीविका करे, परन्तु नौकरी कभी न करे।' जब विश्वरूप को देवताओ ने बृहस्पति के रुष्ट होने पर अपनी पुरोहिती करने को कहा तो उन्होंने बहुत ही निन्दा की और कहा कि—

अकिंचनानां हि धनं शिलोञ्छनं तेनेह निर्वर्त्तत साधुसत्क्रियः। कथम् विगर्ह्यं तु करोम्यधीश्वराः पौरोधसं हृष्यति येन दुर्मतिः॥

श्रीमद्भागवत ।६।७।३६

अर्थ यह है कि हे देवगण! दरिद्र ब्राह्मण के भी धन शिल और उञ्छादि ही हैं, जिनसे मैं अच्छी तरह से अपने शरीर का निर्वाह करता हूँ, इसलिये पुरोहिती क्यों करूँ? क्योंकि उससे तो केवल मूर्ख लोग प्रसन्न होते हैं। अध्यात्म रामायण के अयोध्याकाण्ड में वसिष्ठजी ने रामजी के प्रति कहा है कि **'पौरोहित्यमहं जानेविगर्ह्यं दूष्यजीवनम्। २।२८।** जिसका अर्थ यह है कि मैं पुरोहिती को धर्मशास्त्रनिन्दित और जीवन को दूषित करने वाली समझता हूँ। जिसको गोस्वामी तुलसीदासजी ने स्पष्ट कर दिया है कि **'उपरोहिती कर्म अति मन्दा। वेद पुराण स्मृति कर निन्दा॥** वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के छठे सर्ग में अयोध्यावासी तथा रामराज्यवासी ब्राह्मणों के आचारों का वर्णन करते हुए महर्षि लिखते हैं कि—

स्वकर्मनिरतानित्यं ब्राह्मणाविजितेन्द्रियाः।
दानाध्ययन शीलाश्च संयताश्च प्रतिग्रहे॥

जिसका अर्थ यह है कि जितेन्द्रिय ब्राह्मण अपने-अपने धर्मों में सदा स्थित होकर दान और अध्ययनादि करते और प्रतिग्रह नहीं लेते हैं। इसीलिये मनुजी ने दशमाध्यय में लिखा है कि---

प्रतिग्रहाद्याजनाद्वा तथैवाध्यपयनादपि ।
प्रतिग्रहः प्रत्यवरः प्रेत्य विप्रस्य गर्हितः ॥१०९॥
जपहोमैरपैत्येनो याजनाध्यापनैः कृतम् ।
प्रतिग्रहनिमित्तं तु त्यागेन तपसैव वा ॥१११॥

अर्थ यह है कि इन याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह तीनों में से प्रतिग्रह अत्यन्त ही निन्दित और परलोक मे ब्राह्मण के लिये दुःखद है। याजन और अध्यापन से जो पाप होते हैं वे जप और अग्निहोत्रादि द्वारा निवृत्त हो जाते हैं। परन्तु प्रतिग्रह के पाप तो द्रव्य के त्यागने और कृच्छादि रूप तप करने से ही निवृत्त होते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि यदि सामान्य रीति से ये शास्त्रीय धर्म होते तो जैसे शिल, उञ्छादि करने से पाप नहीं लिखा, वैसे इनके करने से भी पाप न लिखते; क्योंकि शास्त्रविहित कार्य करने में पाप हो ही नहीं सकते। यदि कोई ऐसा अनुचित आग्रह करे कि सामान्य प्रतिग्रह से होने वाले पापों का वर्णन इन श्लोकों में नहीं है, किन्तु निन्दित प्रतिग्रह की ही हीनता यहाँ दिखालाई गई हैं, तो उसको एक तो यह विचारना चाहिए कि इन श्लोकों में प्रतिग्रह मात्र लिखा है। दूसरे, जब मनुजी यह भी प्रथम अध्याय में कह चुके है कि 'विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः। अर्थात् शुद्ध प्रतिग्रह करना चाहिये। तो फिर अनुचित प्रतिग्रह का प्रसंग ही क्या? और 'प्रतिग्रहसमर्थोऽपि' इत्यादि वाक्यों द्वारा भी प्रतिग्रहों का निषेध किया है, जैसा अभी पार्थसारथि मिश्रादि की सम्मति इस विषय में दिखला चुके है। बाल्मीकि रामायण में जो उस समय ब्राह्मणों का आचार दिखलाया गया है वहाँ जब यह लिखा है कि वे अपने कर्मों में स्थित हैं, तो फिर असत् प्रतिग्रह कैसे कर सकते थे? अतः सामान्य रूप से सभी प्रकार के प्रतिग्रह वे लोग भी नहीं करते थे। मत्स्यपुराण के १११ वें अध्याय में युधिष्ठिर के प्रति कृष्णजी का उपदेश है कि :-

प्रतिग्रहादुपावृत्तः सन्तुष्टो नियतः शुचिः ।
अहंकारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥१०॥

अर्थात् जो प्रतिग्रह से रहित, सन्तोषी, नियमी, पवित्र और अभिमानशून्य होवे वह सम्पूर्ण तीर्थ-स्नानादि के फलों को प्राप्त कर लेता है । स्कन्दपुराणान्तर्गत ब्रह्म खण्ड के धर्मारण्यमाहात्म्य प्रकरण में वाडवों (ब्राह्मणों) के आचार इस प्रकार से वर्णित हैं:—

पूर्वंहिवृत्तिमस्माकंरामो दैदत्तवान् द्विजाः ।
चातुर्विद्या महासत्त्वाः स्वधर्मप्रतिपालकाः ॥१४१॥
याजनाध्यापनायुक्ताः काजेशेन विनिर्मिताः ।
दानं दत्त्वा तु रामेण उक्तं हि भवतां पुनः ॥१४२॥
स्थानं त्यक्त्वा न गंतव्यमित्यं हि नियमः कृतः ॥१४९॥
त्यक्तप्रतिग्रहाः शान्ताः सत्यव्रतपरायणाः ।
संध्यामुपासते नित्यं त्रिकालं चैकमानसाः ॥१५०॥३६॥

जिसका भावार्थ यह है कि उन्हीं ब्राह्मणों में से चारो वेदों के ज्ञाता एक ने कहा कि हे ब्राह्मणो ! रामजी ने प्रथम ही हम लोगों के लिये वृत्ति नियत कर दी है और हम लोग चारो वेदों के ज्ञाता और अपने धर्म के पालक हैं । याजन और अध्यापन नहीं करते और हम लोगों को यहाँ ब्रह्मा, विष्णु, और महेश ने स्थापित किया है इत्यादि। वहाँ रहने वाले वाडव

प्रतिग्रहादि से रहित और शान्त थे और त्रिकाल सन्ध्या एकाग्रचित होकर करते थे।

यदि हम अध्यापनादि के स्वरूपों का विचार करते हैं तो उन ब्राह्मणों का इनसे पृथक् रहना और स्मृतियों के निषेध ये दोनो बहुत उचित प्रतीत होते हैं। क्योंकि जो दान देने वाला होता है वह, जैसे बच्चे को गुड़ खिला कर कर्णच्छेद कराते हैं वैसे ही, दान द्वारा अपने पातक को द्वितीय व्यक्ति के ऊपर रखता है। या यों कहना चाहिए कि जैसे तृण खिलाकर गौ दूही जाती है वैसे ही वह दान द्वारा ब्राह्मण का तप दूह लेता है। क्योंकि जैसे प्रज्वलित अग्नि तृण का नाश कर आप शान्त होती है वैसे ही ब्राह्मण की तपरूप अग्नि दाता के पातक को भस्मीभूत करके आप भी समाप्त हो जाती है। इसलिये यदि दानग्राही तपस्वी न होगा तो दाता का दान व्यर्थ हो जावेगा और ग्रहण करने वाला तो पतित होवेगा ही, जैसा प्रथम मन्वादि के वाक्यों द्वारा दिखला चुके हैं। यदि दान अपने पातक को दूसरे के सिर मढ़ने के लिये नहीं होता है तो और किस काम के लिये होता है ? यदि ऐसा नहीं, तो ब्रह्महत्यादि का प्रतिग्रह करने में लोग डरते क्यों हैं? और जब अन्न पर ही बुद्धि निर्भर है, तो फिर जैसा अन्न होगा वैसी ही बुद्धि बनेगी, क्योंकि छान्दोग्योपनिषत् के षष्ठ प्रपाठक में लिखा है कि **'अन्नमशितं त्रेधा विधीयते यदणिष्ठं तन्मनो भवति'** अर्थात् 'भोजन किये गये अन्न के स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मतर तीन अंशों में से सूक्ष्मतर अंश से मन (बुद्धि) बनता है। इसलिये महाभारतादि ग्रन्थों में चोरी का अन्न भक्षण करने से महात्माओं की भी बुद्धियों के विकृत हो जाने का वर्णन प्रायः आया करता है। इसीलिये शिष्य अथवा यज्ञकर्त्ता अध्यापन और याजन के बदले जो दक्षिणा देगा, वह यद्यपि मजदूरी ठहरी तथापि अपनी बुद्धि पर उसका प्रभाव अवश्य आवेगा। वह अन्न या द्रव्य उसने उत्तम रीति से ही कमाया है यह कभी हो ही नहीं सकता। क्योंकि मनुष्यों की स्वभाव सिद्ध विपरीत प्रवृत्तियों का बदल जाना एकदम असम्भव है। इसलिये मनुजी ने श्राद्ध प्रकरण में,

याजयन्ति च ये पूगाँस्तौंश्च श्राद्धे न भोजयेत् ।३।१५९।
भृतकाध्यापको यस्तु भृतकाध्यापितस्तथा ॥३॥५६॥

अर्थात् 'जो बहुतों के यज्ञ कराने वाले, वेतन लेकर पढ़ाने और पढ़ने वाले हैं, उनको श्राद्ध में न खिलावें।' इन वाक्यों द्वारा ऐसों को श्राद्ध में निन्दित ठहराया है। ऐसे ही याज्ञवल्क्यादि ने भी कहा है। इसलिये याजनादि अगतिक गति और आपद्धर्म कहलाते हैं जिनका वाडवों (ब्राह्मणों) ने साम्प्रतिक पश्चिमा, त्यागी, महियाल, भूमिहार ब्राह्मणों की तरह सर्वथा परित्याग या निरादर किया था। क्योंकि जैसा आगे विदित होगा कि, वे भी इन्हीं लोगों की तरह बड़े-बड़े भूम्यधिपति (जमींदार) थे।

हाँ इस बात में कोई विवाद या शंका नहीं है कि याजन और अध्यापन ये दोनो, जैसा प्रथम 'अध्यापनं च त्रिविधं' इस श्लोक में कह चुके हैं, यदि केवल परोपकारबुद्धि से किये जावें जैसा प्राचीन ऋषि, महर्षि दयार्द्रचित्त होकर किया करते थे और किसी-किसी स्थान में आज भी देख सकते हैं, तो बहुत उत्तम और अवश्य कर्त्तव्य हैं, जिन्हें अयाचक और याचक दोनो प्रकार के ब्राह्मण करें और तद्द्वारा प्राप्त दक्षिणा न लेकर उसे भी यदि परोपकार और अनाथपालनादि में व्यय करा दिया जावे और सर्वसाधारण का जिसमें उपकार हो सके ऐसे कार्य उससे करवा दिये जावें, जैसे ब्रह्मचर्याश्रम, गोशालायें, धर्मशालायें और औषधालय आदि तो दक्षिणा सहित होने से यज्ञादि भी पूर्ण हो जावें, क्योंकि सम्भवतः लोगों की यह धारणा होवे कि भगवान कृष्ण गीता में 'मंत्रहीनमदक्षिणम्' अर्थात् 'मंत्र और दक्षिणा हीन

यज्ञ को तामस यज्ञ कहते हैं' इत्यादि वाक्यों द्वारा दक्षिणाा बिना सद्यज्ञसिद्धि का निषेध किया है, तो वह भी धारणा पूरी हो जावे और कार्य भी चला जावे जिससे करने वाले निष्कलंक ही रह जावें।

वतुतः गीता में जो यज्ञों की दक्षिणा का वर्णन है उसका तात्पर्य यह है कि सामान्य रीति से यज्ञादि में ऋत्विज वगैरह दक्षिणाा ही के लोभ से आते हैं। क्योंकि यदि यह बात न होती तो मीमांसा दर्शन के प्रथमाध्याय के तृतीय पाद के तृतीय अधिकरण में **'हेतुदर्शनाच्च'** इस सूत्र पर भाष्यकार श्रीशबरस्वामी तथा माधवाचार्य **'वैसर्जनहोमीयं वासोऽध्वर्युर्गृह्णाति'** अर्थात् 'वैसर्जनहोमसंबंधी वस्त्र को अध्वर्यु नाम का ऋत्विक् लेता है।' इस स्मृति को अप्रामाणिक ठहराते हुए यह कभी न कहते कि:--

कदाचित्कश्चिदध्वर्युर्लोभादेत द्वासो जग्राह, तन्मूलैवैषास्मृतिरित्यपि कल्पना संभवति दृष्टानुसारिणी चैषा कल्पना, दक्षिणयापरिक्रीतानामृत्विजां लोभदर्शनात् ॥

अर्थात् कभी किसी अध्वर्यु ने लोभ से इस वस्त्र को ले लिया होगा, तन्मूलक ही यह स्मृति भी बन गई होगी, यह भी कल्पना हो सकती है, और यह कल्पना प्रत्यक्षानुसारिणी भी है। क्योंकि दक्षिणा देकर लाये गये ऋत्विजों को लोभ होता रहता है। और इस अधिकरण की आवश्यकता भी न होती। इसलिये यदि यजमान के लिये यज्ञ में दक्षिणा की आज्ञा न होवे तो बेचारों की मजदूरी ही मारी जावे और धर्म के बदले वहाँ अधर्म ही होने लग जावे । इसलिये यज्ञ प्रकरण में सर्वत्र दक्षिणा पर जोर दिया गया है। परन्तु यदि यज्ञ कराने वाला धर्म प्रिय और निर्लोभ होवे, जैसा पूर्व कह चुके हैं, तो उसके लिये दक्षिणा की कोई आवश्यकता नहीं है। हाँ, यज्ञ कराने वाला दक्षिणार्थ संग्रहीत द्रव्य का उन ऋत्विजों की अनुमति से सद्व्यय कर सकता है। इससे यह शंका भी निर्मूल हो गई कि यदि याजन आदि छोड़ दिये जावें तो फिर सब यज्ञ और अध्ययनादि का लोप ही हो जावेगा। जो कथा स्कन्द पुराण के नाम से अनादि पुरवासी ब्राह्मणों के विषय में 'ब्राह्मणोत्पत्ति मार्तण्ड' नामक ग्रन्थ में दी गई है और जिसकी सविस्तर समालोचना प्रसंगवश यदि हो सका तो आगे करेंगे, वह भी इस बात को पुष्ट कर रही है कि यज्ञ में दक्षिणादि लेने में विचारशील ब्राह्मण प्रवृत्ति न करते थे। अतएव यद्यपि दूसरे बहुत से ब्राह्मणों ने दक्षिणा सहर्ष स्वीकार की, परन्तु वाडवों (ब्राह्मणों) ने उससे साफ इनकार किया।

इस स्थान पर इस बात का ध्यान रखना भी आवश्यक होगा कि जो लोग इस बात के कहने वाले और साथ ही पांडित्य का दम भरने वाले हैं कि यदि सभी ब्राह्मण प्रतिग्रह से रहित हो जावें तो फिर दान लेने वाला कौन होगा? फलतः दान रूप धर्म का ही लोप हो जायेगा। उनको यह विचारना चाहिए कि प्रथमतः तो यह कहा ही नहीं जाता है कि कोई दान लेगा ही नहीं, बल्कि हमारा तो यह कथन है कि जो विद्या और तपोबल सम्पन्न होने से दान लेने में समर्थ होवे वह अपनी इच्छानुसार उसे ले सकता है, न कि गायत्री तक का भी नाम न जान कर धर्म भ्रष्ट और पतित शूद्रादि के प्रतिग्रह से ही पेट पालने वाला दान का कभी अधिकारी हो सकता है। हम केवल यह चाहते हैं कि पात्रापात्र के विचार बिना ही जैसी अन्धपरम्परा आज चल पड़ी है वह एकदम शास्त्रविरुद्ध होने से सर्वथा अनादरणीय है। दूसरी बात यह है कि केवल द्रव्य और अन्नादि के दान तो शास्त्रों में हैं नहीं, जिससे दानग्राही के न रहने से दान क्रिया का लोप हो जावेगा। क्या विद्या और सदुपदेशादि के दानों के लोप का भी कोई भय हो सकता है? तीसरी बात यह है कि यदि दान के योग्य ब्राह्मण न

होवें तो उन्हें लेने का अधिकार क्या बलात् हो जावेगा? ऐसी दशा में दान के पदार्थों को अन्य सदुपयोगों में लगा सकते हैं जिनकी नितान्त आवश्यकता है। देखते हैं कि लोग गोशालाओं और ब्रह्मचार्यश्रम के लिये चिल्लाते रह जाते हैं पर कुछ होता नहीं। यदि दान के सभी पदार्थ ऐसे कार्यों में लगा दिये जावें तो क्या कोई अनुचित कार्य होगा? क्या इससे भी बढ़कर कोई दान के लिये अवसर मिल सकता है? मैं तो समझता हूँ कि जैसे अयाचक ब्राह्मण समाज के लोग दान ग्रहण के निकट उसे निन्दित समझकर नहीं जाते और शास्त्रोक्त कृष्यादि द्वारा अपनी जीविका करते हैं, वैसे ही यदि इतर (याचक) ब्राह्मण भी (क्योंकि वे भी तो कृषि इत्यादि करते ही हैं) करने लग जावें तो भारतवर्ष की गोहत्या बिना प्रयत्न उसी द्रव्य से बन्द हो जावे। जिन द्रव्यों से वे अपना पेट पालते हैं उन्हीं से इस पुण्य भूमि में सरस्वती की पावन धारा अनवरत प्रवाहित होकर इस भूमि के सब कल्मषों को दूर कर देवे और गोरक्षा द्वारा देश की निर्धनता और व्याधियों का भी विलय हो जावे। इसीलिये अग्निपुराण में लिखा है कि:--

दैवे कर्मणि पित्र्ये च ब्राह्मणो नैव लभ्यते ।
तदन्नं तु गवे दद्यादथवा निक्षिपेज्जले ॥

अर्थात् 'यदि देव और पितृ कर्म में योग्य ब्राह्मण न मिलें तो उस अन्न का द्रव्य गो निमित्त प्रदान कर देवे, अथवा जल में फेंक देवे ।' किं बहुना, जिस दान ग्रहण से स्कन्दपुराण के ब्रह्मोत्तर खंड के छठे अध्याय में किसी ब्राह्मणी के पुत्र की दरिद्रता शांडिल्य ऋषि ने दिखलाई है, जैसा--

एष ते तनयः पूर्वजन्मनि ब्राह्मणोत्तमः ।
प्रतिग्रहैर्वयो निन्ये न यज्ञाद्यैः सुकर्मभिः ॥८०॥
अतो दारिद्र्यमापन्नः पुत्रस्ते द्विजभामिनि ।
तद्दोषपरिहारार्थं शरणं यातु शंकरम् ॥८१॥

अर्थ यह है कि 'महर्षि शांडिल्य ने उस ब्राह्मणी से कहा कि हे द्विजभामिनि ! यह तेरा पुत्र पूर्व जन्म में बहुत उत्तम ब्राह्मण था, परन्तु यज्ञादि न करके केवल प्रतिग्रह से जन्म बिताता था, इसलिये इस जन्म में दरिद्र हो गया है। अतः इस दोष की निवृत्ति के लिये महादेव जी की शरण जावे।' और जिस प्रतिग्रह से अग्निहोत्री ब्राह्मण को भी श्मशान काष्ठ तुल्य अपवित्र मत्स्यपुराण के २०४ अध्याय में ठहराया है, जैसा-

अहिताग्निर्द्विजो यस्तु तद्देयं तस्य पार्थिवः ॥३॥
तत्प्रतिग्रहविद्विद्वानाहिताग्निर्द्विजोत्तमः ।
स्नातो वस्त्रयुगाच्छन्नः स्वशक्त्या चाप्यलंकृतः ॥२०॥
अनेन विधिना दत्वा यथावत्कृष्णमार्गकम् ।
न स्पृश्योऽसौ द्विजो राजन् चितियूपसमो हि सः ॥२३॥
तं दाने श्राद्धकाले च दूरतः परिवर्जयेत् ।
स्वगृहात्प्रेष्य तं विप्रं मंगलस्नानमाचरेत् ॥२४॥

भावार्थ यह है कि 'हे राजन् जो ब्राह्मण अग्निहोत्री होवे उसे ही कृष्ण मृग का चर्म देना चाहिए। प्रतिग्रह को जाननेवाला वह विद्वान, अग्निहोत्री ब्राह्मण स्नान करके दो वस्त्रों के

अधर्म नहीं समझ जाता, वैसे ही कृषि आदि भी उस प्रायश्चित्त से निषिद्ध नहीं हो सकते। बल्कि जब पराशर स्मृति के द्वितीय अध्याय में, केवल अन्त के श्लोकों को छोड़कर, (क्योंकि वहाँ क्षत्रियादि के लिये कृषि का वर्णन है) ब्राह्मण के लिये कृषि का वर्णन है और अन्त में यह भी लिखा हुआ है कि **'चतुर्णामपि वर्णानामेषधर्मः सनातनः'।** अर्थात् चारो वर्णों के यथोक्त कृषि आदि सनातन धर्म हैं' और मध्य में यहाँ तक लिखा है कि:--

स्वयंकृष्टे तथा क्षेत्रे धान्यैश्च स्वयमर्जितैः ॥
निर्वपेत्पंच यज्ञांश्च क्रतुदीक्षां च कारयेत् ॥६॥

अर्थात् ब्राह्मण अपने से जुतवाये हुए क्षेत्र में स्वयं उपार्जित अन्नों द्वारा पंच यज्ञ और बड़े-बड़े यज्ञ करे या करवाये'। क्योंकि क्षत्रियादि के लिये आगे चलकर लिखा हुआ है कि--

क्षत्रियोऽपि कृषिं कृत्वा देवान्विप्रांश्च पूजयेत् ।
वैश्यःशूद्रस्तथाकुर्यात् कृषिवाणिज्य शिल्पकम् ॥१८॥

अर्थात् 'क्षत्रिय भी खेती करके देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा करे। इसी प्रकार वैश्य और शूद्र भी कृषि, वाणिज्य और शिल्पादि का व्यवसाय करें'। तो फिर यह कहना कि ब्राह्मण के लिये कृषि निन्दित है, सरासर भूल है। हाँ, अनापत्तिकाल' में स्वयंकृता कृषि अर्थात् अपने हाथों हल जोतना और अपने हाथ से वाणिज्य करना निन्दित है और उसके करने से ब्राह्मण पाप का भागी अवश्य हो जाता है। परन्तु इस समय प्रायः याचक ब्राह्मण दल में ऐसी बहुत जगहें पाई जाती हैं। क्योंकि मैंने अपनी आँखों और कानों कानपुर के पास वाजपेयी प्रभृति उच्च श्रेणी के कान्यकुब्जों को हल जोतते देखा और सुना है। यही दशा मथुरा के आसपास और गौड़ों के देश, पंजाब एवं गुजरात में भी पाई जाती है। परन्तु कोई कान्यकुब्जों या गौड़ों आदि से इनका नाम भी नहीं लेते। केवल अयाचक ब्राह्मणों में मिथ्या दोषारोपण और इन्हें नीचा दिखाने का यत्न करना यही सभी का प्रधान उद्देश्य हो रहा है। परन्तु ईश्वरानुग्रह से, चाहे अन्य ब्राह्मणों या अन्य वर्णों में अब तक जो कुछ भी हो गया है, लेकिन इस अयाचक ब्राह्मण दल का एक बच्चा भी भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक किसी-न-किसी रूप में इनकी सत्ता है, अपने हाथों हल जोतने का नाम भी नहीं जानता। और यदि कहीं जानता भी होगा तो याचक दल वाले ब्राह्मणों के संग से। कारण, वही गुरु, पुरोहित और उपदेशक, हैं। अतः अभी तक इन ब्राह्मणों की इस शुद्धता में, जो सभी अन्य ब्राह्मणों से बढ़कर हैं, कोई कलंक सम्भावित नहीं है। इतर ब्राह्मण तो चाहे ऐसा करने से भले ही दोष के पात्र बन गये हैं अथवा नहीं। क्योंकि लिखा है--

आपत्कल्पेन यो धर्मं कुरुतेऽनापदि द्विजः ।
स नाप्नोति फलं तस्य परत्रेति विचारितम् ॥२८॥
प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्त्तते ।
नसंपरायिकं तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलम् ॥३०॥ म ११।

अर्थ यह है कि 'जो ब्राह्मणादि आपत्ति के धर्म को अनापत्ति में करते हैं उन्हें उनका फल परलोक में नहीं मिलता। जो अनापत्ति के धर्मों के करने में समर्थ होकर भी आपत्ति धर्म करता है उसे पारलौकिक फल से वंचित रहना पड़ता है।' यदि किसी प्रकार से हलवाहे आदि को सामर्थ्य या प्राप्ति न होने से उनके लिये यह भी आपत्ति काल मान लिया जावे तो किसी तरह गुजारा हो सकता है। परन्तु ऐसे कर्मों का जहाँ तक हो सके, त्याग ही श्रेयस्कर है।

इस प्रकार से ब्राह्मण के लिये जब कृषि मन्वादि वाक्यों द्वारा सनातन धर्म सिद्ध हो गई और विशेष कर आजकल जब वेदादि का अभ्यास छोड़ने से प्रतिग्रह की योग्यता न रह गई अथवा रहने पर भी अनापत्तिकालिक जीविका का संघटन बना हुआ है। ऐसी दशा में प्रतिग्रह का अधिकार ही न रहने से जैसा अभी कह चुके हैं, कृषि करना बहुत उत्तम जीविका ठहरी। तो मनुस्मृति के दशमाध्याय में वा अन्यत्र जो कृषि का निषेध प्रतीत होता है अथवा उसकी निन्दा मात्र प्रतीत होती है वह केवल, जैसा प्रथम कह चुके हैं, स्वयंकृता कृषि की निन्दा है। क्योंकि दशमाध्याय आपद्धर्म प्रकरण है। इसलिये पूर्वोक्त व्यवस्थानुसार स्वयं कृतकृषि आदि का ही प्रकरण है। क्योंकि अस्वयंकृत कृष्यादि को अनापद्धर्म प्रकरण चतुर्थ अध्याय में मनुजी स्वयं ही कह चुके हैं। परन्तु कोई ऐसा न विचार लेवे, जैसा आजकल के बहुतेरे नवशिक्षितों का विचार हो रहा है, कि सर्वदा अपने हाथ से ब्राह्मण को हल जोतने में कोई हर्ज नहीं है, इस लिए मनु जी उस कृषि को निन्दित और अगतिक गति ठहराते हुए केवल आपत्ति में उसे करने की आज्ञा देते हैं। क्योंकि प्रथम यह कहते हैं कि : -

उभाभ्यामप्यजीवंस्तु कथंस्यादिति चेद्भवेत् ।
कृषिगोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम् ॥८२॥

अर्थात् 'यदि यह संशय हो कि अपनी वृत्ति और क्षत्रिय की भी विशेष वृत्ति न मिल सके तो ब्राह्मण कैसे जीवे? तो उसका समाधान यह है कि वैश्य वृत्ति अर्थात् अपने हाथों हल जोतकर कृषि और गोरक्षा एवं वाणिज्य द्वारा जीविका करे'। यदि सामान्यतः सभी प्रकार की कृषि वैश्य के ही लिए होती तो यह क्यों कहते कि वैश्य की वृत्ति रूप जो कृषि और गोरक्षा हैं उनसे जीवे ? क्योंकि आप तो सभी को एकसी ही मानते हैं। परन्तु हमारे मत से तो खेती दूसरे द्वारा कराना ब्राह्मण का भी कर्म है। इसलिये वैश्य की वृत्ति रूप खेती कहने से अपने हाथों वाली ही ली जावेगी और वही आपद्धर्म है। अब अगले श्लोकों में पूर्वोक्त इस कृषि में से भी विशेष प्रकार की कृषि करने को कहते हैं। क्योंकि लिखते हैं कि :--

वैश्यवृत्त्यापि जीवंस्तु ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपि वा ।
हिंसाप्रायां पराधीनां कृषिं यत्नेन वर्जयेत् ॥८३॥

तात्पर्य यह है कि अपने हाथ से खेती करके जीने वाले ब्राह्मणादि भी उस कृषि का बहुत यत्न से परित्याग करे जिसमें बहुत हिंसा की सम्भावना होवे, अथवा जमीन इत्यादि भी अपनी न होने से सभी प्रकार से पराधीनता ही होवे । क्योंकि मनुजी प्रथम भी कह चुके हैं कि :--

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् ।
यद्यदात्मवशंतु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः ॥१५९ ॥ ।४।

अर्थात् 'जो जो काम एकदम पराधीन होवें उनका यत्नपूर्वक त्याग और जो स्वाधीन होवें उनका सेवन करे' । इसके बाद ही लिखते हैं कि,

कृषिं साध्विति मन्यन्ते सा वृत्तिः सद्विगर्हिता ।
भूमिं भूमिशयांश्चैव हन्ति काष्ठमयोमुखम् ॥८४॥

इसिलिये इसका प्रकरणवश उचित अर्थ यही है कि बहुत ऐसा समझते हैं कि स्वयं अर्थात् अपने हाथ से हल जोतकर कृषि करना सर्वदा उत्तम है। परंतु ऐसी वृत्ति की

आपत्तिकाल से भिन्न काल में सत्पुरुष निन्दा करते हैं, क्योंकि फालसहित जो हल का भाग है वह भूमि का विदारण और उसमें रहनेवाले जीवों का नाश करता है। अतः अपने हाथ से हल जोतने वाला हिंसक हो जावेगा। यही बात पराशरस्मृति में भी प्रथम दिखला चुके हैं। यदि ऐसा अर्थ न मानेंगे तो मनुजी की इस सामान्य निन्दा से सभी के लिये कृषि निन्दित समझी जावेगी, क्योंकि इसमें किसी ब्राह्मण आदि का नाम नहीं है। ऐसी दशा में जो गीता मनुस्मृत्यादि ग्रन्थों में सामान्य रूप से लिखा है कि :--

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यंवैश्यकर्मस्वभावजम् । गीता ॥१८।४४

शस्त्रास्त्रभृत्त्वं क्षत्रस्य वणिक्पशुकृ विर्विशः म० ॥७९।१०॥

अर्थात् 'कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य ये कर्म वैश्यों के स्वाभाविक हैं। शस्त्र और अस्त्र धारण करना क्षत्रिय की जीविका है और वाणिज्य, कृषि तथा पशुपालन वैश्य की'। इन सब का तात्पर्य यह है कि स्वयंकृत (अपने हाथ से किये गये) कृषि, वाणिज्य और पशुपालन वैश्यों की स्वाभाविक जीविकाएँ हैं, परन्तु अस्वयंकृत कृष्यादि तो ब्राह्मण की भी जीविकाएँ हैं। नहीं तो उन्हीं मनुस्मृति आदि ग्रन्थों का पूर्वापर अथवा परस्पर विरोध होगा।

एक बात और ध्यान देने की है। जैसे ब्राह्मणत्व, ब्राह्मणता या ब्राह्मण्य यह ब्राह्मण का असाधारण कर्म है, अर्थात् ऐसा धर्म है जो उसे छोड़कर अन्यत्र नहीं पाया जा सकता। ऐसी ही क्षत्रियत्वादि की भी दशा जाननी चाहिए। इसी प्रकार यदि कृषि भी करना केवल वैश्य (वणिक्) का असाधारण कर्म होता तो वाणिज्य कहने में ही उसका बोध हो जाता, क्योंकि त्व, तल् और ष्यञ् प्रत्यय जिन शब्दों के आगे लगते हैं उनके प्रतिपाद्य अर्थों के असाधारण धर्मों और कर्मों को कहते हैं। जैसे ष्यञ् प्रत्ययान्त काव्य शब्द कवि के ही असाधारण कर्म (क्रिया) को कहता है। इसमें पाणिनि महर्षि जी के **'तस्यभावस्त्वतलौ' (५।१।११९), गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' (५।१।१२४)** ये दोनो सूत्र प्रमाण हैं। और फिर **'कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यम्'** वाक्य में वाणिज्य से पृथक् कृषि और गोरक्षादि के कथन की आवश्यकता न होती, क्योंकि वाणिज्य शब्द भी ष्यञ् प्रत्ययान्त है। इससे स्पष्ट है कि कृष्यादि वैश्य के असाधारण धर्म नहीं हैं, किन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यादि के साधारण धर्म हैं अर्थात् उन्हें सभी कर सकते हैं। बृहस्पतिस्मृति के प्रारम्भ के बीसों श्लोकों में भूमिदान की बहुत प्रशंसा की गई है, जैसा:--

सुवर्णरजतं वस्त्रं मणिं रत्नं च वासव ।

सर्वमेव भवेद्दत्तं वसुधां यः प्रयच्छति ॥५॥

अर्थात् 'हे इन्द्र ! सोना, चाँदी, वस्त्र, मणि रत्न इन सभी के दान का फल भूमि से प्राप्त होता है' इत्यादि, और इस भूमिदान का पात्र ब्राह्मण ही हो सकता है। बल्कि इस बात को उसी जगह लिख भी दिया है कि :--

विप्राय दद्याच्च गुणान्विताय तपोनियुक्ताय जितेन्द्रियाय ।

यावन्मही तिष्ठतिसागरान्ता तावत्फलंतस्यभवेदनन्तम् ॥१०॥

जिसका अर्थ यह है कि 'गुणवान तपस्वी और जितेन्द्रिय ब्राह्मण को पृथ्वी दान देवे जिसका अनन्त फल जब तक सागर पर्यन्त पृथ्वी स्थित रहेगी तब तक होगा'। अब ब्राह्मण उस पृथ्वी का या तो राजा बने या उसमें कृषि करवावे, तीसरी बात तो हो सकती नहीं। यदि दूसरे को दे देना चाहे सो तो उचित नहीं है, क्योंकि याज्ञवल्क्यस्मृति के ३१८ वें

श्लोक के 'पार्थिवः' पद को लेकर मिताक्षरा में लिखा है कि **'अनेनभूपतेरेव भूमिदानेऽधिकारो न भोगपतेरिति दर्शितम्'** । अर्थात् स्मृति के 'पार्थिवः पद से यह सूचित किया है कि राजा को ही भूमिदान का अधिकार है न कि जिन जमींदारादि को केवल भोग के लिये मिली है उनको भी। यदि कुछ द्रव्य उसके बदले लेकर उसे बेचना चाहे तो पृथ्वी बेचने का निषेध है, क्योंकि याज्ञवल्क्यादि स्मृतियों में लिखा है कि,

मृच्चर्म पुष्पकुतपकेशतक्र विषक्षितीः ॥३७॥

वैश्यवृत्यापिजीवन्नोविक्रीणीतकदाचन ॥३९॥ या० प्रा० ।

नित्यंभूमिव्रीहियवाजाव्य श्वर्षभधेन्वनडुहश्चैके । गौ० अ० ७।

अर्थात् 'वैश्यवृत्ति से जीविका करनेवाला भी ब्राह्मण, मिट्टी, चमड़ा, फूल, कम्बल, चमर मट्ठा, विष और पृथ्वी का विक्रय कदापि न करे' । सर्वदा पृथ्वी, धान, यव, बकरी, भेड़, घोड़े, बैल, धेनु और साँड़ों को बेचना न चाहिए'। यदि वह भी पृथ्वी का दान करे, तो विरोध होगा, क्योंकि वहाँ तो लिखा हुआ है कि,

यथाप्सु पतितः शक्र तैलविन्दुः प्रसर्पति ।

एवं भूम्याः कृतं दानं शस्ये शस्ये प्ररोहति ॥१॥ बृह० ।

अर्थात् **'हे इन्द्र ! जैसे जल में गिरा हुआ तेल फैलता है वैसे ही भूमि** का दान ज्यों-ज्यों इसमें अन्न उत्पन्न होकर बढ़ता है त्यों-त्यों बढ़ता है'। **इससे तो जिसे प्रथम दी गई है** वह कृषि करने के लिये बाध्य है। यदि वह दान भी करेगा तो ब्राह्मण को ही करेगा। इसलिये यदि प्रथम ने न की तो दूसरा ही कृषि करेगा। अन्ततोगत्वा जब करेगा तो ब्राह्मण ही। और भी आगे स्पष्टरूप से लिखा है कि :--

त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वीसरस्वती ।

तारयंतीह दातारं जपवापनदोहनैः ।

अर्थात् 'तीन दान अतिदान कहे जाते हैं यानी गौ, पृथ्वी और विद्या, जो क्रमशः दूहने, बोने और जपने से दाता को तार देते हैं'। इससे तो स्पष्ट है कि पृथ्वी दानग्राही दाता को उसके फल की प्राप्ति के लिये अवश्य उसमें अन्न बोवे अर्थात् कृषि करे। अग्निपुराण के ११३ अध्याय में लिखा है कि,

भूमिं दत्वा सर्वभाक् स्यात्सर्वशस्यप्ररोहिणीम् ।

ग्रामं वाथ पुरं वापि खेटकं वा ददत्सुखी ॥९॥

अर्थ यह है कि 'सब शस्य से युक्त पृथ्वी का दान देने से सब वस्तुओं का भागी होता है और गाँव, टोला अथवा खेटक (खेड़ा) इत्यादि देने से सुखी होता है'। उसीके २११ वें अध्याय में लिखा है कि,

संयुक्तहलपंक्त्याख्यंदानं सर्वफलप्रदम् ।

पंक्तिर्दशहला प्रोक्ता दारुजा वृषसंयुता ॥७॥

जिसका अर्थ यह है कि 'संयुक्तहलपंक्ति नाम का दान सब फलों का प्राप्त कराने वाला होता है। लकड़ी के दस हल जो बैलों के साथ होवें उनका नाम पंक्ति है'। भला बैल के साथ हल का दान सिवाय ब्राह्मण के कृषि करने के और किस काम का होगा? अग्निपुराण के ही १२५ वें अध्याय में लिखा है कि,

कृषिगोरक्षवाणिज्यं कुसीदं च द्विजश्चरेत् ।
गोरसं गुडलवणलाक्षामांसानि वर्जयेत् ॥२॥
हलमष्टगवं धर्म्यं षड्गवं जीवितार्थिनाम् ।
चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं धर्मघातिनाम् ।
ऋतामृताभ्यां जीवेत मृतेन प्रमृतेन वा ।
सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्या कदाचन ॥५॥

अभिप्राय यह है कि 'ब्राह्मण कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य करे, परन्तु गोरस, गुड़, लवण व लाक्षा और मांस की बिक्री न करे। आठ बैलोंवाला हल धर्मयुक्त, छह बैलोंवाला केवल जीने के लिये, चार बैलों वाला हत्यारों का और दो बैलोंवाला धर्मनाशकों का कहलाता है। ऋत अमृत, मृत, प्रमृत (कृषि) और सत्यानृत (वाणिज्य) से जीविका करे, परन्तु श्ववृत्ति अर्थात् नौकरी से जीविका कभी न करे। मत्स्यपुराण के २८०वें अध्याय में पंचलांगलक नाम के दान से भी ब्राह्मण का कृषि करना स्पष्ट रूप से सिद्ध है। वह इस प्रकार है :—

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् ।
पंचलांगलकं नाम महापातकनाशनम् ॥१॥
पुण्यां तिथिमथासाद्य युगादिग्रहणादिकाम् ।
भूमिदानं नरो दद्यात्पंचलांगलकान्वितम् ॥२॥
खर्वटं खेटकं वापि ग्रामं वा शस्यशालिनम् ।
निवर्त्तनशतं वापि तदर्द्धं वापि शक्तितः ॥३॥
सारदारुमयान्कृत्वा हलान्पंच विचक्षणः ।
सर्वोपकरणैर्युक्तानन्यान् पंच च काञ्चनान् ॥४॥
कुर्यात्पंचपलादूर्ध्वमासहस्रपलावधि ।
वृषान् लक्षणसंयुक्तान्दश चैव धुरन्धरान् ।
सुवर्णशृङ्गाभरणान् मुक्तालांगूलभूषणान् ॥५॥
रौप्यपादाग्रतिलकान् रक्तकौशेयभूषणान् ।
स्रग्दामचन्दनयुक्तान् शालायामधिवासयेत् ॥६॥
ततो मंगलशब्देन शुक्लमाल्याम्बरो बुधः ।
आहूय द्विजदाम्पत्यं हेमसूत्रांगुलीयकैः ॥९॥
कौशेयवस्त्रकटकैर्मणिभिश्चाभिपूजयेत् ।
शय्यां सोपस्करां दद्याद्धेनुमेकां पयस्विनीम् ॥१०॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः ।
इममुच्चारयेन्मंत्रमथसर्वं निवेदयेत् ॥११॥
यस्माद्देवगणाः सर्वे स्थावराणि चराणि च ।
धुरन्धरांगे तिष्ठन्ति तस्माद्भक्तिः शिवेऽस्तुमे ॥१२॥
यस्माच्चभूमिदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
दानान्यन्यानि मे भक्तिर्धर्म एव दृढाभवेत् ॥१३ ॥

दंडेन सप्तहस्तेन त्रिंशद्दण्डं निवर्त्तनम् ।
त्रिभागहीनं गोचर्ममानमाह प्रजापतिः ॥१४॥
मानेनानेन यो दद्यान्निवर्त्तनशतं बुधः ।
विधिनानेन तस्याशु क्षीयते पापसंहतिः ॥१५॥
तदर्द्धमथवा दद्यादपि गोचर्ममात्रकम् ।
भवनस्थानमात्रं वा सोऽपि पापैः प्रमुच्यते ॥१६॥
यावन्ति लांगलकमार्गमुखानि भूमे,
र्भासां पतेर्दुहितुरंगजरोमकाणि ।
तावन्तिशंकरपुरे स समाहितिष्ठेद् ,
भूमिप्रदानमिह यः कुरुते मनुष्यः ॥१७॥
इन्द्रत्वमप्यधिगतं क्षयमभ्युपैति,
नोभूमिलांगलधुरन्धर संप्रदानात् ।
तस्मादघौघपटलक्षयकारिभूमे
र्दानविधेयमिति भूतिभवोद्भवाय ॥१९॥

सब का अर्थ यह है कि, अब पंचलांगलक नामक महादान का वर्णन करते हैं, जो महापातक का नाशक है। ग्रहणादि पुण्य तिथि में मनुष्य पाँच हलोंसहित भूमिदान करे। वह भूमि चाहे ऊँची, नीची खेड़ा, शस्य से पूर्ण ग्राम अथवा सौ निवर्त्तन होवे, अथवा यथाशक्ति उसका आधा भी हो। पाँच हल लकड़ी के सार के और पाँच सोने के बनवावे, जिसमें से लकड़ी वाले जोतने की सब सामग्री के सहित होवें, परन्तु सोने के तो पाँच पल से लेकर १००० पल (परिमाण विशेष) तक के बनवावे। लकड़ी के पाँच हलों के लिये दस धुरन्धर (हल का जुआ खींचने वाले), सुवर्ण लगे सींग और मुक्ता लगी पूँछवाले एवं पाँवों के अग्र भाग में चाँदी मढ़े और लाल रेशम ओढ़ाये हुए तथा चन्दन और माला आदि से भूषित बैलों को भी दानशाला में लाकर रखे। उसके बाद शुक्ल वस्त्र और माला पहन मंगल जनक शब्दों से ब्राह्मणी और ब्राह्मण को बुलाकर सोने की करधनी, जनेऊ, आभूषण एवं रेशमी वस्त्र, मणि और कंगनों से उनकी पूजा करे। सब सामान के साथ एक शय्या और दूध देने वाली धेनु का दान करे। उसके बाद प्रदक्षिणा कर अंजली में पुष्प लेकर इस अगले मंत्र का उच्चारण करके वस्तुएँ दे देवे। हल के जुआ खींचने वाले बैल के अंगों में सब देवता स्थावर और जंगम निवास करते हैं, इसलिये मेरी भक्ति शिव में उत्पन्न होवे। और अन्य दान भूमिदान के सोलहवें अंश के भी बराबर नहीं होते, इसीलये मेरी दृढ़ भक्ति धर्म में होवे। सात हाथों वाले दण्ड से तीस दण्ड नपी भूमि एक निवर्त्तन कहलाती है और उसी का तीसरा भाग उसमें घटा देने से वही भूमि गोचर्म प्रमाणवाली कही जाती है। इस परिमाण से जो भी विचारवान १०० निवर्त्तन पूर्वोक्त विधि से दान करता है उसका पाप समुदाय नष्ट हो जाता है। जो उसका आधा, गोचर्म मात्र अथवा मकान बनाने भर भी देता है उसके पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य इस प्रकार से हल आदि के सहित भूमि दान करे वह उतने ही वर्ष कैलास में निवास करता है, जितनी हराइयाँ उस भूमि पर जोतने के समय बार-बार पड़ा करती हैं, अथवा जितने यमुना के रोम (शीकर) हैं। हल और जोतने वाले बैल के सहित भूमिदान करने में

प्राप्त इन्द्र पदवी का भी नाश नहीं होता, इसलिये सब पापों का नाशक ऐसा भूमिदान ऐश्वर्य के लिये अवश्य करना चाहिए। जब-जब परशुराम ने पृथ्वी को निःक्षत्रिया करके उसे कश्यपादि ब्राह्मणों को दिया, जिसका विवरण वाल्मीकीय रामायण के बालकांड के ७५ वें सर्ग, स्कन्दपुराण के नागरखण्ड के ६८ वें अध्याय, ब्रह्मवैवर्त पुराण और महाभारतादि सभी ग्रन्थों में पाया जाता है। तो फिर उन लोगों ने भूम्यधिपतित्व (राज्य या जमींदारी) अवश्य स्वीकार किया और उनमें से बहुत से कृषि भी करते ही थे। इसके अतिरिक्त बहुत-सा शिष्टाचार भी कृषि में प्रमाणरूप से मिलता है। दृष्टान्तार्थ धर्मारण्यस्थ ब्राह्मणों को लीजिये, जिनके याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह के त्याग की बात प्रथम कह चुके हैं। उन्हीं के विषय में स्कन्दपुराण के ब्रह्मखण्ड के धर्मारण्यमाहात्म्य प्रसंग में ऐसा लिखा है कि,

पंचदशसहस्राणि मध्ये ये के च वाडवाः ॥८६॥
कृषिकर्मरता आसन् केचिद्यज्ञपरायणाः ।
केचिन्मल्लाश्च संजाताः केचिद्वै वेदपाठकाः ॥९९॥
स्वकर्मनिरताः शान्ताः कृषिकर्मपरायणाः ।
धर्मारण्यान्नातिदूरे धेनूः संचारयन्ति ते ॥३००॥
बहवस्तत्र गोपालाश्चभूवुर्द्विजबालकाः ।
तेषुग्रामेषु ते विप्राश्चातुर्विद्याद्विजोत्तमाः ॥३०१॥ अ० ४०

अर्थात् भावार्थ यह है कि 'उन १५ हजार वाडवों (ब्राह्मणों) में से कोई कृषि करते, कोई यज्ञ में लीन रहते, कोई पहलवानी करते और कोई वेदपाठ करते थे। वे लोग अपने-अपने धर्म में निरन्तर संलग्न हुए शान्त और कृषिकर्म में दत्तचित थे। उन ब्राह्मणों के बहुत से बालक गायों की रक्षा करते और धर्मारण्य के पास ही गायें चराया करते थे और रामचन्द्रजी के दिये हुए ग्रामों में चारो वेदों के ज्ञाता सर्वोत्तम वाडव (ब्राह्मण) रहा करते थे।' इससे जो कोई ऐसा कहा करते हैं कि कृषि करने और दान आदि त्यागने से अयाचक ब्राह्मण कट्टर ब्राह्मण न रहकर हीन समझे जाने लगे, उनका स्पष्ट रूप से खंडन हो गया। एक तो जब पूर्वोक्त रीति से कृषि ब्राह्मण का सनातन धर्म है, तो फिर उसके करने से कट्टरपन कहाँ चला गया? दूसरे, अभी इन और पूर्व के श्लोकों से स्पष्ट ही विदित हुआ है कि धर्मारण्यवासी वाडव (ब्राह्मण) प्रतिग्रहादि तीन कर्मों के त्यागी और कृषि तथा गोपालनादि करते हुए यज्ञ-दानादि के कर्त्ता थे तीन कर्मों के त्यागी और कृषि तथा गोपालनादि करते हुए यज्ञ, दानादि के कर्त्ता थे और साथ ही, चारो वेदों के ज्ञाता थे न कि मूर्ख, जिससे भूलकर ऐसा करते रहे हों एवं श्री रामचन्द्र द्वारा वहाँ स्थापित किये गये थे, फिर भी उनको 'द्विजोत्तमाः' अर्थात् सभी ब्राह्मणों से उत्तम कहा है—ठीक उनकी सी ही दशा तथा आचार-विचार और कर्म इन अयाचक ब्राह्मणों के भी हैं तो इनकी कट्टर ब्राह्मणता चली गयी और हीन समझे जाने लगे, इसे कहने की जगह 'ये बहुत ही कट्टर और सब ब्राह्मणों से उत्तम ब्राह्मण हैं, यही कहना न्यायसंगत है। वाल्मीकि रामायण के बालकांड के प्रारम्भ में जब दशरथजी ने 'पुत्रेष्टि' नामक यज्ञ कराकर उसकी दक्षिणा में पृथ्वी दान को सर्वोत्तम समझ उसी का देना प्रारंभ किया है तो ब्राह्मणों ने यह कह कर उसका इनकार किया है कि हम लोग तपस्वी आदि हैं, अतः हमलोगों से भूमि का प्रबन्ध नहीं हो सकता। इसलिये उसके बदले अन्न, द्रव्यादि दीजिये। न कि भूलकर भी यह कहा है कि भूमिपतित्व

अथवा उसमें कृषि करना हम लोगों के लिये शास्त्रनिन्दित है। इससे आपकी दी हुई पृथ्वी हमारे किसी काम की न होगी। अतः अन्नादि ही दक्षिणा में दीजिये। इस विषय में जिसे सन्देह होवे वह बाल्मीकि रामायण के बालकांड आदि में देखकर अपनी तुष्टि कर लेवे। उसी रामायण के अयोध्याकांड के ३२ वें सर्ग में जब श्री रामजी वन जाते हुए अपने महल की सब वस्तुएँ याचकों को देने लगे हैं, उस समय उनके पास कुछ द्रव्य प्राप्ति के निमित्त आये हुए एक ऐसे ब्राह्मण का वर्णन है, जिससे उन युगों में भी कृषि करना ब्राह्मण का उत्तम धर्म सिद्ध होता है। क्योंकि वहाँ लिखा है कि—

क्षत्रवृत्तिर्वने नित्यं फालकुद्दाललांगली ।
तत्रासीत्पिंगलो गार्ग्यस्त्रिजटोनाम वै द्विजः ॥२९॥

कहीं-कहीं 'क्षतवृत्तिः' पाठ मिलता है। उसका अर्थ यह है कि उस जगह अथवा उस समय गर्गगोत्री पीतवर्ण का एक त्रिजट नामवाला ब्राह्मण था, जो अस्त्रादि द्वारा कन्दमूल खोदकर, अथवा फाल, कुदाल और हल से अर्थात् कृषि करके नित्य ही वन में रहता हुआ अपनी जीविका करता था। उसी जगह यह भी लिखा हुआ है कि जब उसकी स्त्री ने बहुत दुःखी होकर उसे भगवान रामचन्द्र के पास याचना करने के लिये कहा तो प्रथम उसने वहाँ न जाने के लिये बहुत आग्रह किया है, परन्तु स्त्री के आग्रह से अन्त में हारकर भगवान के पास गया है और जब वहाँ उसके विलक्षण वेष को देखकर उसकी उत्तम ब्राह्मणता में शंका करके परीक्षार्थ श्रीरामजी ने कहा है कि बहुत दूर तक ये गायें खड़ी हैं तुम अपना दण्ड फेंको, जहाँ तक वह पड़ेगा उतनी गायें ले जाना। इस पर उसने उनके भाव समझ दण्ड ऐसा फेंका है कि वह कई कोस दूर जाकर पड़ा है। इसलिये उसकी शुद्धता देखकर श्री रामजी बहुत प्रसन्न हुए हैं इत्यादि। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि कृषि करना और अस्त्रादि धारण करना कट्टर ब्राह्मणपन के लक्षण हैं, न कि हीनता के ? इस आख्यान से यह भी स्पष्ट है कि दान लेना प्रभृति अगतिक गति है, और काल पाकर याचक ब्राह्मण अयाचक और अयाचक ब्राह्मण याचक हो सकते हैं और इसी प्रकार अयाचक और याचक ब्राह्मणों के पृथक्-पृथक् दल बनते और वे घटते- बढ़ते जाते हैं। इसलिये यदि कोई अयाचक ब्राह्मण आवश्यकता पड़ने पर अपनी वंशावली आदि से यह सिद्ध करता है कि कुछ दिन पूर्व उसके पूर्वज याचक दल वाले ब्राह्मण थे और अपना विवाह सम्बन्ध याचक दल वालों से सिद्ध करता है तो जो विचारविकल पण्डितमानी यह कहकर इसकी हँसी उड़ाते हैं कि 'लो' कहाँ तो अयाचक ब्राह्मण बनते थे, कहाँ अब याचक बनने लगे इत्यादि। उनको पूर्व निर्णीत विषय और आख्यान से अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय कर उस कुशाग्र बुद्धि को इस रसायन द्वारा सुधार लेना चाहिए। महाभारत के सभापर्व के ५१ वें अध्याय में लिखा है कि :—

गोवासना ब्राह्मणाश्च दाशनीयाश्च (दर्शनीयाश्च) सर्वशः ।
प्रीत्यर्थम् ते महाराज धर्मराज्ञो महात्मनः ॥५॥
त्रिखर्वम् बलिमादाय द्वारि तिष्ठन्ति वारिताः ।
ब्राह्मणा वाटधानाश्च गोमन्तः शतसंघशः ॥६॥
कमण्डलूनुपादाय जातरूपमयान् शुभान् ।
एवं बलिं समादाय प्रवेशं लेभिरे न च ॥७॥

इसका भावार्थ यह है कि जब दुर्योधन युधिष्ठिर के राजसूय से लौटकर गया है तो वहाँ

उनकी जो सम्पति उसने देखी थी उससे उसे बड़ा संताप हुआ है, जिसका कारण पूछने पर शकुनि से इन्हीं सम्पदाओं का वर्णन करता है कि 'हे महाराज ! पृथ्वी और गाय-बैलों के संस्कार वाले (क्योंकि गो नाम पृथ्वी और गाय-बैलों का भी है) अर्थात् बड़े-बड़े राजा और कृषि करनेवाले एवं दर्शनीय अर्थात् दिव्य शरीरवाले अथवा बड़े-बड़े दाता ब्राह्मण युधिष्ठिर महाराज की प्रसन्नता के लिये तीन खर्व द्रव्य बलि (नजर) लिये हुए द्वार पर इसलिये रोके गये हैं कि बाहर ही बलि देकर उसके भीतर जावें [१२]और वाटधान देश में रहने वाले पूर्ववत् भूमि और गाय-बैलों वाले ब्राह्मणों के सैकड़ों झुण्ड यज्ञ के लिये बहुत से सोने के कमण्डलु और दूसरी बलि (नजर) लेकर पूर्वोक्त कारण से भीतर जाने नहीं पाते हैं'। इससे पूर्व के ४९ वें अध्याय में कह चुके हैं कि :--

ब्राह्मणावाटधानाश्च गोमन्तः शतसंघशः ।
त्रिखर्वबलिमादाय द्वारि तिष्ठन्ति वारिताः ॥२५॥
कमण्लूनुपादाय जातरूपमयान् शुभान् ।
एतद्धनं समादाय प्रवेशं लेभिरे न च ॥२६॥

इसका अर्थ पहले-सा ही है। वाटधान देश उत्तर भारत में गान्धार, काश्मीर के पास में महाभारत में युद्ध क्षेत्र के पास ही संभवतः कहीं था अथवा है। क्योंकि महाभारत के सभापर्व के ३२ वें अध्याय में नकुल के दिग्विजय प्रसंग में लिखा है कि जब इन्द्रप्रस्थ से पश्चिम की ओर दिग्विजय करने को निकले हैं तोः—

तथा मध्यमकेयांश्च वाटधानान् द्विजानथ ।
पुनश्चपरिवृत्याथ पुष्करारण्यवासिनः ॥८॥

अर्थात् 'मध्यमक देशवासियों को जीत, वाटधान देश के ब्राह्मणों को जीता। उसके बाद घूमकर पुष्करारण्य वासियों को भी जीता'। फिर उद्योगपर्व में जब हस्तिनापुर में कौरव सेना को अवकाश न मिला तो वह इधर-उधर के उसके पास के ही देशों में फैल गई, तो वहाँ वह मिला तो वाटधान देश का भी नाम आया है । जैसा-

ततः पंचनदञ्चैव कृत्स्नं च कुरुजांगलम् ॥२९॥
तथारोहितकारण्यं मरुभूमिश्च केवलः ।
अहिच्छत्रं कालकूटं गंगाकूलं च भारत ॥३०॥
वारणं वाटधानश्च यामुनश्चैव पर्वतः ।
एष देशः सुविस्तीर्णः प्रभूतधनधान्यवान् ॥३१॥
बभूव कौरवेयाणां बलेनातीव संवृतः ॥३२॥

१. क्योंकि सभी बलि (नजर) लनेवाले बड़े-बड़े राजाओं का वर्णन करके अन्त में ५२ वे अध्याय में लिखा है कि :—

तत्रस्था द्वारपालैस्ते प्रोच्यन्ते राजशाशनात् ।
कृतकालाः सुबलयः ततो द्वारमवाप्स्यथ ॥१९॥

अर्थात् उन सभी को युधिष्ठिर महाराज की आज्ञा से द्वारपालों ने यही कहा कि आपलोग बाहर ही बलि देकर अन्दर जाने पावेंगे ।
२

अर्थात् 'हस्तिनापुर में न अँटने पर पञ्चनद' सम्पूर्ण कुरुजांगल, रोहितकारण्य, केवल मरुभूमि, अहिच्छत्र, कालकूट, गंगातट, वारण, वाटधान और यमुना के उद्गम स्थान का पर्वत इन सुविस्तीर्ण और बहुत धनधान्यवाले देशों को कौरव सेना ने छेंक लिया।' पण्डितवर नीलकण्ठ ने भी अपने 'भारत भाव प्रदीप' में इस जगह यही लिखा है कि, '**अहिच्छत्रादयः प्रदेशविशेषाः**' अर्थात् ये अहिच्छत्रादि नाम प्रदेश विशेष के हैं'। मत्स्यपुराण के ११३ वें अध्याय में भी ऐसा ही लिखा है कि,

वाल्हीका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः ।
पुरन्धश्चैव शूद्राश्च पल्लवाश्चात्तखण्डिकाः ॥४०॥
गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः
शका द्रुह्याः पुलिन्दाश्च पारदाहारमूर्त्तिकाः ॥४१॥
रामठा कंटकाराश्च कैकेया दशनामकाः ।
क्षत्रियोपनिवेश्याश्च वैश्याः शूद्रकुलानि च ॥४२॥
अत्रयोऽथभरद्वाजाः प्रस्थलाः सदसेरकाः ।
लम्पकास्तलगानाश्च सैनिकाः सहजांगलैः ।
एतेदेशाउदीच्यास्तु ....॥४३॥

अर्थात् 'वाल्हीक, वाटधान, आभीर, कालतोयक, पुरन्ध, शूद्र, पल्लव, आत्तखंडिक, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, मद्रक, शक, द्रुह्य, पुलिन्द, पारदाहारमूर्त्तिक, रामठ, कण्टकार, केकय, दशनामक, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्रों के देश, अत्रि, भारद्वाज, प्रस्थल, सदसेरक, लम्पक, तलगान, सैनिक और जांगल ये उत्तर भारत के देश हैं' ॥

इसी वाटधान देश के राजा और जमींदार (भूमिपति) ब्राह्मण नकुल विजय के बाद बलि लेकर आये थे। गान्धारादि देशों में ब्राह्मण रहते हैं। इसमें चीनी यात्री 'हुईसंग' (Hwi Seng) और 'संगयुन' (Sungyun) आदि की भी सम्मति मिलती है, जो सन् ५१८ ई० के लगभग भारत यात्रा को आये थे। यह बात 'फाहियान और संगयुन की यात्रा' (Travels of Fah-Hian and Sungyun) नामक पुस्तक में मिलती है। उसमें काश्मीर, गान्धार, बुखारा आदि कई देशों में जहाँ-तहाँ ब्राह्मणों का वर्णन करते हुए १९८ वें पृष्ठ में गान्धार के विषय में लिखा है कि 'The people of the country belonged entirely to the Brahman caste. They had a great respect for the law of Buddha, and loved to read the Sacred books'. अर्थात् गान्धार देश वासी सभी के सभी ब्राह्मण थे और बुद्ध अनुशासन से बहुत प्रेम रखते और पवित्र पुस्तकें पढ़ा करते थे। और यह उचित भी है; क्योंकि उन देशों में एक प्रकार के सारस्वत विप्र, जिनकी संज्ञा 'भूमिहार' शब्द के सदृश और इसी अर्थवाली 'महीयाल या महीवाल है, रहा करते हैं। इसलिये 'भारत भ्रमण' ग्रन्थ के ५२ वें पृष्ठ में जो पूर्वोक्त मत्स्यपुराण के ११३ वें अध्याय के नाम पर मिथ्या ही यह लिखा गया है कि वाल्हीक, वाटधान, आभीर, कालतोयक ये शूद्रों के देश हैं और पल्लव, आत्तखण्डिक, गान्धार ये यवनों के देश हैं, वह असंगत है। साथ ही ११३ वें अध्याय का अर्थ भी अभी कर चुके हैं। उसमें इस प्रकार से कहीं नहीं लिखा है।

अस्तु, उस 'त्रिखर्वं बलिमादाय' इस श्लोक में जो 'त्रिखर्वं' यह पद है उसका

किसी[1] ने ऐसा भी अर्थ किया है कि खर्व शब्द संख्यावाचक न होकर **'खर्वोह्रस्वश्चवामनः'** (अम० २ का० मनु० ४६) इस कोष के अनुसार ह्रस्व का वाचक **है और ह्रस्व छोटे** या कम अर्थ में प्रयुक्त होता है। अतः 'त्रिखर्व' शब्द का यह अर्थ हुआ कि **त्रीणि कर्माणि खर्वाणि ह्रस्वानि न्यूनानि येषां ते त्रिखर्वाः** अर्थात् जिनके तीन कर्म याजन, अध्यापन, और प्रतिग्रह न्यून यानी छूट गये हैं उनका नाम त्रिखर्व है। सारांश, त्रिकर्मा यानी केवल यजन, अध्ययन और दान करनेवाला ब्राह्मण। यद्यपि 'त्रिखर्व' शब्द जब बलि का विशेषण होकर संख्या वाचक होता है तो जैसा बलि शब्द द्वितीयान्त एकवचन है वैसा ही 'त्रिखर्व' शब्द भी है, अतः अर्थ ठीक बैठता है। परन्तु पूर्वोक्त अर्थ में 'ब्राह्मणाः' शब्द का विशेषण होने से 'त्रिखर्वाः' ऐसा होना चाहिए। क्योंकि उसका विशेष्य 'ब्राह्मणाः' यह शब्द प्रथमान्त बहुवचन है। तथापि **'त्रीणि कर्माणि खर्वाणि ह्रस्वानिन्यूनानियस्मिन्कर्मणि तद्यथास्यात्'** अर्थात् जिस क्रिया में तीन कर्म न्यून होवें उसकी तरह से ऐसा विग्रह करके 'त्रिखर्व' पद को 'तिष्ठन्ति' इस क्रिया पद का विशेषण कर देने से 'सामान्ये नपुंसकम्, इस व्याकरण वार्तिक (कात्यायनवचन) मूलक **क्रियाविशेषणानां कर्मत्वं क्लीवत्वं च '** अर्थात् क्रिया विशेषण वाचक पद नपुंसक द्वितीयान्त हुआ करते हैं , इस न्याय के अनुसार 'त्रिखर्व' यह नपुंसक द्वितीयान्त एकवचन ठीक हो गया है और इसका अर्थ पूर्वोक्त ही रहा। बल्कि जब 'त्रिखर्व' शब्द को संख्यावाचक मानते हैं तभी 'त्रि' शब्द का खर्व शब्द के साथ कर्मधारय समास नहीं हो सकता। क्योंकि **दिक्संख्येसंज्ञायाम्'** । (२।१।५०) इस पाणिनि सूत्रानुसार दिशावाचक और संख्यावाचक शब्दों का कर्मधारय समास तभी होता है जब वह समस्त पद किसी प्रसिद्ध वस्तु का नाम होवे, जैसे 'सप्तर्षि', 'त्रिगुण' और 'त्रिदेव' आदि प्रसिद्ध वस्तु के नाम हैं। परन्तु त्रिखर्व शब्द तो किसी का नाम नहीं है। इसलिये जैसे 'अष्टौ' 'ब्राह्मणाः' इस जगह समास नहीं होता वैसे ही यहाँ भी नहीं होना चाहिये। दूसरे, इस 'त्रिखर्व' पद में समाहार द्विगु नामक कर्मधारय समास मानना होगा। क्योंकि **संख्यापूर्वो द्विगुः** (पा० २।१।५२) अर्थात् 'संख्या पूर्वक कर्मधारय समास द्विगु कहलाता है, ऐसा पाणिनि का सूत्र है। तो फिर जैसे 'सप्तशती' शब्द स्त्रीलिंग हो गया है वैसे ही **"अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः"** इस महाभाष्यकार महर्षि पतंजलि जी के अथवा महर्षि कात्यायन के वचनानुसार 'त्रिखर्व' पद का 'त्रिखर्वी' ऐसा स्त्रीलिंग रूप होना चाहिए। क्योंकि उस वाक्य का ऐसा अर्थ ही है कि अकारान्त उत्तर पदवाला द्विगु समास स्त्रीलिंग होता है और खर्व शब्द अकारान्त है। इसलिए इन सब दोषों के वारण करने के लिए जैसे 'पंचपात्र' 'त्रिभुवन' 'चतुर्युग' इत्यादि शब्दों में स्त्रीलिंग नहीं होता वैसे ही इसका भी स्त्रीलिंग रूप हटाने के लिए उनकी तरह 'पात्रादि गण' में खर्व शब्द का पाठ मानना पड़ेगा। जिससे **'पात्राद्यन्तस्य न'** यह व्याकरण का वार्तिक स्त्रीलिंग का निषेध करेगा, क्योंकि उसका अर्थ यह है कि पात्र आदि शब्द जिस समाहार द्विगु समास के अन्त में होवें उसका स्त्रीलिंग रूप नहीं होता, जैसा ऊपर दिखला चुके हैं।

अथवा जैसे 'देवपूजको ब्राह्मणो देवब्राह्मणः इस जगह मध्यमपदलोपी समास होता है वैसे ही **'त्रिसहितं त्रिरावृत्तं वा त्रिखर्वम्'** अर्थात् तीन के सहित अथवा तीन आवृत्तियाँ जिसकी की गई हों ऐसा जो खर्व उसको त्रिखर्व कहते हैं। इस प्रकार से बड़े कष्ट से 'त्रिखर्व' शब्द

[1]. पण्डितवर श्री नीलकण्ठ ही वहाँ अपने 'भारत भाव प्रदीप' में लिखते हैं कि 'त्रिखर्व' त्रीणियाजनाध्यापनाप्रतिग्रहाः खर्वाणि न्युण्जानि धनलाभरूपफलहीनानि येषां ते त्रिखर्वा याजनादिहीना इत्यर्थः। इसका तात्पर्य ऊपर ही लिखा गया है।

की सिद्धि होगी । इसलिए इस अर्थ की अपेक्षा ह्रस्ववाला ही अर्थ अच्छा है, जिससे सिद्ध होता है कि पश्चिमा, भूमिहारादि ब्राह्मणों की तरह वे भी त्रिकर्मा थे और कृषि करते तथा भूमिपति थे। इस प्रकार से धर्मशास्त्र, पुराण, महाभारत, वाल्मीकीय रामायणादि इतिहास और शिष्टाचार से सिद्ध है कि कृषि करने वाले ब्राह्मण बहुत कट्टर ब्राह्मण होते हैं, क्योंकि वह सनातन धर्म है और प्रतिग्रहादि उस हालत में जीविकार्थ के लिये किये जा सकते हैं जब कोई दूसरा उपाय कृष्यादि उसके लिये न होवे। अभी आगे भी इस विषय में कुछ कहेंगे।

(२) ब्राह्मण धर्म

(घ) **राज्य और युद्ध**- अब हम प्रसंगवश यह भी दिखला देना चाहते हैं कि युद्ध करना और भूमिशासन (प्रजापालन या राज्य) भी ब्राह्मण का धर्म है, जिसे स्मृति, पुराण, इतिहास और सदाचार वगैरह सभी करने की आज्ञा देते हैं। साथ ही, यह भी स्मरण रखना चाहिए कि यदि राज करना ब्राह्मण का धर्म सिद्ध हो जावेगा तो फिर उसके लिये युद्ध अपरिहार्य हो जावेगा, क्योंकि राजा का ऐसा धर्म ही है। इसके लिये प्रथम हम दिखला देना उचित समझते हैं कि 'राज' शब्द क्षत्रिय मात्र का वाचक नहीं। यदि परम प्रसिद्ध और सर्वमान्य अमरकोष के द्वितीय काण्डांतर्गत क्षत्रिय वर्ग में देखते हैं तो वहाँ 'क्षत्रिय' और 'राजा' ये दोनो शब्द भिन्न-भिन्न अर्थ वाले मालूम होते हैं। क्योंकि लिखा है कि:–

मूर्द्धाभिषिक्तो राजन्यो बाहुजः क्षत्रियो विराट् ।
राजा राट्पार्थिवक्ष्माभृन्नृपभूपमहीक्षितः ।।१।।

अर्थात् 'मूर्द्धाभिषिक्त, राजन्य, बाहुज, क्षत्रिय और विराट् ये क्षत्रियों के नाम हैं। और राट्, पार्थिव, क्ष्माभृत्, नृप, भूप और महीक्षित् ये राजा के पर्याय हैं'। इससे स्पष्ट है कि क्षत्रिय से भिन्न भी राजा होता है। आगे और भी सफाई है, क्योंकि लिखते हैं कि :—

अथ राजकम् ५ राजन्यकंचनृपतिक्षत्रियाणांगणेक्रमात् ६

अर्थात् 'राजक शब्द नृपतिसमूह का वाचक है और राजन्यक शब्द क्षत्रिय समूह का'। इससे स्पष्ट है कि राजन्य शब्द ही क्षत्रिय मात्र का वाचक है न कि राज शब्द भी। मेदिनीकोष में लिखा है कि:–

राजा प्रभौ च नृपतौ क्षत्रिये रजनीपतौ ।।

अर्थात् 'राजा प्रभु, नृपति, क्षत्रिय और चन्द्रमा को कहते हैं।' एक जगह और भी मेदिनीकोष में लिखा है कि **मूर्द्धाभिषिक्तो भूपाले मंत्रिणि क्षत्रियेऽपि च'** । अर्थात् 'मूर्द्धाभिषिक्त भूपाल, मंत्री और क्षत्रिय को कहते हैं।' इससे जो कोई यह शंका करते कि पूर्वोक्त अमर कोष में जो क्षत्रिय से पृथक् राजा को गिनाया है उसका यह तात्पर्य है कि सभी क्षत्रियों को राजा नहीं कहते, किन्तु जिन क्षत्रियों का अभिषेक किया जाता है और जो नरों के पति होते हैं उन्हें ही कहते हैं। उसका भी खण्डन हो गया। क्योंकि मेदिनीकोष से स्पष्ट है कि क्षत्रियमात्र को भी राजा कहते हैं। इसके बाद क्षत्रिय से पृथक् नृपति, भूपाल या राजा को कहते हुये यह झलका रहे हैं कि क्षत्रिय से भिन्न भी राजा होता है। मनुस्मृति के ७ वें अध्याय राज धर्म प्रकरण में स्पष्ट लिखा है कि:—

राजधर्मान्प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः ।।१।।

अर्थात् 'राजा के धर्मों का अब कथन करते हैं कि नृप यथोचित आचारवाला होवे' । इस श्लोक में राज धर्म की प्रतिज्ञा करके नृप धर्म का कथन करते हुये यह दिखला रहे हैं कि प्रजापालक मात्र राजा कहलाता है। कुल्लूकभट्ट भी यहाँ टीका में लिखते हैं कि:—

राजशब्दो नात्र क्षत्रिय जाति वचनः किंत्वभिषिक्त जनपद
पुरपालयितृपुरुषवचनः अतएवाह यथावृत्तोभवेन्नृपइति ।

अर्थ यह है कि इस श्लोक में राजा शब्द क्षत्रिय जाति का वाचक न होकर उस पुरुष मात्र का वाचक है जिसका अभिषेक देश, ग्रामादि के पालन के लिये किया जाता है। इसीलिये श्लोक में लिखते हैं कि नृप यथोचित विचार वाला होवे। ऐसा ही मेधातिथि ने भी यहाँ लिखा है। परन्तु अगले श्लोक में जो कुल्लूकभट्ट लिखते हैं **'एतेन क्षत्रिय एव राज्याधिकारी नान्य इति दर्शितम्'** अर्थात् 'द्वितीय श्लोक में क्षत्रिय पद से यह सूचित किया है कि क्षत्रिय ही राज्याधिकारी हो सकता है, न कि दूसरा'। वह उनकी विचित्र बुद्धि की महिमा है, कि अगले और पिछले श्लोकों के अपने लेखों को भूलकर पूर्वापर विरुद्ध बक डालते हैं। उस श्लोक में तो क्षत्रिय पद 'ब्राह्मण वशिष्ठ' न्याय से आदर और विशेष दृष्टि का सूचक है। जैसे रामजी ने या किसी अन्य ने ही कह दिया कि ब्राह्मणों को बुला लाइये और गुरु महाराज वशिष्ठजी को बुलाते आइएगा। तो यद्यपि वसिष्ठजी भी ब्राह्मण ही हैं, अतः उनके लिए पृथक आज्ञा की आवश्यकता नहीं है। तथापि उनका आदर और उनपर विशेष दृष्टि सूचित करने के लिये उनका पृथक् नाम लिया है। वैसे ही यद्यपि राजा के कहने से क्षत्रिय राजा भी लिया जा सकता है, तथापि जब मनु जी स्वयमेव दशमाध्याय में, जैसा हम पूर्व कह चुके हैं, कहेंगे कि,

वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च रक्षणम् ।

अर्थात् 'ब्राह्मण का वेदाभ्यास और क्षत्रिय का प्रजापालन सर्वोत्तम धर्म' है। इसलिये उसी विशेषता और आदर की सूचना के लिये पृथक् क्षत्रिय शब्द का उल्लेख है। और भी जो कुछ यहाँ भट्ट जी ने लिखा है वह सब कुछ विस्मरण मूलक है जिसको हम पहले दिखला चुके हैं। १२वें अध्याय में भी मनुजी ने ऐसा ही सूचित किया है कि:—

राजानः क्षत्रियाश्चैव राज्ञां चैव पुरोहिताः ।
वादयुद्धप्रधानाश्च मध्यमा राजसी गतिः ॥४६॥

अर्थात् 'राजा, क्षत्रिय राजाओं के पुरोहित और दिन रात शास्त्र में कलह करने वाले ये लोग राजसों में मध्यम कहे जाते हैं। यहाँ भी क्षत्रिय से पृथक् राज शब्द है। ऐसा ही स्मृतियों में बहुत जगह मिला करता है। आगे चलकर इसी १२ वें अध्याय में मनुजी स्पष्ट लिखते हैं कि :—

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥१००॥

अर्थ यह है कि 'सेना संचालन, राज्य, न्याय और सब लोगों का आधिपत्य वेद शास्त्रादि का ज्ञाता ही ब्राह्मणादि कर सकता है, न कि क्षत्रियादि जाति विशेष'। यही बात स्पष्ट रूप से भट्टजी ने टीका में लिख दी है कि **'एतत्सर्वं वेदात्मक शास्त्रज्ञ एवार्हति'** अर्थ वही है जो कह चुके हैं। मनुस्मृति के ९ वें अध्याय में भी यही लिखा है :—

प्रजापतिर्हि वैश्याय सृष्ट्वा परिददे पशून् ।
ब्राह्मणाय च राज्ञे च सर्वाः परिददे प्रजाः ॥३२७॥

अर्थात् 'ब्रह्मा ने वैश्य को उत्पन्न करके उसके अधिकार में पशु और ब्राह्मण तथा क्षत्रिय के अधिकारमें सर्व प्रजा पालन दिया' ॥ प्रथमाध्याय में भी लिखा है कि :—

ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते ।
ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोषस्य गुप्तये ॥९९॥
सर्वस्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किंचिज्जगतीगतम् ।
श्रैष्ठ्येनाभिजनेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणोऽर्हति ॥१००॥
स्वमेव ब्राह्मणो भुंक्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च ।
आनृशंस्याद्ब्राह्मणस्यभुञ्जतेहीतरे जनाः ॥१०१॥

जिसका तात्पर्य यह है कि 'राजा के दो काम होते हैं, (१) प्रजारक्षण, (२) कोषरक्षण। इसलिये मनुजी कहते हैं कि उत्पन्न होने के साथ ही ब्राह्मण सब प्राणियों का स्वामी और धर्म रूप कोष का रक्षक होता है। जो कुछ इस पृथ्वी पर है सभी ब्राह्मण का है, क्योंकि ब्रह्मा के सबसे श्रेष्ठ स्थान मुख से उत्पन्न होने से ही वह सबसे बड़ा है। इसलिए प्रथम सबका अधिकारी वही हो सकता है और उसके अभाव में ही दूसरा (क्योंकि यही उचित है कि प्रथम राजा का बड़ा पुत्र ही अधिकारी होवे)। जो कुछ ब्राह्मण खाता, पहनता या देता है वह उसका ही है, बल्कि अन्य लोगों को जो कुछ मिला है उसे ब्राह्मण की कृपा ही समझनी चाहिए। महाभारत के शान्ति पर्व के राजधर्मानुशासन भाग में ऐल और वायु देवता के सम्वाद में ७२वेंअध्याय में भी यही लिखा है कि—

ऐलउवाच । द्विजस्य क्षत्रबंधोर्वा कस्येयं पृथिवी भवेत् ।
धर्मतः सह वित्तेन सम्यग्वायो प्रचक्ष्व मे ॥९॥
वा० उ० । विप्रस्य सर्वमेवेदं यत्किंचिज्जगतीगतम् ।
ज्येष्ठेनाभिजनेनेह तद्धर्मकुशला विदुः ॥१०॥
स्वमेव ब्राह्मणो भुंक्तेस्वंवस्तेस्वंददाति च ।
गुरुर्हि सर्ववर्णानां ज्येष्ठः श्रेष्ठश्च वै द्विजः ॥११॥
पत्यभावे यथैव स्त्री देवरं कुरुते पतिम् ।
आनन्तर्यात्तथा क्षत्रं पृथिवी कुरुते पतिम् ॥१२॥
नारी तु पत्यभावे वै देवरं कुरुते पतिम् ।
पृथिवी ब्राह्मणालाभे क्षत्रियं कुरुते पतिम् ॥१३॥

जिसका तात्पर्य यह है कि ऐल (पुरूरवा) ने वायु से पूछा कि यह पृथ्वी वास्तव में धर्म दृष्टि से ब्राह्मण की है, या क्षत्रिय की, इसे स्पष्ट रूप से कहिये। वायु ने उत्तर दिया कि जो कुछ इस पृथ्वी में है उसे धर्म ज्ञान में कुशल लोग ब्राह्मण का ही बतलाते हैं, क्योंकि वह सबकी अपेक्षा ज्येष्ठ है। ब्राह्मण जो कुछ खाता, पहनता अथवा देता है वह उसका ही है, क्योंकि वह सब वर्णों से ज्येष्ठ, श्रेष्ठ और सबका गुरु है। जिस प्रकार पूर्व निश्चित पति के न रहने पर (मर जाने पर) उस कन्या का देवर से विवाह हो जाता है, वैसे ही ब्राह्मण राजा के

न रहने पर क्षत्रिय पृथ्वी का पति होता है। यही अर्थ बाद के श्लोक का भी है। **'पत्यभावे यथैव स्त्री'** का यह तात्पर्य भगवान मनु ने कहा है कि:-

यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृ ते पतिः ।
तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः ॥६९॥अ०९॥
कन्यायां दत्तशुल्कायां म्रियेत यदि शुल्कदः ॥
देवराय प्रदातव्या यदि कन्यानुमन्यते ॥९७॥अ०९॥

तात्पर्य यह है कि जिसके साथ विवाह की बातचीत की गई हो वह पुरुष (पति) यदि वैवाहिक कार्य सप्तपदी आदि समाप्त होने से प्रथम ही मर जावे तो उसी सामग्री और उसी प्रकार से उसका यथोचितरीति से विवाह देवर (उक्त पति के छोटे भाई) से कर देना चाहिए। यदि किसी ने कन्या के बदले किसी कारण से कुछ ले लिया होवे यद्यपि कन्या विक्रय का निषेध इसी अध्याय के ९८ वें श्लोक में है, जैसा कि :–

आददीत न शूद्रोऽपि शुल्कं दुहितरं ददत् ।
शुल्कं हि गृह्णन् कुरुते छन्नं दुहितृविक्रयम् ॥

अर्थात् शूद्र भी द्रव्य लेकर कन्या न देवे, क्योंकि इससे कन्या का विक्रय हो जाता है। अथवा आर्य विवाह में १ या २ जोड़े बैल लेने की आज्ञा है जैसा मनुस्मृति के तृतीय अध्याय में लिखा है कि –

एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः ।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ॥२९॥

अर्थात् वर से एक या दो जोड़े बैल धर्मपूर्वक लेकर कन्यादान को आर्ष विवाह कहते हैं' परन्तु ये बैल भी विवाह काल में कन्या के पति को देने अथवा आवश्यक विवाह रूप यज्ञ कार्य सम्पादन के ही लिये लिये जाते हैं, न कि अपने काम के लिये। क्योंकि मनुजी ने ही आगे चलकर लिखा है कि –

आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मृषैवतत् ।
अल्पोप्येवं महान्वापि विक्रयस्तावदेवसः ॥५३॥३॥

अर्थात् 'जो किसी ने आर्ष विवाह में दो बैल लेने को कहा है वह मिथ्या ही है, क्योंकि ऐसा करने से चाहे थोड़ा हो या बहुत कन्या विक्रय तो हो ही गया'। इस बात को किसी श्लोक की टीका में कुल्लूकभट्ट ने स्पष्ट कर दिया है। ऐसी दशा में यदि उसने बैल ले लिये हों परन्तु विवाह कृत्य से प्रथम ही भावी पति का शरीर पात हो जावे तो यदि कन्या चाहे तो देवर से उसे ब्याह देना चाहिये'। इसलिये जो कोई पूर्वोक्त महाभारत के श्लोकों को देखकर अपनी अनभिज्ञता से कटाक्ष करता था कि वे श्लोक सनातन धर्म की दृष्टि से प्रमाण नहीं हो सकते, क्योंकि उनके मानने से विधवा विवाह या नियोग सिद्ध हो जावेगा, उसे इस पूर्व व्याख्यान रूप अंजन से अपने ज्ञान चक्षु के दोषों का मार्जन कर लेना चाहिए। राजधर्म प्रकरण नामक आठवें अध्याय में मनुजी ने स्पष्ट ही कह दिया है कि–

यदा स्वयं न कुर्यात्तु नृपतिः कार्यदर्शनम् ।
तदा नियुज्याद्विद्वांसं ब्राह्मणं कार्यदर्शने ॥९॥
सोऽस्य कार्याणि संपश्येत्सभ्यैरेव त्रिभिर्वृतः ।
सभामेव प्रविश्याग्र्यामासीनः स्थित एव वा ॥१०॥

अर्थ यह है कि जब राजा किसी कारण से राज्य का प्रबन्ध न कर सके तो विद्वान ब्राह्मण को उस जगह नियुक्त कर देवे। वह ब्राह्मण उन कार्यों को तीन सभ्यों के सहित उत्तम सभा में बैठ अथवा खड़ा होकर उचित रीति से करे। इसी लिये वाल्मीकि रामायण के अयोध्या कांड के ६७ वें सर्ग में राजा दशरथ के कोप भवन से न लौटने पर लिखा है कि –

व्यतीतायां तु शर्वर्यामादित्यस्योदये ततः ।
समेत्य राज्यकर्त्तारः सभामीयुर्द्विजातयः ॥
मार्कण्डेयोऽथ मौद्गल्यो वामदेवश्च कश्यपः ।
कात्यायनो गौतमश्च जावालिश्च महायशाः ॥

अर्थात् उस दिन रात बीतने पर सूर्योदय के समय राज्य करने वाले (राज्य प्रबन्ध करने वाले) सभी महान् ब्राह्मण मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, कश्यप, कात्यायन और जावालि प्रभृति मिलकर सभा में आये। इन श्लोकों में 'राज्यकर्त्तारः' लिखा है, जिसका अर्थ 'राज्य करने वाले ब्राह्मण' होता है। इससे स्पष्ट है कि मुख्य राज्यकर्त्ता ब्राह्मण ही है। परन्तु उसमें बहुत झंझट और तपस्या तथा विचारादि में विघ्न देखकर जो लोग उससे उपराम हो जाते हैं वे क्षत्रियों के हाथ में उसे सौंप देते हैं। जैसे अपने भृत्यों के हाथ में किसी कार्य का प्रबन्ध सौंप दिया जाता है। अथवा आजकल भी बहुत से अन्य देशों में राजा के प्रतिनिधि जैसे शासन करते हैं वैसे ही ब्राह्मण क्षत्रियादि को अपना प्रतिनिधि बनाकर स्वच्छन्द वेदाभ्यासादि करते थे। परन्तु जब किसी कारणवश उनके प्रतिनिधि स्वरूप क्षत्रियादि उसका प्रबन्ध न कर सकते थे तो स्वयं वे विचारशील गौतम और कात्यायनादि जैसे ब्रह्मर्षि उसका प्रबन्ध कर लेते थे। महर्षियों के इस राज्य प्रबन्ध से उस कुकल्पना का भी खण्डन हो गया जो लोग किया करते हैं कि राज्य और युद्ध करने से ही भूमिहारादि ब्राह्मण कट्टर न रहकर हीन हो गये! यदि यह कार्य कट्टर ब्राह्मणता का विरोधी होता तो क्या उन महर्षियों से भी कोई कट्टर हो सकता है जिन्होंने इसे किया है ? क्या वे शास्त्र ज्ञाता न थे जिससे इसे निन्दित समझकर छोड़ देते ? इस विषय में अभी बहुत वक्तव्य है।

प्रायः लोगों की यही धारणा है कि पुरोहिती ब्राह्मण को अवश्य कर्त्तव्य है। यद्यपि शास्त्रों का मत इस विषय में दिखला चुके हैं और दिखलावेंगे भी, तथापि इतना तो निर्विवाद है कि यदि किसी दशा में पुरोहित हो सकता है तो ब्राह्मण ही। क्योंकि मनुस्मृति के दशमाध्याय में लिखा है कि :–

त्रयो धर्मा निवर्त्तन्ते ब्राह्मणात्क्षत्रियं प्रति ।
अध्यापनं याजनं च तृतीयश्च प्रतिग्रहः ॥७७॥
वैश्यं प्रति तथैवैते निवर्त्तेरन्निति स्थितिः ।
न तौ प्रति हितान्धर्मान्मनुराह प्रजापतिः ॥७८॥

अर्थात् 'ब्राह्मण के तीन कर्म याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह क्षत्रिय और वैश्य के लिये नहीं हैं, यही सिद्धान्त है, क्योंकि प्रजापति मनुजी ने उनके लिये वे धर्म नहीं बतलाये।' अत्रि संहिता में भी लिखा है कि:–

प्रतिग्रहोऽध्यापनं च तथाऽविक्रेयविक्रयः ।
याज्यं चतुर्भिरप्येतैः क्षत्रविट्पतनं स्मृतम् ॥२०॥

अर्थात् याजन, अध्यापन, प्रतिग्रह और निषिद्ध पदार्थों के विक्रय से क्षत्रिय और वैश्य पतित हो जाते हैं।

अब उस पुरोहित के स्वरूप को विचारिये तो उससे भी ब्राह्मण का राज्य सम्बन्ध घनिष्ठ सिद्ध होता है। क्योंकि अमरकोष में 'पुरोधास्तुपुरोहितः' अर्थात् पुरोहित का नाम पुरोधा भी है, यह क्षत्रिय वर्ग में लिखा है, न कि ब्राह्मण वर्ग में और पुरोहित शब्द का अर्थ भी यह है कि जो युद्धादि सब व्यवहारों में अग्रणी होवे, अर्थात् उसकी सम्मति सभी कार्यों में ली जावे। क्योंकि पुरस् अव्यय पूर्वक 'धा' धातु से 'क्त' प्रत्यय करने पर पुरोहित शब्द सिद्ध होता है। जिसमें अव्यय का अर्थ 'आगे' है, और 'धा' धातु का अर्थ धारण करना वा रखना। अर्थात् जो प्रथम रक्खा वा धारण किया। गया होवे। राजधर्म प्रकरण में ही मनुजी ने लिखा है कि 'पुरोहितं प्रकुर्वीत' (अ०७।७८) अर्थात् राजा पुरोहित बनावे। और फिर लिखते हैं कि.

सर्वेषां तु विशिष्टेन ब्राह्मणेन विपश्चिता।
मंत्रयेत्परमं मंत्रं राजा षाड्गुण्यसंयुतम् ॥५८॥
नित्यं तस्मिन्समाश्वस्तः सर्वकार्याणि निःक्षिपेत्
तेन सार्द्धं विनिश्चित्य ततः कर्म समारभेत् ॥५९॥७॥

जिसका अर्थ यह है कि 'सर्व मंत्रियों में श्रेष्ठ पण्डित ब्राह्मण मंत्री से राजा संधि विग्रहादि सम्बन्धी बड़ी-बड़ी सलाह करे। सर्वदा उसका विश्वास करके सब काम करे और उसके साथ सलाह करके ही कार्य प्रारम्भ करे'। याज्ञवल्क्य स्मृति के आचाराध्याय में लिखा है कि

स मंत्रिणः प्रकुर्वीत प्राज्ञान्मौलान्स्थिराञ्छुचीन्।
तैः सार्द्धं चिन्तयेद्राज्यं विप्रेणाथ ततः स्वयम् ॥३१२॥
पुरोहितं प्रकुर्वीत दैवज्ञमुदितोदितम्।
दण्डनीत्यां च कुशलमथर्वांगिरसे तथा ॥३१३॥
अपश्यता कार्यवशाद्व्यवहारान्नृपेण तु।
सभ्यैः सहनियोक्तव्यो ब्राह्मणः कार्यदर्शने ॥३॥व्यव०॥

अर्थ यह है कि 'वह राजा श्रेष्ठ, स्थिर और पवित्र स्वभाव वाले मंत्री रखे। उतके विचारने के बाद ब्राह्मण मंत्री से विचार कर अपने आप भी कार्य विचार करे। ज्योतिष विद्या जानने वाला, शास्त्रोक्त कर्मकारी, अर्थ शास्त्रज्ञ और साम दानादि गुणों से युक्त पुरोहित रूप मंत्री राजा बनावे। राजा यदि किसी कारण से राज्य का कार्य न देख सके तो अन्य सभ्यों सहित ब्राह्मण मंत्री को उसमें नियुक्त करे'। बौधायनस्मृति के १० वें आध्याय में लिखा है कि:--

सर्वतोधुरं पुरोहितं वृणुयात् ॥१०॥

अर्थात् 'राज्य के सर्व कार्यों का करनेवाला पुरोहित बनावे'। अग्नि पुराण में लिखा है कि:--

अभिषिञ्चवमात्यानां चतुष्टयमथो घटैः।
पूर्वतो हेमकुम्भेन घृतपूर्णमब्राह्मणः ॥१८॥अ०२१८॥

अर्थात् 'उसके चारो वर्ण वाले चार मंत्री राजा का अभिषेक करें।' उनमें से प्रथम ब्राह्मण मंत्री घृतपूर्ण स्वर्ण घट से अभिषेक करे।' इन सब प्रमाणों से क्या यह सिद्ध नहीं होता कि ब्राह्मणों का राज्य से बहुत सम्बन्ध और उसमें अधिकार पूर्व काल में भी था? इन अयाचक ब्राह्मणों के पूर्वज प्रथम इसी प्रकार के पुरोहित, ऋत्विक् और मंत्री भी थे जिससे इनका व्यवहार राजसी था, जैसा कि मनु वाक्यों द्वारा दिखा चुके हैं कि क्षत्रिय, राजा और राज पुरोहित राजस कहलाते हैं और शान्ति पर्व के ७६ वें अध्याय में भी लिखा है कि:--

ऋत्विक् पुरोहितो मंत्री दूतो वार्त्तानुकर्षकः
एते क्षत्रसमा राजन्ब्राह्मणानां भवन्त्युत ॥७॥

अर्थात् 'ऋत्विक्, पुरोहित, मंत्री और दूत इतने ब्राह्मण क्षत्रिय के सदृश राजस होते हैं'। इस प्रकार वे क्रमशः धनवान्, बड़े-बड़े भूमिपति और जमींदार या राजा हो गये, जिससे पीछे उस राजपुरोहिती आदि को भी छोड़कर एकदम अलग हो गये। महाभारत के शान्तिपर्व के ७३ वें अध्याय राजधर्मानुशासन प्रकरण में लिखा है कि:–

तञ्चैवान्वभिषिञ्चेत् तथा धर्मो विधीयते।
अग्र्यं हि ब्राह्मणे प्रोक्तं सर्वस्यैवेह धर्मतः।
पूर्वं हि ब्राह्मणः सृष्टिरिति ब्रह्मविदो विदुः ॥२९॥
ज्येष्ठेनाभिजनेनास्य प्राप्तं पूर्वं यदुत्तरम्।
तस्मान्मान्यश्च पूज्यश्च ब्राह्मणः प्रसृताग्रभुक् ॥३०॥

अर्थ यह है कि 'उस पुरोहित का अभिषेक राजा करे, क्योंकि राजपाट सभी का प्रथमाधिकारी धर्म विचार से ब्राह्मण ही है। क्योंकि यह वार्त्ता वेदवेत्ता लोग जानते हैं कि प्रथम ब्राह्मण ही उत्पन्न हुआ । इसलिये ज्येष्ठ होने से जो कुछ मिले वह पहले ब्राह्मण का ही है, पीछे दूसरे का। इसलिये उसे मानना और पूजना चाहिए, क्योंकि वह सब वस्तुओं का प्रथमाधिकारी है'। स्कन्दपुराण के धर्मारण्य माहात्म्य में वाडवों (ब्राह्मणों) के विषय में बहुत-सा विवरण ग्राम और गोत्र पूर्वक दिया गया है और यह भी लिख दिया गया है कि अमुक ग्राम का अधिपति अमुक ब्राह्मण हुआ। साथ ही, स्पष्टतया लिखा गया है कि 'राज्यं चक्रुर्वनस्य, अर्थात् उस धर्मारण्य का राज्य वही ब्राह्मण करते थे। महाभारत के आदि पर्व के ११३ वें अध्याय में स्वपुत्र अश्वत्थामा को दूध पीने के लिये एक गौ की आवश्यकता होने पर वह द्रोणाचार्य को द्रुपद से मित्रता में माँगनी पड़ी है। वे चाहते तो आजकल की भाँति उन्हें सहस्त्रों गायें मिल जातीं। परन्तु उन्हें प्रतिग्रह से डरकर ऐसा करना पड़ा। जब द्रुपद ने कोरा जबाब दिया कि राजा का मित्र भिक्षु (ब्राह्मण) न होकर राजा ही होता है, इसलिये आपसे मेरी मैत्री नहीं हो सकती। हाँ, एक दिन के लिये भोजन मिल सकता है, तो द्रोणाचार्य रुष्ट होकर लौट गये हैं। इसी समय भीष्म पितामह ने उनसे मिल कर सब हाल जानकर कहा कि :--

अपज्यं क्रियतां चापं साध्वस्त्रं प्रतिपादय।
भुंक्ष्व भोगान् भृशं प्रीतः पूज्यमानः कुरुक्षये ॥६४॥
कुरूणामस्ति यद्वित्तं राज्यंचेदं सराष्ट्रकम्।
त्वमेव परमो राजा सर्वे च कुरवस्तव ॥६५॥

अर्थात् आप धनुष रख दीजिये, इन बच्चों को शस्त्रास्त्र विद्या सिखलाइये और कौरवों द्वारा पूजित होकर इनके देश में प्रसन्नतापूर्वक भोग भोगिये। कौरवों का जो धन और राज्य है वह सब आपही का है और वे लोग भी आपके ही हैं। इसके बाद जब कौरव पाण्डवों को युद्ध विद्या में कुशल करके पुराना बदला चुकाने के लिये उन्हें द्रुपद को पकड़ने को भेजा है और अर्जुन उसे परास्त करके पकड़ लाये हैं, तब द्रोणाचार्य ने शान्ति पर्व के १४० वें अध्याय में कहा है कि:—

अराजा किल नो राज्ञः सखा भवितुमर्हति।
अतः प्रयतितं राज्ये यज्ञसेन मया तव ॥६८॥
राजासि दक्षिणे कूले भागीरथ्याहमुत्तरे।
सखायं मां विजानीहि पाञ्चाल यदि मन्यसे ॥६९॥
माकन्दीमथ गंगायास्तीरे जनपदायुताम्।
सोऽध्यावसद्दीनमनाः काम्पिल्यं च पुरोत्तमम् ॥७२॥
दक्षिणाँश्चापि पाञ्चालान्यावच्चर्मण्वतीनदीम्।
अहिच्छत्रं च विषयं द्रोणः समभिपद्यत ॥७५॥
एवं राजन्नहिच्छत्रा पुरी जनपदायुता।
युधि निर्जित्य पार्थेन द्रोणाय प्रतिपादिता ॥७६॥

जिसका अर्थ है कि हे द्रुपद ! क्योंकि जो राजा नहीं है वह राजा का मित्र नहीं हो सकता, इसलिये ही मैंने तुम्हारा राज्य लेने का यत्न किया है। यदि तुम चाहो तो गंगा से दक्षिण के देश का राजा रहो और मैं उत्तर का और मुझे अब से मित्र समझो। इसके बाद वह द्रुपद खिन्न चित्त होकर गंगा तट में माकन्दी में राजधानी बनाकर रहने लगा, जिसके आश्रित बहुत से प्रान्त थे। और काम्पिल्यपुर और दक्षिण पाञ्चाल भी चर्मण्वती (वेतवा) नदी तक इसी के अधिकार में था। उत्तर पाञ्चाल अर्थात् अहिच्छत्रादि प्रदेशों के राजा द्रोणाचार्य हुए। इस प्रकार से बहुत से प्रदेशों सहित अहिच्छत्रापुरी को अर्जुन ने युद्ध में जीत कर द्रोणाचार्य को उसका राजा बना दिया।

स्कन्दपुराण के नागर खण्ड के ६८ और ६९वें अध्याय में लिखा है कि:—

सूत उवाच। भार्गवोऽपि च तं हत्वा रक्तमादाय कृत्स्नशः।
तत्र संप्रेषयामास यत्र गर्ताथ पैतृकी ॥२॥
न स बालं न वृद्धं च परित्यजति भार्गवः।
यौवनस्थं विशेषेण गर्भस्थं वाथ क्षत्रियम् ॥३॥
प्रत्यक्षं सर्वविप्राणां तथान्येषां तपस्विनाम्।
प्रतिज्ञां पूरयित्वाथ स विशोको बभूव ह ॥८॥
ततो निःक्षत्रिये लोके कृत्वा हयमखं च सः।
प्रायच्छत्सकलामुर्वीं ब्राह्मणेभ्यश्च दक्षिणाम् ॥९॥
अथ लब्धवराविप्रास्तमूचुर्भृगुसत्तमम्।
नास्मद्भूमौ त्वया स्थेयमेको राजा यतः स्मृतः ॥१०॥

सोऽपि बाढमिति प्रोच्य हर्षेण महतान्वितः।
महीपर्यन्तमासाद्य प्रोवाचाथ नदीपतिम् ॥११॥
आरोप्य सुमहच्चापमाग्नेयास्त्रं प्रयुज्य च।
त्रिशिखां भ्रुकुटीं कृत्वा कोपेन महतान्वितः ॥१२॥
रामउवाच। मया निःक्षत्रिया भूमिः कृता शैलवनान्विता।
ब्राह्मवेभ्यस्ततो दत्ता वाजिमेधे महामखे ॥१३॥
तस्मात्त्वं देहि मे स्थानं कृत्वाऽपसरणं स्वयम्।
नहि दत्त्वा ग्रहीष्यामि विप्रेभ्यो मेदिनीं पुनः ॥१४॥
न करोष्यथवा वाक्यं ममाद्य त्वं नदीपते।
स्थलरूपं करिष्यामि वह्न्यस्त्र परिशोषितम् ॥१५॥
सूत उवाच। **तस्य तद्वचनं श्रुत्वा समुद्रो भयसंकुलः।**
अपसारं ततश्चक्रे यावत्तस्याभिवाञ्छितम् ॥१६॥
ततश्चकार तत्रैव वसतिं स भृगूद्वहः।
तपश्चर्या समायुक्तः पितुर्वधमनुस्मरन् ॥१७॥ अ० ६८॥
सूतउवाच। **ततो निःक्षत्रिये लोके क्षत्रिण्यो वंशकारणात्**
क्षेत्रजान् ब्राह्मणेभ्यश्च सुषुवुस्तनयान्वरान् ॥१॥
ते च वृद्धिं समासाद्य क्षेत्रजाः क्षत्रियोपमाः।
जगृहुर्मेदिनीं वीर्यात्संनिरस्य द्विजोत्तमान् ॥२॥
ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे परिभूतिपदं गताः।
प्रोचुर्भार्गवमभ्येत्य दुःखेन महतान्विताः ॥३॥
राम राम महाबाहो यत्त्वया वसुधा च नः।
वाजिमेधे मखे दत्ता हृता सा क्षत्रियैर्बलात् ॥४॥
तस्मान्नो देहि तां भूयो हत्वा तान्क्षत्रियाधमान्।
कुरु श्रेयोऽभिवृद्धिं तां यद्यस्ति तव पौरुषम् ॥५॥
ततो रामः क्रुधाविष्टो भूयस्तैः शबरैः सह।
पुलिन्दैर्मेदकैश्चैव क्षत्रियान्ताय निर्ययौ ॥६॥
तत्रैव क्षत्रियान् हत्वा रक्तमादाय तद्बहु।
तां गर्तां पूरयामास चकार पितृतर्पणम् ॥७॥
प्रददौ ब्राह्मणेभ्यश्च वाजिमेधे धरां पुनः।
तैश्च निर्वासितस्तत्र जगामोदधिसन्निधौ ॥८॥
एवं तेन कृता पृथ्वी सर्वक्षत्रविवर्जिता।
त्रिः सप्तवारं विप्रेन्द्राः ! द्विजेभ्यश्चनिवेदिता ॥९॥ अ०६९॥

भावार्थ यह है कि, 'सूतजी ने कहा कि परशुराम ने सहस्रार्जुन को मार सब रक्त लेकर जहाँ पितृ तर्पण के लिये कुरुक्षेत्र में पाँच कुण्ड बनाये थे वहाँ भेज दिया। वे बाल, वृद्ध, गर्भस्थ और विशेषकर युवा क्षत्रिय को मारे बिना न छोड़ते थे। इस तरह सब ब्राह्मणों और तपस्वियों के सम्मुख अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर वे शोकरहित हो गये। इस प्रकार लोक को क्षत्रियशून्य बना अश्वमेध करके उसमें उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वी कश्यप प्रभृति ब्राह्मणों को दक्षिणा दे दी। अब पृथ्वी का राज्य पाने पर उन ब्राह्मणों ने परशुरामजी से कहा कि हमारे राज्य में मत रहिये, क्योंकि एक राज्य में एक ही राजा रह सकता है। वे भी बहुत प्रसन्नतापूर्वक अच्छा कह पृथ्वी के किनारे समुद्र तट पर आकर, जिस समय उससे बोले उस समय वे महान् धनुष को चढ़ा आग्नेयास्त्र का प्रयोग कर और भृकुटी टेढ़ी करके महान् कोपयुक्त हो रहे थे। उन्होंने कहा कि मैंने पर्वत और वन सबके सहित पृथ्वी क्षत्रियरहित करके अश्वमेध में ब्राह्मणों को दे दी। इसलिये तुम मुझे वासस्थान दो और यहाँ से हट जाओ, क्योंकि ब्राह्मणों को देकर फिर मैं उनसे भूमि छीन नहीं सकता। यदि तू मेरी बात न मानेगा तो आज ही अग्न्यस्त्र से तुझे सुखाकर स्थलरूप बना दूँगा। समुद्र उनका वचन सुन डरकर उतनी दूर हट गया जितना उन्हें इष्ट था। उसके बाद परशुरामजी उसी जगह वासस्थान बना पिता के वध का स्मरण करते हुए तपस्या करने लगे। इस प्रकार जब पृथ्वी क्षत्रियों से रहित हो गई तो उनकी स्त्रियों ने ब्राह्मणों द्वारा श्रेष्ठ क्षत्रिय पुत्र उत्पन्न किये, क्योंकि क्षेत्रज भी पुत्र हुआ करते हैं। वे क्षेत्रज बालक क्षत्रिय सदृश हुए और उन्होंने बलपूर्वक उन ब्राह्मणों को निकाल कर पृथ्वी दबा ली। उसके बाद ब्राह्मण हार मानकर बहुत दुखी हो परशुरामजी के पास आकर उनसे कहने लगे कि हे राम ! जो पृथ्वी आपने हमलोगों को अश्वमेध में दक्षिणा दी थी उसे क्षत्रियों ने छीन लिया। इसलिये यदि आप में बल है, तो उन नीच क्षत्रियों को मार हमें पृथ्वी का राज्य पुनः देकर हमारा कल्याण करिये। यह सुनते ही परशुरामजी क्रोध से लाल हो बहुत से शबरों, पुलिन्दों और मेदकों के साथ उन क्षत्रियों का नाश करने के लिये निकले और उसी जगह उन क्षत्रियों को मार कर उनका रक्त लेकर उन पाँच गर्त्तों को भर दिया और उसी से पितृतर्पण किया। जब फिर उन्हें ब्राह्मणों ने अपने राज से निकाल दिया तो उसी समुद्र के पास चले गये। इस प्रकार उन्होंने क्रमशः २१ बार पृथ्वी को क्षत्रियशून्य कर उसका राज्य ब्राह्मणों को दे दिया।

महाभारत के शान्ति पर्व में भी जहाँ पूर्वोक्त परशुरामजी का आख्यान है वहीं ४९ वें अध्याय में सहस्रार्जुन के यज्ञ में भी ब्राह्मणों को पृथ्वी की प्राप्ति इस प्रकार लिखी है :–

एतस्मिन्नेव काले तु कृतवीर्यात्मजो बली।
अर्जुनो नाम तेजस्वी क्षत्रियो हैहयाधिपः ॥३५॥
दत्तात्रेय प्रसादेन राजा बाहुसहस्रवान्।
चक्रवर्ती महातेजा विप्राणामश्वमेधिके ॥३६॥
ददौ स पृथ्वीं सर्वाम् सप्तद्वीपां सपर्वताम्।
स्वबाह्वस्त्रबलेनाजौ जित्वा परमधर्मवित् ॥३७॥

इसका अर्थ यह है कि 'इसी समय (जिस समय परशुरामजी का जन्म हुआ) कृतवीर्य का पुत्र, महाबलवान् और तेजस्वी अर्जुन नाम का क्षत्रिय हैहय देश का राजा था। दत्तात्रेय की कृपा से जिसे सहस्रबाहु मिले थे, ऐसे चक्रवर्ती राजा अर्जुन ने अश्वमेध में, अपने बाहु

और अस्त्र बल से पर्वतसहित सप्तद्वीपवती पृथ्वी जीत कर ब्राह्मणों को यज्ञ में दक्षिणा दे दी'। क्या इन सब आख्यानों से ब्राह्मणों के राजा होने में अब कोई सन्देह रह गया ? इससे स्पष्ट है कि प्रथम जो ब्राह्मण अयाचक दल वाले थे, वे मंत्री हो और अस्त्र-शस्त्रादि विद्या द्वारा, एवं जो याचक दल वाले थे, वे ऋत्विक् और पुरोहित हो बड़े-बड़े राज्याधिकारी और जमींदार होकर एक ही अयाचक दल वाले होते गये और पश्चात् पुरोहिती और याजनादि भी उनका इसीलिए छूटता गया। विष्णुराण के चतुर्थांश के २४ वें अध्याय में लिखा है कि:–

'मगधायां तु विश्वस्फटिकसंज्ञोऽन्यान्वर्णान् करिष्यति ॥६१॥
कैवर्त्तवटुपुलिन्दब्राह्मणान्राज्ये स्थापयिष्यति' ॥६३॥

अर्थात् 'कलि में मगधापुरी अथवा मगध देश में विश्वस्फटिक नाम का एक प्रतापी पुरुष क्षत्रिय से अन्य वर्ण कैवर्त्त, वटु, पुलिन्द और ब्राह्मणों को राजा बनावेगा'। वायुपुराण के ५८ वें अध्याय में लिखा है कि :–

गोत्रेण वै चन्द्रमसो नाम्ना प्रमितिरुच्यते।
माधवस्य तु सोंऽशेन पूर्वम् स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥७६॥
समाः स विंशतिं पूर्णाः पर्यटन्वै वसुन्धराम्।
आचकर्ष च वै सेनां सवाजिरथकुञ्जराम् ॥७७॥
प्रगृहीतायुधैर्विप्रैः शतशोथ सहस्रशः।
स तदा तैः परिवृतो म्लेच्छान्हन्ति सहस्रशः ॥७८॥

अर्थ यह है कि प्रथम स्वायम्भुव मन्वन्तर में चन्द्र गोत्र में प्रमिति नाम का (कल्कि भगवान की जगह) विष्णु के अंश से एक ब्राह्मण उत्पन्न हुआ था जिसने पूरे बीस वर्ष घूमकर घोड़े और हाथी सहित सेना एकत्रित की और आयुध धारण करने वाले हजारों ब्राह्मणों को साथ ले बहुत से म्लेच्छों का नाश किया। फिर ६० वें अध्याय में चलकर लिखते हैं कि:–

उर्व्यां जातास्तु ये शूद्रा ब्राह्मणानां निवेदिताः।
वृत्यर्थं ब्रह्मयज्ञार्थं करस्तेषु कृतो महान् ॥७४॥
अनेन विधिना जातं विप्राणां शासनं महत् ॥७५॥

अर्थात् 'उस कलि में जब प्रायः सब शूद्र ही ब्राह्मणों के अधीन रह गये तो ब्राह्मणों ने जीविका और यज्ञादि के लिए उन्हीं पर कर लगाया। इस प्रकार से पृथ्वी में ब्राह्मणों का राज्य स्थिर हुआ'। और उसी के ५७ वें अध्याय में लिखा है कि:–

श्रूयन्ते हि तपः सिद्धा ब्रह्मक्षत्रमया नृपाः ॥१२१॥

अर्थात् 'बहुत से ब्राह्मण और क्षत्रिय राजा तपोबल से सिद्ध हो गये सुने जाते हैं'। मत्स्यपुराण के २७२ वें अध्याय में लिखा है कि,

ब्राह्मणास्तु चतुर्विंशा भविष्यन्ति शतं समाः।
ततः प्रभृत्ययं लोकः सर्वो व्यापत्स्यते भृशम् ॥४४॥
चत्वारिंशद्द्विजा ह्येते काण्वा भोक्ष्यन्ति वै महीम्।
चत्वारिंशत्पंच चैव भोक्ष्यन्तीमां वसुन्धराम् ॥३५॥२७१॥

अर्थात्, १०० वर्षों तक २४ ब्राह्मण राज्य करेंगे, उसके बाद सम्पूर्ण लोक विपत्तिग्रस्त होगा। कण्ववंशीय ४० ब्राह्मण ४५ वर्षों तक इस पृथ्वी का राज्य करेंगे।

'ब्राह्मण राज परिचय' नामक ग्रन्थ में एक मैथिल परमहंस महोपदेशक ने ब्राह्मणों के राज्याधिकार में श्रुतियाँ भी लिखी हैं। यथा **'ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत'** (ऋग्वेद) और इस प्रकार उसका अर्थ किया है कि, पृथ्वी का राज्य प्रथम ब्राह्मणों ने प्राप्त किया'। एवं और भी लिखकर उसका अर्थ बतलाया है। यथा **'अस्माकं ब्राह्मणानां राजा' (यजुर्वेद)**, **'ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो न वैश्यः'** (अथर्ववेद)। अर्थ यह है कि 'हम ब्राह्मणों में से वह राजा है। राजा ब्राह्मण ही है, क्षत्रिय वा वैश्य नहीं'। इस प्रकार से श्रुति, स्मृति, पुराण और सदाचारों से सिद्ध है कि ब्राह्मण राजा होते थे और होते हैं, तथा यह उनका शास्त्रोचित धर्म है। इससे कट्टर ब्राह्मणता में कोई धब्बा नहीं लग सकता। इस विषय में बहुत से नये एवं प्राचीन इतिहास भी दिखावेंगे।

जब ब्राह्मण का राज्य करना सिद्ध हो गया तो युद्ध तो उसके लिए अर्थ सिद्ध हो गया। क्योंकि राज्य के साथ उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसके विषय में प्रथम वायु पुराण का प्रमाण भी दिखला चुके हैं। महाभारत के शान्ति पर्व में लिखा है कि:—

ब्राह्मणस्यापि चेद्राजन् क्षत्रधर्मेण वर्त्ततः।
प्रशस्तं जीवितं लोके क्षत्रंहि ब्रह्मसम्भवम् ॥६॥अ०॥२२॥

जिसका अर्थ यह है कि 'अर्जुन ने युधिष्ठिर महाराज से कहा है कि हे राजन् ! जब ब्राह्मण का भी इस संसार में क्षत्रिय धर्म अर्थात् राज्य और युद्धपूर्वक जीवन बहुत ही श्रेष्ठ है, क्योंकि क्षत्रिय ब्राह्मणों से ही हुए हैं, तो आप क्षत्रिय धर्म का पालन करके क्यों शोक करते हैं?' आगे चलकर ७८ वें अध्याय में लिखा है कि:—

ब्राह्मणस्त्रिषु वर्णेषु शस्त्रं गृह्णन् न दुष्यति।
एवमेवात्मत्रस्त्यागान्नान्यं धर्मं विदुर्जनाः ॥२९॥
ब्राह्मणस्त्रिषु कालेषु शस्त्रं गृह्णन् न दुष्यति।
आत्मत्राणे वर्णदोषे दुर्दम्यनियमेषु च ॥३४॥
उन्मर्य्यादे प्रवृत्ते तु दस्युभिः संगरे कृते
सर्वे वर्णा न दुष्येयुः शस्त्रवन्तो युधिष्ठिर ॥१८॥

अर्थात् 'अन्य तीन वर्णों के ऊपर शस्त्र चलानेवाला (युद्धकर्त्ता) ब्राह्मण दूषित नहीं होता क्योंकि किसी आवश्यक कार्य वश इस प्रकार आत्मत्याग करने से बढ़ कर कोई धर्म नहीं माना जाता। युद्ध करनेवाले ब्राह्मण को तीनों काल में कोई दोष नहीं है, विशेषकर अपनी रक्षा, वर्णों की रक्षा और बड़े-बड़े दुष्टों को दबाने के लिये। जब दुष्ट लोगों के युद्ध करने से शास्त्रीय मर्यादा टूटने लगे तो सभी ब्राह्मणादि युद्ध करने से दूषित नहीं होते'। मत्स्यपुराण के १०३ वें अध्याय में लिखा है कि :—

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि क्षत्रधर्मव्यवस्थितिम्।
नैव दृष्टं रणे पापं युध्यमानस्य धीमतः ॥२१॥
किं पुनः राजधर्मेण क्षत्रियस्य विशेषतः ॥२२॥

अर्थात् 'हे राजन् (युधिष्ठिर) क्षत्रिय धर्म की व्यवस्था सुनिये। जब किसी लड़ाई में युद्ध करनेवाले को पाप नहीं होता, तो राजा होकर युद्ध करने वाले का क्या कहना, उस पर भी विशेषकर क्षत्रिय का ?' मत्स्य पुराण के २१४ वें अध्याय राजधर्म प्रकरण में लिखा है कि :—

कुलीनः शीलसम्पन्नो धनुर्वेदविशारदः।
हस्तिशिक्षाश्वशिक्षासु कुशलः श्लक्ष्णभाषिता ॥८॥
निमित्ते शकुने ज्ञाता वेत्ता चैव चिकित्सिते।
कृतज्ञः कर्मणां शूरस्तथा क्लेशसहो ऋजुः ॥९॥
व्यूहतत्त्वविधानज्ञः फल्गुसारविशेषवित्।
राज्ञा सेनापतिः कार्यो ब्राह्मणः क्षत्रियोऽथवा ॥१०॥

अर्थात् 'कुलीन, शीलवान्, धनुर्वेद में निपुण, हस्तियों और अश्वों की शिक्षा में कुशल, मधुरभाषी, शकुनादि तथा चिकित्सा का ज्ञाता, कृतज्ञ, लड़ने में बहादुर, क्लेश सहन करने वाला, सरल स्वभाव, सेना रचना की विधिका ज्ञाता और छोटी बड़ी बातों का विचार करने वाला सेनापति ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय को रखना राजा के लिए उचित है'। अग्निपुराण के २२० वें अध्याय में भी लिखा है कि :—

सोभिषिक्तः सहामात्यो जयेच्छत्रून्नृपोत्तमः।
राज्ञा सेनापतिः कार्यो ब्राह्मणः क्षत्रियोऽथवा ॥१॥

अर्थात् 'अभिषेक के अनन्तर राजा मंत्रियों सहित होकर शत्रुओं को जीते, जिसके लिये ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय को सेनापति बनावे'।

जब कर्ण ने द्रोणाचार्य से ब्रह्मास्त्र का ज्ञान माँगा है तो उन्होंने उत्तर दिया है कि :—

ब्रह्मास्त्रं ब्राह्मणो विद्याद्यथावच्चरितव्रतः।
क्षत्रियो वा तपस्वी योनान्योविद्यात्कथंचन ॥१३॥
स तु राममुपागम्य शिरसाभिप्रणम्य च।
ब्राह्मणो भार्गवोऽस्मीति गौरवेणाभ्यगच्छत ॥ १५ शां.॥२॥

अर्थात् 'ब्रह्मास्त्र केवल शास्त्रोक्ताचार वाला ही जान सकता है, अथवा क्षत्रिय जो तपस्वी होवे, दूसरा नहीं। यह सुन वह परशुरामजी के पास मैं भृगु गोत्री ब्राह्मण हूँ ऐसा बनकर ब्रह्मास्त्र सीखने गया है'। अन्त में जब उन्हें उसका छल विदित हो गया तो उन्होंने शाप दिया है कि :—

तस्मादेतन्न ते मूढ ब्रह्मास्त्रं प्रतिभास्यति ॥३०॥
अन्यत्र वधकालात्ते सदृशेन समेयुषः।
अब्राह्मणे नहि ब्रह्म ध्रुवं तिष्ठेत्कथंचन ॥३१॥ शां. ३॥

अर्थात् 'हे मूढ़, इसलिये ब्रह्मास्त्र का ज्ञान तुझे न रहेगा, केवल उस काल को छोड़कर जब तेरे बराबर वाले से तेरा वध होने लगेगा। क्योंकि यह ब्रह्मास्त्र ब्रह्म ठहरा। इसलिये ब्राह्मण से भिन्न के पास नहीं रह सकता'। इसके अतिरिक्त परशुराम, द्रोण, कृपाचार्य और अश्वत्थामा विप्र धुरन्धरों के युद्धों को कौन नहीं जानता? इन पूर्वोक्त पुराण और

महाभारतादि के वचनों और द्रोणादिके दृष्टांतों से ऐसा कहने वालों का मत निर्मूल हो गया कि यदि ब्राह्मण को युद्ध करना है भी तो केवल आपत्ति काल में। क्योंकि द्रोणादि के ऊपर कौन-सी आपत्ति थी? और जब राजा का सेनापति ब्राह्मण ही हो सकता है, तब तो युद्ध ब्राह्मणों के लिए आपद्धर्म बतलाना नितांत भूल है। किं बहुना, जब उनके लिये राज्य आपद्धर्म नहीं है तो युद्ध कैसे हो सकता है? अतएव मनुस्मृति में स्पष्ट रूप से ८ वें अध्याय में लिखा है कि :–

शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते।
द्विजातीनां च वर्णानां विप्लवे कालकारिते ॥३४८॥
आत्मनश्च परित्राणे दक्षिणानां च संगरे।
स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च घ्नन्धर्मेण न दुष्यति ॥३४९॥

कुल्लूकभट्ट ने भी टीका में साफ लिखा है कि **'ब्राह्मणाद्यैस्त्रिभिर्वर्णैः।'** अर्थात् 'जिस समय वर्णाश्रम धर्म में कोई विघ्न उपस्थित हो, कालवश ब्राह्मणादि वर्णों में परम युद्ध छिड़ जावे, अन्नादि द्वारा अपनी जीविका तथा शत्रु से रक्षा करने का अवसर होवे, दक्षिणा में प्राप्त गौ प्रभृति को कोई छीनने लग जावे, अथवा चतुर लड़ाकों से काम पड़ जावे तो ब्राह्मणादि तीनो वर्णवाले सभी युद्ध कर सकते हैं, और धर्म युद्ध से शत्रुओं को मारने में दोष भागी नहीं होते हैं'। इस पूर्वोक्त मनुवाक्य से जो बुद्धिमान ऐसा अर्थ निकालते हैं कि इतना अवसर गिनाने से युद्ध ब्राह्मण का आपद्धर्म सिद्ध होता है, उनकी बुद्धि की बलिहारी है! क्योंकि इतने ही तो अवसर युद्ध के लिये क्षत्रियों को भी पड़ते हैं। क्या उनके लिये व्यर्थ भी लड़ने की आज्ञा है? गिनाने का तात्पर्य तो केवल यह है कि जिसमें कोई वर्ण मनमाना हरघड़ी शस्त्रादि लेकर धूम न मचाता रहे।

इस प्रकार जब ब्राह्मण का शास्त्रोक्त धर्म युद्ध सिद्ध हो गया, तो जो कहीं कहीं महाभारतादि में इसकी नाम मात्र की कुछ निन्दा आती है, उसका सामान्य रीति से युद्ध को निन्दित ठहराने में तात्पर्य नहीं है, किन्तु दशा विशेष के लिए है। अर्थात् उसका मुख्य तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण भी यह न समझ लेवे कि क्षत्रिय की तरह मेरा भी मुख्य धर्म युद्ध ही है। क्योंकि ऐसा समझने से अपने मुख्य धर्म वेदाभ्यास से वंचित हो जावेगा। जैसा जब कृषि वाणिज्यादि को ब्राह्मणों का सनातन धर्म सिद्ध कर चुके हैं, तो उसके विषय में जो कुछ निन्दा कहीं-कहीं आती है कि:–

गोरक्षकान्वाणिजिकाँस्तथाकारुकुशीलवान्।
प्रेष्यान्वार्धुषिकाँश्चैवविप्राञ्छूद्रवदाचरेत् ।१०२म.॥८॥
कृषिकर्मरतो यश्च गवां च प्रतिपालकः।
वाणिज्यव्यवसायश्च स विप्रोवैश्यउच्यते ।३७८ अत्रिसंहिता

अर्थात् 'गोरक्षक, वाणिज्य करनेवाले, नट, दूत और सूदखोर ब्राह्मण के साथ गवाही के समय शूद्रवत् व्यवहार करना चाहिए। कृषि करने वाला, गोपालक और वाणिज्य करनेवाला ब्राह्मण वैश्य कहलाता है। इन सभी का तात्पर्य केवल अनापत्ति काल में अपने हाथ में (स्वयंकृत) कृषि, वाणिज्य, गोपालन और कुसीद (सूद का व्यवहार) करने में है यानी अनापत्ति काल में अपने हाथ से कृष्यादि करने से ब्राह्मण वैश्य या शूद्रवत् हो सकता है, परन्तु आपत्तिकाल में तो उसे करने से भी नहीं। क्योंकि अनापत्ति में अस्वयंकृत और आपत्ति

में स्वयंकृत कृष्यादि का विधान पूर्व सिद्ध कर आये हैं, और विहित कर्म करने से कोई दोष भागी या नीच, ऊँच नहीं हो सकता।

अतः यह भी कथन, कि युद्धादि करने के कारण ही ये अयाचक ब्राह्मण अपने समाज में नीचे देखे जाने लगे, सर्वथा असंगत है। क्योंकि द्रोण और कृपाचार्य को कौन नीचा देखने वाला था, है या होगा? इस प्रकार यदि कोई शास्त्रोक्त धर्म करने से समाज में हीन समझा जावे तो संध्या, अग्निहोत्रादि जो कुछ अवशिष्ट हैं वे भी रसातल को ही पहुँच जावें। यदि कोई ब्राह्मण सांसारिक झंझटों से उपराम है तो वह युद्धादि मत करे और उसके लिये वह उचित नहीं है। परन्तु जो लोग सांसारिक पद्धार्थों से विरक्त न होकर प्रतिष्ठा, राज्य और लक्ष्मी प्रभृति पदार्थों के अभिलाषी हैं, उनके लिये युद्ध क्यों उचित नहीं और वे उसे क्यों न करें, एवं ऐसा करने से हीन क्यों समझे जावें? शास्त्रीय रीति से तो हमें इसमें कोई कारण दीख नहीं पड़ता। अतः निर्विवाद सिद्ध है कि इस प्रकार बहुत से अयाचक और याचक दल वाले भी ब्राह्मण युद्धादि द्वारा समय-समय पर राज्य और जमींदारी स्थापित करते और फलतः एक पृथक् दल वाले बनते गये।

(३) अयाचक ब्राह्मणों के भूमिहार, त्यागी आदि विशेषण

यद्यपि यह वार्ता विविध प्रमाणों और युक्तियों से सिद्ध कर चुके हैं और अभी करेंगे भी कि प्रतिग्रहादि धर्मों से निवृत्त होकर कृष्यादि द्वारा जीवन व्यतीत करना ही ब्राह्मणों का शास्त्रोचित उत्तम धर्म है तथापि **'रुचीनां वैचित्र्यात्'** अपनी-अपनी रुचि विचित्र होती है, इस नियमानुसार सब लोग प्रतिग्रहादि से निवृत्त रहें, यह बात कब होने की? जब शास्त्रों द्वारा अत्यन्त निषिद्ध और महान दण्ड योग्य चोरी, द्यूत, मद, हिंसा और व्यभिचारादि से ही लोग निवृत नहीं होते, प्रत्युत उन्हीं की संख्या अधिक है। क्योंकि **'दुरत्यया प्रकृतिः'** अर्थात् प्रकृति मिट नहीं सकती। इसी से भगवान कृष्ण ने कहा है कि :–

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृति यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥३। ३३॥

अर्थात् 'जानकार (ज्ञानी) पुरुष भी उत्तम, मध्यम कार्यों के करने से नहीं रुक सकता, क्योंकि सभी प्राणी अपनी-अपनी प्रकृति (स्वभाव) के अधीन हैं, इसलिए वे रुक नहीं सकते'। भगवान श्री गौडपादाचार्य ने भी माण्डूक्य कारिका में कहा है कि:–

नभवत्यमतं मर्त्यं न मर्त्यममृतं तथा।
प्रकृतेरन्यथा भावो न कथंचिद्भविष्यति (तृती०२१) ॥

अर्थात् 'जो अमर है उसका नाश नहीं हो सकता और जो नाश होने वाला है वह अमर नहीं हो सकता, क्योंकि प्रकृति (स्वभाव) का अन्यथाभाव नहीं हो सकता।' तो फिर चाहे कैसे भी हों परन्तु अन्ततोगत्वा जो शास्त्रोक्त धर्म प्रतिग्रहादि हैं उनमें भी लोगों की प्रकृति क्यों न हो? बल्कि स्वभावतः मनुष्य आलसी होने के कारण जिसमें बिना कष्ट द्रव्यादि मिल जावें उसी का करना पसन्द करते हैं, लोक परलोक का विचार कौन करने लग जाता है? यदि कोई करता भी है तो विचार लेता है कि इसके लिये कुछ प्रायश्चित्तादि कर लेंगे। इसीलिये यद्यपि सकाम कर्मों की निन्दा गीता, स्मृतियों एवं पुराणों में बहुत ही कम की गई है और साथ ही निष्काम कर्मों की यहाँ तक प्रशंसा की गई है कि :–

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥गी० २॥

अर्थात् 'थोड़ा भी निष्काम कर्म जन्म-मरण तक के महान् भय को छुड़ा देता है।' तथापि यदि देखा जावे तो ९९ प्रति सैकड़े सकाम कर्मों के ही करनेवाले हैं और निष्काम कर्म को करनेवाला तो बड़े क्लेश से एक भी नहीं मिल सकता। इसीलिये यह भी शंका करना मूर्खता मात्र है कि यदि प्रतिग्रह को अनुचित समझ सभी दानत्यागी ही हो जावें तो दान कौन लेगा? क्योंकि प्रकृति दुरत्यया है। इसलिये सभी दान लेने वालों को शास्त्र नहीं हटा सकता।

इससे यह सिद्ध हो गया कि सृष्टि के प्रारम्भ से ही दो प्रकार के धर्म ब्राह्मणों के चले आते हैं, (१) प्रवृत्ति अर्थात् प्रतिग्रह, याजनादि द्वारा जीवन व्यतीत करना, (२) निवृत्ति अर्थात् प्रतिग्रहादि के त्यागपूर्वक शिल, उञ्छ, वाणिज्य, कृष्यादि द्वारा जीविका करना; तदनुसार ही ब्राह्मण भी दो प्रकार के तभी से होते आये हैं, (१) प्रवृत्त अर्थात् प्रतिग्रहादि में प्रवृत्तिपूर्वक जीवन बिताने वाले, जिन्हें याचक भी कह सकते हैं। (२) निवृत्त अर्थात् प्रतिग्रहादि की निवृत्तिपूर्वक शिल, उञ्छ, कृष्यादि द्वारा यथासम्भव जीवन व्यतीत करने वाले, जिन्हें अयाचक भी कह सकते हैं और इसी दल के प्रकृत भूमिहार ब्राह्मण भी हैं। यद्यपि याचक दल में सभी याचक ही नहीं हैं, किन्तु आजकल बहुत से अयाचक भी हैं, एवं अयाचक दल में बहुत से याचक हैं[1]। क्योंकि, जैसा आगे दिखलाया जावेगा कि 'बहुत से अयाचक ब्राह्मणों का याचक दल के मैथिल, कान्यकुब्ज, सर्यूपारी, गौड़ आदि से विवाह सम्बन्ध है। यद्यपि साक्षात् तो जो याचक दल में भी इस समय अयाचक हैं उन्हीं के साथ हैं, तथापि उनका पुनः याचकों के साथ होने से परम्परया मिल जाता है। तो भी इस अयाचक ब्राह्मण दल में प्राधान्य अथवा आधिक्य अयाचकों का ही है और याचक (पुरोहित) दल में याचकों का ही और उसमें बहुत से अयाचक समय पाकर अभी हाल में धन के कारण हो गये हैं। हमने इस ग्रन्थ मे 'भूयसा हि व्यपदेशा भवन्ति' अर्थात् जिस दल में जो अधिक होता है उसी के नाम से उसका व्यवहार होता है, जैसे जिस ग्राम में ब्राह्मण अधिक होते हैं वह ब्राह्मणों का ग्राम कहलाता है। इस महाभाष्योक्त न्यायानुसार पुरोहित दल से विशेष मिले हुए अर्थात् भूमिहार, त्यागी, पश्चिमा, जमींदारादि ब्राह्मणों से अतिरिक्त ब्राह्मणों का याचक पद से व्यवहार किया है और भूमिहारादि ब्राह्मणों का अयाचक पद से और यही उचित भी है, जैसा दिखला चुके हैं और वृद्ध लोग करते भी आये हैं। इसलिये दोनो दल के ब्राह्मणों के लिये क्रमशः याचक और अयाचक शब्द इस ग्रन्थ के ही लिये नहीं, किन्तु बाहर भी प्रयोग करने के लिये हैं और किये जाने चाहिए।

इसी से इन्हीं दो प्रकार के ब्राह्मणों और इनके धर्मों के विचार से मनुजी ने भी दो प्रकार के कर्म बतलाये हैं जैसे:--

सुखाभ्युदयिकं चैव नैःश्रेयसिकमेव च।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम्॥८८॥
इहचामुत्र च काम्यं प्रवृत्तं कर्म कीर्त्यते।
निष्कामं ज्ञानपूर्वं तु निवृत्तमुपदिश्यते॥८९॥

[1] हजारीबाग के इटखोरी और चतरा थाने के ८-१० कोस में बहुत से भूमिहार ब्राह्मण, राजपूत, कायस्थ और माहुरी आदि की पुरोहिती सैकड़ों वर्ष से करते चले आ रहे हैं और गजरौला, तांसीपुर के त्यागी राजपूतों की।

अकामोपहतं नित्यं निवृत्तं च विधीयते।
कामतस्तु कृतं कर्म प्रवृत्तमुपदिश्यते॥ मनु० अ० १२॥

अर्थात् 'स्वर्गादि सांसारिक सुख, ब्रह्म लोकादि और परम्परया मुक्ति प्राप्त कराने वाले कर्म दो प्रकार के होते हैं, (१) प्रवृत्त, (२) निवृत्त। पूर्वोक्त स्वर्ग, पुत्र एवं धनादि सांसारिक वस्तु तथा ब्रह्मलोकादि की कामनापूर्वक जो कर्म प्रतिग्रह, याजन, तथा यज्ञादि किये जाते हैं, वे प्रवृत्त कहलाते हैं और पूर्वोक्त सुख तथा तदर्थक कर्मों में दोष ज्ञान द्वारा जो निष्काम शिल, उञ्छ, कृष्यादि से जीविका करके किये जाते हैं, वे निवृत्त कहलाते हैं। धनादि की कामना छोड़कर केवल धर्म बुद्धि से धर्मार्थ (धर्मसाधनार्थ) जो कर्म किये जाते हैं वे निवृत्त कहलाते और जो धर्म का विचार न करके केवल धनादि के लिए प्रतिग्रहादि किये जाते हैं वे प्रवृत्त कर्म कहलाते हैं।' अग्नि पुराण में इसी अभिप्राय का प्रायः यही श्लोक है, जैसेः—

प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम्।
काम्यं कर्म प्रवृत्तम् स्यान्निवृत्तं ज्ञानपूर्वकम्॥१६।२४॥

देवलस्मृति में इसको स्पष्ट रूप से कह दिया है कि:--

द्विविधो गृहस्थो यायावरः शालीनश्च। तयोर्यायावरः प्रवरो याजनाध्यापनप्रतिग्रहरिक्थसंचयवर्जनात्। षट्कर्माधिष्ठितः प्रेष्य चतुष्पदगृहग्राम धनधान्ययुक्तोलोकानुवर्तीशालीनः।

अर्थ यह है 'कि ब्राह्मणादि गृहस्थ दो प्रकार के होते हैं, (१) शालीन, (२) यायावर। इन दोनों में से यायावर श्रेष्ठ होता है, क्योंकि वह याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह द्वारा धन संचय नहीं करता (किन्तु अन्य कृष्यादि उपायों द्वारा) और जो याजनादि अथवा ऋत, अमृतादि षट्कर्मों का करने वाला और नौकर-चाकर, पशु, गृह, ग्राम (जमींदारी), धन और धान्य युक्त होवे उसे शालीन कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि याजनादि करने से ब्राह्मण हीन हो जाता है और पशुपालन तथा जमींदारी आदि भी करना ब्राह्मण का शास्त्रीय धर्म है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि याजनादि करने और न करने वाले, किन्तु कृष्यादि करने वाले ये दो प्रकार के ब्राह्मण अनादिकाल से ही चले आते हैं। इसीलिये वैशेषिक दर्शन के भाष्य में महर्षि प्रशस्तपाद ने धर्म निरूपण प्रकरण में स्पष्ट कह दिया है कि :---

विद्याव्रतस्नातकस्यकृतदारस्य शालीनयायावरवृत्त्युपार्जितैरर्थैर्मनुष्यभूत देवपितृब्रह्माख्यानां महायज्ञानां सायम्प्रातरनुष्ठानम्।

अर्थात् 'जिस ब्राह्मण या क्षत्रियादि गृहस्थ ने ब्रह्मचर्य के नियमों की समाप्ति पूर्वक विवाह किया है, उसे पूर्वोक्त शालीन अथवा यायावर की वृत्ति से धनोपार्जन कर उसी से प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल मनुष्य, भूत, देव, पितृ, और ब्रह्म (वेद) इन पांचों के निमित्त पांच महायज्ञ करने चाहिए'। इससे शालीन और यायावर ये दो प्रकार के ब्राह्मण सिद्ध हैं।

यद्यपि पूर्वोक्त देवल स्मृति में यायावर के लिये केवल प्रतिग्रहादि का निषेध स्पष्ट रूप से दिखलाया है और कृष्यादि का नाम नहीं लिया है, परन्तु शालीन का पशुपालन और जमींदारी आदि करना स्पष्ट शब्दों में कहा है। तथापि प्रतिग्रहादि के त्यागने पर अवश्य मनुस्मृति के चतुर्थाध्यायोक्त उञ्छ, शिल और कृष्यादि करने पड़ेंगे। साथ ही समय पाकर शालीन की वृत्तियाँ भी जमींदारी प्रभृति यायावरों के हाथ में जा सकती हैं, या चली गईं।

क्योंकि समय-समय पर वृत्तियों या हर प्रकार के धर्मों का विनिमय (उलट-फेर) हुआ ही करता है, यह प्रकृति का दृढतम नियम है। इसीलिये सम्प्रति ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन सभी की वृत्तियाँ (जीविकायें) प्रायः एक-सी हो गई हैं और जिस सेवावृत्ति (नौकरी) का ब्राह्मण के लिये अत्यन्त निषेध है और था, आज वे प्रायः उसी के करने वाले पाये जाते हैं। इसलिये यायावर ब्राह्मण प्रतिग्रह त्यागी और कृषक हो गये, एवं शालीन प्रतिग्रहादि करनेवाले तथा कृषक हो गये। जो बात आज भी अयाचक ब्राह्मणों और याचक (पुरोहित दल के) ब्राह्मणों में स्पष्ट रूप से पाई जाती है। क्योंकि कृषि दोनो करते हैं, परन्तु एक (अयाचक या भूमिहार, त्यागी आदि) प्रतिग्रहादि से रहित हैं और दूसरे (याचक) प्रतिग्रहादि करने वाले हैं। इससे स्पष्ट है कि प्रायः सभी अयाचक दल के ब्राह्मण देवल स्मृत्युक्त यायावर ब्राह्मण हैं और याचक (पुरोहित) ब्राह्मण शालीन ब्राह्मण हैं।

अथवा यों भी कह सकते हैं कि शालीन ब्राह्मण के लक्षण में जो यह लिखा है कि 'षट्कर्माधिष्ठितः' अर्थात् षट् कर्मों का करने वाला। उसके दो अर्थ हो सकते हैं, एक तो यह कि याजनादि षट् कर्मों का कर्त्ता और दूसरा यह कि उञ्छ, शिलादि षट्कर्मों का कर्त्ता। क्योंकि पूर्व के ग्रन्थ में यह सिद्ध कर चुके हैं कि याजनादि भी शास्त्रों में षट् कर्म कहे जाते हैं और उञ्छ, शिलादि भी और दोनों के करने वाले ही षट्कर्मा कहे जाते हैं। इसलिये शालीन ब्राह्मणों में ही भेद सिद्ध हो गये, एक तो उञ्छ, शिल, कृष्यादि पूर्वक जमींदारी और पशुपालन करने वाले जो सम्प्रति प्रायः अयाचक (त्यागी, भूमिहार, पश्चिमादि) ब्राह्मण कहे जाते है, और दूसरे प्रतिग्रहादि पूर्वक पशुपालनादि करने वाले, जो सम्प्रति याचक (पुरोहित) ब्राह्मण कहे जाते हैं। अतः यह तो निर्विवाद रूप से देवल स्मृति से ही सिद्ध हो गया कि पुरोहित दल वाले ब्राह्मण शालीन कहलाते हैं और इस अयाचक दल के ब्राह्मण यायावर संज्ञक ब्राह्मण हैं। अथवा दो प्रकार के पूर्व निर्दिष्ट शालीन ब्राह्मणों में से ही हैं। साथ ही, याचक और अयाचक दो प्रकार के ब्राह्मण सिद्ध हो गये।

अथर्ववेदान्तर्गत आश्रमोपनिषद्, अथवा कात्यायन स्मृति के देखने से भी यही वार्त्ता सिद्ध होती है, केवल संज्ञाओं में भेद पाया जाता है। क्योंकि लिखा है कि:—

गृहस्था अपि चतुर्विधा भवन्ति, वार्त्ताकवृत्तयः शालीनवृत्तयो यायावरा घोरसांन्यासिकाश्चेति। तत्र वार्त्ताकवृत्तयः कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यमगर्हितमुपयुञ्जानाश्शतसम्वत्सराभिः क्रियाभिर्यजन्त आत्मानं प्रार्थयन्ते। शालीनवृत्तयो यजन्तो न याजयतोऽधीयाना नाध्यापयन्तो ददतो न प्रतिगृह्णन्तः शतसंवत्सराभिः क्रियाभिर्यजन्त आत्मानं प्रार्थयन्ते। यायावरा यजन्तो याजयन्तोऽधीयाना अध्यापयन्तो ददतः प्रतिगृह्णन्तः शतसंवत्सराभिः क्रियाभिर्यजन्त आत्मानं प्रार्थयन्ते। घोरसांन्यासिका उद्धृतपरिपूताभिरद्भिः कार्यं कुर्वन्तः प्रतिदिवसमास्तृतोञ्छवृत्तिमुपयुञ्जानाः शतसंवत्सराभिः क्रियाभिर्यजन्त आत्मानं प्रार्थयन्ते ॥

इस वचन को स्वामी परमानन्द तीर्थ अथवा महादेवानन्द तीर्थ ने 'यतिधर्म निर्णय' ग्रन्थ में अथर्ववेद के आश्रमोपनिषद् का बताया है। परन्तु पडिण्त वर श्रीराम मिश्र ने अपने 'तुरीयमीमांसा' नामक ग्रन्थ में कात्यायन स्मृति का बताया है। एक नाम वाली लघु तथा बृहत् वगैरह कितनी ही स्मृतियाँ और संहिताएँ हैं, जैसे लघुविष्णुस्मृति और विष्णुस्मृति प्रभृति और एक ग्रन्थ के वाक्य दूसरे ग्रन्थों में भी पाये जाते हैं, जैसा प्रथम 'ऋतामृताभ्यां' श्लोक को मनुस्मृति और अग्निपुराण दोनों में दिखला चुके हैं। इसलिये कोई विरोध नहीं हो

सकता। अस्तु, पूर्वोक्त उस वचन का अर्थ यह है कि 'ब्राह्मणादि गृहस्थ भी चार प्रकार के होते हैं, (१) वार्त्ताकवृत्ति, (२) शालीनवृत्ति, (३) यायावर और (४) घोर सांन्यासिक। उनमें से वार्त्ताक वृत्ति उनका नाम है जो अनिन्दित अर्थात् अस्वयंकृत कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य करते हुए सैकड़ों वर्ष में समाप्त होने वाले यज्ञों द्वारा अन्तःकरण को शुद्ध करके आत्मज्ञान की इच्छा करते हैं। जो यज्ञ करते हैं परन्तु करवाते नहीं, अध्ययन करते हैं परन्तु अध्यापन नहीं करते और दान देते हैं परन्तु लेते नहीं और पूर्वोक्त बड़े-बड़े यज्ञों द्वारा आत्मज्ञान की इच्छा करते हैं, वे शालीन वृत्ति कहलाते हैं। जो यजन, याजनादि षट्कर्म करके पूर्वोक्त बड़े-बड़े यज्ञों द्वारा आत्मज्ञान की अभिलाषा करते हैं, उन्हें यायावर कहते हैं और घोर सांन्यासिक वे हैं जो कूप या नदी से जल निकाल उसे शुद्धकर उसी से नित्य क्रियादि करते हुए प्रतिदिन उञ्छ वृत्ति से जीविका करते और उन यज्ञों द्वारा आत्मज्ञान चाहते हैं'।

इससे सिद्ध है कि केवल यायावर संज्ञक ब्राह्मण प्रतिग्रहादि करते हैं और शालीनवृत्ति, वार्त्ताकवृत्ति एवं घोर सांन्यासिक ये तीनों प्रतिग्रहादि का नाम न लेकर केवल कृष्यादि द्वारा जीवन व्यतीत करते हैं। यद्यपि देवल स्मृति में प्रतिग्रह शालीन का धर्म और यायावर का धर्म उसका त्याग कहा है, परन्तु यहाँ उसके विपरीत शालीन को ही प्रतिग्रह त्यागी और यायावर को प्रतिग्राही कहते हैं। तथापि संज्ञा में विवाद होने पर भी धर्म में विवाद नहीं है, जिससे अयाचक और याचक ये दो प्रकार के ब्राह्मण निर्विवाद सिद्ध हो गये। जिनका धर्म यह है कि याचक प्रतिग्राही और अयाचक उसका त्याग करके कृष्यादि द्वारा अपनी जीविका करते हैं, जिन्हीं अयाचकों में से यह भूमिहारादि ब्राह्मण हैं, जिन्हें यायावर या शालीन भी प्रथम ही सिद्ध कर आये हैं।

इसी विषय को साफ शब्दों में महाभारत के शान्तिपर्वान्तर्गत मोक्ष पर्व के १९९ अध्याय में राजा इक्ष्वाकु और एक अयाचक ब्राह्मण के सम्वाद द्वारा दिखलाते हुए प्रतिग्रह को बहुत हीन बतलाया है, जैसा कि:--

ब्राह्मणो जापकः कश्चिद्धर्मवृत्तो महायशाः।
षडंगविन्महाप्राज्ञः पैप्पलादिः स कौशिकः ॥४॥
तस्यापरोक्षं विज्ञानं षडंगेषु बभूव ह।
वेदेषु चैव निष्णातो हिमवत्पादसंश्रयः ॥५॥
सोऽन्त्यं ब्राह्मयं तपस्तेपे संहितां संयतो जपन्।
तस्य वर्षसहस्रन्तु नियमेन तथा गतम्।
स देव्या दर्शितः साक्षात्प्रीतास्मीति तदा किल ॥७॥
अथ वैवस्वतः कालो मृत्युश्च त्रितयं विभो।
ब्राह्मणं तं महाभागमुपागम्येदमब्रुवन् ॥२८॥
तस्मिन्नेवाथ काले तु तीर्थयात्रामुपागतः।
इक्ष्वाकुरगमत्तत्र समेता यत्र ते विभो ॥३४॥
सर्वानेव तु राजर्षिः संपूज्याथ प्रणम्य च।
कुशलप्रश्नमकरोत्सर्वेषां राजसत्तमः ॥३५॥
राजोवाच! **राजाहं ब्राह्मणश्च त्वं यदा षट्कर्म संस्थितः।**
ददाति वसु किंचित्ते प्रथितं तद्वदस्व मे ॥३८॥

ब्राह्मणउवाच ! द्विविधाब्राह्मणाराजन्धर्मश्चद्विविधः स्मृतः।

प्रवृत्ताश्च निवृत्ताश्च निवृत्तोऽहं प्रतिग्रहात् ॥३९॥
तेभ्यः प्रयच्छ दानानि ये प्रवृत्ता नराधिप।
अहं न प्रतिगृह्णामि किमिष्टं किं ददामि ते ॥४०॥
बाल्ये यदि स्यादज्ञानान्मया हस्तः प्रसारितः।
निवृत्तिलक्षणं धर्मपुमासे संहितां जपन् ॥७८॥
निवृत्तं मां चिराद्राजन् विप्रलोभयसे कथम्।
स्वेन कार्यं करिष्यामि त्वत्तो नेच्छे फलं नृप॥
तपः स्वाध्यायशीलोऽहं निवृत्तश्च प्रतिग्रहात् ॥७९॥

अर्थ यह है कि 'पिप्पलाद ऋषि का पुत्र कौशिक गोत्री एक ब्राह्मण था, जो बहुत धर्मात्मा, यशस्वी, महाबुद्धिमान् और षडंगों का ज्ञाता, एवं चारों वेदों की संहिताओं को जपने (पढ़ने) वाला था। उसे षडंग विषयक अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) ज्ञान था और चारों वेदों में भी कुशल होकर हिमालय की तराई में वह रहता था। वह पवित्रापूर्वक संहिता का जप करता हुआ वेदाध्ययनकालिक कठिन तपस्या करता था। इस प्रकार से नियमपूर्वक उसके सहस्त्र वर्ष व्यतीत हो गये। इस पर प्रसन्न होकर सरस्वती ने उसे दर्शन दिया और मैं प्रसन्न हूँ ऐसा कहा। इसके बाद यम, काल और मृत्यु ये तीनों उसके पास आ अपने अपने आने का प्रयोजन कहने लगे। इसी समय तीर्थ यात्रार्थ पर्यटन करते हुए राजा इक्ष्वाकु उसी जगह आ गये जहाँ वे सब एकत्रित थे। राजर्षि ने सभी को नमस्कार कर पूजा करके पुनः उनसे कुशल प्रश्न इत्यादि किया। फिर राजा ने उस तपस्वी ब्राह्मण से कहा कि मैं राजा हूँ और आप षट्कर्म करने वाले ब्राह्मण हैं, इसलिये आपको कुछ धन देने की इच्छा है। जो आपकी इच्छा हो सो कहिये। ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि हे राजन्! प्रतिग्रहादि लेने में प्रवृत्ति और उनसे निवृत्ति ये दो प्रकार के धर्म ब्राह्मणों के हैं, इसलिये ब्राह्मण भी तदनुसार ही दो प्रकार के होते हैं। एक प्रतिग्रहादि में प्रवृत्त और दूसरे उनसे निवृत्त, उनमें से मुझे प्रतिग्रहादि से निवृत्त जानिए। इसलिये दान उन ब्राह्मणों को दीजिये जो प्रतिग्रहादि में प्रवृत्त हैं, मैं प्रतिग्रह नहीं कर सकता। हाँ, आपको क्या चाहिए जो दूँ? यदि मैंने सम्भवतः बाल्यावस्था में भूलकर हाथ पसार दिये हों (दान लिया हो) तो पसार दिये, परन्तु अब वेदों की संहिताओं का पाठ करता हूँ। इसलिए धर्म सेवन करता हूँ। हे राजन्! मैं बहुत काल से निवृत्ति रूप धर्म का ज्ञाता होकर प्रतिग्रहादि से निवृत्ति रूप धर्म का सेवन करता हूँ। अतः मुझे क्या लालच दिखाते हो? मैं अपने ही सामर्थ्य से उपार्जित अन्नादि द्वारा शरीर यात्रा करने वाला हूँ, आपसे कुछ नहीं चाहता। मैं तो केवल तपस्या करने और वेदादि पढ़नेवाला हूँ और प्रतिग्रह से निवृत्त हूँ'।

इस सम्पूर्ण कथा का सारांश यह है कि अयाचक और याचक दो प्रकार के ब्राह्मण सर्वदा होते चले आये हैं। उनमें से याचक तो प्रतिग्रहादि अवश्य करते थे, परन्तु कृष्यादि करते थे और न भी करते थे। लेकिन अयाचक दल वाले तो प्रतिग्रहादि को गर्हित समझ कृषि, वाणिज्यादि द्वारा ही अपनी जीविका करते थे और करते हैं। साथ ही, जैसे याचक लोग शास्त्राभ्यास करते थे वैसे ही अयाचक दल वाले भी। जिन्हीं में से हमारे ये पश्चिमा, भूमिहारादि ब्राह्मण हैं। उन दिनों इन अयाचक ब्राह्मणों में पूर्ण शक्ति थी कि कृष्यादि

भी करवाते और वेदाध्ययनादि भी करते थे। इसलिये बोधायनस्मृति के पंचमाध्याय में लिखा हुआ है कि :--

वेदः कृषिविनाशाय कृषिर्वेदविनाशिनी।
शक्तिमानुभयम् कुर्यादशक्तस्तु कृषिं त्यजेत् ।१०१प्र०१।

अर्थात् 'निरन्तर वेदाभ्यास कृषि का विरोधी है और निरन्तर कृषि भी वेद की विरोधिनी है, इसलिये अपने-अपने समय पर यदि दोनों का साथ करने की सामर्थ्य होवे तो साथ-साथ करे। परन्तु दोनों के एक साथ निबाह सकने की शक्ति यदि न हो तो ऐसी दशा में वेद के लोभ से कृषि का परित्याग भले ही कर देवे'। इसीलिए उस स्मृति के तृतीय प्रश्न के प्रथमाध्याय में भी ९ वृत्तियों को गिनाकर द्वितीयाध्याय में उनका लक्षण करते हुए स्पष्ट रूप से कृषि का विधान किया है। यदि बिल्कुल कृषि वेदाभ्यास की विरोधिनी होती तो इससे पूर्व वेदाभ्यासादि पंचमहायज्ञों के विषय में अथेमे पंचमहायज्ञाः अर्थात् अब इन स्वाध्यायं (वेदाभ्यास) प्रभृति महायज्ञों को कहेंगे, ऐसा कहकर कभी कृष्यादि का निरूपण न करते। परन्तु वे तो स्पष्ट लिखते हैं कि--

ता अनुव्याख्यास्यामः ॥६॥ षण्निवर्त्तनी, कौद्दाली, ध्रुवा, संप्रक्षालनी, समूहा, पालनी, शिलोञ्छा, कापोता, सिद्धेच्छेति नवैताः ।७। तृतीयप्रश्ने प्रथमाध्यायः ॥ कौद्दालीति ।६। जलाभ्याशे कुद्दालेन वा फालेन वा तीक्ष्ण-काष्ठेन वा खनति बीजान्यावपति ॥७॥ कन्दमूलफलशाकौषधीर्निष्पादयति ।८। कुद्दालेनकरोतीति कौद्दाली ॥९॥ तृतीयप्रश्नेद्वितीया० ॥

अर्थ यह है कि 'अब यायावर तथा शालीन की वृत्तियों (जीविकाओं) का निरूपण करते हैं। वे षण्निवर्त्तनी, कौद्दाली, ध्रुवा, संप्रक्षालनी, समूहा, पालनी, शिलोञ्छा, कापोता और सिद्धेछा ये नव हैं। उनमें से कौद्दाली वृत्ति यह है कि जल के समीप (बीज बोने योग्य गीली भूमि में) कुदाल, फाल या चोखे काष्ठ से खोदना (भूमि जोतना) और बीज बोकर कन्द, मूल, शाक और अन्नादि को उत्पन्न करना। यह काम कुदाल प्रभृवि से ही होता है, इसलिए इस जीविका का नाम कौद्दाली है'। उसी जगह शालीन और यायावर का अर्थ करके ये वृत्तियाँ गिनाई गई हैं। वे लिखते हैं कि **'शालाश्रयत्वाच्छालीनत्वम् ।३। वृत्त्या वरया यातीति यायावरत्वम्' ।४।** अर्थात् 'जो बड़े-बड़े प्रासादों में निवास करे उसे शालीन कहते हैं और कौद्दाली आदि श्रेष्ठ वृत्तियों द्वारा जो जीवन व्यतीत करता है उसे यायावर कहते हैं।'

इसी प्रकार याचक ब्राह्मण भी प्रतिग्रहादि के साथ कृष्यादि भी करते हुये, या केवल प्रतिग्रहादि करते वेदाभ्यास से चुकते न थे। बहुत दिनो क्या युग-युगान्तरों तक यही बात होती रही। परन्तु कालक्रम से दोनों दलों में वेदादि के अभ्यास का ह्रास होने लगा। परन्तु प्रतिग्रहादि तथा कृष्यादि बिना शरीर स्थित ही नहीं हो सकता था, इसलिये उसका ह्रास या त्याग असम्भव था। हाँ, उसमें भी कुछ न कुछ उलट-फेर अवश्य होने लगा। जहाँ लोग दो-चार बैलों के हल को अनुचित तथा महापाप समझते थे वहाँ उसे ही उचित समझने लगे। आज तक अयाचक (त्यागी, भूमिहारादि) और याचक (पुरोहित) दोनो दलों में दो ही बैलों द्वारा हल का चलाया जाना उसी वेद-शास्त्रादि के अनभ्यास मूलक धर्म के अज्ञान में प्रमाण हो रहा है। साथ ही, ब्राह्मणों की आजतक सेवावृत्ति (नौकरी) यह स्वाभाविक प्रवृत्ति भी उसी शास्त्र के सम्यक् ज्ञानाभाव को सूचित कर रही है, जिससे अब धर्मज्ञान होने पर भी वह पड़ा हुआ स्वाभाविक अभ्यास नहीं छूटता। यहाँ यह बात भी भूलनी नहीं चाहिये कि

अयाचकों तथा याचकों का सम्बन्ध प्रथम से लेकर उस समय तक भी घनिष्ठ और परस्पर विवाह सम्बन्ध तथा खान-पान प्रायः हुआ करते थे। कुछ भी रोक-टोक न होकर यह वार्त्ता प्रत्येक की इच्छा पर निर्भर थी, न कि आज कल की तरह सब सम्बन्ध बहुत ढीला हो रहा था। हाँ, कुछ-कुछ मतभेद के विचार इस विषय में अवश्य उठ रहे थे जो आज बहुत बढ़ गये हैं और उन्होंने परस्पर के संबंध को बहुत स्थलों में अधिक ढीला कर दिया और बहुतेरी जगहों में तो उसका अभाव ही कर दिया है और करना चाहते हैं। इसी समय लोग यथार्थ धर्मज्ञान न होने के कारण धनोपार्जन तथा जीविका के लिये अन्यान्य उपायों का भी अवलम्बन करने लग गये।

यह बात मनु भगवान् के बाद की और पौराणिक काल और बौद्ध काल से पूर्व तथा मुसलमानों के बाद समय तक की है। इस विषय को अनेक ग्रीक, पाली तथा जैन ऐतिहासिक ग्रन्थों के (क्योंकि हमलोगों का लिखा इतिहास उस समय का मिलता ही नहीं), एवं प्राचीन शिला लेखादि के आधार पर बहुत से अंग्रेजी विद्वानों ने इस प्रकार लिखा है:--

जे. डबल्यू. मेक् क्रिण्डिल एम. ए. (J. W. Mc. Crindle, M.A.) ने अपनी 'प्राचीन भारत' (Ancient India) नामक अंग्रेजी पुस्तक में मेगस्थनीज और एरियन (Megasthenes and Arrian) नामक यूनानी (ग्रीक) यात्रियों के सन् ईस्वी से लगभग ३०० वर्ष पूर्व के भारतीय जाति विवरण का अनुवाद १३६ पृष्ठ में इस प्रकार किया है :--

For among the more civilized Indian communities life is spent in great variety of separate occupations. Some till the soil'; some are soldiers; some traders; the noblest and the richest take part in the direction of state affairs, administer justice and sit in council with the kings. A fifth class devotes itself to the philosophy prevalent in the country, which almost assumes the fom of a religion and the members always put an end to their lives by a voluntary death on a burning funeral pile.

इसका मर्मानुवाद यह है कि 'क्योंकि बहुत ही शिक्षित भारतवासी अपने जीवन को विविध प्रकार से बिताते हैं। कोई जमीन जोतते अर्थात् कृषि करते हैं, कोई सिपाही और व्यापारी (वाणिज्यकर्त्ता) होते हैं और जो सबसे धनी और श्रेष्ठ हैं वे राज्य कार्य के सुधार में लगे रहते, न्याय करते और राजा के साथ राजसभा में बैठते है। एक पाँचवाँ दल है जो उन दर्शनों (धर्म शास्त्र और ज्योतिषादि) में संलग्न रहता है जो इस समय देश में प्रचलित हैं और धार्मिक कार्य का एक अंश माने जाते हैं। समाज के बहुत से लोग सर्वदा स्वच्छन्दतापूर्वक जलती चिता पर आरूढ़ होकर प्राणान्त करते हैं।'

उसी पुस्तक के ८३ पृष्ठ में लिखा है कि:--

The philosophers are first in rank, but form the smallest class in point of number; Their services are employed privately by persons who wish to offer sacrifices or perform other sacred rites, and also publically by the kings at what is called the great Synod, where-in at the begining of the new year all the philosophers are gathered together before the kings at the gates, when any philosopher, who may have committed any useful suggestion to

writing or Observed any means for improving the crops and cattle, of promoting the public interests,declares it publically.

इसका भाव यह है कि 'इस समय दार्शनिकों (मन्त्र, तन्त्र और ज्योतिषादि के ज्ञाताओं) का दर्जा सबसे ऊँचा है, परन्तु वे संख्या में सब से कम हैं। उनका काम विशेष रूप से उन लोगों के यहाँ पड़ता है, जो कुछ पूजा या धार्मिक कार्य करना चाहते हैं। एवं सर्वसाधारण रूप से राजा के यहाँ भी उन धर्म सभाओं में उनका काम पड़ा करता है जिनमें वर्ष के प्रारम्भ में सभी दार्शनिक राजा के सामने राजद्वार पर एकत्रित किये जाते हैं। उस समय कोई दार्शनिक, जो लेख के लिये कोई उपयोगी बात सोचे होता, सर्वसाधारण की कृषि या पशुओ कों उन्नति का कोई साधन विचारे होता, अथवा किसी सर्वसाधारण के हित को विचारे होता है, उसे सर्वसाधारण के सम्मुख वर्णन करता है'। इससे स्पष्ट है कि सन् ईस्वी से ३०० वर्ष पूर्व केवल पुरोहिती आदि से जीविका करने वालों की संख्या बहुत कम थी और ब्राह्मणादि राज-काज, कृषि-वाणिज्यादि में बहुत प्रवृत्त थे। साथ ही वेदादि का अभ्यास इतना कम हो रहा था कि पुरोहिती करने और मंत्र, तन्त्रादि जाननेवालों को भी दार्शनिक कहा करते थे।

महाराज श्री काशिराज की जो वक्तृता सभापति के रूप में काशी में होनेवाली भूमिहार ब्राह्मण महासभा में यूनानी यात्री अरस्तू (Aristole) या किसी अन्य और फाहियान (Fahian) नामक चीनी यात्री इन दानों के लेखों के आधार पर सन् १९०० ई० में हुई थी वह भी इस सिद्धान्त को पुष्ट करती है। वह इस प्रकार है।

In the year 331 B.C. Aristotle visited India in company of Alexandar the Great, and he wrote that, now the ideas about castes and professions, which have been prevalent in Hindustan for a very long time, are gradually dying out, the Brahmans, neglecting their education,................. live by cultivating the land and acquiring the territorial possessions, which is the duty of Kshatriyas. If things go on in this way, then instead of being (विद्यापति) i.e. master of learning they will become (भूमिपति) i.e. master of land.

अर्थात् 'सन् ईस्वी से ३३१ वर्ष पूर्व सिकन्दर बादशाह के साथ अरस्तू भी भारतवर्ष में आया था। उसने उस समय भारत में घूमकर ऐसा लिखा है कि जो बन्धन जाति और उसके कर्म विषयक भारतवर्ष में बहुत दिनों से प्रचलित थे, वे अब धीरे-धीरे ढीले होते जाते हैं और ब्राह्मण विद्या विमुख हो पुरोहिती वृत्ति को छोड़कर कृषि और राज्यादि द्वारा अपना जीवन बिताते हैं जो क्षत्रियों के कर्म समझे जाते हैं। यदि यही दशा रही तो ये लोग विद्यापति होने के बदले भूमिपति हो जावेंगे।' इसी प्रकार:--

In the year 399 A.D. a Chinese traveller named Fahian came to India, and he wrote in his book on travels, after giving vivid description of Magadha, that owing to the families of the Kshatriyas being almost extinct, great disorder has crept in . The Brahmans having given up asceticism .... are ruling here and there in the place of Kshatriyas, and are called 'Sang he Kang',which has been translated by professor Hoffman as"Land seizer".

अर्थात् 'सन् ३९९ ईस्वी में फाहियान नाम का जो चीनी यात्री भारतवर्ष में आया था, उसने अपने भ्रमण वृत्तान्त में मगध देश का वर्णन करते हुए लिखा है कि इस देश में क्षत्रिय वंशों के नष्टप्राय हो जाने से बहुत ही गड़बड़ी मच गई है। ब्राह्मण दान ग्रहण रूप अपना निजी कर्म छोड़कर क्षत्रियों की जगह राज्य करते और 'सांग हे कांग' कहे जाते हैं जिसका अनुवाद प्रोफेसर 'हाफमन (Hoffman) ने भूमि छीनने वाला (land seizer) किया है'।

इससे यह भी सिद्ध है कि कम-से-कम दो सहस्त्र वर्षों से तो अवश्य अयाचक ब्राह्मणों में बहुतेरों की संज्ञा भूमिपति या भूम्यधिकारी है। क्योंकि 'लैंड सीजर' (land seizer) शब्द का अर्थ भूमि पर अधिकार जमा लेने वाला अर्थात् भूम्यधिकारी है. कारण कि अधिकार जमाने या बलात् छीन लेने को ही अंग्रेजी में सीज (seize) कहते हैं। इस जगह लैंड सीजर (land seizer) पद को देख झटपट उसका 'भूमिहार' अर्थ करके किसी ने ऐसा अनुमान किया है कि अयाचक ब्राह्मणों की भूमिहार संज्ञा भी दो सहस्त्र वर्षों से कम की नहीं है। परन्तु यह बात उचित नहीं है। क्योंकि जिस मगध देश में ब्राह्मणों के लिये लैंड सीजर (land seizer) शब्द आया है वहाँ आज तक भूमिहार शब्द का प्रयोग हुआ ही नहीं। किन्तु यहाँ तो ब्राह्मण मात्र के लिये ब्राह्मण अथवा बाभन शब्द आया करता है। हाँ, अब कहीं-कहीं भूमिहार ब्राह्मण महासभा के प्रचार से उसका भी प्रयोग होने लगा है। परन्तु जिस बंगदेश में मगध है. उसी में, या उसके आसपास के प्रान्तों में अधिकारी अथवा भूम्यधिकारी ब्राह्मण शब्द अयाचक ब्राह्मण जमींदारों के लिये आया करता है। इसीलिये जयपुर राज्यान्तर्गत फुलेरा स्थान से प्रकाशित 'जात्यन्वेषण' नामक ग्रन्थ के प्रथम भाग में अकारादि नामवाली जातियों में अधिकारी या भूम्यधिकारी ब्राह्मणों का भी निरूपण आया है। इस विषय का विशेष निरूपण आगे करेंगे।

अस्तु, इसी प्रकार टी० डब्ल्यू० हिसडेविड्स, एल० एल० डी०, पी० एच० डी० (T. W. RhysDavids L.L.D. Ph. D.) ने जो अंग्रेजी 'बौद्धकालिकभारत-राज्यवंश-इतिहास' (The Story of the nations. Buddhist India) नामक लिखी है, उसमें 'जातक' प्रभृति पाली तथा अन्य ग्रन्थों के आधार पर इस प्रकार लिखा है कि:– "The carpenters, smiths and potters, for instance, had villages of their own. So had the Brahmins, whose services were in request at every domestic events. Khomadussa, for instance, was a Brahmin settlement." (Pages 20,21)

'The Angraja in the Buddha's time, was simply a wealthy nobleman. and we only know of him as the grantor of a pension to a particular Brahmin." (page 24)

"A very old text (Sa. B. XIII-7-15) apparently implies that a piece of ground was given as a sacrificial fee" (Page 47)

"Great importance was attached to these rights of postures and forestry. The priests claimed to be able, as one result of performing a particular sacrifice, to ensure that a widet ract of such land should be provided (Sat.B. 13-3-7) And it is often made a special point, in describing the grant of a village to a priest that it contained such commoneand." (Dialogue of Buddha page 48).

"It will have been seen, however, that mass of the people, the villagers, occupied a social grade quite different from and for above, our village folk. They held it degradation, to which only dire misfortune would drive them, to work for hire. They were proud of their standing, their family, and their village. And they were governed by headmen of their own class, and village, very probably selected from themselves in accordance with their own customs and ideals.".(VinayaJatakas. Page 51) .

"Then came the Brahmins claiming descent from the sacrificing priests, and though the majority of them followed then other pursuits, they were equally with the nobles (Chattris), distinguished by high birth and clear complexion. People could and did change their vocations by adopting one or other of these low trades. Thus at Jat 5.290, a love lorn Kshatriya works successfully (without any dishonour or penalty) as a potter, basket-maker, reedworker, garland-maker and cook. Also at Jat. 6.372. a Sethi works as a tailor and as a potter, and still retains the respect of his high born relations." page 75) .

" The three upper classes had originally been one; for the nobles and priests were merely those members of the third class; the Vessas who had raised themselves into a higher social rank. And though more difficult probably than it had been, it was still possible for analogous changes to take place. Poor men could become nobles, and both could become Brahmins" (55).

"That there was altogether a much freer possibility of change among the social rank than is usually supposed is shown by the following instances of occupation; (1) A Kshatriya, a King's son, apprentices himself successively, in pursuance of a love affair, to a potter, a basket maker, a floorist and a cook, without a word being added as to loss of caste, when his action becomes known. (Jat.11.5.290). (2) Another prince resigns his share in the kingdom in favour of his sister, and turns trader. (Jat. 4 84). (3). A third prince goes to live with a merchant and earns his living by his hands. (Jat. 4. 169). (4) A noble takes, for a salary, as an archer (Jat. 2. 8) . (5) A Brahmin takes to trade to make money to give away, (Jat. 4. 15) . (6) Two other Brahmins live by trade without any such excuse. (Jat. 5. 22.47.). (7) A Brahmin takes the post of an assistant to an archer, who had himself been previously a weaver. (Jat. 5. 127). (8-9) Brahmins live as hunters and trappers. (Jat. 2. 200,6,170). (10) A Brahmin is a wheel -wright. (Jat. 4. 207). Brahmins are also frequently mentioned as engaged in agriculture and as hiring themselves out as cow-herds and even goat-herds. These are all instances from the Jatakas" (Page 56).

इस पूर्वोक्त अंग्रेजी ग्रन्थ का अनुवाद इस प्रकार है– 'जैसे बढ़ई, सुनार और कुम्हारों के गाँव थे, वैसे ही उन ब्राह्मणों को भी गाँव मिले थे जिनकी आवश्यकता प्रत्येक गृह-कार्य में होती थी। दृष्टांतार्थ खोमडुस्सा नामक एक ग्राम ब्राह्मणों की जमींदारी थी (पृष्ठ २०,२१)। बुद्धदेव के समय में जो अंग देश का राजा था उसके विषय में हमें इतना ही विदित है कि वह केवल एक धनाढ्य और प्रतिष्ठित पुरुष था और किसी विशेष ब्राह्मण को पेन्शन देता था (पृष्ठ २४)। एक प्राचीन ग्रन्थ (शतपथ ब्राह्मण १३।७।१५) से यह स्पष्ट विदित होता है कि दक्षिणा में कुछ भूमि ब्राह्मणों को दी जाती थी' (पृष्ठ ४७)।

चारागाह और जंगलों के अधिकार की ओर ब्राह्मणों का विशेष ध्यान था। पुरोहित सर्वदा इस बात का दावा करते थे कि किसी यज्ञादि कराने के बदले उन्हें ऐसी भूमि की प्राप्ति हो। (शतपथ ब्राह्मण १३।३।७) दानपत्र लिखने में इस विषय का विशेष ध्यान रहता था कि इसमें इस प्रकार के एकाध चारागाह या जंगल भी रहें। (बुद्धदेव के उपदेश पृ० ४८)। देखने से प्रतीत होता है कि उस समय के सामान्य ग्रामीण जनों की सामाजिक अवस्था आधुनिक ग्रामीणों की अवस्था से बिल्कुल मिलती-जुलती न थी, प्रत्युत बहुत ही चढ़ी-बढ़ी थी। यदि वे दुर्दैव वशात् वेतन (तनख्वाह) पर काम करते तो उससे अपनी हतभाग्यता और अप्रतिष्ठा समझते थे। उनको अपनी सामाजिक अवस्था, कुटुम्ब और ग्राम का बड़ा गर्व था। बहुधा उनका शासन वे ही स्वर्गीय तथा स्वग्रामीण नेता करते थे, जिनको वे लोग अपनी परम्परा प्राप्त रीतियों और सिद्धान्तों के अनुसार अपने में से चुनते थे''। (विनय जातक पृ० ५१)।

''ब्राह्मण लोग अपने को पुरोहितों के वंशज कहा करते थे। और यद्यपि उस समय अधिकांश में वे लोग अन्यान्य व्यवसाय किया करते थे, तथापि भद्र पुरुषों (क्षत्रियों) की भाँति वे भी अपने उच्च वंश और गौरव के लिये प्रसिद्ध थे। लोग इन नीच व्यवसायों में से किसी को कर लेते और फिर अपने व्यवसाय को बदल सकते और बदल लेते थे। जैसा 'जातक' ग्रन्थ के ५।२९० से विदित होता है कि एक स्त्री परित्यक्त क्षत्रिय निरन्तर (बिना किसी मानहानि या दण्ड का भी भागी हुए) कुम्हार, धरिकार, चाण्डाल, माली तथा रसोईदार का काम करता था। यहाँ तक कि 'जातक' ग्रन्थ के ६।३७२ से विदित है कि सेठी (श्रेष्ठी या श्रेष्ठ पुरुष अथवा सेठ) दर्जी और कुम्हार का काम करते हुए भी अपने को निज के उच्च श्रेणी वाले संबन्धियों की भाँति गौरवान्वित ही समझते थे'' पृष्ठ (५७)।

''पहले द्विजाति लोग एकही थे, कारण कि तृतीय अर्थात् वैश्य वर्ग में से वे ही क्षत्रिय और ब्राह्मण (पुरोहित) हो जाते थे जो अपनी सामाजिक अवस्था में उन्नति कर लेते थे। यद्यपि अब यह बात सम्भवतः प्रथम से कठिन हो गई थी, फिर भी ऐसे परिवर्तनों की सम्भावना रहा करती थी। निर्धन लोग क्षत्रिय और दोनों ब्राह्मण हो सकते थे'' (पृ० ५५)

नोट :– यहाँ इस विषय को समझ लेना चाहिए कि 'सब द्विज एकही थे, इस कथन का तात्पर्य यह नहीं है कि वस्तुतः वे लोग एकही थे, किन्तु उनके व्यवसाय ऐसे मिले थे और सभी का वेदादि का अभ्यास ऐसा छूटा था कि सभी एक से प्रतीत होते थे। अतः वास्तव में ब्राह्मणों में से ही जो कुछ थोड़ा बहुत पढ़ लेते थे, वे और ऐसा प्रतीत होता था कि वे वैश्यों में ही हुए हैं। इसी प्रकार जो वास्तव क्षत्रिय ही बलवान, प्रतिष्ठित और धनी हो जाता था वही क्षत्रिय प्रतीत होता था न कि दूसरे उसके जातीय लोग। इसीलिए निर्धन से क्षत्रिय और ब्राह्मण होना लिखा है, न कि वास्तव में अन्य जाति अन्य हो सकती थी। इस कथन से इस

इस बात की पुष्टि होती है कि उस समय ब्राह्मण का चिह्न केवल पुरोहिती या भिक्षावृत्ति न थी, किन्तु वे लोग पूर्ण धनवान और प्रतिष्ठित एवं बलवान भी हुआ करते थे।

निम्नलिखित व्यवसाय (व्यापार, काम) सम्बन्धी उदाहरणों से प्रकट होता है कि उस समय सामाजिक दशा में परिवर्तन होनें की अधिकांश सम्भावना थी''। उदाहरण ये हैं :—

(१) ''कोई किसी के प्रेम में बँधा हुआ क्षत्रिय राजकुमार धरिकार, माली और रसोईदार का काम निरन्तर करता है, किन्तु उसका यह कर्म लोगों पर प्रकट हो जाने पर भी जातिच्युत होने का दोष उसपर लगाया नहीं जाता (जातक २।५।२९०)। (२) कोई राजकुमार राजपाट का अपना अंश अपनी भगिनी को देकर स्वयं वाणिज्य में प्रवृत्त हो जाता है (जातक ४।८४)। (३) कोई राजकुमार व्यापारियों के साथ रहता और अपने हाथों से कमाकर जीवन बिताता है। (जातक ४। १६९)। (४) कोई क्षत्रिय वेतन (तनख्वाह) पर तीर चलाता है (जातक २।८)। (५) एक ब्राह्मण दान देने के लिए व्यापार (वाणिज्य) द्वारा धनोपार्जन करता है (जातक ४।१५)। (६) दो ब्राह्मण ऐसे मिलते हैं जो बिना किसी विचार या शंका के व्यापार (वाणिज्य) द्वारा जीविका करते हैं (जातक ५।२२।४७)। (७) एक ब्राह्मण जो प्रथम कपड़ा बुनता था, किसी तीर चलाने वाले का सहायक बनता है (जातक ५।१२७)। (८,९) ब्राह्मण व्याधा और शिकारी (जाल फैलाने वाले) का काम करते हैं'' (जातक २।२००,६।१७०)।

नोट—इस दृष्टान्त से स्पष्ट है कि शास्त्राभ्यास की कमी से धार्मिक भाव बहुत ही शिथिल हो रहा था जिससे ब्राह्मणादि अपने को ही नहीं पहचान सकते थे।

''(१०) कोई ब्राह्मण पहिया बनाने का काम करता है (जा०४।२०७)। ब्राह्मण बहुधा कृषि करनेवाले पाये जाते हैं और वेतन पर अहीर और गड़ेरिये का भी काम करते हैं। ये सब उदाहरण जातक नामक पाली भाषा के ग्रन्थों से उद्धृत हैं।'' (पृ० ६)।

इस पूर्व कथन से यह बात स्पष्ट झलक रही है कि बौद्धकाल में ब्राह्मणों में वैदिक एवं स्मार्त्त भाव कैसा मन्द हो रहा था और शास्त्रीय ज्ञान से विमुख हो सभी लोग कैसे स्वेच्छाचारी हो रहे थे। साथ ही ब्राह्मण भी विशेष रूप से कृषि वाणिज्य में ही दत्तचित्त थे। यह दशा सनातनधर्म की केवल बौद्ध धर्म के प्रभाव से नहीं हुई थी, किन्तु 'आगमापायि-नोऽनित्याः' अर्थात् सभी सांसारिक पदार्थ एक से रहने वाले नही हैं, इस प्रकृति के अटल नियमानुसार बौद्धधर्म के आगमन से पूर्व ही थी। जैसा हम कह चुके हैं कि सनातनधर्म ह्रासोन्मुख हो रहा था। इसी बात को पूर्वोक्त ही अंग्रेजी ग्रन्थ में इस प्रकार कहा है :-

And a fortiori -unless it be maintained that Budhism brought about a great change in this respect-the state of things must have been even more lax at the time when Buddism arose. (Page 56)

इसका भाव यह है कि 'पृष्ठ ५६ में लिखा है कि जब तक प्रबल प्रमाण से यह सिद्ध न हो जावे कि पूर्वोक्त विषयों में बौद्धधर्म ने बहुत उलट-फेर किया, यह बात अवश्य स्वीकार करनी होगी कि जिस समय बौद्धधर्म भारत में आया उस समय प्राचीन बातें बहुत ढीली पड़ रही थीं'। इसके बाद पूर्वोक्त ही ग्रन्थ के Brahmin Position अर्थात् 'ब्राह्मणों की स्थिति' नामक प्रकरण में २४९ वें पृष्ठ में ब्राह्मणों या पुरोहितों के विषय में विशेष रूप से सन् ईस्वी से ७०० वर्ष पूर्व की बात यो लिखी है :—

In any case there was no central organisation of the priest-hood; there were no permanent temples to their gods and such sacred shrines as the people could frequent were the sacred trees or other objects of veneration belonging to the worship of the local gods and quite apart from the cultus or influence of the priests. And the latter were divided against themselves. They vied with one another for sacrificial fees. The demand for their services was insufficient to maintain them all. Brahmins followed, therefore, all sorts of other occupations; and those of them not continually busied about the sacrifice were often inclined to views of life, and of religion, different from the views of those who, were, We find Brahmins ranking Tappas, self-torture, above sacrifice (Page 249)

इसका अर्थ यह है कि "किसी दशा में पुरोहितों की कोई प्रधान संस्था न थी। उनके देवताओं के निमित्त कोई स्थायी मन्दिर न थे। ऐसे पवित्र देव स्थान जहाँ लोग प्रायः जाया करते थे, या तो पवित्र वृक्ष थे या स्थानीय देव पूजा सम्बन्धी पवित्र पदार्थ जो पुरोहितों के अन्धविश्वास और प्रभावों से बिल्कुल अलग थे। पुरोहितों में परस्पर विरुद्ध दलबन्दी थी और वे लोग दक्षिणा के लिये परस्पर एक-दूसरे से स्पर्धा रखते थे। पुरोहितों की चाह इतनी कम थी कि पुरोहिती से सबकी जीविका न हो सकती थी। इसलिये ब्राह्मण सभी प्रकार के अन्य व्यवसाय (कृषि, वाणिज्यादि) करते थे। उनमें से जो निरन्तर पुरोहिती न करते थे अर्थात् अन्य उपायों द्वारा जीविका करते थे, उनके धार्मिक और आध्यात्मिक विचार प्रायः उन लोगों के विचारों से विपरीत थे, जो पुरोहिती में दिन-रात लगे हुए थे। उय समय ऐसे भी ब्राह्मण पाये जाते थे जो पूजा-पाठ की अपेक्षा तपस्या को श्रेष्ठ समझते थे'।

इसके बाद ही लिखते हैं कि :--

Unable, thferfore; to say the progress of newer ideas, the priests strove to turn the incoming tide into the channels favourable to their orders.

अर्थात् इन पूर्वोक्त नये विचारों की उन्नति को रोकने में असमर्थ हो पुरोहित इन नये विचारों को अपने समाज के अनुकूल परिवर्तित करने के यत्न करने लगे'। तात्पर्य यह है कि जिस किसी प्रकार से अन्य विचार वाले पुरोहितों के फन्दे में आ फँसें उसी का यत्न करने लगे। पुरोहिती की प्रशंसा करने तथा अन्य व्यवसाय वाले ब्राह्मणादि वर्णों को किसी तरह नीच बनाने का यत्न करने लगे, जिससे वे लोग उन्हें मानने और पूजने लगें। यही कारण है कि सम्पूर्ण शास्त्र, पुराण निन्दित भी पुरोहिती आज श्रेष्ठ मानी जा रही है और जो उसका न करने वाला होवे वह ब्राह्मण ही नहीं समझा जाता। क्योंकि यही समझने और समझाने लग गये थे और लग गये हैं कि दान लेना ही ब्राह्मणता का चिह्न है। यद्यपि इस विषय का सूत्रपात पूर्वोक्त लेखानुसार बौद्ध काल में नहीं हुआ था, परन्तु आते-आते यवन काल में उसकी पुष्टि हो गई, जिसका निरूपण आगे करेंगे।

आनरेबल मौंट स्टुअर्ट एलफिन्स्टन साहब ने (Hon. Mount Stuart Elphinstone) भी अपने 'भारतवर्ष का इतिहास' (History of India) नामक अंग्रेजी ग्रन्थ में मनु भगवान् के बाद से लेकर आज तक के परिवर्तनों का निरूपण इसी प्रकार ग्रीक तथा पाली आदि ग्रन्थों के आधार पर किया है। उन्होंने अपनी पुस्तक के ५४,५५ पृष्ठों में, मनु भगवान् के बाद

से आज तक जो उलट-फेर हमारे रस्म रिवाजों में हो गये हैं, उनका वर्णन करते हुए ब्राह्मणों के विषय में लिखा है कि:--

The Brahmins themselves although they have preserved their own lineage undisputed, have, in a great measure, departed from the rules and practices of their predecessors. In some particulars they are more than formerly, being denied the use of animal food, and restrained from inter-marriages with the inferior class; but in most respects their practice is greatly relaxed. The whole of the four-fold division of their life, which all restraints imposed on students, hermits, and abstracted devotees, is now laid aside as regards the community; though individuals at their choice. may still adopt some one of the modes of life which formerly were to be gone through in turn by all.

Brahmins now enter into services, and are to be found in all trades and professions. The number of them supported by charity, according to the orginal system, is quite insignificant in proprortion to the whole. It is common to see them as husbandmen, and, still more, as soldiers; and even of those trades which were expressly forbidden to them under severe penalties, they only scruple to exercise the most degraded, and in some places not even those. In the south of India however, their peculiar secular occupations are those connected with writing and public busines. From the minister of state down to the village accountant the greater number of situations of this sort are in their hands, as in all interpretation of the Hindu Law, a large share of the ministry of religion, and many empolyments (such as farmers of the revenue &c.) where a knowledge of writing and business is required. In the parts of Hindostan where the Moghal system was fully introduced,the use of the Persian language has thrown public business into the hands of Mussulmans and Cayets (a caste of sudras). Even in the Nizam's territorries in the Deccan the same cause has in some degree diminished the employments of the Brahmins, but still they must be admitted to have every where a more avowed share in the government then in the time of Manu's code, when one Brahmin counsellor, together with the judges, made the whole of their portion in the direct enjoyment of power.

It might be expected that this worldly turn of their pursuits would deprive the Brahmins of some part of their religious influence; and accordingly, it is stated by a very high authority (Prof. Wilson, Asiatic Researches) that (in the provinces on the Ganges, at least) they are nul as a hierarchy, and as literary body few and little countenanced. Even in the

direction of consciences of families and of individuals they have there been supplanted by Gosayens and other monastic orders.

Yet even in Bengal they appear still to be objects of veneration and of profuse liberality to the laity. The ministry of most temples, and the conduct of relgious ceremonies, must still remain with them; and in some parts of India no diminution whatever can be perceived in their spiritual authority. Such is certainly the case in the Maratta country and would appear, to be so like -wise in the west of Hindostan. The temporal influence derived from their number, affluence, and rank subsists in all parts; but even where the Brahmins have retained their religious authority they have lost much of their popularity .

इसका मर्मानुवाद यह है कि 'यद्यपि ब्राह्मण अपनी वंश-परम्परा पर स्थित हैं, तथापि अपने पूर्वजों की अपेक्षा उनके आचार-व्यवहारों में बहुत भिन्नता पाई जाती है। मांस न खाने और नीचों के साथ विवाह न करने में अपने पूर्वजों से बढ़ गये हैं, परन्तु बहुत-सी बातों में प्रथम की अपेक्षा उनके आचार-व्यवहार ढीले हो गये हैं। साधारणतः समाज भर में चारो आश्रमों और उनके नियमों का पालन नहीं होता। हाँ, कोई-कोई स्वेच्छानुसार किसी-किसी आश्रम का अनियमित रूप से पालन करता है, जिनका पालन पहले सभी क्रमशः करते थे। ब्राह्मण अब नौकरी एवं वाणिज्य-व्यापार करने वाले पाये जाते हैं। प्राचीन प्रथा के अनुसार दान द्वारा जीवन व्यतीत करने वालों की संख्या अब बहुत कम हो गई है। साधारणतः कृषि और युद्धविद्यावाले पाये जाते हैं, और वे लोग उन वस्तुओं का भी विक्रय करते हैं जिनका विक्रय प्रथम निषिद्ध और दण्डनीय समझा जाता था। कहीं-कहीं वे लोग ऐसा करना घृणित समझते हैं और कहीं-कहीं नहीं। दक्षिण भारत में उन लोगों के काम लिखना और जन साधारण के कार्य हैं। मंत्री पद से लेकर ग्राम कार्यकर्त्ता तक के पद बहुधा उन्हीं के हाथों में रहते हैं और जिनमें लिखने और व्यवहार की निपुणता अपेक्षित है ऐसे कार्य भी। जैसे धर्मशास्त्रों के अनुवाद, धार्मिक प्रबन्ध का अधिकांश और अन्य बहुत से व्यापार, जैसे मालगुजारी का उगाहना आदि। भारत वर्ष के उन भागों में जहाँ मुगल राज्य पूर्णतया स्थापित था, फारसी भाषा के प्रचार ने जन-साधारण का कार्य मुसलमानों और कायस्थों (एक प्रकार के शूद्रों) के हाथों में डाल दिया है। इसी प्रकार निजाम सरकार के राज्य में भी इसी कारण ने ब्राह्मणों के इन व्यवसायों को घटा दिया है। तथापि मनु के समय की अपेक्षा उनको राज्य प्रबन्ध का अधिक भाग मिला है, इस बात को मानना पड़ेगा। क्योंकि उस समय ब्राह्मण मंत्री न्याय कर्त्ताओं के सहित राज्य के सब अधिकार अपने अधीन रखते थे। इससे मालूम पड़ता है कि ब्राह्मणों की सांसारिक व्यवहार सम्बन्धिनी प्रवृत्ति ने उनकी धार्मिक प्रवृत्तियों से उन्हें रहित कर दिया है और इसके अनुसार, जैसा एक अत्यन्त माननीय लेखक (प्रोफेसर विलसन) ने (एसिया सम्बन्धी अन्वेषण नामक ग्रन्थ में) लिखा है कि (कम-से-कम गंगा के निकटवर्ती प्रदेशों में) पुरोहितों के रूप में वे लोग नहीं हैं अर्थात् पुरोहिती नहीं करते, और विद्वान भी बहुत कम हैं। वंशों और व्यक्तियों को धार्मिक उपदेश उनकी जगह गोसाईं (साधु) लोग करते हैं। तथापि बंगाल में ये प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखे जाते हैं और गृहस्थ इन्हें दान देने में बहुत उदार होते हैं।

(नोट) – 'इससे मालूम पड़ता है, तथा विलसन की सम्मति आदि सभी कथन इन त्यागी, भूमिहारादि ब्राह्मणों को ही विशेष रूप से उद्देश्य करके है, क्योंकि ठीक-ठीक यही स्थिति इस समय इनकी है और इससे कुछ दिन प्रथम भी थी।

बहुत से मंदिरों तथा धर्म सम्बन्धी कार्यों के अधिकार इन्हीं के हाथ में अबतक है और भारत के बहुत से भागों में इनके धार्मिक अधिकार में कुछ भी कमी नहीं है। यही दशा महाराष्ट्र और भारत के पश्चिमी भाग में भी है। भारत वर्ष के सभी भागों में इनकी संख्या, धन और सामाजिक अवस्था के कारण इनकी सांसारिक प्रतिष्ठा है। परन्तु जहाँ ब्राह्मणों का धार्मिक अधिकार जमा है वहाँ भी लोकप्रियता अधिकांश में चली गई है।

(नोट) -- ये सब बातें विशेष कर अयाचक ब्राह्मण में ही पाई जाती हैं ।

इस पूर्व कथन से स्पष्ट है कि मनु भगवान के बाद से आज तक ब्राह्मणों की दशा में पृथ्वी आकाश का सा अन्तर हो गया है, सभी रीतियाँ दूसरी ही हो गई हैं और ब्राह्मणों में कृ षि, वाणिज्यादि करने वाला एक अयाचक दल प्रबल हो गया है, जो आज भी स्पष्ट देखने में आ रहा है। किसी दल के अन्तर्गत हमारे प्रकृ त अयाचक दल के ब्राह्मण भी हैं ।

इसके बाद विशेष रूप से मेगस्थनीज आदि ग्रीक (यूनानी) लेखकों के ही आधार पर सन् ईस्वी से ३०० पूर्व की दशा का ऐसा ही वर्णन पूर्वोक्त ही पुस्तक के २३६,२३७ वें आदि पृष्ठों में इस प्रकार है :--

They suppose as has been mentioned, that those who were the kings councillors and judges formed a separte class. It is evident, also,that they classed the Brahmins who exercised civil and militaty functions, with the castes to whom those empolyments properly belonged.

They appear to have possessed separate villages as early as the time of Alexander; to have already assumed the military character on occasions; and to have defended themselves with that fury and desperation which sometime still characterises Hindus. Their interference in politics, likewise, is exhibited by their instigating Sambus to fly from Alexander and Musicanus to break the peace he had concluded with that conqueror. Strabo memtions a sect called Pramnae, who were remarkable for being disputious, and who derided the Brahmins for their attention to physics and astronomy. He codsiders them as a separate class, but they were probably Brahmins themselves, only attached to a particular school of Philosophy.

तात्पर्य यह है--वे (यूनानी लेखक) ऐसा समझते थे, जैसा लोगों ने कहा है कि जो राजाओं के मंत्री और न्यायकर्त्ता थे, उनकी अलग जाति थी। लेकिन यह बात भी स्पष्ट है कि वे लोग (मंत्री आदि) उन ब्राह्मणों को जो न्याय और युद्ध कार्य किया करते थे उन जातियों में सम्मिलित करते थे जिनके वे समुचित धर्म समझे जाते हैं। अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रियादि युद्ध वगैरह किया करते थे।

ब्राह्मणों के पृथक्-पृथक् ग्राम सिकन्दर के समय से ही थे और समय पर वे लोग युद्ध करते और उस साहस और वीरता के साथ शत्रुओं से अपनी रक्षा करते थे जो आज भी

कभी-कभी हिन्दुओं की प्रशंसा करवाती है। राजनीति में उनके हाथ डालने का पता इसी से चलता है कि उन्होंने सम्बुस को सिकन्दर और म्यूजिकेनस के यहाँ से इसीलिये भाग जाने को दबाया कि जिसमें सिकन्दर के साथ उनकी सन्धि न हो सके। स्ट्रैबो (यूनानी यात्री) ने एक ऐसे दल का वर्णन किया है जो प्रामणी (प्रामाणिक या नैयायिक) कहलाता और अपने झगड़ालू (वाद-विवादासक्त) स्वाभाव के लिये प्रसिद्ध था, और ज्योतिषी तथा वैद्यकादि शारीरिक विज्ञान में आसक्त ब्राह्मणों की हँसी उड़ाया करता था। वह (स्ट्रैबो) उनकी अलग जाति समझता था। परन्तु वे लोग ब्राह्मण ही थे। हाँ, केवल भिन्न दर्शन (न्याय के) अभ्यासी थे।'

अंग्रेज लेखकों की अब तक दी गई इतनी सम्मतियों से यही बात निर्विवाद रूप से सिद्ध हो गई कि मनु भगवान के पश्चात् बौद्धकाल से लेकर यवन काल तक ब्राह्मणों के विचारादि पूर्व से बहुत अंशों में एकदम विपरीत हो गये थे और उनका धार्मिक, शास्त्रीय तथा सामाजिक बन्धन ढीला हो गया था इसीलिये एक प्रकार की स्वतन्त्रता (उच्छृंखलता) पिशाची ने उन्हें ग्रस लिया था। साथ ही, स्वार्थ और परस्पर ईर्ष्या तथा राग-द्वेष की मात्रा भी बढ़ती गई और पुरोहित दल अपने प्रभाव को सभी दूसरे दल वालों पर जमाने के लिए दान लेने के ही महत्त्व के स्वर को अलापने लगा और तदनुसार ही दान त्यागियों (याचकों) के दबाये जाने की चेष्टा की जाने लगी, इसको भी दिखला चुके हैं। इतना ही नहीं, बल्कि उस राग द्वेष की मात्रा इतनी बढ़ गई कि याचक (पुरोहित) दलवाले ही ब्राह्मण अपने-अपने प्रकर्ष के लिए परस्पर ही एक-दूसरे को इतना दबाने लगे कि एक-दूसरे को नीच बनाते बनाते यह भी कहने लगे कि हम असल ब्राह्मण हैं। दूसरों का तो कुछ पता ही नहीं है, वे लोग तो बनावटी हैं इत्यादि । यह बात आज तक भी याचक ब्राह्मणों में सभी जगह घूमकर आखों देखी और कानों सुनी है।

यदि यह बात न होती तो आज सवा लक्खी (१२५०००) बनाये हुए ब्राह्मणों की किम्बदन्ती क्यों मैथिल, कान्यकुब्ज, दाक्षिणात्य और सर्यूपारीणादि सभी ब्राह्मणों में पाई जाती? क्या सभी जगह वस्तुतः ऐसा ही अन्धेर था, यह सम्भावना भी हो सकती है? सभी ब्राह्मणों के विषय में ऐसी किम्बदन्तियाँ देखने या सुनने की जिन्हें इच्छा हो वे अंग्रेजों के लिखे हुए सभी देश के ब्राह्मणों के इतिहासों को पढ़ लेवें। क्योंकि वे लोग इस देश के हैं नहीं कि अपने आप भी बना लेंगे, किन्तु लोगों से जैसा सुना वैसा ही लिख दिया और उसी आधार पर अपने इस सिद्धान्त को पुष्ट करने लगे कि हिन्दुओं में भी प्रथम जाति विभाग न था इत्यादि। क्या ही आश्चर्य है कि जरासन्ध वाली जो किम्बदन्ती आजकल इन अयाचक (भूमिहारादि) ब्राह्मणों के विषय में रची गई है और जिसका विशेष रूप से खण्डन द्वितीय परिच्छेद में करेंगे, वही राजा सेवई सिंह के नाम पर मैथिलों में शालिवाहन या किसी अन्य के नाम पर सर्यूपारियों में आदि-आदि, सर्वत्र अविकल रूप से प्रचलित है! क्या यह याचक ब्राह्मणों के पूर्वोक्त प्रचण्ड राग-द्वेष और ईर्ष्या को पुष्ट नहीं कर रही है? इससे आज १० या २० वर्षों से इन अयाचक (भूमिहारादि) ब्राह्मणों के इतर ब्राह्मणों द्वारा बेहतर दबाये जाने का कारण पाठक अवश्य समझ गये होंगे।

क्या कारण है कि २० या २५ वर्षों से पूर्व प्रायः जिन अंग्रेजों ने जातीय इतिहास या मनुष्य गणना की रिपोर्ट लिखी है, उन्होंने इन त्यागी, पश्चिमा, भूमिहारादि ब्राह्मणों को साफ-साफ कान्यकुब्जों, मैथिलों, गौड़ों या अन्य प्रतिष्ठित ब्राह्मणों ही की श्रेणी में रखा है,

जैसा आगे विदित होगा, और इसके विषय में उधर प्रचलित किम्बदन्तियों का नाम भी न लिया है, चाहे अन्य ब्राह्मणों के विषय में कहीं-कहीं कुछ ऐसी किम्बन्दितयाँ आ भी गई हैं? परन्तु जिस तिथि को भूमिहार या त्यागी ब्राह्मण सभा का जन्म हुआ उसी दिन से हवा ही पलट गई, किम्बदन्तियों की झड़ी लग गई और कहीं-कहीं इधर के विदेशी एवं स्वदेशी लेखकों की लेखनी भी विपरीत दिशा में चलने लगी और याचक (पुरोहित) ब्राह्मणों द्वारा बहुत-सी मिथ्या उपन्यास सदृश पुस्तकें इनके विपरीत धड़ाधड़ लिखी जाने और प्रकाशित होने लगीं। जैसी पुस्तकों के २० वर्ष पूर्व नाम भी न थे। क्या यह वही बात नहीं है जैसा पूर्व में 'ह्रिसडेविड्स' (Rhys - Davids) के लेखों से दिखला चुके हैं कि पुरोहित इन नये विचारों को पसन्द न कर उन सब को अपने अनुकूल बनाने के लिए बहुत से यत्न और कल्पनायें करने लगे?

अस्तु, इस प्रकार जब शास्त्राभ्यास लुप्त प्राय होकर स्वच्छन्दता और कृषि, वाणिज्य, एवं राज्य तथा भूमिप्रियता ब्राह्मणों में बेहतरह बढ़ गई और प्रतिग्रहादि की प्रशंसा और उसी के ब्राह्मणता के चिह्न होने की तान कहीं-कहीं सुनाने लगी, तो जैसा भूमिका में ही कह चुके हैं कि जो अयाचक ब्राह्मण बड़े-बड़े जमींदार और राजा महाराज थे, बहुत दिनों बाद उनकी क्रमशः यह धारण होने लगी कि प्रतिग्रह विशेष रूप से ब्राह्मणता का चिह्न है। अतः प्रतिग्राही ही माननीय ब्राह्मण हैं। हमलोग भी यद्यपि ब्राह्मण ही हैं, तथापि ब्राह्मणानुचित कर्म राज्य एवं कृष्यादि करने से हमारी स्थिति वैसी नहीं रह गई। अतः हम में पूज्यता भी नहीं रह गई। इस भ्रम में उनका बड़ा भारी सहकारी शास्त्रों का अज्ञान था जिससे वे स्वयं पवित्र, एवं पूज्य ब्राह्मण शब्द के शुद्ध अर्थ को समझ नहीं सकते थे, किन्तु जो कोई उन्हें जैसा समझा देता था वैसा ही समझ लेते थे। विशेषकर गुरु और पुरोहितों के वचनों पर उनका पूर्ण विश्वास था और लोग अपने अर्थ की सिद्धि के लिए ऐसा ही कहा करते थे। यहाँ तक कि उनके रात-दिन के इस आन्दोलन से प्रकृति में भी यही भाव भर रहा था, क्योंकि वे लोग ही उपदेष्टा थे।

यद्यपि पुरोहित भी शास्त्राभ्यासी न होने के कारण और स्वार्थवश ही ऐसा करते थे तथापि उनमें अपनी पवित्र (पूज्य) ब्राह्मणता के अभिमान के बने रहने में एक तो उनकी वही धारणा कारण थी और दूसरे, पुरोहिती के कारण कुछ न कुछ शास्त्रों का सम्पर्क उनके साथ रह गया था। अतः उनका वह अभिमान बना रह गया। परन्तु जो उनके दल से बाहर अयाचक ब्राह्मण थे, उनको अपनी पूज्य ब्राह्मणता का अभिमान निरबलम्ब होने से क्रमशः जाता रहा। इसी प्रकार होते होते यवन (मुसलमान) राज्य काल आ गया, और शास्त्रों का कौन कहे संस्कृत विद्या का भी अभाव हो गया। प्रत्युत उसकी विरोधिनी फारसी भाषा का साम्राज्य होने लगा। जिससे राजकार्य में विशेष सम्बन्ध रखने वाले ब्राह्मण विशेष रूप से फारसी के प्रेमी हो गये, जो बात आजतक भी विशेषतः इन अयाचक दल ब्राह्मणों और पश्चिम भारतः के भी प्रायः सभी ब्राह्मणों में पाई जाती है। क्योंकि वे लोग भी बड़े-बड़े जमींदार होने से यवनों से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते थे। इसीलिए उनमें और इनमें भी यवनों के बहुत से धर्म आ गये। जैसा फारसी का पढ़ना, तम्बाकू पीना और प्रणाम, नमस्कार की जगह सलाम करना इत्यादि। क्योंकि **'राजानमनुवर्त्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा', 'संसर्गजादोषागुणा भवन्ति'**, अर्थात् प्रजा राजा की अनुसारिणी होती है और जिसका विशेष संग किया जावे, उसके गुण दोष अपने में आ जाया करते हैं', इस नियम को सभी लोग मानते हैं। इसलिये जिन मिथिलादि देशों में पूर्ववत् संस्कृत के ही विद्वान होने चाहिए, वहाँ आज जिस ओर देखिये

अंग्रेजी का ही साम्राज्य है। इस बात को भूमिका में ही विस्पष्ट रूप से दिखला चुके हैं और यह भी वहीं लिख चुके है कि प्रायः इस देश के पुरोहित दल वाले ब्राह्मणों में फारसी का विशेष रूप से प्रचार न होकर क्यों कहीं-कहीं संस्कृत का प्रचार रह गया। क्योंकि जैसा आजकल जो ही अंग्रेजी पढ़े उसी की अंग्रेजी राज्य में प्रतिष्ठा होती है, इसलिए सभी अंग्रेजी पढ़ते हैं, वैसी बात प्रथम न थी। किन्तु जो लोग बड़े-बड़े जमींदार और राजा महराज थे उन्हीं की प्रतिष्ठा फारसी पढ़ कर भी होती थी। इसीलिये लाचार होकर और अपनी पुरोहिती को स्थित रखने के लिये भी पुरोहित ब्राह्मण संस्कृत में ही थोड़ा बहुत लगे रहते थे।

इस प्रकार जब प्रथम ही अयाचक भूमिपति ब्राह्मण राजाओं, महाराजाओं के प्रसंगवश पूछने पर कि 'हम लोग कैसे ब्राह्मण कहे जा सकते हैं? गुरु या पुरोहित यह कह दिया करते थे कि धर्मावतार! आप तो ब्राह्मण क्या, राजा बाबू हैं। और हमलोग भिक्षु हैं। तो इसे सुन वे लोग फूलकर कुप्पा हो जाया करते थे। जब यवन राज्यकाल में पूर्वोक्त दशा हो गई तो प्रसंगवश बहुधा उन्हीं गुरुओं तथा पुरोहितों के बार-बार कहने, अपनी स्थिति के भी वैसी ही होने और फारसी के प्रचार से भी जिन ब्राह्मणों में प्रथम अयाचक शब्द का प्रयोग होता था और पीछे भूमिपति या भूम्यधिकारी ब्राह्मण शब्द का। अब उन्हीं के लिये जमींदार ब्राह्मण शब्द का प्रयोग होने लगा जो आज तक प्रयागादि प्रान्तों में इन अयाचक दल वाले ब्राह्मणों और अन्य मैथिल तथा कान्यकुब्जादि ब्राह्मणों में भी कहीं-कहीं पाया जाता है जैसा भूमिका में दिखला चुके हैं। इसके थोड़े ही दिन बाद जब शास्त्राभिज्ञता पिशाची जमींदार ब्राह्मणों पर और सवार हो गई और उनकी यह धारणा होने लगी कि प्रतिग्राह लेने और पुरोहिती करने वालों को ही ब्राह्मण कहते हैं, जैसा जमींदार ब्राह्मणों से अन्य ब्राह्मणों में सभी जगह वे देखते थे, तो निश्चय कर लिया कि ब्राह्मण जाति तो भिक्षु हुआ करती है। परन्तु हमलोग तो धनाढ्य और जमींदार हैं। क्या हमलोग दूसरों के घर दान लेने जाते हैं कि अपने को ब्राह्मण कहें? इसलिए हमलोग जमींदार हैं! बस इसी समय से केवल जमींदार शब्द का प्रयोग अयाचक ब्राह्मणों में होने लगा जो आज तक इन अयाचक दल वाले ब्राह्मणों में बहुत जगह केवल स्वतन्त्र रूप से और बहुत जगह भूमिहार, बाभन, पश्चिमा, ब्राह्मण, बाम्हन, तगा या त्यागी शब्दों के साथ प्रचलित है। इसलिये लोग कभी उसका और अन्य शब्दों का भी कभी-कभी प्रयोग किया करते हैं।

इसी जगह यह बात भी स्मरण रखने योग्य है कि, यद्यपि अयाचक ब्राह्मणों की संज्ञा प्रभृति में बहुत-सा उलट-फेर हो गया, तथापि साक्षात् या परम्परा से अयाचक और याचक ब्राह्मणों के विवाह सम्बन्ध और खान-पान आदि बहुत जगह मिले हुए थे। हाँ, कहीं-कहीं ढीले पड़े रहे थे। परन्तु एकदम छूट न गये थे और न आज तक छूट गये ही हैं। इसीलिये पश्चिम के अम्बाला, प्रयागादि प्रान्तों और पूर्व में मिथिला प्रान्त में अब तक बहुत जगह खान-पान तथा विवाह सम्बन्ध परस्पर प्रचलित है, जैसा आगे मालूम होगा। इन सब व्यवहारों के बने रहने में कारण यह था कि यद्यपि इन अयाचक दलवाले ब्राह्मणों के एक पृथक् दल के बनने का सूत्रपात अभी हो रहा था—सभी ब्राह्मणों में से, चाहे वे गौड़ देशीय, पंजाबी, कान्यकुब्ज देशीय अथवा मिथिला देशीय हों, जो अयाचक थे और जिनके पास बड़ी-बड़ी भूसम्पत्ति या प्रतिष्ठा थी, उनका एक पृथक् दल भविष्य में बन जावेगा ऐसे चिह्न प्रतीत हो रहे थे— तथापि ऐसे सभी अयाचक ब्राह्मणों को ब्राह्मण शब्द से घृणा नहीं हो रही

थी और न आज तक हुई ही है। किन्तु जहाँ प्रचण्ड अविद्या, या राज्य एवं भूमि मद था वहीं कहीं-कहीं इसके लक्षण दिखलाई देते थे। जैसा काशी के आसपास के ५,७ या १० जिलों में अब तक प्रायः पाया जाता है परन्तु इससे पूर्व और पश्चिम दोनो तरफ बराबर याचक, जमींदार, त्यागी, महियाल, भूमिहार या पश्चिमा शब्द के साथ अथवा केवल ब्राह्मण या बाभन शब्द का प्रयोग किया जाता है। क्योंकि मिथिला (तिरहुत) में पश्चिमा ब्राह्मण, प्रयागादि में जमींदार ब्राह्मण, मगध में केवल ब्राह्मण या बाभन, मेरठ प्रभृति में त्यागी और झेलम आदि जिलों में महियाल शब्द तक पाया जाता है, जो इन अयाचक दलवाले ब्राह्मणों के लिये आता है।

इन प्रान्तों में ब्राह्मण शब्द से घृणा न होने, या उसके प्रयोग बने रहने में बड़े भारी सहकारी वही पुरोहित दलवाले ब्राह्मणों के साथ साक्षात् या परम्परया विवाह सम्बन्ध और खान-पान समझे जाने चाहिए और अन्य किसी याचक ब्राह्मण या दूसरी जातियों के विषय में आजतक ऐसी शंका न हो कर कहीं-कहीं इस अयाचक नामधारी ब्राह्मण जाति के विषय में जो यह उत्तम, मध्यमादि की शंका उत्पन्न होने लग गई है, उसमें भी यही कारण है कि बहुत जगह इस समाज के लोगों ने अपने को ब्राह्मण कहने से घृणा कर इस शब्द का प्रयोग उठा दिया है। परन्तु फिर भी साक्षात् या परम्परया अन्य ब्राह्मणों के साथ विवाहादि पाये जाते हैं। और साथ ही लोगों की यह भी मिथ्या धारणा हो गई है कि दान लेनेवाले को ही ब्राह्मण कहते हैं और कृष्यादि ब्राह्मणों के धर्म नहीं है। यदि हैं भी तो दान के साथ ही इत्यादि। ये दोनो प्रकार की बातें आजकल की समस्त कुशंकाओं और कुकल्पनाओं की जड़ें हैं। ऐसी बात किसी भी समाज में नहीं पाई जाती कि उसमें जिस जाति का वाचक शब्द कहीं न हो उसके साथ भी खान-पान और विवाह-सम्बन्ध होवें और यदि ऐसी बात कहीं है, तो उसके विषय में शंका भी अवश्य है या होगी।

ब्राह्मणादि शब्दों के प्रयोग करने का एक यह भी कारण समझ लेना चाहिये कि, **नामैकदेशेन नामग्रहणम्'** अर्थात् सम्पूर्ण यौगिक नाम की जगह उसी अर्थ में उसके एक अंश का प्रयोग भी होता है, ऐसा व्याकरण महाभाष्य में बहुत जगह लिखा है जिसका दृष्टांत यह है कि 'भीमसेन' की जगह 'भीम', भीष्मपितामह की जगह 'भीष्म', सत्यभामा की जगह 'सत्या' अथवा 'भाभा', रामचरित्र की जगह 'चरित्र' इत्यादि। परन्तु इससे कोई यह नहीं कह सकता कि भीम का नाम वास्तव में भीमसेन नहीं है, या चरित्र का रामचरित्र। इसी बात को महर्षि कात्यायन ने व्याकरण वार्तिक में कहा है कि **'विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरयोः पदयोर्लोपो वक्तव्यः'।** अर्थात् यौगिक नामों के पूर्व अथवा उत्तर भागों का यों ही लोप होकर केवल एक भाग का भी प्रयोग हुआ करता है। इन्हीं सब रीतियों के अनुसार भी लोगों ने कहीं त्यागी (तगा) या भूमिहार और कहीं केवल बाभन या ब्राह्मण शब्द का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया परन्तु उनके व्यवहार पूर्ववत् ही रह गये।

जब कुछ दिन बाद लोग भ्रमवश ऐसा समझने लगे कि वास्तव नाम उतने ही बड़े हैं, तो भूमिहार या त्यागी ब्राह्मण महासभा, या अन्य उपदेशकों ने उन्हें सिर्फ चिता भर दिया। परन्तु उनकी इस अज्ञान निद्रा के खुलने और नूतन दृष्टि के फिर हो जाने से स्वार्थान्ध और अकारण विद्वेषी रूपी चोरों के लूटने में बाधा उपस्थित होने की सम्भावना होने लगी, कि ऐसा न हो कि कभी गुरुआई और पुरोहिती से भी हाथ धोना पड़ जाय। क्योंकि उनकी

दशा दो ठीक ऐसी ही है, जैसा तुलसीदासजी ने कहा है कि :—

सूख हाड़ ले भाग शठ, श्वान निरखि मृगराज।
छीनि लेइ जिमि जानि जड़, तिमि सुरपतिहिं न लाज॥

और यदि ऐसा कदाचित् हो गया तो हमारी अथवा हमारे वंशजों की बड़ी भारी आमदनी मारी जावेगी। इसलिये 'अग्रशोची सदा सुखी' इस नियम के अनुसार वे लोग जैसा बौद्ध काल में 'ह्रिस डेविड्स' के वचन दिखला चुके हैं, आजकल भी इनके विषय में धड़ाधड़ कल्पित पुस्तकें रचने और प्रकाशित करने लगे और अपनी या अपने अयोग्य पुरोहित भाइयों की सेवा ही इन लोगों का मुख्य कर्त्तव्य बतलाने लगे। परन्तु दुर्बुद्धिवश यह नहीं विचार सके, विचार सकते या विचारते, कि जो समाज अनुचित रीति से बहुत दबाया जाता है वह अन्त में उतना ही शीघ्र नल के जल की तरह ऊंचा उठ खड़ा होता है जितना ही दबाया गया है और उस दबाव को कुछ नहीं समझता। और यह भी नहीं विचारते कि इन लोगों ने जब प्रथम ही इस प्रतिग्रहादि को तुच्छ और गर्हित समझ उसे त्याग कर स्वात्मावलम्बन किया है तो उस तुच्छ कार्य में क्योंकर प्रवृत्त हो सकते हैं? परन्तु यदि ऐसी ही दुर्बुद्धि और ऐसा ही दुराग्रह रहा और बारम्बार इतने पर भी यही रटना बना रहा और बिना पुरोहिती करवाने के ब्राह्मण कहलाता ही नहीं, तो वह दिन दूर न होगा जब इन दान त्यागी, पश्चिमा, जमींदार, भूमिहार, महियाल ब्राह्मणों को भी हार कर यज्ञादि करवा लेना ही पड़ेगा। क्योंकि अयाचकता या याचकता किसी विप्र समाज या जाति का धर्म न होकर व्यक्ति का धर्म है। जो आज अयाचक है कल वह चाहे तो याचक हो सकता है और याचक अयाचक। यद्यपि इस समय याचक और अयाचक दल हो गये हैं। पर, शास्त्र दृष्टि से ऐसा दल हो नहीं सकता। नहीं तो फिर अयाचक ब्राह्मण दल और क्षत्रियादि में भेद ही क्या रह जायगा? इसके सिवाय श्रीतुलसीदासजी की उक्ति है कि :—

यद्यपि जगत दुसह दुख नाना।
सब से कठिन जाति अपमाना॥

इसलिये यद्यपि ये लोग भरसक प्रतिग्रह तो न लेंगे, किन्तु उस द्रव्य को विद्यालय और धर्मशाला इत्यादि मे लगवा देंगे; तथापि इनमें बहुतेरे विद्वान लोग यज्ञ करवाकर दक्षिणा ले लेंगे, क्योंकि वह तो एक प्रकार की मजदूरी (वेतन) है। जैसा प्रथम दिखवा चुके हैं और अन्यत्र भी तंत्ररत्न मीमांसा ग्रन्थ में श्रीपार्थसारथि मिश्रजी ने मीमांसा दर्शन के दशमाध्याय के तृतीय पाद में लिखा है कि,

दक्षिणाशब्दोऽयं यद्भृतित्वेन दीयते तस्यैव वक्ता।

अर्थात् 'दक्षिणा शब्द यज्ञ कराने के बदले जो भूमि (वेतन या मजदूरी) दी जाती है केवल उसी का वाचक हैं'। और शास्त्रोक्त मजदूरी लेने में समयानुसार कोई हानि नहीं है, क्योंकि आजकल सभी लोगों ने पैसे पर काम कर देना परम धर्म मान रखा है। प्रत्युत ऐसा करने से ही जाति रक्षा हो सकेगी, संस्कृत का प्रचार होगा, और बहुत सी त्रुटियों और कठिनाइयों से बच जाना होगा, जिनका अनुभव प्रतिदिन विचारशील गृहस्थ किया करते हैं। इसलिये अब मेरी यही प्रार्थना है कि चाहे याचक (पुरोहित) अथवा अयाचक दलवाले ब्राह्मण दोनों में से कोई होवे उसे अब सम्भाल और विचार कर काम करना चाहिये, जिसमें भविष्य में पश्चात्ताप करना न पड़े।

अस्तु, यहां एक बात और ध्यान देने योग्य है कि जिस समयका विचार हम अभी कर रहे हैं, वह ऐसा था कि जब केवल ब्राह्मण, क्षत्रियादि संज्ञाओं के सिवाय ब्राह्मणों की जो अवान्तर (बीच की) संज्ञायें हैं, जैसे कान्यकुब्ज, गौड़, अवस्थी, वाजपेयी, राय, सिंह, आदि, एवं क्षत्रियादि की राठौर, चौहान प्रभृति, उनका या तो अभी तक प्रायः प्रचार ही नहीं हुआ था, या किसी-किसी का हुआ, या हो रहा था, तो भी लोगों का उस तरफ विशेष ध्यान न था। यद्यपि प्राचीन ग्रन्थों या लोगों में केवल 'भट्ट' या 'मिश्र' पदवी पाई जाती है, जैसे भट्टपाद, मण्डनमिश्र, वाचस्पति मिश्र तथापि ये विशेषण उन लोगों की प्रगल्भता या प्रतिष्ठा के सूचक हैं। जैसे गोमतल्लिकादि शब्दों में 'मतल्लिका' विशेषण प्रभृति, और जैसे पितृचरण, पितृपादादि में पाद या चरण शब्द। इसीलिये वार्त्तिककार कुमारिल स्वामी वगैरह को कभी-कभी ग्रन्थकार लोग वार्त्तिककार मिश्र, ऐसा लिखा करते हैं, जैसे 'यथाहुर्वार्त्तिककार मिश्राः' अथवा 'वार्त्तिककारपादाः'। इसी प्रकार मण्डनमिश्रादि का भी 'मिश्र' विशेषण है। इसलिये दो एक को छोड़ अन्यत्र ये मिलते ही नहीं। अतः ऐसे अर्थ में भी मिश्रादि शब्द उस समय विशेष प्रचलित न थे।

क्योंकि अभी तक प्रत्येक वर्ण में न तो इतने छोटे-छोटे और परस्पर विलक्षण दल ही बन गये थे, जैसे आजकल पाये जाते हैं और न संज्ञाओं तथा पदवियों की इतनी गिनती या प्रतिष्टा ही थी, जैसी आजकल या इससे कुछ पूर्व थी। उस समय तो सभी ब्राह्मणों का व्यवहार परस्पर मिला हुआ था एवं क्षत्रियादि का भी। इसीलिये यद्यपि इन अयाचक दलवाले ब्राह्मणों की जमींदारादि संज्ञायें प्रचलित भी हुईं तथापि उनका इतना प्रबल प्रचार उस समय न हुआ, जितना आज है। क्योंकि अभी तक चाहे जो कुछ परिवर्तन हुआ था, परन्तु ये लोग हर प्रकार से सभी ब्राह्मणों में मिले भी थे। लेकिन उसके बाद एक ऐसा समय आया जिसको लगभग, ६, ७ या ८ सौ वर्षों से अधिक न हुये होंगे, जब विशेष कर ब्राह्मणों में अथवा अन्य सभी जातियों में भी बहुत से अवान्तर (छोटे-छोटे) दल तैयार हो गये, या होने लग गये, जिनका परस्पर खान-पान आदि व्यवहार भी ढीला होने लगा और जिनमें बहुत-सी उपाधियां (पदवियां) नयी-नयी चल पड़ीं, जिनका प्रथम नाम भी न सुना गया। उन छोटे-छोटे दलों के अलग-अलग नाम भी पड़ने लगे या पड़ गये। अथवा जो पूर्व के भी नाम थे, या पदवियां थीं उन सभी का प्रबल प्रचार हो उठा, क्योंकि समय सब की प्रतिष्ठा कभी न कभी करा ही देता है। आचार विचारों में बहुत से भेद पड़ गये। आज जो कहीं था, वही कल कहीं अन्यत्र जा बसा जिससे बहुत दिनों बाद उसके इतिहास का भी पता लगाना कठिन हो गया। धार्मिक उपद्रव बहुत उठने लगे, जिससे व्यवहारों में अधिक कट्टरता दिखलाने की आवश्यकता पड़ी और धर्म रक्षार्थ ब्राह्मणादि समाजों के छोटे-छोटे दल बनाने ही पड़े। क्योंकि बड़े की सर्वात्मना रक्षा का होना असम्भव हो जाता है। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहानी का आलाप प्रकृति में गूंज रहा था। साथ ही, प्राचीन आध्यात्मिक विचार और धर्म की वास्तव कट्टरता ढीली हो रही थी, क्योंकि शास्त्राभ्यास बिल्कुल छूट रहा था। इसलिए ब्राह्मणादि सभी वर्णों को जमींदारी, प्रतिष्ठा, आधिपत्य और मार-काट की विशेष सूझी, और उन सब बातों ने उनके रूप, स्थिति और अभिमान में एक विशेष परिवर्त्तन कर दिया।

इस सब कथन का तात्पर्य यह है कि जब यवनों (मुसलमान) का राज्य कुछ दिन बीत गया और उनकी जड़ यहाँ अच्छी तरह जम गई, या जमने लगी, तो उन्होंने दूर तक अपने

राज्य के विस्तार तथा प्रबन्ध के लिये बड़े-बड़े वीरों और प्रबन्ध कुशलों एवं रईसों का सम्मान तथा अपनी सेना में और राज्यान्तर्गत विविध पदों का स्थापित करना और साथ ही उत्साहित एवं अपनी ओर आकर्षित करने के लिये सिंह, खां, राय, चौधरी, दीवान और बाबू इत्यादि पदवियों का प्रदान करना प्रारम्भ कर दिया जिससे उनकी प्रतिष्ठा बढ़ने लगी और उन्हें देख उनके लिये दूसरे योग्य लोग भी लालायित हो यत्न करने और प्राप्त करने लगे।

बस अब क्या था, जितने वीर लोग थे, चाहे ब्राह्मण हों या क्षत्रियादि, उनकी सिंह और खां इत्यादि पदवियां होने लगीं, जो आजकल प्रायः सभी ब्राह्मणों में पाई जाती हैं, और जिनको आगे चलकर दिखलावेंगे। और वे लोग उसी में अपने को कृतकृत्य मानने लगे। बल्कि जिसको वे उस समय न मिलीं वह अपने को महा अभागी समझता था। इसी प्रकार जो लोग रईस या प्रबन्धकर्त्ता वगैरह थे उन्हें राय, चौधरी और शाह इत्यादि पदवियां मिलीं और इसी नूतन पदवी रूप भादों के महाजल प्रवाह में प्राचीन शर्मा, वर्मा, तथा ऋषि प्रभृति पदवी रूप कितने ही ग्रामादि बहुत जगह से साफ ही हो गये, जिनका आज तक पता ही न लगा। इधर जब नवीन पदवियों की प्रतिष्ठा राज दर्बारों में होने लगी तो, **'राजानमनुवर्त्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा'** इस पूर्वोक्त नियमानुसार विशेष कर ब्राह्मणादि रूप प्रजाओं में भी नयी पदवियों की धुन समा गई। क्योंकि उस समय की प्रकृति में यही भाव गूंज रहा था, जिससे लोगों को विवश होना पड़ा। बस जैसे उधर कामों के करने से ही राय, सिंहादि उपाधियां मिलती थीं और प्राचीन काल में भी,

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यम् प्रचक्षते॥ १४०॥
एकदेशं तु वेदस्य वेदांगान्यपि वाः पुनः।
योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते॥ १४१॥
निषेंकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि।
संभावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते॥१४२॥ म० अ० २॥

अर्थात् 'जो ब्राह्मण शिष्य का उपनयन संस्कार करके उसे यज्ञविद्या और उपनिषदों के सहित वेदों को पढ़ाता है उसे आचार्य कहते हैं। जो अपनी जीविका के लिये शिष्य को वेदों का केवल मंत्र या ब्राह्मण भाग अथवा व्याकरणादि अंगों को पढ़ाता है उसे उपाध्याय कहते हैं। जो ब्राह्मणरूप पिता पुत्र का गर्भाधानादि संस्कार करता और उत्पन्न होने पर उसे अन्न वस्त्रादि द्वारा पालता है, उसको ही गुरु कहते हैं, न कि कान फूँकने वाले वञ्चक को भी।' इत्यादि व्यवहार था। जिससे काम करने से ही आचार्य, गुरु प्रभृति सज्ञायें हुआ करती थीं। वैसे ही जो अच्छा विवेकी हुआ उसे पाण्डेय[1] कहने लगे. चारो वेदों के ज्ञाता को चतुर्वेदी, तीन के ज्ञाता को त्रिवेदी और दो के जानने से और पढ़ाने एवं पढ़ने से द्विवेदी एवं थोड़ा-थोड़ा सभी में से जानने और पढ़ानेवाले को मिश्र, वाजपेय यज्ञ करनेवाले को वाजपेयी, अग्निष्टोमादि करने वाले को आवसथ्यी, जो बिगड़ कर अवस्थी हो गया। क्योंकि अग्निष्टोम के पांचवें (अन्तिम) दिन का नाम आवसथ्य है। इसी प्रकार जो अन्य छोटे-मोटे यज्ञ करता था उसे दीक्षित कहते थे। क्योंकि यज्ञारम्भ से प्रथम दीक्षा रूप संस्कार हुआ करता है।

१. क्योंकि पण्डा सदसद्विवेक करने वाली बुद्धि को कहते हैं।

जैसा **'ब्रह्मा यजमानं दीक्षयति'** इत्यादि अर्थात् 'ब्रह्मा नामक ऋत्विक् यजमानकी दीक्षा करता है', इत्यादि श्रुतियों में आता है और उस संस्कार के बाद 'दीक्षणीया' नामक यज्ञ हुआ करता है। इसलिये क्षत्रिय भी कहीं-कहीं दीक्षित कहलाते है। क्योंकि उनको राजसूय का अधिकार है, इससे उसके करवाने में उनकी भी दीक्षा होने से वे भी दीक्षित कहलाने लगे, इत्यादि। कुछ दिन में यही नवीन उपाधियां बिगड़ते-बिगड़ते पांडे, चौबे, दूबे इत्यादि कहलाने लगीं, जैसे ब्राह्मण शब्द भ्रष्ट होकर बाभन या ब्राह्मन और वाराणसी शब्द बनारस हो गया।

इसी लिये इस बात के कहने वाले नितान्त भूले हुए हैं कि शब्द में विकार होने से उसके अर्थ में (जाति में) भी विकार हो जाता है। जैसा मिस्टर बीम्स वगैरः ने अपने पूर्वोक्त ग्रन्थों में कहीं-कहीं भूमिहार ब्राह्मणों के प्रसंग में लिखने का साहस किया है। क्योंकि ऐसा मानने से सभी तिवारी, चौबे, राजपूत, बनियां और कायस्थादि की जातियों में फर्क मानना पड़ जावेगा। कारण कि ये सभी शब्द बिगड़ रहे हैं और ब्राह्मण शब्द की जगह प्रायः सभी लोग, कुछ पठित व्यक्तियों को छोड़कर, सर्वत्र बाभन या बाम्हन शब्द का प्रयोग करते हैं। इसलिये यही मानना होगा कि धीरे-धीरे काल पाकर शब्द विशेष रूप से अपने आप ही बदलते जाते हैं।

अस्तु, ये पूर्वोक्त पांडे, तिवारी आदि पदवियां नवीन ही हैं। अतएव स्मृतियों और पुराणों में ब्राह्मण, क्षत्रियादि के लिये शर्मा और वर्मा आदि शब्द ही आये हैं और पूर्वोक्त आचार्यादि शब्द। पुराणों के पश्चात् के ग्रन्थों में भी ये पांडेय आदि शब्द नहीं मिलते। यहां तक कि बंगदेशीय ब्राह्मणों के इतिहास में भी जब उस समय के बनाये हुये 'कुलदीपिकादि' ग्रन्थों में ९९९ शकोब्द में अर्थात् लगभग आज से ८३८ वर्ष पूर्व कान्यकुब्ज देश से पाँच ब्राह्मणों के बंगाल (गौड़देश) में आने का हाल लिखा है, तो केवल भट्ट, नारायण प्रभृति उनका नाम लिखा है। पांडेय, तिवारी इत्यादि उपाधियों का नाम नहीं है। हां, इतना पता अवश्य है कि, वंगदेश में आने पर उनके घोष, गांगुली, इत्यादि पुत्र हुए और प्रत्येक को जो ग्राम महाराज आदि शूर की ओर से मिले उनके भी वही नाम थे, जिसके पीछे उन ग्रामों में रहने वाली उनकी सन्तान उसी घोष, गांगुली, बागछी इत्यादि उपाधियों से भूषित हुई। अतः वंगदेशीय ब्राह्मणों की पदवियाँ भी गांगुली, बागछी वगैरः नूतन और उसी समय की हैं जिसका हम वर्णन कर रहे हैं। उन्हीं वंगीय ब्राह्मणों के इतिहास से यह भी विदित होता है कि उस समय सभी ब्राह्मण वगैरह अस्त्र, शस्त्रादिधारी हो रहे थे। क्योंकि आदि शूर महाराज के यज्ञ के लिये कान्यकुब्ज देश से जब महाराज वीरसिंह ने उस समय ५ गोत्रों के ५ ब्राह्मण भेजे, तो उस यज्ञ कराने वालों के वेश का वर्णन 'देवीवरघटक कृत कारिका' में ऐसा है :–

वेदशास्त्रेष्ववगतान् सर्वास्त्रे च विशारदान्।
गोयानारोहितान्विप्रान् खड्गचर्मादिभिर्युतान्॥

अर्थात् 'वे लोग सब वेद शास्त्रों में और सभी अस्त्र, शस्त्र में भी निपुण, तलवार और ढाल आदि से सजे हुये और बैलों की गाड़ी पर सवार थे' इत्यादि। भला जहां यज्ञ करवाने वालों की यह दशा है, वहाँ उनसे अन्यों का क्या कहना है?

अस्तु, इससे निर्विवाद सिद्ध है कि ब्राह्मणों की ये द्विवेदी प्रभृति पदवियां भी उसी समय की हैं जिस समय की राय, सिंह इत्यादि। इसीलिये इनका वर्णन यदि कहीं आता है

तो केवल कान्यकुब्ज और सर्यूपारी प्रभृति की वंशावलियों में ही। उस समय इतना ही नहीं होता था कि, जो जैसा काम करता था उसे वैसी ही पदवी मिलती थी और उसके पुत्र, पौत्रादि में बराबर चली जाती थी। किन्तु वे पदवियां बदल जाया करतीं थीं। इसीलिये जो ब्राह्मण पाण्डेय या तिवारी, होते थे, समय पाकर राजदर्बार में प्रतिष्ठा होने से उनको राय, सिंह और चौधरी आदि की पदवी मिल जाती थी। अथवा उनके लड़कों को ही ये पदवियां भाग्यवश प्राप्त हो जाती थीं। क्योंकि इन्हें आजकल की राय बहादुर और के० सी० आई० ई० इत्यादि उपाधियों की तरह राजा की दी हुई समझ सभी परम प्रतिष्ठा जनक समझते और तदनुसार ही उनकी प्राप्ति के लिये महान् यत्न करते थे, जैसा आज कल हो रहा है। और जब भाग्यवश ये मिल जातीं तो पूर्व के पाण्डेय प्रभृति आस्पदों (पदवियों) का प्रयोग छूट जाता था। केवल इतना नहीं कि राज पदवियों के ही पाने से इनका परित्याग हो, किन्तु कर्म करने से ही पाण्डेय का पुत्र त्रिवेदी और उसकी सन्तान अवस्थी आदि कहलाती थी। क्योंकि उस समय उन कर्मों के कर्ताओं के कम होने से जो उन्हें करता था उसी का नाम प्रख्यात हो जाता था और वही उसकी पदवी हो जाती थी जैसा कान्यकुब्ज वंशावली के एक ही काश्यपगोत्र के देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि मदारपुर के अधिपति भुइंहार (भूमिहार) ब्राह्मणों के बालक गर्भू नामक ब्राह्मण के पुत्र कुतमऊ के तिवारी और उनके लड़के विनौर के अग्निहोत्री और आगे चलकर उनके ही पुत्र, पौत्रादि विनहारपुर के दूबे, कृपालपुर के मिश्र, भागीर के दीक्षित, विधौली के शुक्ल और मिगलानी के अवस्थी इत्यादि कहलाये। यह दशा केवल कान्यकुब्ज ब्राह्मणान्तर्गत काश्यप गोत्रीय भूमिहार ब्राह्मणों की सन्तानों की है जिनके पूर्वज गर्भू की कोई ऐसी उपाधि (पदवी) नहीं, उसके ही वशंज कितने ही तिवारी आदि हो गये।

इस बात को जिसे देखना होवे वह 'हरिप्रसाद भागीरथ' अथवा खेमराज के यहां छपी हुई कान्यकुब्ज की सभी वंशावलियों में देख सकता है। यह मदारपुराधिपति कान्यकुब्ज भूमिहार ब्राह्मणों के वंशज गर्भू की बात अभी बहुत दिनों की नहीं है, किन्तु बाबर बादशाह के समय सन् १५२७ ई० में हुई थी। ऐसा उन्हीं वंशावलियों में लिखा है। परन्तु उस समय भी जहां तहां उपाधियों का विशेष रूप से प्रचार न हुआ था। इसलिये ब्राह्मणों की ये कोई शास्त्रीय पदवियां नहीं हैं, जिनके न रहने से ब्राह्मण ही नहीं कहा जा सकता। किन्तु जैसे राय, सिंह, चौधरी और खां आदि उपाधियां ब्राह्मणों आदि की हैं, वैसे ही ये भी। हां, भेद इतना हो सकता है कि प्रथमतः वे मुसलमानों द्वारा दी गई हैं और ये त्रिवेदी प्रभृति पदवियां ब्राह्मणादि हिन्दू समाजों की दी हुई हैं। परन्तु अशास्त्रीयता दोनों में समान है। इस विषय में विशेष बात आगे कहेंगे।

अस्तु, जैसा इन उपाधियों का हाल है, वैसा ही ब्राह्मणादि वर्णों में छोटे-छोटे दल बनने और उनकी नाना संज्ञायें पड़ने का भी वृतान्त जान लेना चाहिये। सम्भवतः बहुत से लोगों की यह धारणा है, अथवा होगी कि कान्यकुब्ज, गौड़ इत्यादि ब्राह्मणों के अवान्तर दल और उनके नाम प्राचीन है। परन्तु मेरी समझ से यह बात सरासर मिथ्या है। क्योंकि जैसा अभी पदवियों के विषय में दिखला चुके हैं कि वे आधुनिक हैं, इसीलिये प्राचीन ग्रन्थों में उनका पता भी नहीं है। वही दशा ब्राह्मणों और अन्य वर्णों के इन छोटे-छोटे दलों और उनके नामों की है। वे भी उन ग्रन्थों में कहीं नहीं पाये जाते।

सारस्वताः कान्यकुब्जा उत्कला गौडमैथिलाः।
पंच गौडाः समाख्याता विंध्यस्योत्तरवासिनः॥

इत्यादि रूप जो श्लोक स्कन्द पुराण के सह्याद्रि खण्ड और भविष्य पुराण के नाम पर अब मिलने लगे हैं, वे आधुनिक और कल्पित हैं। क्योंकि राठौर, चौहान वगैरह नाम कहीं न आकर ये ब्राह्मणों के ही नाम क्यों आए।

इसलिये वे भी उपाधियों की तरह आधुनिक हैं। उनमें से एकाध यदि कुछ दिन प्रथम से थे भी तो उनका प्रचार न था। या यों कहिये कि लोगों का उनकी तरफ ध्यान नहीं था। परन्तु कालचक्र ने ही उनकी उत्पत्ति का प्रचार यों करवाया कि जब यवन राज्य काल में, जैसा पूर्व दिखला चुके हैं, शास्त्राभ्यास से रहित और प्रकृति में भरे हुये मार काट और राजस, तामस भावों से प्रेरित हो जहां तहां ब्राह्मणादि वर्ण अस्त्र, शस्त्रादि से सुसज्जित हो आक्रमण करने और दुर्बलों के अधिकारों को दबाने लगे। उन लोगों में शारीरिक अभिमान और युद्ध प्रियता बहुत बढ़कर पराकाष्ठा को प्राप्त हो गई। इसलिये वे उसी अभिलाषा से बलात् अपना एक देश छोड़ दूसरे प्रदेशों (प्रांतों) में जाने के लिये बाध्य होने लगे। जहां ही दुर्बल देखा वहीं ही चढ़ दौडे। आज यहां हैं तो कल कितनी दूर निकल गये इसका पता ही नहीं।

इसके अतिरिक्त यवनों के अत्याचार हिन्दू धर्म पर कभी-कभी हुआ करते थे। उनकी नव प्रादुर्भूत शक्ति और नवीन संचारित धर्म हिन्दू धर्म पर बड़े-बड़े आघात करने लगे। यह बात उस समय के इतिहासवेत्ताओं से छिपी नहीं है। जब बलपूर्वक अन्य धर्मावलम्बियों को मुसलमान बनाना भी वे अपना परम धर्म मानते थे, तो फिर बेचारे अनाथ हिन्दू क्यों न सताये जावें? ऐसी दशा में धर्म भीरु ब्राह्मणों को विशेष कर और प्रायः कहीं-कहीं क्षत्रियों को भी धर्म रक्षा के लिये छोटे-छोटे दल बनाने पड़े। क्योंकि जैसी देख भाल, या प्रबन्ध छोटे राज्यों या भूभागों का हो सकता है वैसा बड़े का नहीं। इसलिये बड़े-बड़े राज्यों को भी सूबों, जिलों और तहसीलों वगैरह में बांट देते हैं। बड़े विस्तृत ब्राह्मण साम्राज्य में यह पता चलना कठिन था कि कौन प्रदेश अपने धर्म पर स्थित है और उसके साथ-साथ खान-पान आदि किये जा सकते हैं। अतः धर्म दृष्टि से छोटे-छोटे विभाग बनाने पड़े और अपने विभाग से बाहर खान-पान या विवाह सम्बन्ध छोड़ना पड़ा। इसीसे यद्यपि पूर्वकाल में सभी ब्राह्मणों के खान पान आदि साथ होते थे, परन्तु आज न तो गौड़ों के कान्यकुब्जों के साथ और न दोनों के दक्षिणात्यों के साथ, खानपान या विवाह सम्बन्ध आदि होते हैं।

जब एक देश से दूसरे देश (प्रान्त) में ब्राह्मणादि, पूर्वोक्त कारणों से– चले जाते थे तो उनका पता लगना उस समय कठिन या असम्भव था। क्योंकि उस समय आज कल की तरह रेल तार न थे। इसलिये प्रत्येक दल वाले ब्राह्मणादि जिस देश से आया करते थे उसी देश के नाम से अपना व्यवहार करते थे। जैसे जो सर्यूपार से अन्य प्रान्तों में चले गये थे वे अपने को सर्यूपार वाले, सर्यूपारीण, सर्यूपारी या सरवरिया इत्यादि कहने लगे। इसी प्रकार जो कान्यकुब्ज देश से गये थे वे अपने को कनौजिया या कान्यकुब्ज कहने लगे। ऐसे ही मैथिल, गौड़ और सारस्वतादि नामों को भी जान लेना चाहिये। क्योंकि किसी आदमी या वस्तु के नाम या ठिकाने का हुलिया तभी होती है, जब वहां से भागकर अन्यत्र चला जाता है और उसका पता चलना कठिन हो जाता है। और चूंकि पूर्व समय में ब्राह्मणों को एक स्थान छोड़ कर दूसरे स्थान में जाने की प्रायः आवश्यकता न होती थी। केवल ऋषि, मुनि या

तपस्वी लोग ही राक्षस वगैरह के भय अथवा अन्य कारणों से इधर-उधर जाया करते थे। क्योंकि उस समय हिन्दू धर्म का प्रबल प्रतापादितृय द्वादश कलायुक्त था। इसलिये एक देश से दूसरे देश में बिना तीर्थ यात्रादि के जाने में बहुत बड़ा विचार उपस्थित हो पड़ता था। क्योंकि ऐसी आज्ञायें थीं और हैं कि :-

अंग वंग कलिंगेषु सौराष्ट्र मगधेषु च ॥
तीर्थ यात्रां विना गत्वा पुनः संस्कारमर्हति ॥

अर्थात् अंग, वंग, कलिंग, सौराष्ट्र और मगधादि देशों में बिना तीर्थ यात्रा के जाने से उसका पुनः यज्ञोपवीतादि संस्कार करना चाहिये इत्यादि। परन्तु जिस समय का वर्णन करते हैं, उस समय न तो इतना धार्मिक भय ही था और न लोगों को इन उपदेशों का यथावत् ज्ञान ही था। प्रत्युत पूर्वोक्त धर्म रक्षा के लिये, तथा अन्य प्रयोजनों से भी एक स्थान से दूसरे में जाने के लिये बाध्य होना पड़ता ही था। इसलिये यद्यपि जो लोग कान्यकुब्ज प्रभृति देशों से भाग गये थे, उनके ही नाम कान्यकुब्जादि पड़ने उचित थे, तथापि कान्यकुब्ज देशों में रहनेवालों और उन भगेड़ों के सम्बन्ध कभी-कभी हो जाया करते थे, इसलिये एक ही होने से एक देश वाले कहीं भी हों उसी नाम से पुकारे जाते थे। इससे खान पान और विवाह सम्बन्ध में आसानी भी होती थी।

परन्तु एक देश में रहने वाले ब्राह्मण से अन्य भी हो सकते हैं, जैसे कान्यकुब्ज हलवाई और कान्यकुब्ज कहार भी बोले जाते हैं। इसी प्रकार मैथिल कायस्थ और मैथिल ब्राह्मण इत्यादि। अथवा देशों के बड़े होने से अमुक देश का ब्राह्मण हूँ ऐसा कहने से भी पता ठीक न चल सकता था। इसलिये फिर भी परस्पर व्यवहारों में भी बहुत क्लेश होने लगा, तो गोत्र और डीह के साथ अमुक जगह का दूबे और अमुक जगह का तिवारी मैं हूँ ऐसा कहने का संकेत किया गया। क्योंकि एक गोत्र में विवाह नहीं होता, इसलिये गोत्रादि बताने की आवश्यकता थी। इसी प्रकार अन्य बातों को भी जान लेना चाहिए। अब ऐसा करने से कोई ब्राह्मण कहीं होवे, जहाँ पिंडी का तिवारी या त्रिफला का पांडे मैं हूँ ऐसा उसने बताया, वहां ही सब कठिनाइयाँ दूर हो गईं। क्योंकि अन्य सर्यूपारी आदि भी उन्हीं ग्रामों में या उनके पास के ही रहने वाले होते थे।

इससे यह भी सिद्ध हो गया कि ब्राह्मणों में अपने-अपने डीह (प्राचीन स्थान) के व्यवहार की प्रथा भी बहुत दिनों से नहीं है। इसलिये यह कोई आवश्यक नहीं है कि जिस ब्राह्मण में अपने डीह का व्यवहार किसी कारण से न होवे वह इसी कारण से ब्राह्मण न कहा जावे कि उसका डीह ही नहीं है। हाँ, इतने के लिये वह खान पान आदि दूसरे दलवाले से न करके अपने ही दल में कर सकता है। प्रथम तो यह बात कहीं पाई नहीं जाती। परन्तु सम्भव होने पर उसके विषय में भूल न हो इसलिये ऐसा कह दिया है। और ऐसा होता भी है कि लोग अपने पूर्व डीह को भूल जाते हैं और दूसरे डीह का नाम लिया करते हैं। जैसे निमेज के ओझा और मचैयां पांडे अपने डीह निमेज और मचियांव बतलाते हुए अपने को सर्यूपारी कहते हैं, परन्तु ये डीह सर्यूपार में न होकर शाहाबाद जिले में पाये जाते हैं।

अस्तु, अब इसी स्थान पर, भूमिहार, त्यागी, महियाल, पश्चिमा आदि संज्ञा वा विशेषण सम्बन्धी विषय का विचार कर लेना चाहिये । अभी कह चुके हैं कि यवनकाल में ही ५ या ७ सौ वर्ष पूर्व ब्राह्मणों में बहुत से अवान्तर दल कैसे बन गये यद्यपि दूर देश में गये हुए ही

कान्यकुब्जादि कहे जाने चाहिये, तथापि सभी एक देश वाले कैसे उसी नाम से कहे जाने लगे। बस, इन्हीं दो बातों के सम्बन्ध में यह भी एक बात है कि जब ब्राह्मणों में पूर्वोक्त कारणों से छोटे-छोटे दल बनने लगे और कहीं-कहीं अन्य जातियों में भी, तो चूंकि केवल धर्मरक्षा की दृष्टि से यह काम हुआ, इसलिये दलों के बनाने में इस बात का पूर्णयता ध्यान रखा गया कि जिससे धर्म का पालन ठीक-ठीक हो सके। इसके लिये जो-जो दल बने उनमें ऐसे-ऐसे ब्राह्मण प्रत्येक दल में मिलाये गये जिनके आचार-विचार या चालचलन और खान पान प्रायः एक प्रकार के थे। इसीलिये भिन्न-भिन्न प्रदेशों के भिन्न-भिन्न दल बन गये। जैसे गौड़ देश, कान्यकुब्ज, मिथिला अथवा सरस्वती के पास के प्रदेशों आदि के । और एक प्रान्त के ब्राह्मणों में भी आचार व्यवहार प्रायः सब के समान न होने से बहुत से अवान्तर भेद बन गये। जैसे मैथिलों में श्रोत्रिय, योग्य इत्यादि। एवं गौड़ों में आदि गौड़, गूजर गौड़, चमर गौड़ इन्यादि। इसी प्रकार बंगदेशीयों में राढ़ी आदि तथा गुजरात के नगरों में सिपाही नागर वगैरह। एवं कान्यकुब्जादि में दूबे, तिवारी, अग्निहोत्री प्रभृति। इसी तरह सर्वत्र सभी ब्राह्मणों में जान लेना चाहिए। और जैसे एक देश से दूसरे देश में जाने से उस देश के नाम से नाम पड़ा, वैसे ही एक दल को दूसरे दल से बिलगाने के लिए भी अपने-अपने देशों से अपने-अपने नाम कहे जाने लगे। इसलिए भी एक देश वाले जहाँ कहीं रहे, एक ही नाम से कहे जाने लगे। इसी तरह अपनी क्रियाओं से भी एक दल के दूसरे दल से भिन्न-भिन्न नाम होते थे। जैसे त्रिवेदी, द्विवेदी इत्यादि प्रथम कह चुके हैं।

यहाँ ध्यान देने की बात है कि, जैसे मैथिलों में केवल वेद पढ़ने वाले श्रोत्रिय और वेदों तथा अन्य कार्यों में योग्यता रखने वाले योग्य इत्यादि अपने-अपने कर्मों से भिन्न-भिन्न दल बने और नाम पड़े। एवं गौड़ों में गूजर प्रभृति की पुरोहिती करने से गूजर गौड़ आदि नाम पड़े। नगरों में लड़ने भिड़ने वाले सिपाही नागर कहलाने लगे और उनका दूसरे नागरों से पृथक् दल हो गया और जिस प्रकार से द्विवेदी, त्रिवेदी प्रभृति कान्यकुब्जादि ब्राह्मणों के पृथक्-पृथक् दल अपने-अपने कर्मों और आचारों से बने। ठीक उसी प्रकार सबसे प्रथम कान्यकुब्ज ही ब्राह्मणों में जो दल जमींदारी से घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाला, अतएव वीर और राजदर्बार में प्रतिष्टिता था और इसीलिए उसके आचार-विचार में भी कुछ विलक्षणता थी, वह भी उसी समय भूमिहार या भुईंहार नाम से प्रसिद्ध हुआ।

जैसे एक प्रान्त के सभी ब्राह्मणों का जब उसी प्रान्त के नामानुसार कान्यकुब्ज या मैथिल नाम पड़ गया, तो फिर उनके छोटे-छोटे दलों के भिन्न-भिन्न नाम उस देश के नामानुसार न हो सकने के कारण कर्मानुसार ही द्विवेदी, त्रिवेदी, श्रोत्रिय और योग्य प्रभृति हुये। उसी प्रकार उन्हीं कान्यकुब्जों में एक दल अब देश के नामानुसार न कहे जा सकने के कारण भूमि के ऊपर अपने बल से या अन्य प्रकार से अधिकार कर लेने और विशेष रूपसे कृष्यादि करने के कारण औरों से विलक्षण होने से भूमिहार या भुईंहार कहलाने लगा और जितने बलवान् या श्रीमान् और प्रतिष्ठित राजसी कान्यकुब्ज ब्राह्मण एक आचार वाले थे, वे इसी नाम से कहे जाने लगे।

यद्यपि इनकी संज्ञा प्रथम जमींदार या जमींदार ब्राह्मण थी। लेकिन एक तो, जैसा पूर्व कह चुके हैं कि उसका प्रथम प्रचार न था, दूसरे, यह कि जब पृथक्-पृथक् दल बन गये तो उसके नाम भी ऐसे होने चाहिये जो एक दूसरे के न हो सकें। परन्तु जमींदार शब्द तो जो ही जाति भूमिवाली होवे उसे ही कह सकता है। इसलिये विचारा गया कि जमींदार नाम ठीक

नहीं है। क्योंकि पीछे इस नाम वाले इन अयाचक कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के पहचानने में गड़बड़ होने लगेगी। इसलिये ऐसा न हो कि व्यवहार में गड़बड़ मच जावे। इसी कारण से इन लोगों ने अपने को भूमिहार या भुइहार कहना प्रारम्भ कर दिया।

यद्यपि जो अर्थ जमींदार शब्द का है, अर्थात् जमीन का मालिक या उसका रखने वाला, वही भूमिहार शब्द का भी, जैसा अभी विदित हो जावेगा, तथापि, जैसा भूमिका में ही कह चुके हैं कि, जिस अर्थ में जिस शब्द का संकेत कर लिया, उस शब्द से वही समझा जाता है। जैसे, यद्यपि नमस्कार और प्रणाम शब्द का अर्थ एक ही है, तथापि ब्राह्मणों ने यह संकेत कर लिया है कि हम लोगों में परस्पर नमस्कार शब्द का ही प्रयोग होना चाहिये। इसलिये नमस्कार शब्द बोलने से ही विदित हो जाता है कि इसका उच्चरण करने वाला ब्राह्मण है। परन्तु उसी के अर्थ में यदि प्रणाम शब्द को बोलें तो प्रायः अन्य जाति ही का बोध होता है। मिथिला में तो यहां तक देखा जाता है कि शुद्र भी ब्राह्मणों को 'प्रणाम' ही कहा करते हैं और कोई बुरा नहीं मानता। परन्तु यदि कोई अन्य जाति उसी के अर्थ वाले नमस्कार शब्द का प्रयोग करे, तो फिर लड़ाई देखिये। ऐसा ही आर्य समाज के नमस्ते और सनातन धर्म के प्रणाम शब्दका हाल जान लीजिये। यदि किसी सनातनधर्मी के सन्मुख 'नमस्ते' शब्द बोला जावे तो वह बहुत ही रंज होता है, न कि प्रणामादि शब्दों से। इसका कारण जैसे एक मात्र संकेत है। उसी प्रकार, यद्यपि जमींदार और भूमिहार शब्द समानार्थक ही हैं, तथापि जमींदार शब्द से ब्राह्मण से अन्य भी जातियां समझी जाती हैं, या जा सकती हैं, परन्तु भूमिहार शब्द से साधारणतः प्रायः केवल अयाचक ब्राह्मण विशेष। क्योंकि उसी समाज के लिये उसका संकेत किया गया है।

इससे सिद्ध हो गया है कि, यद्यपि नियत तिथि विदित नहीं है, तथापि जैसे यवन राज्य काल में ही आज से लगभग ६, ७ या ८ सौ वर्ष पूर्व गौड़, कान्यकुब्ज, सर्यूपारी, मैथिल तथा सारस्वतादि, एवं दूबे, तिवारी आदि नाम प्रायः ब्राह्मणों में प्रचलित हुये, वैसे ही भूमिहार या भुईंहार नाम भी सबसे प्रथम कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के एक अयाचक दल विशेष में प्रचलित हुआ। इसीलिये जैसे ये सब नाम केवल कान्यकुब्जादि की वंशावलियों में पाये जाते हैं, न कि अन्यत्र भी। वैसे ही भूमिहार शब्द भी सबसे प्रथम उन्हीं कान्यकुब्ज वंशावलियों में काश्यप गोत्र के व्याख्यान में मिलता है, न कि अन्यत्र। जैसा 'गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास' के यहां छपी हुई, और पं० दुर्गादत्त त्रिपाठी एवं पं० मुकुन्दराम द्वारा सम्वत् १९६४ में छपवाई हुई कान्यकुब्ज वंशावली के १०५ पृष्ट में लिखा कि :-

अथ काश्यपमाख्यास्ये गौत्रं तु मुनिसम्मतम्।
पूर्ववंशावलिं दृष्ट्वा ज्ञातं षष्टिशतत्रयम्॥ १॥
मदारादिपुराख्यस्य भुइंहारा द्विजास्तु ये।
तेभ्यश्च यवनेभ्यश्च महयुद्धमभूत्पुरा॥ २॥
तेभ्यश्चब्राह्मणाः सर्वे परास्ता अभवँस्ततः॥ इत्यादि॥

जिसका अर्थ यह है कि जैसा 'हरिप्रसाद भागीरथ' के यहां छपे हुए बृहत्कान्यकुब्जकुलदर्पण' के ११७ वें पृष्ट में लिखा है कि 'विक्रमीय सम्वत् १५८४ (सन् १५२७) मदारपुर के अधिपति भूमिहार ब्राह्मणों और यवनों से महायुद्ध हुआ और सब ब्राह्मण परास्त हुये। यह बात ३६० वंशावलियों को देखकर लिखी गई है, इत्यादि यह

मदारपुर गंगा के समीप कानपुर जिले में अथवा उस जिले के समीप ही है।

इसके बाद आगे चलकर, जैसा दिखला चुके हैं, इन्हीं भूमिहार ब्राह्मणों के वंशज गर्भू के वंश में कुतमऊ के तिवारी इत्यादि ७ या ८ स्थान वाले तिवारी, विनौर इत्यादि ५ या ६ स्थानों के अग्निहोत्री, गल्हैया इत्यादि १० स्थानों के दूबे, कृपानपुर, नगरा आदि ३ स्थानों के मिश्र, क्यूना, मदारपुरादि १४ स्थानों के दीक्षित, विधौली और रिवाड़ी के शुक्ल, मिगलानी प्रभृति ५ स्थानों के अवस्थी इत्यादि हुये जो सभी कान्यकुब्जों में पाये जाते हैं। क्योंकि प्रथम ही यह बात कह चुके हैं कि, यद्यपि इन भूमिहार नामधारी ब्राह्मणों के साथ भी गौडादि की तरह अन्य ब्राह्मणों के खान पान आदि तथा विवाह सम्बन्ध ढीले पड़ रहे थे तथापि एक देशीय होने से इनके साथ सम्बन्ध एकदम टूट न गया था। इसलिये पूर्वोक्त तिवारी प्रभृति उसी दल में मिलते गये और आज तक भी भूमिहार नामधारी ब्राह्मणों के साथ विवाह सम्बन्ध याचक दलवालों का इसी कारण से बना है। परन्तु गौड़ प्रभृति तो दूर देशीय थे। अतः उनके साथ का सम्बन्ध एकदम टूट गया।

एक बात यह भी विचारने योग्य है कि, जैसे कान्यकुब्ज देश में ब्राह्मणों के कर्मानुसार दूबे, तिवारी प्रभृति संज्ञाएँ हुईं और जब वहां से वे लोग अन्य देशों में फैले तो वहां अमुक स्थान में दूबे और तिवारी कहलाने लगे। इसी प्रकार जब पूर्वोक्त युद्ध में मदारपुर के अधिपति बहुतेरे ब्राह्मण मारे गये और पं० अनन्तराम जी की एक गर्भिणी स्त्री के सिवाय बहुतेरे जान लेकर वहां से एकदम भाग गये। क्योंकि युद्ध में सभी मारे गये, कोई न बचा, यह तो कहीं हुआ नहीं, इसलिये असम्भव है। हां, बचे बचाये जान लेकर केवल गर्भू की माता को छोड़कर, क्योंकि वह पिता के घर थी, सभी भाग गये और वहां एक भी न रहा। इसलिये लोगों ने समझा कि सभी मारे ही गये। परन्तु चूंकि वहां कोई न रहा, इसलिये उस तरफ भूमिहार नामवाले ब्राह्मण पाये नहीं जाते, और भागकर काशी के आस-पास निरुपद्रव जानकर आ बसे, जैसे दूसरे दूबे, तिवारी प्रभृति आये थे। इसालिये काशी के आस पास ही इस नाम के ब्राह्मण पाये जाते हैं, और गर्भू की सन्तानों में ही दूबे, तिवारी हुये, प्रथम यह संज्ञा न थी, किन्तु यवन राजाओं के काल की ये पदवियां थीं। इसलिये और पूर्व हेतुओं से भी इस प्रान्त में ये लोग प्रायः दूबे, तिवारी न कहे जाकर अब तक राय, सिंह इत्यादि पदवियों से ही पुकारे जाते हैं।

इसके बाद बहुत से अन्य स्थानों के भी कान्यकुब्ज या सर्यूपारी इस देश में आते गये और जमींदार हो होकर इन्हीं में मिलते गये। जैसा सर्यूपारी पिपरा के मिश्र, गौतम गोत्रीय कृष्ण या कित्थू मिश्र के वंशज द्विजराज महाराज श्री काशिराज और काशी प्रान्त के अन्य गौतम भूमिहार ब्राह्मण। यह बात विजयानन्द त्रिपाठी कृत पंक्ति पावन परिचय नामक सर्यूपारीण वंशावली और पं० शिवराज मिश्र कृत गौतम चन्द्रिकादि ग्रन्थों से स्पष्ट है। जैसा आगे भी दिखलाया जावेगा। इसी प्रकार देवकली के वत्सगोत्रीय, पाण्डेय आस्पद वाले दोनवार ब्राह्मण भी इनमें आ मिले जिनका निरूपण प्रसंगवश आगे करेंगे। इसी तरह क्यूना के दीक्षित काश्यप गोत्रीय भी इन में आ मिले जिनका नाम संभवतः क्यूनावार से बिगड़ते-बिगड़ते किनवार हो गया। किनवार शब्द के विषय में आगे विशेष बात कहेंगे। अस्तु; इन सब का निरूपण आगे होगा और जो जो ब्राह्मण मिलते जाते थे, वे अपनी मिश्र, दीक्षित प्रभृति उपाधियों को छोड़ राय, सिंह वगैरह पदवियों को ही प्रतिष्ठित जानकर ग्रहण करते थे। और जैसे अन्य दल वाले ब्राह्मण अपने को अमुक स्थान के दूबे, तिवारी इत्यादि बतलाते थे, वैसे

ही इन्होंने भी अपने-अपने स्थान सूचित करने के लिये किनवार या दोनवार आदि कहना प्रारम्भ कर दिया। जिसका अर्थ क्यूना अथवा ओकनी स्थान वाले इत्यादि है। इसी प्रकार अन्य संज्ञाओं में भी समझना चाहिये। इसका भी विशेष निरूपण आगे होगा।

इसलिए यह निर्विवाद सिद्ध है कि इन प्रकृत अयाचक ब्राह्मणों की यह वर्तमान भूमिहार संज्ञा या विशेषण यवन काल से ही है। तथा कान्यकुब्ज, दूबे, तिवारी प्रभृति संज्ञा समकालिक ही है और कान्यकुब्ज, देश में ही इस नाम का भी जन्म हुआ है। इसलिये यदि कोई इस नाम के विषय में विवाद करे कि कब से हुआ इत्यादि तो या तो प्रथम उसे कान्यकुब्जादि नामों के काल का पता लगाकर इस विषय में पूछना चाहिए। क्योंकि उन सब के भी समय निश्चित नहीं हैं फिर इसी के लिये झगड़ा क्यो? या हमारे पूर्व कथन से सभी को निश्चित करके संतोष करना चाहिये।

इस भूमिहार संज्ञा विषयक पूर्वोक्त कथन की पुष्टि में भी यह जान लेना चाहिये कि, पूर्व ग्रन्थ में धर्मारण्य में स्थापित और वाडव शब्द बोधित ब्राह्मणों का वर्णन कर चुके हैं और उनके विषय में यह भी कह चुके है कि वे भी याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह से रहित होकर श्रीरामजी का दिया धर्मारण्य का राज्य करते थे। जैसा धर्मारण्य माहात्म्य के ३५वें अध्याय में लिखा है कि :–

ना० उ० स्वस्थाने ब्राह्मणातत्र कानि कर्माणि चक्रिरे।
ब्रह्मो०। इष्टापूर्त रताः शान्ताः प्रतिग्रहराङ् मुखाः ॥ ३ ॥
राज्यं चक्रुर्वनस्याय पुरोधा द्विजसत्तम।
उवाच रागपुरतस्तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४ ॥

अर्थात् 'नारद ने ब्रह्मा से पूछा कि धर्मारण्य में रहनेवाले वे सब ब्राह्मण कौन काम करते थे? ब्रह्मा ने उत्तर दिया कि वे लोग यज्ञदानादि करने और वापी, कूप, तड़ाग, वगैरह बनाने में दत्तचित्त थे। और प्रतिग्रह से बिल्कुल हटे हुए उस वन का राज्य करते थे। इसके अनन्तर रामजी के पुरोहित वशिष्ठजी ने उस तीर्थ के और माहात्म्य सुनाये।'

इतना और भी जान लेना चाहिये कि जैसा पूर्व कह चुके हैं कि हस्तिनापुर से धर्मारण्य का सम्बन्ध महाभारत के आदिपर्व के द्वितीयाध्याय से सिद्ध होता है। क्योंकि वहां 'समन्तपञ्चक' क्षेत्र के माहात्म्य में यही लिखा है कि,

त्रेताद्वापरयोः सन्धौ रामः शस्त्रभृतां वरः।
असकृत्पार्थिवम् क्षत्रं जघानामर्षचोदितः ॥३॥
स सर्वंक्षत्रमुत्साद्य स्ववीर्येणानलद्यु तिः।
समन्तपंचके पंच चकार रौधिरान् ह्रदान् ॥ ४ ॥
तेषां समीपे यो देशो ह्रदानां रुधिराम्भसाम्।
समन्तपञ्चकमिति पुण्यं तत्परिकीर्तितम् ॥ ११ ॥
अन्तरे चैव सम्प्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत्।
समन्तपञ्चके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ १३ ॥ इत्यादि।

अर्थात् त्रेता और द्वापर की सन्धि में परशुरामजी ने बहुत कोधकर कई वार क्षत्रियों का नाश करके उनके रक्तों को पांच कुण्डों में भर कर पितृ तर्पण किया। तभी से उसके आस

पास का देश समन्तपञ्चक कहलाया। जिसमें कलि और द्वापर की सन्धि में कौरव और पाण्डवों का परस्पर युद्ध हुआ। और यही बात जैसा पूर्व कह चुके हैं, स्कंद पुराण में धर्मारण्यान्तर्गत हाटकेश्वर क्षेत्र के माहात्म्य में वर्णित है। इसलिये यद्यपि धर्मारण्य का कुरुक्षेत्र तक कुछ सम्बन्ध प्रतीत होता है। तथापि स्कन्द पुराण के धर्मारण्य माहात्म्य नामक भाग के पढ़ने से स्पष्ट होता है कि बरेली प्रभृति प्रान्त सहित कान्यकुब्ज देश वर्तमान कानपुर प्रान्त को लेकर ही प्रधान धर्मारण्य कहलाता था। इसलिये इसी प्रान्त के गांवों और वहां के रहनेवाले (अधिपति) ब्राह्मणों के गोत्रादि की व्यवस्था धर्मारण्य खंड में सविस्तर निरूपित है और यह भी वहीं ग्रन्थान्त में लिखा है कि [1]कन्नौज का राजा आम बौद्ध (जैन) मतानुयायी हो गया और अपनी कन्या का विवाह एक जैन (बौद्ध) मतानुयायी कुमारपाल नामक राजा से किया जो ब्रह्मावर्त्त (विठूर के पास के प्रान्त) का निवासी था और जब उसने धर्मारण्य को उसे दायज में दिया तो उसके दामाद (जामाता) ने वहां के पूर्वोक्त वाडवों (ब्राह्मणों) से कर मांगा, एवं अपने देश से चले जाने और उनकी भूमि को (जिसे श्रीरामजी ने दिया था) छीन लेने की आज्ञा दी और कहा कि आप लोग जाइये, हम ऐसे नहीं मान सकते। परन्तु यदि अपने राम और हनुमान् को यहां लावेंगे, तभी हम आपके धर्म और बातों का विश्वास करेंगे। उस पार बहुत से वाडव (ब्राह्मण) रामेश्वरजी की ओर श्रीरामजी की प्राप्ति के लिये गये और अन्त में हनुमान्जी की सहायता से उन्हें उनकी पूर्व की भूमि प्राप्त हुई।

इस आख्यान से स्पष्ट है कि पूर्वोक्त धर्मारण्य के ब्राह्मण गंगा के उत्तर तट में कान्यकुब्ज देश (कानपुर आदि प्रान्त में) रहते और इन भूमिहार कहलाने वाले ब्राह्मणों की तरह याजनादि कर्मों से रहित होकर राज्य या भूमिपतित्व करते थे। और जिस मदारपुर में भूमिहार ब्राह्मणों का वर्णन आया है वह भी कानपुर जिले में गंगा से उत्तर ही है, और धर्मारण्य का नाम मोहेर भी है, क्योंकि लिखा है कि,

धर्मारण्यं कृतयुगे त्रेतायां सत्यमंदिरम्।
द्वापरे वेद भवनं कलौ मोहेरकं स्मृतम् ॥ २७ ॥ अ० ४० ॥

अर्थात् 'सत्युग में जिसका नाम धर्माण्य था, उसी का त्रेता में सत्य मन्दिर, द्वापर में वेदभवन और कलि में मोहेर नाम पड़ा। इसी लिये वहां उसकी राजधानी का नाम भी मोहेरपुर लिखा है। तात्पर्य यह है कि धर्मारण्य में जो प्रसिद्ध स्थान होता था, उसी का नाम मोहेरपुर होता था और वाडव ब्राह्मण वहां के राजा थे। अतः जिस राजधानी में वे रहते थे,

---

१. यथा, इदानीं च कलौ प्राप्ते आमो नाम्ना बभूवह। कान्यकुब्जाधिपः श्रीमान्धर्मज्ञो नीतितत्परः ॥ ११ ॥ प्रजानाम् कलिना तत्र पापे बुद्धिरजायत। वैष्णवं धर्ममुत्सृज्य बौद्ध धर्ममुपागतः ॥ ३५ ॥ तस्य राज्ञो महादेवी मामनाम्न्यतिविश्रुता। गर्भम् दधार सा राज्ञी सर्व लक्षण संयुता ॥ ३७ ॥ सम्पूर्णे दशमे मासि जाता तस्याः सुरूपिणी। रत्नगंगेति नाम्ना सा मणिमाणिक्यभूषिता ॥ ३९ ॥ ब्रह्मावर्त्ताधिपतये कुम्भीपालाय धीमते। रत्नगंगा महादेवीं ददौतामिति विकमी। मोहेरकं ददौ तस्मै विवाहे देवमोहितः ॥ ४४ ॥ धर्मारण्ये समागत्य राजधानी कृता तदा। देवांश्च स्थापयामास जैनधर्मप्रणीतकान् ॥ ४५ ॥ लुप्तशासनका। विप्रा लुप्तस्वाम्या अहर्निशम्। समाकुलितचित्तास्ते नृपमामं समाययुः ॥ ४८ ॥ कान्यकुब्जपुरं प्राप्य कतिभिर्वासरैर्नृप। गंगोपकण्ठे न्यवसञ्छ्रान्तास्ते मोढवाडबाः ॥ ४९ अ० ३६ ॥ इत्युक्त्वा हनुमद्दत्ता वामकक्षोद्भवा पुटी। प्रक्षिप्ता चास्य निलये व्यावृत्ता द्विजसत्तमाः ॥ १७ ॥ अग्निज्वालाकुलम् सर्वम् संजातं तत्र चैवहि। जाह्नवीतीरमासाद्य त्रैविद्येभ्यो ददौ नृपः ॥ १८ ॥ अ० ३७ ॥ इत्यादि ॥

वह मोहेरपुर कहलाते कहलाते मदारपुर कहलाने लगी और चूंकि वे लोग राजा या जबरदस्त थे, इसी से यवनों ने उनसे युद्ध किया। क्योंकि साधारण लोगों से राजा युद्ध नहीं करते। इस लिये जैसा कह चुके हैं कि समय पाकर कुछ ग्रामों में रहने वाले उन्हीं ब्राह्मणों का नाम भूमिहार ब्राह्मण पड़ गया इसके मानने में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता।

क्योंकि भूमिहार शब्द 'भूमि' शब्द को पूर्व में रखकर हृञ् हरणे धातु से 'कर्मण्यण्' (पा० ३। २। १) इस पाणिनिसूत्रानुसार 'अण्' प्रत्यय लगाने पर 'भारहार' आदि शब्दों की तरह बना है। यह हृञ् धातु हरण रूप अर्थ का बोधक है। जिस हरण का अर्थ पण्डित प्रवर भट्टोजिदीक्षित ने स्वकृत सिद्धान्त कौमुदी के उत्तरार्द्ध के भ्वादि गण में इसी हृञ् धातु के प्रकरण में लिखा है कि **'हरणं प्रापणं, स्वीकारः, स्तेयं, नाशनं च।'** जिसका तात्पर्य **यह है** कि, जिस हरण रूप **अर्थ** का वाचक **'हृ' धातु है, उस हरण के चार अर्थ हैं,** (१) प्राप्त करना **अर्थात्** पहुंचाना, (२) स्वीकार करना, (३) चुराना और (४) नाश करना। **इन चारो अर्थों के** उदाहरण **'तत्त्वबोधिनी' प्रभृति ग्रन्थों में ऐसे लिखे हैं, जैसे, (१) 'भारं हरति' अर्थात् बोझ को हरण करता यानी पहुंचाता है, (२) 'भागं हरति' अथार्त अपने हिस्से को हरण** करता या स्वीकार करता **है,** (३) 'सुवर्णम् हरति, अर्थात् सोना हरता या चुराता **है और** (४) 'हरि हरति पापानि' अर्थात् विष्णु पापों को हरते या उनका नाश करते हैं। परन्तु जब रुपये, पैसे इत्यादि की तरह पृथिवी की चोरी या नाश हो नहीं सकता इसलिये प्रकृत में **हृ** धातु के दो ही अर्थ हो सकते हैं, प्रापण अर्थात् पहुंचाना या बल से अधिकार कर लेना और स्वीकार।

इसलिये भूमिहार का अर्थ **हुआ** कि **'भूमिं हरति प्रापयपि बलादधिकरोति केनचिदुपायेन स्वीकरोति वेति भूमिहारः'** अर्थात् जो **ब्राह्मण पृथ्वी के ऊपर अस्त्र, शस्त्रादि के बल से** अधिकार कर लेवे, अथवा उपायांतर से प्राप्त पृथ्वी का स्वीकार कर लेवे—जैसा योगेन्द्रनाथ भट्टाचार्य की भी सम्मति इस विषय में ग्रन्थ के अन्त में दिखलावेंगे कि, जिन ब्राह्मणों ने जागीर वगैरह में भूमि प्राप्त की, वे भूमिहार कहलाए—उसे भूमिहार कहते हैं। और ये दोनो बातें धर्मारण्य के पूर्वोक्त ब्राह्मणों में घटती भी हैं। क्योंकि श्रीरामजी के यज्ञ में दक्षिणा स्वरूप भी पृथ्वी उन्हें यज्ञ करवाने के बदले मिली थी, और पीछे उस जैनी राजा के तंग करने पर उन्हें उसके गृह इत्यादि को जलाना और रुद्ररूप धारण करना पड़ा, जिससे उसकी सब सेनायें नष्ट हो गईं। यह बात उसी धर्मारण्य माहात्म्य ग्रन्थ से विदित होती है। और पश्चात् भी उन्होंने यवन राज्य काल में पृथ्वी पर बहुत सा अधिकार कर लिया था। इसलिये उसी समय (यवन काल में) ये मदारपुर के अधिपति ब्राह्मण भूमिहार कहलाये और इसलिये उन लोगों को यवनों ने बली जान घोर युद्ध किया।

इसी जगह इतना और भी जान लेना चाहिये कि जिस प्रकार अयाचक वीर ब्राह्मण दल के लिये यह भूमिहार या भुईंहार शब्द आया है। क्योंकि संस्कृत भूमिहार शब्द के भूमि शब्द का अपभ्रंश 'भुईं शब्द हो गया है। परन्तु हार शब्द दोनों में ज्यों का त्यों पड़ा है। उसी प्रकार उसी दल के लिये 'महियाल' और 'तगा' अथवा दान त्यागी शब्द आते हैं। जिनमें से 'महियाल' शब्द पञ्जाब प्रान्त निवासी सारस्वत ब्राह्मणों के एक प्रतिष्ठित दल के लिये आता है। जिस दल में काशी के भूतपूर्व विद्वन्मंडली मंडन श्रीयुत् काका राम शास्त्री जी हो गये हैं। जिनके सुकर्मपुष्प की कीर्तिगन्ध में आज भी विद्वन्मानस चंचरीक लुब्ध हो रहा है। और तगा या दानत्यागी, अथवा त्यागी शब्द प्रायः मेरठ की कमिश्नरी और उनके समीपवर्ती अन्य प्रांत निवासी गौड़ ब्राह्मणों के उसी अयाचक कर्मवीर दल के लिये आता है। इनमें से 'महियाल'

शब्द का ठीक वही अर्थ है जो भूमिहार शब्द का। क्योंकि उसका शुद्ध संस्कृत शब्द 'महीवार' है, जो मही (भूमि का पर्याय) पूर्वक वृञ् अथवा वृङ् धातु से उसी पूर्वोक्त 'कर्मण्यण्' इस सूत्र से अण् प्रत्यय करने से बना है। जिनमें से वृञ् धातु का वरण अर्थात् प्रार्थना या स्वीकार अर्थ है, और वृङ् धातु का भी संभक्ति अर्थात् स्वीकार सम्मान अथवा याद करना अर्थ है। अथवा वृङ् या वृञ् धातु से भी अण् प्रत्यय करने से यह शब्द बन सकता है। इन दोनों के भी अर्थ पूर्वोक्त ही हैं और धारण करना (रखना) भी है। इसलिये सम्पूर्ण शब्द का अर्थ हुआ कि **'महीं भूमिं वृणोति स्वकीरोति प्राऽयते वा, वृणाति वृणीते स्वीकरोति सम्मानयति धारयति वेति महीवारः'** अर्थात् जो भूमिका जागीर वगैरह की तरह, जैसा इस प्रकरण के अन्त में योगेन्द्र नाथ भट्टाचार्य एम० ए० की सम्मति दिखलावेंगे, स्वीकार या उसके लिये प्रार्थना करे। अथवा उसका सम्मान या पालन करे, उस अयाचक ब्राह्मण दल का नाम महीवार है। यही महीवार शब्द बिगड़ते-बिगड़ते महीवाल होकर आज कल महियाल हो गया है। र, ल, तथा ड वर्णों का उलट फेर संस्कृत में भी हुआ करता है। जैसे बिलार और विडाल। जैसे जमींदार भूमिहार, ब्राह्मणों में कहीं-कहीं लोगों को ब्राह्मण शब्द कहने से घृणा होती है, जैसा प्रथम ही दिखला चुके हैं, वैसे ही महियाल और त्यागी लोग भी अपने को ब्राह्मण कहने में घृणा करते हैं। केवल महियाल या त्यागी मात्र कहते और मनुष्य गणनादि के विवरणों में लिखवाते हैं। क्योंकि उनमें तो संस्कृत का अत्यन्त अभाव सा हो रहा है। इसलिये वे लोग बाह्मण शब्द के पवित्र अर्थ को न जान उसे विपरीत ही समझे हुये हैं। इसलिये उससे घृणा करते हैं। पञ्जाब में जमीन खरीदने वगैरह के लिये यह कानून है कि जराअत पेशा (कृषक) जातियां ही उसे कर सकती है न कि दूसरे लोग भी और ब्राह्मणों की गिनती जराअत पेशा कौममें न होने एवं तगे और महिलाओं की गिनती उनमें होने से वहां के बहुत से गौड़ और सारस्वत अपने को महियाल और तगा ही कहना और उन्हीं से विवाह करना पंसन्द करते हैं।

यही दशा गुजरात देशीय सिपाही नागर संज्ञक ब्राह्मणों की भी है। वे लोग भी बड़ौदा प्रभृति राज्यों में बड़े-बड़े जमींदार रहे हैं और संस्कृत तो प्रायः जानते ही नहीं। तथापि वाणिज्य, व्यापार में बहुत ही कुशल होने से लक्ष्मीपात्र हैं और प्रायः बहुत से मजूमदार कहे जाते हैं, जिसका जमींदार ही अर्थ होता है। उनमें भी प्रायः राय अथवा भाई पदवी वाले होते हैं, अमुकराय, अमुकभाई इत्यादि। वे लोग भी अपने को 'कौन हैं' ऐसा प्रश्न करने पर केवल नागर' कहा करते हैं, बल्कि ब्राह्मण कहने से बुरा भी मानते हैं। हां, अब द्वारका के गोवर्धन पीठ के श्री शंकराचार्य जी के समझाने से कुछ-कुछ समझने लगे हैं। यही दशा महियालों की है। अन्य सारस्वतों के हजार कहने पर भी अपने को केवल महियाल लिखवाते हैं। हां, वे भी अब कुछ-कुछ समझने लगे हैं, उनमें बड़े-बड़े जमींदार और राजा हो गये हैं और हैं, जिनका विशेष विवरण पं० दुर्गादत्त जोशी रचित 'सारस्वत ब्राह्मण इतिहास में मिलता है। जो अंग्रेजी और हिन्दी मिश्रित उर्दू में छपा है और १) में स्थान—हाथी बड़कला जिला देहरादून में मिलता है।

उन्होंने तो उस पुस्तक में जमींदार, भूमिहारादि ब्राह्मणों के सभी दोनवार, किनवार प्रभृति भेदों को लिखकर और बड़े-बड़े राजाओं, महाराजाओं तथा बाबुआनों को भी, जैसे महाराज द्विजराज श्रीकाशिराज, महाराजा हथुआ एवं बाबुआन जगतगंज, चितईपुर इत्यादि, लिखकर सभी को सारस्वत ब्राह्मण सिद्ध किया है। जिसे इच्छा हो मंगाकर देख लेवे। उसी

पुस्तक के तृतीय सर्ग (अध्याय, बाब) के १९वें से २९वें पृष्ठ तक गोत्र और उपाधियों आदि को बतलाकर युक्ति और प्रमाणों से यह सिद्ध किया है कि महाराज पोरस, जो सन् ईस्वी ३०० पूर्व हुआ, सुधाजोझा जो सन् ५०० ई० में हुआ, राजा छाच जो सन् ७०० ई० में और जैपाल, आनन्द पाल और सुखपाल जो सन् १००१ ई० मे हुए ये सभी महियाल आदि सारस्वत ब्राह्मण थे। उनके कुरसीनामे को भी वहाँ लिखा है और मिलान किया है। यहां तक कि उन्होंने 'राजर्षि' शब्द भी उन सारस्वत ब्राह्मणों के लिये रक्खा है, जिनका वर्णन उस पुस्तक भर में है।

डाक्टर विल्सन के 'भारतीय जातियां' नामक अंग्रेजी ग्रन्थ में महियालों के विषय में द्वितीय भाग के १३४वें पृष्ठ में इतना ही लिखा है कि :–

Saraswat Brahmans, 'Another class of the character referred to is that of the Moyals or movals. They are extensively scattered over the Punjab.'

अर्थात् 'सारस्वत ब्राह्मणों की एक और जाति है जो मोहियाल या मोवाल कहलाती और सम्पूर्ण पंजाब में फैली हुई है।' उसी जगह तगा ब्राह्मणों के विषय में लिखा है कि 'Taga Brahmans of the Punjab are generally cultivators. They belong to the Gauda division of the Brahman-hood. They care little about religious rites'd of any kind. Yet, as if compensating for their indifference in this matter, they profess to obstain flesh and fish........ They are found principally on the bank of tbe Saraswati, neat Thanesar. Some of the less pure agricultural Brahmans of these villages are called Taga or Gauda Tagas.'

इसका अर्थ यह है कि 'पंजाब के तगा ब्राह्मण प्रायः कृषक हैं, वे गौड़ ब्राह्मण दल के हैं और सभी प्रकार के धार्मिक कार्यों पर कम ध्यान देते हैं। तथापि गोया इसी अपराध के प्रायश्चित्त के लिये, वे लोग मांस, मछली नहीं खाते........। वे विशेष कर थानेसर के पास सरस्वती नदी के किनारे पाये जाते हैं। इन ग्रामों में बहुत से जो पक्के कृषक ब्राह्मण नहीं हैं वे तगा या गौड़ तगा कहलाते हैं।'

अस्तु, इसी प्रकार तगा या त्यागी ब्राह्मणों का विशेष विवरण यों है कि, महाराज आदि शूर ने ९९९ शकाब्द में कान्यकुब्ज देश से पांच गोत्र के पांच ब्राह्मणों को बुलाकर यज्ञ करवाया और युक्तिसे उन्हें वहां स्थापित किया। जिनके उस वंगदेशान्तर्गत गौड़ देश में (ढाका, राजशाही, मुर्शिदाबाद प्रभृति प्रान्तों का नाम गौड़ देश है) कई भिन्न-भिन्न कारणों के वश दो दल हो गये, जो गंगा के इस और उस पार में वारेन्द्र और राढ देश में बसे। इसलिये वारेन्द्रीय और राढीय कहलाते। उन्हीं में मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूक भट्ट वारेन्द्र श्रेणी के ब्राह्मण थे। अतएव अपनी टीका के प्रारम्भ में वे लिखते हैं कि :–

गौडे नन्दनवासिनाम्नि सुजनैर्वन्द्ये वरेन्द्रयां कुले।
श्रीमद्भट्टदिवाकरस्य तनयः कुल्लूकभट्टोऽभवत्॥

जिस का अर्थ यह है कि गौड़ देशके वारेन्द्र श्रेणी के ब्राह्मणों के नन्दवासा नामक कुल में श्रीमद्भट्ट दिवाकर के पुत्र कुल्लूक भट्ट हुये।

जब कन्नौज से इस देश में ब्राह्मण आये तो, उनके विषय में भिन्न-भिन्न मत हैं कि वे लोग फिर गौढ़ देश से कन्नौज में लौटे। परन्तु उनके देश वालों ने मगध और वंगादि देशों में जाने के कारण उनका सत्कार न किया। इसलिये फिर लौट गये और गौड़ देश में ही स्थित

हुये। किसी का मत उनके वहां ठहरने के विषय में भिन्न ही है और किसी का और ही। यह बात 'गौड़ हितकारी' मासिक पत्र के देखने से स्पष्ट विदित होती है,जो मैनपुरी से निकलता है। उसमें 'गौड़ देश में ब्राह्मण' शीर्षक लेख में जो अप्रैल सन् १९१५ ई० से प्रतिमास प्रकाशित होने लगा है, बहुत से प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर इन बातों को दिखलाया है। उसी पत्र के सितम्बर सन् १९१५ ई० के अंक के दूसरे पृष्ठ में लिखा है कि 'बल्लालसेन के पिता विजयसेन के पश्चात् बल्लालसेन ने राढी एवं वारेन्द्र श्रेणी विभाग, एवं वारेन्द्र कुल में कौलीन मर्यादा स्थापित की एवं राढीय श्रेणी में दानत्यागी कुलीन ब्राह्मणों का आदर सत्कार किया।' 'कहते हैं कि बल्लालसेन ने एक स्वर्ण निर्मित गोमूर्ति दान की। परन्तु कतिपय राढी ब्राह्मणों ने इस स्वर्ण निर्मित धेनु के टुकड़े-टुकड़े करके स्वस्वभाग ग्रहण किया। इससे बल्लालसेन को दुःख हुआ और दानग्राही ब्राह्मणों को उन्होंने समाज से बहिष्कृत कर दिया।' इससे उस समय गौड़ देशीय राढीय ब्राह्मणों का एकदल दान त्यागी था और दूसरा दानग्राही ऐसा प्रतीत होता है। इसके अनन्तर ऐसा मालूम होता है कि जब यवनों का आधिपत्य वंगदेश में विशेष हुआ जिसके आजतक अनेक प्रमाण हैं और जो बात इतिहासज्ञों से छिपी नहीं है, तब, अथवा अन्य उन्हीं कारणों से, जिनका वर्णन अन्य ब्राह्मणों के विषय में पूर्व कर चुके हैं, वे गौड़ देशीय ब्राह्मण गौड़ देश से पश्चिम को चले हैं। परन्तु कान्यकुब्ज प्रभृति ब्राह्मणों ने वंगादि देशों में जाने और रहने से अपने पास रहने नहीं दिया है। इसलिए और कुरक्षेत्र के पास के देशों को किसी और कारण से भी अनुकूल जान कर वे गौड़ देश के दोनो दलवाले दानत्यागी और ग्राही ब्राह्मण वहीं रह गये हैं। इसमें प्रबल प्रमाण यह है कि, जहां अन्य गौड़ पाये जाते हैं वहीं तगा लोग भी। 'कान्यकुब्जा द्विजाः सर्वे' यह प्रसिद्ध होने और उन्हीं के एक दल के पीछे से गौढ़ नाम वाला प्रसिद्ध और पंच द्राविणों तक विस्तृत होने से प्रथम जिन पांच दलों का नाम कान्यकुब्ज था, वे ही अब गौड़ भी कहलाए। जैसे सूर्य वंश का नाम पीछे रघुवंश भी हुआ। इसी से शक्ति संगम तंत्र में **'पंचगौडाः'** इत्यादि लिखा है, जिसे लोग सह्याद्रि खंड और भविष्यपुराण का बताते हैं।

अस्तु, बल्लालसेन के समय में दान त्याग से उनका नाम प्रसिद्ध हो गया। इसलिये वे लोग दान त्यागी कहलाने लगे और दूसरे लोग ज्यों के त्यों कहलाते थे। परन्तु जब गौड़ देश से कुरुक्षेत्र के आस पास आ बसे, तो अन्य ब्राह्मण तो पूर्वोक्त नियमानुसार गौड़ देश के नाम से गौड़ कहलाने लगे और दान त्यागी लोग गौड़ दान त्यागी, जो बिगड़ते-बिगड़ते काल पाकर गौड़ त्यागी होकर फिर त्यागी, तागी, तगा इत्यादि हो गया। इसलिए अब वे लोग गौड़ तगा या तगा कहलाते हैं। यदि उनमें भी कहीं ब्राह्मण शब्द से घृणा है, तो उसका कारण दिखला चुके हैं। वे लोग बड़े-बड़े जमींदार हैं, और उनके व्यवहार राजसी हो गये हैं। गौड़ों में जो आदि गौड़ कहलाते हैं उनका भी यही अर्थ है कि जिनको आदि शूर ने गौड़ देश में बुलाया था अथवा जो प्रथम गौड़ देश में गये, या वहां से प्रथम आकर इन देशों में बसे। इन दान त्यागी गौड़ों के विवाह सम्बन्धादि प्रायः अन्य गौड़ों के साथ सहारनपुर, अम्बाला आदि जिलों में होते हैं। परन्तु महियाल लोग तो अन्य सारस्वतों के यहां अपने पुत्रों का ही प्रायः विवाह करते, अपने को उनसे श्रेष्ठ समझते और प्रायः लड़कियां उन्हें नहीं देते हैं। इस तरह से उत्तर भारत के (१) भूमिहार, (२) दान त्यागी या तगा, (३) महियाल, (४) जमींदार, (५) पश्चिमा आदि नामधारी अयाचक ब्राह्मण ही इस समय एकसे है और इनके आचार, विचार, नाम और प्रतिष्ठा इत्यादि भी समान ही हैं।

इसी प्रकार यदि वंगदेशीय ब्राह्मणों को देखिये तो वहां भी तो दल हैं, अयाचक लोग देवशर्मा कहे जाते हैं, तथा याचक दलवाले भट्टचार्य एवं दक्षिण में अयाचक लोग प्रायः राव कहलाते हैं तथा याचक दल वाले भट्ट। महाराष्ट्र के चितपावन लोग, जिनमें लोकमान्य तिलक हुए हैं, अयाचक ही हैं। गुजरात देश में नागरों का हाल कह ही चुके हैं। उस गुजरात में मुझे बहुत से ऐसे ब्राह्मण मिले, जिनकी वंश परम्परा की पदवी अयाची है, जिसका अर्थ अयाचक है। कान्यकुब्जों और सर्यूपारियों में भी इन जमींदार और भूमिहार ब्राह्मणों को छोड़कर और भी प्रायः बहुत से ऐसे ब्राह्मण सर्यूपार और कान्यकुब्ज देश में अधिकतर पाये जाते हैं, जो प्रतिग्रह से घृणा करते हुये केवल कृषि, वाणिज्यादि द्वारा ही जीविका करते और कुलीन समझे जाते हैं। मैथिलों में भी प्रायः श्रोत्रिय तथा अन्य भी बहुत से अयाचक ही हैं। एवं उत्कल ब्राह्मणों में भी बहुत से अयाचक हैं, जो जाजपुर स्थान के नाम से जाजपुरी कहे जाते हैं और पंड्या भी। इसी तरह इस समय भी कान्यकुब्जों में बहुत से दान त्यागी ब्राह्मण जगद्वंशी और धनंजयी कहलाते हैं।

यद्यपि इन सब के साथ इन भूमिहार, जमींदार, तगा और महियाल आदि, अयाचक विप्रों के खान पान आदि नहीं हैं, तथापि इस कथन का तात्पर्य यह है कि जो अनादि काल से याचक और अचायक दो प्रकार के ब्राह्मण कहलाते थे, उनका इस समय भी किसी देश या प्रान्त में अभाव नहीं है। अतः इनमें से जिनके वंश उज्ज्वल, या आचार व्यवहार अच्छे होवें, उनके साथ खान पान, विवाह आदि करने में कोई हर्ज नहीं है।

अस्तु, यह बात सिद्ध हो गई कि ब्राह्मणों की सभी नूतन संज्ञायें यवन काल में प्रचलित हो गईं। तदनुसार भूमिहार, तगा (दानत्यागी) और महियाल संज्ञायें भी उसी काल में पड़ीं। और यह भी सिद्ध हो गया कि प्रथम भूमिहार और तगा (दान त्यागी) संज्ञा कान्यकुब्जादि ब्राह्मणों के ही एक-एक दल की हुई और भूमिहारादि शब्दों के अर्थ भी विदित हो गये। इसलिये जो लोग ऐसी कुकल्पना करते हैं कि 'जब मदारपुर के ब्राह्मण भूमि को हार गये, तो उनका नाम भूमिहार पड़ा' वह अज्ञानपूर्ण है। क्योंकि व्याकरणादि भी इस अर्थ को पूर्वोक्त रीति से स्थान नहीं दे सकते। और यदि हारने पर ही नाम पडा तो जब मदारपुर के अधिपति थे उस समय लड़ाई से पूर्व काल में वे लोग क्योंकर भूमिहार कहे गये? और पीछे भी भूमिहार कौन कहा गया? क्योंकि आपकी सुबुद्धि में तो यह असम्भव बात समाई है कि सभी मर गये। और गर्भू तो लड़ाई में था ही नहीं, क्योंकि उसकी माता अपने पिता के घर या अन्यत्र थीं और वह गर्भ में था। क्या आपको कहीं ऐसा भी मिला है कि लड़ाई में सभी मार डाले गये? क्या आजकल के समय में भी कोई कादर न था। इसलिये ये सब कुकल्पनाएँ मात्र हैं। वास्तव अर्थ तो पूर्व में ही दिखला चुके हैं। यदि 'तुष्यतु दुर्जन' न्याय से आपके इस कल्पित अर्थ को स्वीकार भी कर लेवें, तो भी भूमिहार ब्राह्मणों के विषय में कोई हर्ज नहीं है। क्योंकि पूर्वोक्त रीति से जो युद्ध में इधर उधर भाग गये, वही ब्राह्मण भूमिहार कहलाये। यदि **'भूम्या भूमेर्वा हारो भूमिहारः'** अर्थात् जो भूमि के हार रूप होवें वे ब्राह्मण भूमिहार कहलाते हैं। जैसे भूमिसुर या भूसुर का अर्थ भूमि सम्बन्धी (अर्थात् इस लोक का) सुर यानी देवता है, अतः ब्राह्मण भूसुर कहलाते हैं। जैसे पति स्त्री का भूषण रूप होने के कारण उसका हार कहलाता है, वैसे ही पृथ्वी रूप स्त्री के पति होने से यह अयाचक ब्राह्मण भी भूमिहार कहलाने लगे, ऐसी कल्पना आप करते, तो आप की बुद्धिमत्ता की प्रशंसा की जाती।

अस्तु, ये भूमिहार ब्राह्मण कन्नोज से पूर्वोक्त मदारपुर वाले युद्ध में हट कर काशी के आसपास के प्रान्तों में भी फैल गये, क्योंकि वे निकट हैं, न कि अधिक पूर्व के देश। और अन्य अयाचक ब्राह्मणों के इनमें मिलजाने से जैसा कह चुके हैं, इनकी संख्या बढ़ने लगी। उसी समय जो अयाचक बाह्मण बड़े-बड़े जमींदार, या शक्तिसम्पन्न और शस्त्रधारी थे, परन्तु अभी तक इस भूमिहार संज्ञा या विशेषण से भूषित न थे, और जो बढ़ते-बढ़ते तिरहुत प्रान्त के मुजफ्फरपुर, दरभंगा प्रभृति जिलों में चले गये, उन्हें मिथिला देश के निवासी ब्राह्मण प्रभृति अपने को पृथक् रखने के लिये पश्चिम देश से आये हुये ब्राह्मण जान पश्चिमीय ब्राह्मण कहने लगे। जो शब्द आजतक मिथिला प्रान्त में बिगड़ कर 'पश्चिमा ब्राह्मण' इन्हीं अयाचक ब्राह्मणों के लिये कहा जाता है। और इसके साथ ही उस देश के भी जो बहुत से अयाचक ब्राह्मण थे और जिनका व्यवहार याचक मैथिलों को पसन्द न था और न उनका अयाचक ब्राह्मणों को, वे भी इन पश्चिमा ब्राह्मणों से विवाह आदि करके इनमें मिलने लगे। इन पश्चिमा ब्राह्मणों का मैथिलों के साथ विवाह और परस्पर खाने पीने की प्रथा आज तक प्रचलित है और बहुत से मैथिल ब्राह्मण मूर्द्धन्य पश्चिमा ब्राह्मणों में इसी कारण मिलते चले जा रहे हैं, जिनका निरूपण आगे करेंगे। इसलिये पश्चिमा ब्राह्मण का अब अर्थ हो गया कि जो ब्राह्मण पश्चिम के कान्यकुब्जादि देशों से तिरहुत में आये अथवा जो तिरहुत वाले भी विवाहादि द्वारा उनमें मिलते गये। साथ ही, इन पश्चिमा ब्राह्मणों ने भूमिहार ब्राह्मणों को ही अपने सम्बन्ध योग्य समझा, इसलिये काशी के समीपवर्त्ती प्रान्तों में रहने वाले इन भूमिहार ब्राह्मणों के साथ विवाहादि करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार से उनके इन भूमिहार ब्राह्मणों में मिल जाने से भूमिहार ब्राह्मणों का सम्बन्ध मिथिला प्रदेश में भी यद्यपि हो गया तथापि इनके लिये वहां वही पश्चिमा ब्राह्मण शब्द अब तक प्रचलित है। कहीं-कहीं केवल पश्चिमा शब्द भी आता है।

इस 'पश्चिमा ब्राह्मण' शब्द के विशेष प्रचार होने का कारण यह है कि जब मिथिला देश में कायस्थों और ब्राह्मणों की पञ्जी (मैथिल वंशावली) लिखी जाने लगी, जिसके अनुसार ही आज की मैथिल सभा केवल मैथिल ब्राह्मणों की नहीं है, किन्तु मैथिल कायस्थों की भी है और वहां ब्राह्मण और कर्ण कायस्थ दोनो अपने को मैथिल ही कहते हैं और पाग (पगड़ी) भी दोनो की प्रायः एकसी होती है। तो जैसे मैथिल कायस्थों से अन्य कायस्थों को पृथक करने के लिये कायस्थ के साथ पश्चिमा शब्द लगाने से पश्चिमा कायस्थ कहलाने लगे, वैसे ही इन अयाचक ब्राह्मणों को मैथिल ब्राह्मणों से पृथक् करने के लिये ब्राह्मण शब्द के साथ पश्चिमा शब्द लगाकर ये ब्राह्मण पश्चिमा ब्राह्मण कहलाने लगे। अब भूमिहार ब्राह्मण महासभा के उद्योग से कहीं-कहीं भूमिहार शब्द सुनने में आता है। हाँ, मगध और तिरहुत प्रांत में भी बाभन शब्द का प्रचार है। उनमें से मगध में विशेष रूप से और तिरहुत में भी कहीं-कहीं केवल यह शब्द बोला जाता है। परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि आजकल प्रायः प्रत्येक प्रांत में ब्राह्मण मात्र के लिये बाभन शब्द का प्रयोग होता है। इसका प्रचार तो यहां तक हो गया है कि जो लोग संस्कृत पढ़े लिखे धुरन्धर विद्वान समझे जाते हैं, वे भी किसी विशेष समय को छोड़ अपने या सभी ब्राह्मणों के लिये बाभन शब्द का ही प्रयोग साधारण बोलचाल में किया करते हैं। जैसा 'करिया बाभन, गोर चमार, इनके संग न उतरे पार' इत्यादि किम्वदन्तियां भी सूचित करती हैं। इसी प्रकार से मिथिला के मैथिल लोग तो अपनी भाषा के व्यवहार में सभी ब्राह्मणों को बाभन कहा करते हैं। जैसा सोतियो बाभन थीक और कंटाहो

बाभने थीक, 'बाभनो सब तरहक होइछथ' इत्यादि जिसका तात्पर्य यह है कि 'श्रोत्रिय भी ब्राह्मण ही हैं और महापात्र (प्रेत ब्राह्मण) भी। ब्राह्मण भी सभी तरह के होते हैं।' थोड़ा पश्चिम जाने पर भी बाभन या बम्भन शब्द का प्रयोग मिलता है, जैसा 'क्यों जी, आप तो बम्भन की तरह खटराग करते हैं' इत्यादि। इसी प्रकार अन्य देश में भी 'करिया बाभन गोर शुद्दर ताहि देखि डरे रुद्दर।

तात्पर्य यह है कि सभी प्रान्त में बाभन शब्द को ही ब्राह्मण का बोधक पाते हैं, और यह उचित भी है। क्योकि संस्कृत ब्राह्मण शब्द का अपभ्रंश बाभन शब्द है, जैसे वाराणसी का बनारस, चतुर्वेदी का चौबे, त्रिवेदी का तिवारी, और मार्ग का मग इत्यादि। और आजकल प्रायः अपभ्रंश शब्दों का ही व्यवहार होता है। यह बाभन शब्द ब्राह्मण शब्द से क्योंकर बिगड़ते-बिगड़ते बना, इसका विस्तृत विचार पटना प्रान्तांर्गत अमहरा ग्राम निवासी श्री काशीचरण सिंह जी ने 'बाभन' नामक ग्रन्थ में किया है जिसके देखने से इस विषय तथा अन्य उपयोगी विषयों में ज्ञान प्राप्त हो सकता है। वह अवश्य दृष्टव्य है।

सारांश यह है कि मैथिली भाषा में श्रोत्रिय शब्द की जगह सोतिय अथवा सोत शब्द का प्रयोग करते हैं, जैसा अभी दिखला चुके हैं। श्रोत्रिय शब्द के दोनों रकार उड़ा दिये गये हैं और श्रावण तथा चैत्रादि शब्दों की जगह भी सावन और चैत शब्द ही बोले जाते हैं। एवं महिष शब्द के मकर की जगह 'भैं' शब्द बोल कर हकार, सकार अक्षरों की जगह 'स' अक्षर बोला जाता है । एवं मिथिला में ही महानस शब्द की जगह भानस शब्द का प्रयोग होता है, जिसका अर्थ रसोई घर है। इसीलिये रसोई बनाने वाले को वहां के लोग 'भनसिया' कहा करते हैं। इन दृष्टान्तों से स्पष्ट हो गया कि किस प्रकार ब्राह्मण शब्द बिगड़ते-बिगड़ते बाभन हो गया। विशेषकर मैथिल भाषा में इसके विशेष दृष्टान्त मिलते हैं। इसलिये उस भाषा में ब्राह्मण शब्द की जगह बाभन शब्द ही है और होना ही चाहिये जैसी उस भाषा की रीति विदित हो गई होगी। इसी से तिर्हुतप्रान्त में अन्य ब्राह्मणों के लिये और इस अयाचक दल वाले ब्राह्मणों के लिये भी बाभन शब्द का ही प्रयोग होता है। क्योंकि 'जैसा देश वैसा भेस' इस नियमानुसार उस देश में उसी देश की भाषा के शब्द का प्रयोग करना या होना उचित ही है।

मगध देश मिथिला का समीपवर्ती है। इसी से पूर्वकाल में भी मगध और उसका सम्बन्ध बहुत रहा है, जैसा बौद्ध काल आदि के इतिहास से विदित होता है। साथ ही, जैसा काशी प्रान्त के आचार विचार से मगध का आचार विचार एकदम विपरीत ही है, वैसा मिथिला देश से नहीं, किन्तु दोनों देशों के आचार विचार प्रायः मिलते हैं। ये भी दोनों देशों के प्राचीन सम्बन्ध को सिद्ध करते हैं। और जिस बिहार अथवा बंगाल का भाग मगध है उसी का तिरहुत भी है। परन्तु काशी उससे पृथक् है, क्योंकि प्रायः जिन-जिन प्रान्तों के आचार इत्यादि एक प्रकार के होते हैं वे ही एक में सम्मिलित किये जाते हैं। इसलिये यह आज तक देखने में आता है कि मिथिला प्रान्त के अयाचक अथवा याचक ब्राह्मणों के जितने विवाह सम्बन्ध प्रभृति मगध देश में हैं, उतने तिरहुत से बाहर अन्यत्र काशी प्रभृति प्रान्तों में नहीं हैं। क्योकि जिन लोगों की भाषा इत्यादि के समझने में विशेष क्लेश नहीं होता, उनके ही सम्बन्ध परस्पर होने से आसानी होती है। मिथिला की भाषा भी मगध देश से मिलती जुलती है। इन्हीं सब कारणों से मगध देश में भी उसी मिथिला देश वाले, अथवा उस भाषा वाले बाभन शब्द का व्यवहार सभी याचक और अयाचक ब्राह्मणों के लिये आता है। न कि काशी प्रान्त के भूमिहार और प्रयाग के जमींदार शब्द का प्रयोग अयाचकों के लिए आज तक

आया है। क्योंकि जिसका सम्बन्ध प्रबल होता है वही अपनी ओर उसे सब तरह से घसीटता है। इसीलिये छपरा जिले के पूर्वी भाग में भी बाभन शब्द ही सभी ब्राह्मणों के लिये आता है। क्योंकि वह मिथिला से बहुत निकट और काशी प्रान्त से बहुत दूर हो गया है। अतएव वहाँ के बहुत से आचार विचार भी तिरहुत से मिलते हैं।

सबसे बड़ा प्रमाण छपरा, तिरहुत और मगध के प्राचीन सम्बन्ध का यह है कि बहुत से मैथिल और पश्चिमा आदि जो ब्राह्मण वहाँ पाये जाते हैं, वे बहुतेरे या तो छपरा से गये हैं, अथवा मगध देश से। जैसे एकसरिया, जैथरिया, दिघवे अथवा दिघवैत, सहौलिया, दन्सवार और कोदरिया प्रभृति छपरा से तिरहुत आदि में गये हैं और आरे, सिहुलिया या सिहोगिया या सोहगौरिया, नैनजोरा इत्यादि मगध से तिरहुत या छपरा में गये हैं। इसीलिये इन सभी का भाषा इत्यादि में मेल है। इसलिये मिथिला भाषा का ही बाभन शब्द मगध या छपरा में भी बोला जाता है, इसमें संदेह नहीं हो सकता। इसीलिये जो लोग पाण्डित्य के गर्व में यह कुकल्पना करते हैं—जैसा मि० ई० ए० गेट साहब ने सन् १९०१ ई० की भारतवर्षीय मनुष्यगणना के विवरण की छठी जिल्द के २७९ पृष्ठ के फुटनोट (टिप्पणी) में म० म० हरिप्रसाद शास्त्री की सम्मति लिखी है, जो उन्होंने एसियाटिक सोसाइटी के जर्नल में दिखलाई थी कि जो ब्राह्मण बौद्ध काल में या तो बौद्ध हो गये थे या उसका प्रभाव उनके ऊपर पड़ गया था, उनके ही लिये बाभन शब्द प्रयुक्त होता है। क्योंकि यह शब्द भी बौद्ध धर्म की पाली भाषा का है इत्यादि। उनकी कल्पना की प्रंशसा जहां तक की जावे सब थोड़ी ही है। क्योंकि इस कुकल्पना से तो प्रायः सभी ब्राह्मण जैसा दिखला चुके हैं, पूर्वकाल के बौद्ध सिद्ध हो जावेंगे। फिर उनके मत में ब्राह्मण शब्द किसके लिये होगा? क्या पञ्जाब प्रान्त तथा प्रयाग के पश्चिम बौद्धधर्म का प्रभाव न था? अथवा दक्षिणात्य प्रान्तों में बौद्ध धर्म का प्रबल प्रतापादित्य उदित न हुआ था? यह तो आजकल के पुरातत्त्व-विभाग और प्राचीन इतिहासों से स्पष्ट ही है। फिर उन प्रान्तों में आप के मत से किसी ब्राह्मण के लिये बाभन शब्द का प्रयोग आज क्यों नहीं मिलता? इस कल्पना से तो आप यह भी कह सकते हैं कि आजकल प्रायः जितने अपभ्रंश (पालीभाषा) शब्द हिन्दी या देशी भाषाओं में जिन जड़, चेतना सभी वस्तुओं के लिये बोले जाते है, वे सब वस्तुयें भी बौद्ध हो गई थीं। जिस तरह मिथिला भाषा का बाभन शब्द बौद्ध ब्राह्मणों के लिये है, उसी प्रकार के 'भानस' आदि शब्द भी बौद्ध रसोई घर के लिये होने चाहिए। क्योंकि जब मनुष्य बौद्ध होते होंगे, तो उनके रसोई घर भी उसी धर्म के अनुयायी हो जाते होंगे। अथवा इन शब्दों तथा अन्य रसोई घर भी उसी धर्म के अनुयायी हो जाते होंगे। अथवा इन शब्दों तथा अन्य अपभ्रंश बनारस, सावन, भादो, चौबे, दूबे प्रभृति के लिये और उपाय निकालिये। इसलिये इन सब कुकल्पानाओं का अवकाश यहां नहीं है।

इसी से मि० जान बीम्स ने जो लिखने क साहस दिखलाया है कि 'Bbumihars are also called Babhans, by which the people say is, meant a Sham Brahman.' अर्थात् भूमिहार बाभन भी कहलाते हैं, जिसका अर्थ लोग यह बतलाते हैं कि 'दोगला ब्राह्मण'। उसका भी खण्डन हो गया। क्योंकि इस प्रकार से तो सभी ब्राह्मण दोगले सिद्ध हो जावेंगे, क्योंकि सभी बाभन कहलाते हैं, जैसा दिखला चुके हैं। इसका विशेष विचार आगे होगा। हा, हम इतना अवश्य स्वीकार करेंगे कि बाभन शब्द ब्राह्मण शब्द का अपभ्रंश होने से चौबे, दूबे भूमिहारादि शब्दों की अपेक्षा प्राचीन है। इसीलिये पाली लेखों में भी कहीं-कहीं

पाया जाता है, और इसलिये उसका प्रचार भी पुराना है न कि इन शब्दों का समकालीन है। चाहे यह बाभन शब्द कैसा भी और कभी का भी होवे, परन्तु पूर्वोक्त युक्तियों से यही मानना पड़ेगा कि उसका विशेष रूप से प्रचार मिथिल देश से ही और उसी भाषा के अनुरोध से हुआ है। इस तरह से जिन अयाचक ब्राह्मणों की स्थिति मगध प्रान्त में भी उन्होंने सदृश और योग्य जमींदार और भूमिहार ब्राह्मणों, अथवा पश्चिमा ब्राह्मणों के साथ सम्बन्ध करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार मगध प्रान्त में भी अयाचक ब्राह्मणों की स्थिति नामांतर से हो गई, जैसी मिथिला में। इसी प्रकार से प्रयाग और बांदा प्रभृति प्रान्तों में पूर्वोक्त रीति से यही लोग अभी तक जमींदार ब्राह्मण कहलाते हैं। इसलिये निर्विवाद सिद्ध हो गया कि ये अयाचक ब्राह्मण इन देशों में कहीं भूमिहार ब्राह्मण, कहीं पश्चिमा ब्राह्मण, कहीं केवल बाभन या ब्राह्मण और कहीं जमींदार ब्राह्मण इत्यादि नामों से पुकारे जाते हुये रहते हैं और विजनौर, अम्बाला आदि जिलों में तगा या दानत्यागी और झेलम, गुरदासपुर आदि जिलों में महियाल कहलाते हैं। परन्तु वस्तुतः ये सभी एक ही हैं। अर्थात् एक आचार वाले अयाचक ब्राह्मण।

इसीलिये मिस्टर क्रुक ने भी अपनी अंग्रेजी पुस्तक संयुक्त प्रान्तीय जाति विवरण।' (The Tribes and Castes of U. P. and Oudh) के द्वितीय भाग के ६४वें पृष्ठ में लिखा है कि :–Bhuinhar (Sanskrit Bhumi 'land' kara (har) 'marker'). An important tribe and landowners and agriculturists in eastern districts. They are also known as Babhan, Zamindar Brahman, Grihastha Brahman, or pashchima or 'western' Brahmans.'

जिसका अर्थ है कि 'भुईंहार शब्द संस्कृत के भूमिहार शब्द का अपभ्रंश है, जिसके भूमि शब्द का पृथ्वी और हार का अधिकार करनेवाला अर्थ है। यह एक प्रसिद्ध जमींदार और खेती करनेवाली जाति है, जो संयुक्त प्रान्त के पूर्वीय जिलों में पाई जाती है। भूमिहार लोग बाभन, जमींदार ब्राह्मण, गृहस्थ ब्राह्मण और पश्चिमा ब्राह्मण भी कहे जाते हैं।'

यह सिद्धकर चुके हैं कि ये अयाचक नामधारी ब्राह्मण प्रथम थोड़े से मदारपुर के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, परन्तु धीरे-धीरे इनमें सभी धनी और शक्तिशाली अयाचक जमींदार मिलते गये, जिससे इनकी संख्या आज बीस पचीस लाख के लगभग हो गई है। प्रसिद्ध दृष्टान्त ये हैं :–

महाराज द्विजराज श्रीकाशिराज और सभी गौतम भूमिहार ब्राह्मण सर्यूपारी हैं। इसी तरह गाजीपुर के अन्तर्गत करण्डा परगने के पुरैना ग्रामवासी भूमिहार ब्राह्मण भी सर्यूपारी, गौतम गोत्री, किल्थू मिश्र के वंशज हैं। जिनके पूर्वज पूरण मिश्र और पुरन्दर मिश्र गोरखपुर जिले के भटनी ग्राम के पास पिपरा स्थान से लगभग १७४० ई० में आए और अपने ही नाम से पुरैना ग्राम बसाया, जो पुरणायन से बिगड़ कर पुरैना हो गया। वहां के राजपूतों के जबदस्त होने से महाराजा बलवन्त सिंह की तरफ से इन्हें २४०० बीघे की जमींदारी मिली और उन्होंने ही इन्हें 'राय' की पदवी भी दी। अब तक वहां के राजपूत जब पांच कोस करण्डा परगने के ब्राह्मणों को खिलाते हैं, तो इन लोगों को भी निमन्त्रण देते हैं। यद्यपि ये लोग अयाचक होने से अब उनके द्वार पर जाकर फिर लौट आते हैं, न कि भोजन करते हैं। भूमिहार ब्राह्मण महासभा के सेक्रेटरी श्री रघुनन्दन प्रसाद सिंह जी कोदरिया मैथिल हैं, जिनका एक भाई आजतक मैथिल ही है। सुरसर के महाराज भी मैथिल ब्राह्मण ही हैं,

जिनकी 'झा' की पदवी आज भी है। नरहन इत्यादि के राजा बाबू जो दोनवार कहलाते हैं, कान्यकुब्ज हैं। वे वत्स गोत्रीय देवकली के पाण्डेय हैं, जिनके ही वंशवाले जनकपुर के पास हिसार ग्राम और छपरा के बभनगावां में आजतक पाण्डेय की ही पदवी से भूषित हैं। एकसरिया और सहदौलिया जो क्रमशः छपरा के चैनपुर बगौरा आदि ग्रामों और दरभंगा के पतौर प्रभृति में पाये जाते हैं और जिनकी पदवी आजतक दीक्षित और मिश्र है, पराशर गोत्री कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। इसी प्रकार नैनजोरा लोग, जो आजतक पहलेजा घाट और नैनीजोर में तिवारी ही कहलाते हैं, नैनीजोर के तिवारी सर्यूपारी हैं। इसी प्रकार छपरा के बहुत से धनगड़हा, अटौली प्रभृति ग्रामों में डुमरा के सर्यूपारी ओझा पाये जाते हैं और आजकल अपने को डुमरैत तथा ओझा ही कहते हैं। दरभंगा के पूसा रोड स्टेशन के पास 'खैरी' ग्राम के लोग अभी तक पाण्डेय कहलाते हैं और अपने को पराशर गोत्री और हस्तगामे कहते हैं,जो हस्तगाम के सर्यूपारी पाण्डेय हैं।

इसी प्रकार सिमरी, आरा के पाण्डेय लोग मनेर के पाण्डे मनेरिया कहाते हैं, ये सर्यूपारी हैं। टेकारी महाराज प्रभृति, जिनमें से कहीं-कहीं लोग कारणवश तिवारी और दूबे आदि भी बोले जाते हैं, दुमटिकार या दुमटेकार के पाण्डेय अथवा तिवारी हैं। जिनके समाज वाले प्रयाग प्रान्त में इसी नाम वाले अब तक पाये जाते हैं, जैसा आगे विदित होगा। ये लोग भी दुमटेकार ही कहलाते हैं। कहीं-कहीं लोग भूल से शब्दों का उलटफेर करके दुमकटार या डोमकटार बोलते हैं। परन्तु दुमटिकार कहना ही उचित है क्योंकि प्रयाग आदि में यही नाम है और वहां टिकार नाम का एक स्थान भी है। इसलिये डोमकटार नाम को सुनकर बिना विचारे अज्ञानमूलक जो कुकल्पनायें की जाती हैं, वे रद्दी हैं। सकरवार लोग कान्यकुब्ज ब्राह्मण फतेहपुर जिले के फतुहाबाद स्थान के सांकृत गोत्री मिश्र हैं, जिनके वंशवाले बंगाल के मुर्शिदाबाद प्रभृति जिलों के कांदी इत्यादि स्थानों में मिश्र ही कहलाते हैं, जैसे मणीन्द्रनारायण मिश्र इत्यादि और आरा के दुधारचक में भी। इसी प्रकार किनवार लोग क्यूना के दीक्षित काश्यप गोत्रीय कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। मुजफ्फरपुर के मथुरापुर प्रभृति ग्रामों के पं० राजनारायण शुक्ल वगैरह मामखोर के शुक्ल गर्ग गोत्रीय सर्यूपारी ब्राह्मण हैं। आजकल के सिकरौरा, बहादुरपुर आदि ग्रामों, एवं गाजीपुर के धुवार्जुन आदि ग्रामों के केवल भारद्वाज गोत्रीय चौधरी लोग मचैया पाण्डेय सर्यूपारी हैं। एवं टीकापुर, बीबीपुर प्रभृति ग्रामों के श्रीमथुरा प्रसाद सिंह वगैरह भृगुवंशी लोग भार्गव (वत्स) गोत्री कनौजिया पाण्डे हैं, जिनके ही बंश वाले बस्ती के कोटिया आदि ग्रामों में अबतक पाण्डे कहलाते हैं। गाजीपुर के देवा नामक ग्राम में काश्यप गोत्रीय जिझौतिया ब्राह्मण हैं। जो बुन्देल खण्ड के बांदा, हमीरपुर इत्यादि जिलों में बहुत पाये जाते हैं और सभी अयाचक और जमींदार होते हैं। जिनमें से बहुतेरे राय, सिंह इत्यादि कहलाते हैं। जैसा चित्रकूट में श्रीदर्यावसिंह एक जागीरदार हैं, जो जिझौतिया ब्राह्मण हैं और बहुत प्रतिष्ठित हैं। ये लोग कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के ही भेद हैं और हमीरपुर इत्यादि प्रान्तों में रहने से जिझौतिया कहलाये। क्योंकि उस देश का प्राचीन नाम जिझौती था। जैसा मिस्टर क्रुकने अपने पूर्वोक्त ग्रन्थ के प्रथम भाग के ५६वें पृष्ठ में जिझौतियों के विषय में लिखते हुये लिखा है कि :–

'A branch of the Kanaujia Brahmans. Who take their name from the country of Jajakshukti,wbich is mentioned in the Madanpur inscription. Of tbis General Cunningham writes :– "The first point deserving of notice in

these two short but precious records is the name of the country, Jajakshukti, wbich is clearly the Jajahauti of Aburihan.'

जिसका मर्मानुवाद यह है कि 'जिझौतिया (कहीं-कहीं जुजहुतिया भी कहलाते हैं) ब्राह्मण कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की एक शाखा है। जिनका यह नाम जजाकृशुक्ति, देश के नाम से पड़ा है, जिसका वर्णन मदनपुर (ग्वालियर के पास एक ग्राम है) के प्राचीन लेख में आया है। इसके विषय में जनरल कनिंगहम साहब ने लिखा है कि मदनपुर के दोनो संक्षिप्त परन्तु महत्त्वपूर्ण लेखों में पहली बात जो ध्यान देने योग्य है, वह जजाकृशुक्ति देश का नाम है, जो अबूरिहान के लिखे हुये 'जिझौती' देश का स्पष्ट रूप से दूसरा नाम है।

बलिया जिले के बैरिया ग्राम के प्रसिद्ध कर्मठ 'पांडे' को कौन नहीं जानता ? वे भी भूमिहार ब्राह्मण हैं। श्रीराम गोपाल सिंह चौधरी के पिता पांडे जी करके प्रसिद्ध थे। इसीलिये उनके चार पुत्रों में चौधरी सोना पांडे वैसे ही कहे जाते थे। बनारस के अन्तर्गत कोल परगना बासी कोलहा भूमिहार ब्राह्मण भी सर्यूपारी ब्राह्मण, कश्यप गोत्री भरसी के मिश्र, हरिनाथ मिश्र के वंशज हैं। उन महात्मा हरिनाथ मिश्र, के दो पुत्रों में से देवांग मिश्र के वंश में ये लोग और देवशरण मिश्र के वंश में इन लोगों के पुरोहित हैं। क्योंकि वे लोग भी भरसी के कश्यप गोत्री मिश्र ही हैं।

कहां तक गिनाया जावे ? समय-समय पर सभी पाठक, चौबे, तिवारी, मिश्र, ओझा, झा इत्यादि ब्राह्मण इस अयाचक नामधारी ब्राह्मण समाज में मिलते गये। जो आजतक उन्हीं नामों और आस्पदों (पदवियों) से दरभंगा, मुजफ्फरपुर, छपरा, शाहाबाद, पटना, गया, गोरखपुर और बस्ती एवं प्रयाग प्रभृति प्रान्तों में पाये जाते हैं। जैसा आनापुर प्रभृति ग्रामों में चौधरी लोग पहितीपुर के पाण्डेय सर्यूपारी हैं और भरतपुरा वगैरह के अथर्व लोग दक्षिणी ब्राह्मण हैं।

इसीलिये मिथिला के प्राचीन धुरन्धर विद्वान मीमांसक महा महोपाध्याय श्री चित्रधर मिश्र जी का यही कथन है कि भूमिहार ब्राह्मण दल में एक ब्राह्मण नहीं हैं, किन्तु प्रायः सभी देशों के धनवान अयाचक ब्राह्मण इस दल में समय-समय पर मिलते गये हैं।

(४) आचार व्यवहार

अब हम ब्राह्मणों के आचार व्यवहारों पर दृष्टिपात करते हुये इन अयाचक दलवाले ब्राह्मणों के आचार व्यवहारों का भी वर्णन करते हैं। प्रथम ही दिखला चुके हैं कि क्यों कहीं-कहीं इनमें तम्बाकू इन्यादि पीने का अभ्यास हो गया और क्योंकर आजकल भी सभी ब्राह्मणों में बहुत से ऐसे व्यवहार घुसते चले आते हैं और चले आवेंगे, जिन्हें प्राचीन लोग अनुचित समझते थे और समझते हैं। यद्यपि पूर्व समय में ब्राह्मणादि तम्बाकू का खाना, पीना अथवा सूंघना निषिद्ध अथवा बुरा समझते थे। क्योंकि वह स्वदेशी वस्तु न होकर अज्ञात, विदेशी और मादक वस्तु है। तथापि आज कल अथवा इससे कुछ पूर्व भी लोगों की घृणा उससे एकदम जाती रही। सिवाय अज्ञान और दम्भमूलक मिथ्या अभिनिवेश और दिखावे के कुछ रह गया। क्योंकि प्रायः मुसलमान ही इसे इस देश में लाये। अतएव संस्कृत कोष में इसके लिये कोई पर्याय शब्द नहीं मिलता और न तो धर्मशास्त्रों में ही इसका वर्णन है। उन्हीं मुसलमानों के संसर्ग से या देखादेखी कोई ब्राह्मण उसे पीने लगा और कोई खाने और कोई सूँघने में ही प्रवृत्त हो गया। कोई-कोई तो दोनो या तीनो करने लगे जो आजतक सभी ब्राह्मणों में पाये जाते हैं। यही दशा क्षत्रियादि जातियों की भी है।

यदि पीने का ही विचार करिये तो समस्त गौड़ सनाढय जिझौतिया, सारस्वत, गुजराती दाक्षिणात्य, बंगाली और उत्कल प्रभृति इसे पीते हैं। कोई हुक्का पीता है और कोई बीड़ी या सिगरेट। आरा जिले में तथा मिथिला में भी प्रायः बहुत से सर्यूपारी कहलाने वाले पीते हैं। हाँ, केवल बहुत से कान्यकुब्जों, सर्यूपारियों और मैथिलों में दिखलाने मात्र के लिए यह बात रह गयी है क्योंकि पीने वाले बहुत कम हैं। तथापि अब तो धीरे-धीरे अंग्रेजी सभ्यता के प्रचार से ऐसा हो रहा है कि सिगरेट देवता कम से कम अंग्रेजी के विद्यार्थियों के मुख से बात कर रहे या करना चाहते हैं और यह आशा प्रतीत होती है कि थोड़े ही दिनों में इंजन की तरह मुख से फुक-फुक धुआं निकालने में एक ब्राह्मण बच्चा भी न बचेगा। क्योंकि यवनों की घनिष्ठता कुछ देशों में न थी। कान्यकुब्ज, सर्यूपार और मिथिला में उनका इतना प्रभाव न था जितना पश्चिम बंगाल, पञ्जाब और दक्षिण में था। इसलिये इस देश में उसकी कुछ कमी थी। परन्तु अंग्रेजी सभ्यता तो घर-घर घुस रही है और अंग्रेजो के भी प्रधान व्यवहार की ये वस्तुएं हैं। इसलिये सभी इसका प्रयोग क्यों न करने लग जावेंगे? प्रथम तो इसके रोकने के लिये सभायें भी न होती थीं और न जगह-जगह व्याखानों की झड़ही लगा करती थी। परन्तु आजकल तो इसके रोकने का बहुत ही यत्न हो रहा है, तो भी इसके प्रचार की (सो भी विदेश के बने सिगरेट की) उन्नति छोड़ कर अवनति देखने में नहीं आती। इसलिये पूर्वकाल में इसका प्रयोग करने वालों का अपराध ही क्या था? क्योंकि जब कोई विलक्षण काल चक्र आ जाता है, तो प्रकृति उसे बलपूर्वक करा ही डालती है, कारण कि प्रकृति में उसी के भाव भर जाया करते हैं। इसी से जब यवन काल में उसका भाव प्रकृति में कम था, उस समय तम्बाकू के पीने वाले बहुत कम थे। यहां तक कि हमने प्रायः सभी अयाचक दलवाले ब्राह्मणों के वृद्धों से पूछा है, तो मालूम हुआ है कि इन लोगों में भी इसका विशेष प्रचार प्रायः ४० या ५० वर्षों से ही हुआ है। परन्तु इसी समय से लेकर उस भाव की उन्नति ही होती गई है। इसी लिये आज प्रकृति ने लोगों पर ऐसा दबाव डाला कि थोड़े दिनों में हजारों उपाय करने पर भी कोई इससे बचना नहीं चाहता।

हां, इस समय तक सभी समाजों में तम्बाकू न पीने वालों की भी कुछ संख्या है। किसी में कम किसी में अधिक। परन्तु इससे क्या? जो मैथिल या कान्यकुब्ज अभी तक इसके न पीने की डींग मारा करते थे, वे लोग ही इसके विशेष रूप से व्यवहार करने वाले हैं। प्रायः सभी के पास बड़े-बड़े बटुवे (कपड़े की थैली) हुआ करते हैं। जिनमें तम्बाकू (खाने या सूंघने का) और सुपारी भरी रहती है। मैथिलों और कान्यकुब्जों या सर्यूपारियों पर ही क्या? सभी देश के ब्राह्मणों पर खाने और सूंघने वाला भूत सवार हो रहा है। क्या पीना ही खराब और खाना, या सूँघना अच्छा है? यह बात क्या किसी धर्मशास्त्र या पुराण में लिखी है? जैसा ही पीना, वैसा ही खाना या सूंघना। बल्कि पीने की अपेक्षा खाना और सूंघना और भी खराब है। क्योंकि पीने से तो धुएं के रूप में उसके दुष्ट परमाणु मस्तिष्क वा उदर में थोड़े-थोड़े जाते हैं, परन्तु खाने और सूंघने वाले के तो साक्षात् ही। कारण कि, नासिका और मुखों में लोग जबरदस्ती ठूंस दिया करते हैं। इसलिये पीनेवालों की अपेक्षा खाने और सूंघने वालों को तो और भी बड़ा रोग लग गया है। इससे जो खाने वा सूंघने वाले होकर पीने वालों की निन्दा करते हैं, उनकी तो वही दशा है कि 'अपना तो ढेंढर न देखे और दूसरों की फुल्ली निहारे।' हां, जो लोग, चाहे अयाचक दल के ब्राह्मण हों, अथवा याचक ब्राह्मणों में से होगें। किसी प्रकार से उसका व्यवहार नहीं करते, वे भले ही सब लोगों को ही, जो पीने, सूंघने या

खाने वाले हैं, नीचा दिखला सकते हैं। इसलिये इस विषय में जो लोग चालाक और दाम्भिक हैं इन लोगों में छल और धोखे से दूसरों को नीच बनाने के सिवाय और कोई तत्त्व नहीं है, क्योंकि कोई इस से बचा नहीं है।

यदि खाने और सूंघने वाला पीने वाले की निन्दा करता, या उसे नीचा दिखलाता है तो जैसा कह चुके कि पीने वाला खाने और सूंघनेवाले की और भी निन्दा कर सकता और उसे नीचा दिखला सकता है। क्योंकि जैसा अभी कह चुके हैं कि, तम्बाकू के वैदेशिक होने के कारण संस्कृत साहित्य में इसका वाचक कोई शब्द नहीं है। इसलिये धर्मशास्त्रों में भी उसकी विधि या निषेध नहीं है, जिससे पीना खराब और मुंह एवं नाक में भूसे की तरह ठूंसना अच्छा लिखा हो। कहीं-कहीं मनुस्मृति आदि में गौड़ी सुरा के पीने का जो निषेध है, वह तो गुड़ आदि से बनी हुई जल की तरह पीने योग्य का ही है, क्योंकि वही जल की तरह पी जा सकती है और तमाल तो काले-काले पत्तों वाला बड़ा सा वृक्ष होता है न कि तम्बाकू का नाम तमाल है। जैसा रामायण में लिखा है।

नाथ देखु यह विटप विशाला। पाकर जम्बु रसाल तमाला॥

इस से पुराणों के नाम पर कल्पित श्लोक बनाकर 'तमाल पत्र दर्पण' आदि पोथियों में केवल तम्बाकू के पीने की जो निन्दा की गई है वह पक्षपात और परस्पर द्वेष मात्र है।

हाँ, सामान्य रीति से अज्ञात वैदेशिक पदार्थ होने के कारण सभी प्रकार के अन्य पदार्थों की तरह उसके भी खाने, पीने और सूंघने सभी का निषेध समझा जावेगा। इसलिये यदि किसी ने धर्मशास्त्रों के नाम पर केवल पीने की निन्दा के एक दो मनगढ़न्त श्लोक बना लिये हों, तो उसकी वञ्चकता मात्र है। क्योंकि खाने और सूंघने के विषय में भी ऐसे बहुत से कल्पित श्लोक बन सकते हैं।

परन्तु यदि सभी प्रकार के खाने, पीने, सूंघने की निन्दा के श्लोक मिलें तो वे सत्य की दृष्टि से माने जा सकते हैं। क्योंकि वस्तुतः मादक द्रव्य होने से अन्य मादक द्रव्यों की तरह उसका किसी प्रकार का भी सेवन अच्छा नहीं हो सकता, प्रत्युत हानिकारक ही हो सकता है। जो वैद्यकादि ग्रन्थों में कहीं-कहीं उसका निषेध आता है, वह भी सामान्य रीति से खाने पीने सभी का है। इसलिए विचार दृष्टि से तम्बाकू का खाना, पीना और सूंघना सभी एक प्रकार के और निंदित हैं। अतः सभी को छोड़ना चाहिए, न कि अन्ध परम्परा का अनुसरण करके खाने एवं सूंघने को तो हथिया लेना और केवल पीने में दोष बतलाना उचित है। इसलिये पं० भीमसेन शर्मा ने सन् १९१५ ई० के अपने 'ब्राह्मण सर्वस्व' पत्र के एक अंक में युक्तियों और वैद्यकादि ग्रन्थों का प्रमाण देकर इसके खाने, और सूंघने आदि सभी की निन्दा कही है और सभी को समान ही ठहराया है।

दूसरा व्यवहार जिसे लेकर इन अयाचक दल वाले ब्राह्मणों की निन्दा कही जाती है और एक तरफा डिगरी दी जाती है वह इनमें सब जगह तो नहीं, परन्तु काशी और पश्चिमी प्रदेशों के जिलों और बड़े-बड़े बाबुआनों में नमस्कार, प्रणाम और पालागन की जगह 'सलाम' की प्रथा है। यद्यपि दरभंगा, मुजफ्फरपुर आदि तिर्हुत के और छपरा, गाजीपुर, बलिया वगैरह जिलों में नमस्कार, प्रणाम और पालागन की ही प्रथा प्रचलित है। तथापि जो पूर्वोक्त स्थानों में कहीं-कहीं 'सलाम' की रीति पड़ गई है, उसका कारण तो प्रथम ही दिखला चुके हैं कि यवनों का घनिष्ठ संसर्ग होने से उनके से ही आचार-व्यवहार हो गये और

नमस्कार की जगह सलाम करने में ही लोग गौरव समझने लगे। परन्तु जो लोग वहाँ तक नहीं पहुँच सकते थे, या कुछ विवेकी होते थे, उन ब्राह्मणों में प्रणाम, नमस्कार की ही प्रथा पड़ी रह गई। इसीलिये मिथिला प्रान्त में मैंने ही कई जगह बाबुआनों में देखा है कि जब वहाँ की उनकी याचक ब्राह्मण प्रजा पत्रों में नमस्कार शब्द का प्रयोग करती है, तो वे लोग, यह समझ कर कि प्रजा लोग हमारी बराबरी का दावा करते हैं और प्रतिष्ठा नहीं करते, रंज होते हैं और नमस्कार शब्द को काट कर सलाम लिखने को कहते हैं। इस बात में जिसे सन्देह होवे वह स्वंय जाकर अथवा मेरे साथ चलकर अच्छी तरह देख सकता है। क्या यह बात पूर्वोक्त सिद्धान्त को पुष्ट नहीं कर रही है?

काशीस्थ भूतपूर्व पण्डित प्रवर काकाराम शास्त्री के विषय में एक ऐसा ही आख्यान है। वे भी तो महियाल ब्राह्मण ही थे। इसलिये उनके भगिनी पति (बहनोई) कोई प्रतिष्ठित महियाल, जो फौजी हवलदार थे, उनसे मिलने के लिए जब काशी में आये, तो शास्त्री जी ने अपने विद्यार्थियों को इशारा किया कि उनको भी प्रणाम या नमस्कार करें। परन्तु ऐसा करने पर बहनोई जी ने विद्यार्थियों से कहा कि 'भाई ! प्रणाम या नमस्कार तो उन्हें ही (शास्त्री जी को) करो, मुझे तो सलाम किया करो।' क्या यह आख्यान पूर्वोक्त धारणा का पोषक नहीं है? आज कल तो इसके सैकड़ों क्या हजारों उदाहरण हैं। क्या आजकल के अंग्रेजी पढ़ने वाले वकील, बैरिस्टर या अफसर प्रणाम, नमस्कार की जगह परस्पर 'गुडमार्निङ्ग' (Goodmorning) या सलाम नहीं करते? यहाँ तक कि स्कूल के विद्यार्थी भी उसी का अभ्यास करते हैं। चाहे परस्पर तो कभी प्रणमादि शब्दों का प्रयोग भी हो जावे। परन्तु जब वे लोग बड़े-बड़े अंग्रेज और मुसलमान अफसरों से मिलते हैं, तो क्या वहाँ भी नमस्कार या प्रणाम शब्द का ही प्रयोग होता है? क्या स्कूलों और कालिजों में सभी छात्र 'गुडमार्निङ्ग' (Goodmorning) नहीं करते? फिर उसी बारम्बार के अभ्यास से परस्पर भी वही करने लग जाते हैं, और लग जावेंगे। ठीक इसी प्रकार यवन राजाओं के यहाँ सलाम शब्द का प्रयोग होते-होते अभ्यास पड़ जाने से धीरे-धीरे परस्पर और प्रजाओं के साथ भी उसी सलाम शब्द का प्रयोग जहाँ-तहाँ हो गया। इसी से केवल राजा बाबुओं और काशी, जौनपुर, मिर्जापुर आदि में ही इस 'सलाम' शब्द का प्रचार विशेष है, क्योंकि यहाँ यवनों का विशेष सम्बन्ध रहा है। इसीलिए पंजाब आदि देशों में ब्राह्मणों के प्रायः बहुत से आचार यवनों के से हो गये हैं। क्या अन्य ब्राह्मण जमींदार की प्रजा यदि मुसलमान होवे तो वह मालिक को सलाम न करेगी? क्या इससे उसकी निन्दा या हीनता हो सकती है? फिर इन अयाचक दल वाले ब्राह्मणों की प्रजाओं का कहीं-कहीं सलाम करना देख क्यों लोगों को नशा हो जाता है, इसका कारण हम नहीं समझते।

परन्तु थोड़ी-सी जगह को छोड़कर अधिकांश स्थानों में तो प्रजा के साथ अथवा परस्पर भी प्रणाम, नमस्कार या पालागन ही होते हैं। इसीलिए इतिहास लेखक अंग्रेजों ने भी इस बात को स्पष्ट शब्दों में कहा है। जैसा मिस्टर फिशर, बी० ए० (F. H. Fisher, B. A.) ने आजमगढ़ के गजेटियर के ६५वें पृष्ठ में लिखा है कि :–

'They are saluted with the pranam–or pailagi, and return the salutation with a blessing or 'ashirvad.'

अर्थात् भूमिहार ब्राह्मणों को लोग प्रणाम या पालागन शब्द से प्रणाम किया करते हैं, जिसके बदले में वे लोग आशीर्वाद दिया करते हैं।

इसलिये सलाम शब्द से ये अयाचक दल के ब्राह्मण हीन नहीं समझे जा सकते। हाँ, यह शब्द जब प्रतिष्ठित समझा जाता था, तो था, अब तो इसकी प्रतिष्ठा नहीं है, इसलिए इसमें प्रतिष्ठा समझना भूल है। किन्तु अब तो यही उचित है कि इस 'सलाम' शब्द को सर्वदा के लिए तिलांजलि दे दी जावे और परस्पर नमस्कार एवं प्रणाम शब्दों के ही व्यवहार होवें। क्योंकि ब्राह्मणों के लिए परस्पर इन संस्कृत शब्दों का ही प्रयोग उचित है और उसी से शोभा भी है। हाँ, प्रजा लोग पालगी कर सकते हैं। परन्तु सलाम शब्द तो कहीं न रहना चाहिये। इसमें बड़ा भारी दोष तो यह है जिसे लोग समझते ही नहीं, क्योंकि यदि कोई नीच जाति या प्रजा होकर 'सलाम' करे, तो झटपट उत्तर में भी सलाम ही निकल आता है, जिससे बराबरी हो जाती है। यदि वहाँ आशीर्वाद शब्द का प्रयोग होता अथवा जीओ, खुश रहो इत्यादि, तब तो कोई हर्ज नहीं होता। परन्तु प्रायः ऐसा नहीं होता। यदि ऐसा होवे तो नीच लोग यदि सलाम भी करें, तो एक प्रकार से हर्ज नहीं है, परन्तु पालागन तो बहुत अच्छा है।

तीसरी प्रथा दृष्टि देने योग्य यह है कि कुछ जगह अयाचक दल वाले बड़े-बड़े लोग भी पुरोहित दल वाले छोटे-छोटे बच्चों को भी प्रणाम करते हैं। यद्यपि यह प्रथा सब जगह नहीं है, तथापि जहाँ कहीं है उसके होने का उचित कारण आगे प्रसंगवश दिखलावेंगे। जिससे यह स्पष्ट हो जावेगा कि ऐसा करना केवल भूल से है, न कि दूसरी दृष्टि से। इसलिए हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि केवल अपने गुरु या पुरोहित को छोड़कर, सो भी केवल पूजते समय, बाकी उसी ब्राह्मण को प्रणाम या पालागन करना चाहिए, चाहे वह अयाचक हो या याचक, जो विद्यादि सद्‌गुण सम्पन्न अथवा अवस्था या दर्जे में अपने से श्रेष्ठ होवे, जैसे चाचा, बड़ा भाई इत्यादि। अन्यों के साथ तो समानता का ही व्यवहार रखना चाहिये, चाहे प्रथम अपने ही 'नमस्कार' करना चाहिये, या वे ही करें, जैसा पटना चौक के निवासी पं० रामजीवन भट्ट और उनके पुत्र कृष्ण भट्ट अयाचक ब्राह्मणों के साथ करते थे और करते हैं। परन्तु छोटे-छोटे बच्चे, चाहे याचक दल के हों अथवा अयाचक दल के, यदि केवल प्रणाम करें, तो आशीर्वाद के ही योग्य हैं, नहीं तो अपने घर वे और अपने घर आप रहें। यह निष्कृष्ट सिद्धान्त है जिसका प्रचार मिथिला आदि के अयाचक ब्राह्मणों में है। जिनमें से प्रसिद्ध-प्रसिद्ध दृष्टान्तों को प्रणाम के साथ आगे दिखलावेंगे। इसलिए सर्वत्र इसी के प्रचार की नितान्त आवश्यकता है। इसमें संकोच या मुरव्वत का काम नहीं है, क्योंकि धार्मिक कामों में ऐसा नहीं किया जाता।

(५) आस्पद, उपधियां या पदवियां

यद्यपि इन अयाचक दलवाले ब्राह्मणों तथा अन्य बाह्मणों की पदवियों के विषय में प्रथम ही बहुत कुछ कह चुके हैं और यह भी दिखला चुके हैं कि राय, सिंह, पांडे, और तिवारी आदि उपाधियां क्योंकर ब्राह्मणों को दी जाने लगीं और कब से। साथ ही, यह भी कहा गया है कि प्रथम राय, सिंह आदि उपाधियां दी गईं। जिनकी देखा देखी ही पांडे, तिवारी आदि पदवियों का आविर्भाव हुआ और फिर उनमें भी रद्दबदल होती रही। अर्थात् जो पांडे, तिवारी थे, वे सिंह कहलाने लगे इत्यादि। अब इस जगह इसी बात को दृष्टान्तों और प्रमाणों द्वारा, दिखलाकर, जिन लोगों की भ्रम मूलक ऐसी धारणा है कि राय, सिंह इत्यादि ब्राह्मणों की उपाधियां नहीं हैं, उनके इस भ्रम का संशोधन किया जावेगा। बहुत से कहलाने के लिये

पंडित इन अयाचक दलवाले ब्राह्मणों की कहीं-कहीं राय, सिंह, प्रभृति उपाधियों को देखकर चकरा जाते हैं और उनका माथा ठनकने लगता है, जिससे बहुत कुछ अनाप सनाप बक जाते हैं। परन्तु यदि उन्हें कभी मिथिला में जाने या वहां के ब्राह्मणों के नाम सुनने का सौभाग्य प्राप्त हो जाता, तो उनको सूझ जाती कि ब्राह्मणों की उपाधियों का ठिकाना नहीं है। मैथिल मूर्द्धन्य महाराजा दरभंगा का नाम आनरेब्ल सर रामेश्वर सिंह जी, तथा इनके प्रथम के राजा, महाराज रुद्र सिंह, महाराज छत्रसिंह तथा महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह इत्यादि कहलाते थे। इनके चाचा बाबू तुलापति सिंह थे।

संक्षेप में इतना समझ लेना चाहिये कि राघवपुर आदि ग्रामों में जितने धनी श्रोत्रिय हैं वे सभी बाबू और सिंह उपाधि वाले होते हैं। बाह्मण के नाम के साथ जिस बाबू शब्द को देखकर लोगों की बुद्धि चक्कर खाने लगती है, वह मिथिला प्रदेश में रसोई दार मैथिल तक के लिये बोला जाता है और उसके नाम के साथ यदि बाबू शब्द न जोड़ा जावे तो बुरा मानता है। बनैली के मैथिल राजा कीर्त्यानन्द सिंह जी प्रसिद्ध ही हैं। यहां तक कि काशी प्रान्त में जिस ठाकुर शब्द को ब्राह्मण के नाम के साथ देखकर झट फैसला किया जाता है कि ये ब्राह्मण नहीं, किन्तु क्षत्रिय हैं, वही ठाकुर शब्द मिथिला के ब्राह्मणों की प्रधान उपाधि है। महाराज दरभंगा के प्रथम पूर्वज महेश ठाकुर थे, जिन्होंने राज्य का उपार्जन किया था। महामहोपाध्याय श्री कृष्णसिंह ठाकुर के नाम के साथ सिंह और ठाकुर दोनों का प्रयोग होता है और वे बड़े भारी विद्वान भी हैं। यदि उन शब्दों को अनुचित समझते तो अपने नाम से हटा देते। काव्यप्रदीप नामक संस्कृत साहित्य ग्रंथ के कर्त्ता पं० गोविन्द ठाकुर प्रसिद्ध ही हैं और मुजफ्फरपुर जिले के अथरी ग्राम वासी मिथिला के गणनीय विद्वान पं० मुक्तिनाथ ठाकुर को कौन नहीं जानता?

इस जगह इस बात का विचार कर लेना चाहिये कि जो मैथिल मिथिला छोड़कर बहुत दूर पूर्व या पश्चिम में जा बसा है, परन्तु मिथिला के ब्राह्मणों के साथ उसका विवाह सम्बन्ध, अथवा आनाजाना लगा हुआ है। क्या वह अपने मिथिला वासी मैथिल ब्राह्मणों के इन सिंह और ठाकुर आदि रूप उपाधियों का परित्याग कर देगा? अथवा उनके प्रयोग करने से ब्राह्मण न समझा जावेगा? क्योंकि उस देश में उपाधियां ब्राह्मण से भिन्न क्षत्रियादि के ही नाम के साथ बोली जाती हैं। क्या आप ने देखा है कि जिस मैथिल की पदवी मिथिला में ठाकुर है, वह अन्य देशों में जाकर अपने नाम के अन्त में ठाकुर न कहकर कुछ और कहता है? सारांश यह है कि कोई कहीं भी रहे, परन्तु अपने प्राचीन सम्बन्धियों के विचारों, आचारों और व्यवहारों को नहीं छोड़ता, चाहे वह किसी देश का कोई ब्राह्मणादि होवे। बस, यही दशा इन जमींदार, भूमिहार आदि ब्राह्मणों की भी समझ लीजिये। क्योंकि मिथिला में ये लोग भी बहुतेरे मैथिलों की तरह ठाकुर कहलाते हैं, जैसे श्री अनूपलाल ठाकुर और श्री अयोध्या प्रसादठाकुर मुखतार आदि। प्रायः दिघवैत और दूसरे भी ठाकुर ही कहलाते हैं। इसलिये वहां से हटकर यदि शाहाबादादि प्रान्तों में चले आये हैं तो वहां भी ठाकुर ही कहलाते हैं। और काशी के आस पास के बड़े-बड़े जमींदार, बाबुआन तथा महाराज द्विजराज श्री काशिराज प्रभृति सभी का सम्बन्ध मिथिला में बहुत दिनों से बराबर पाया जाता है और वहां यह ठाकुर शब्द, जैसा कह चुके हैं कि बड़ी प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाता है, इसलिये उसी सम्बन्ध से अन्यत्र भी जहां तहां उसका प्रचार होता गया। इसलिये उससे कोई हानि नहीं है और न दूसरी कल्पना की जा सकती है।

यदि क्षत्रियादि भी अन्य देशों में ठाकुर कहलाते हैं, तो कहलावें, उससे इन ब्राह्मणों की हानि क्या है? वे लोग भी जमींदार हैं, इसलिये जमींदार के ही अर्थ में ठाकुर कहलाते हैं। परन्तु भूमिहारादि ब्राह्मणों में ठाकुर शब्द ब्राह्मण और पूज्य बुद्धि से ही प्रयुक्त होता है, जैसा मिथिला में दिखला चुके हैं। चाहे ये लोग भी जमींदार होवें यह दूसरी बात है। यदि ऐसा न माना जावे तो दूसरे देशों में अहीर, कुरमी आदि भी ठाकुर कहलाते हैं तो फिर क्षत्रियों के भी ठाकुर शब्द में गड़बड़ मच जावेगी और मैथिलों का तो कहना ही क्या है? नाऊ लोग भी तो सभी देशों में ठाकुर बोले जाते हैं। तो, क्या इस से क्षत्रिय भी किसी देश में ठाकुर न बोले जावें? इस लिये यह ठाकुर शब्द किसी एक जाति के लिये कहीं निश्चित नहीं है; किन्तु जिस जाति में जहां जैसा प्रचार है, एवं उसके अनुसार ही अन्यत्र भी प्रचार है, तो जैसा एक जगह समझा जाता है वैसा ही दूसरी जगह भी समझा जाता है और जावेगा। चाहे वहां दूसरी जातियां भी उसी शब्द से क्यों न बोली जाती होवें। इस पूर्वोक्त सिद्धान्त के स्थिर हो जाने से पूर्वोक्त आजमगढ़ के गजेटियर के ६५वें पृष्ठ में जो फिशर साहब ने लिखा है कि :–

"And indeed often speak of themselves as Bhumihar Thakurs. The word Thakur, bowever, is in Azamgarh rarely used as the name of a caste equivalent to Kshatri or Rajputs." ऐसा ही और भी कहीं-कहीं लिखा है।

इसका अर्थ यह है कि 'वास्तव में भूमिहार लोग अपने को बहुधा भूमिहार ठाकुर कहा करते हैं। यह ठाकुर शब्द आजमगढ़ में कभी-कभी उस जाति के लिये बोला जाता है, जो क्षत्रिय या राजपूतों के बराबर होवे।'

इसका यथोचित खण्डन हो गया। और भी समझना चाहिपे कि जब नाई या कुर्मी लोग भी अक्सर सभी जगह ठाकुर ही बोले जाते हैं, तो वहां क्षत्रिय के ही लिये ठाकुर शब्द कैसे हो सकता है? और जब भूमिहार ब्राह्मण अपने को केवल ठाकुर न कहकर नाम के आगे जोड़ते हैं, जैसा साहब बहादुर भी केवल ठाकुर न कहकर 'भूमिहार ठाकुर' लिखते हैं। और जैसा पूर्व में महेश ठाकुर या गोविन्द ठाकुर आदि कह चुके हैं। या जैसा नाऊठाकुर इत्यादि। तो फिर नहीं मालूम कि किस प्रकार से उन्होंने केवल ठाकुर के बराबर किसी नाम के आगे जुटे हुये ठाकुर शब्द का अर्थ लगाया? इसलिए यह सब कथन इस बात को सिद्ध कर रहा है कि उन लोगों को इसका तत्त्व विदित नहीं था। हाँ, यदि इस ठाकुर शब्द पर इतना आक्रमण है, तो हम इन जमींदार, भूमिहार नामधारी ब्राह्मणों से यह अनुरोध करेंगे कि कम से कम काशी के प्रान्त में वे इस शब्द का प्रयोग न करें। क्योंकि संसार में 'तुष्यतु दुर्जनः' अर्थात् 'यदि दुर्जन लोग तुष्ट हो जावें तो हम इसे स्वीकार भी कर लेंगे' यह भी तो न्याय है।

अस्तु, इसी प्रकार चौधुरी, खां, राय और राउत तथा ईश्वर प्रभृति भी उपाधियां मैथिलों मे ही पाई जाती हैं। जिन में से बहुतों को तो थोड़ा आगे चलकर दिखालवेंगे। तथापि दुलारपुर के तुरन्तलाल चौधुरी प्रसिद्ध ही हैं। एवं मिथिला मिहिर का ता० ५-२-१६ ई० का अंक देखने से, जिस में उस वर्ष में होने वाली बेगूसराय की सप्तम मैथिल महासभा का विवरण है, यह स्पष्ट हो जाता है। उसमें लिखा है कि 'तीसरे दिने वैवाहिक कुरीति पर बाबू बबुआ खां बहुत उत्तम व्याख्यान देलन्हि। तथा उसी में बीरसायर निवासी पं० जीवनाथ राय, व्याकरण तीर्थ, गुणपतिसिंह, चनौर के बाबू यदुनन्दनसिंह झा, बनैली–रामनगर के कुमार सूर्यानन्द सिंह इत्यादि नाम आये हैं, जो सभी मैथिलों के ही हैं।

किसी ने सभा में चन्दा दिया और किसी ने कुछ दिया। इसीलिये पूर्वोक्त डाक्टर विल्सन ने अपने पूर्वोक्त ग्रन्थ के द्वितीय भाग के १९३ और १९४ पृष्ठों में स्पष्ट ही लिख दिया कि भूमिहार ब्राह्मण भी मैथिल ब्राह्मण ही हैं, क्योंकि इनकी और उनकी पदवियां एक-सी हैं। जैसा,

There are certninly fewer distinction recognized among the Maithils than among any other of the great divisions of Brahmans in India. Those mentioned to me in Bombay, Calcutta and Benares and the following :–

(1) The Ojhas, Ujhas or Jhas, (2) The Thakuras, (3) The Misras, (4) The Puras, (5) The Shrotriyas, (6) The Bhumihars; these are land holders and cultivators, Mr. Celebrooke ssys no more than three surnames are in use in that district. Thakura, Misra, Jha each aporopriate in any family. Besides these there are the Chawdhari, Raya, Parihasta, Khan and Kunwara.'

इसका भाव यह है कि भारतवर्ष में जितने ब्राह्मणों के अन्य भेद हैं उन में जितने छोटे-छोटे दल हैं उन की अपेक्षा मैथिल ब्राह्मणों में छोटे-छोटे दल कम पाये जाते हैं। मैथिलों के जिन छोटे-छोटे दलों का वर्णन मुझ से बम्बई, कलकत्ता या बनारस में किया गया है, वे ये हैं :– (१) ओझा, ऊझा अथवा झा, (२) ठाकुर (३) मिश्र (४) पूर (५) श्रोत्रिय (६) भूमिहार, जो जमींदार और खेती करने वाले हैं। मिस्टर कोलब्रुक ने लिखा है कि मिथिला प्रान्त में तीन पदवियां ब्राह्मणों में विशेष रूप से प्रचलित हैं, (१) ठाकुर (२) मिश्र, और (३) झा जिनमें से प्रत्येक प्रतिवंश में बोली जा सकती है। इन तीनों के अतिरिक्त चौधुरी, राय, परिहस्त, खां और कुँवर ये पदवियां भी प्रचलित हैं। दरभंगा, बनगांव के मैथिल ब्राह्मण खां कहाते हैं।

पूर्व मिथिला का अन्त और पश्चिम में पंजाब इन्हीं के मध्य में ही ये अयाचक दलवाले ब्राह्मण पाये जाते हैं, अतः वहां भी राय, सिंह, चौधुरी और राउत आदि सभी पदवियां हैं। राउत शब्द राजपुत्र का अप्रभ्रंश है: क्योंकि प्राकृत भाषा में आर्यपुत्र को अज्जउत कहा करते हैं। अतः जिनके पूर्व पुरुष प्रथम राजा थे, वे ब्राह्मण लोग राजपूत कहलाते कहलाते, आज राज शब्द का 'रा' हो कर और पुत्र का 'उत', वे ही लोग राउत कहलाने लगे। ये सभी उपाधियां सम्पूर्ण प्रदेश घूमने से जो चाहे वह मालूम कर सकता है। इनमें से दृष्टान्त के लिये यदि आप प्रयाग से अक्टूबर, नवम्बर १९१० ई० का मुद्रित 'श्री कान्यकुब्ज' पत्र देखें तो उसके २२वें पृष्ठ में पं० रघुनन्दन सिंह दीक्षित का नाम, एवं ३८, ३९वें पृष्ठों में पं० अयोध्यासिंह तिवारी, पं० बिहारी सिंह तिवारी, पं० जीवन सिंह तिवारी और पं० पुलन्दर सिंह का नाम पावेंगे और फतहपुर जिला, तहसील खजुहा, गांव बरारी में चौधरी कोकलसिंह प्रभृति कान्यकुब्जों को पावेंगे। कान्यकुब्जों के सभी पत्रों को देखें तो राउत प्रभृति भी आप को मिल जावेंगे। घूमने की भी आवश्यकता न होगी। विशेष कहां तक लिखा जावे? कान्यकुब्ज कुल कौमुदी के १४४वें पृष्ठ में लिखा है कि 'जो ब्राह्मण कान्यकुब्जों में २० विश्वेवाले अर्थात् सब से श्रेष्ठ हैं, वे महत्तर कहलाते हैं।' यही महत्तर शब्द बिगड़ कर महतो हो गया। उसके १२७वें पृष्ठ में लिखा है कि 'रोहन (नाम है) रौतापुर के तिवारी कहलाये। इसी से (रौतापुर के रहने से) राउत भी कहे जाते हैं। शिवानन्द देवकली के दूबे थे, जिन्हें ठाकुर ब्राह्मण भी कहते हैं। पृष्ठ ६४ में लिखा है कि 'कुछ काल पीछे बाज-बाज आस्पदों के

बजाय सांकेतिक पद बादशाहों और राजाओं ने भी ब्राह्मणों के कर दिये। जैसे, भट्टाचार्य, चौधुरी, राउत, ठाकुर और चौकसी।' इसी प्रकार सर्यूपारियों में भी बहुत से मिलेंगे। शाहाबाद जिले में गांव के गांव सर्यूपारी सिंह पदवी वाले वाले हैं। यहां तक कि बक्सर से पूर्व एक ग्राम 'सिंहनपुरा' कहलाता है, जहां के सर्यूपारी सिंह कहलाते हैं। गौड़ों, सारस्वतों और सनाढ्य आदि ब्राह्मणों में तो राय, सिंह की भरमार है। बड़े-बड़े जमींदार सभी सिंह कहलाते हैं और चौधुरी भी। गाजीपुर के श्री शिवनाथसिंह सारस्वत ही (महियाल) ब्राह्मण थे, जो प्रथम से ही यहां आकर बस गये। सरस्वती के लेखकों में से पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय को लोग जानते ही हैं। वे सनाढ्य ब्राह्मण हैं। इसी प्रकार जहां ढूँढेंगे वहीं सभी मिल सकते हैं। कान्यकुब्ज दर्पण के २९-३२ पृष्ठों में राय, सिंह और साह पदवी वालों के नाम भरे हैं।

हां, इतनी बात है कि मिथिलादि देशों तथा कन्नौज में राय, सिंह के आगे कहीं-कहीं ठाकुर, दीक्षित, तिवारी आदि भी जोड़ देते हैं और कहीं-कहीं नहीं भी। जैसा पूर्व दृष्टान्तों से विदित हो गया होगा। परन्तु उचित है जिसका जो प्राचीन आस्पद (उपाधि) तिवारी आदि होवे, उसे अवश्य राय, अथवा सिंह आदि शब्दों के आगे जोड़ देवे, नहीं तो धर्म शास्त्र सिद्ध शर्मा शब्द को ही उनके आगे लगा देवे, अथवा उनको निकाल कर शर्मा शब्द को ही रखे, अथवा पांडे आदि भी जोड़ देवे। इसमें मर्जी की बात है।

इसलिये आजकल किसी अयाचक दलवाले ब्राह्मण को अपने नाम के आगे प्राचीन शर्मा या तिवारी, पांडे आदि पद लगाये देख जो कोई बुद्धि के शत्रु यह दलील कर बैठते हैं कि, यदि आप की यह पदवी प्रथम से थी तो आप लोग उसका प्रथम प्रयोग क्यों न करते थे? उनको उन कान्यकुब्जों और सर्यूपारियों को देख और पूछकर अपनी अनभिज्ञता का परिचय कर लेना चाहिए। साथ ही, विचारने की बात है कि 'शर्मा' उपाधि तो सभी ब्राह्मणों की धर्म शास्त्रों से सिद्ध है, जैसा मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में लिखा है कि :—

शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम्।
वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम्॥ ३२॥ म० २॥
शर्म देवश्च विप्रस्य वर्म त्राता च भूभुजः।
भूतिर्दत्तश्च वैश्यस्य दासः शूद्रस्य कारयेत्॥ यम०॥
शर्मवद्ब्राह्मणस्योक्तं वर्मेति क्षत्रसंयुतम्।
गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः॥ विष्णुपु०॥

सबका निचोड़ यह है कि 'ब्राह्मणों के नाम के अन्त में शर्मा और देव शब्द होने चाहिये, एवं क्षत्रिय के नामान्त में वर्मा और त्राता, वैश्य के गुप्त, दत्त आदि और शूद्र के नामान्त में दास शब्द लगाना चाहिये।' अब हम आप ही से पूछते हैं कि सभी ब्राह्मणों के नाम के आगे इन नवोद्भूत तिवारी, पांडे, सिंह, ठाकुर और भट्टाचार्य प्रभृति उपाधियों के प्रबल प्रवाह ने जब उनका नाम निशान तक आज मिटा दिया है, तो फिर क्या आज उसके नये सिरे से प्रयोग करने वाले आपके सिद्धान्तानुसार अपराधी समझे जावें? अथवा 'शर्मा' उनकी उपाधि ही प्रथम की न समझी जावे? इसलिये ऐसी कुकल्पनायें विद्वानों को शोभा नहीं देतीं और मूर्खों को कोई रोक भी नहीं सकता।

इस सभी कथन का निष्कर्ष यही है कि राय, सिंह और चौधुरी आदि उपाधियां रखने से भूमिहार आदि ब्राह्मणों में त्रुटि नहीं आ गई, जिससे किसी प्रकार इनका पूर्व गौरव घट गया है। क्योंकि ये ब्राह्मण मात्र में प्रचलित उपाधियां हैं। हां, इतना हम अवश्य कहेंगे कि इन सभी आधुनिक उपाधियों को सभी ब्राह्मण छोड़ कर धर्मशास्त्रादि सिद्ध शर्मा, ऋषि, देव, आचार्य और उपाध्याय रूप उपाधियों का ही अब प्रयोग करें। क्योंकि अब आधुनिक किसी राय, सिंह अथवा पांडे, तिवारी प्रभृति पदवियों में तत्त्व नहीं रह गया और न उनसे कोई प्रतिष्ठा ही है। बल्कि निरक्षर, निरुद्योग और कर्म धर्म शून्यों में ये अंध परम्परा की पदवियां अब अत्यन्त अयोग्य प्रतीत होती हैं।

विवाह सम्बन्ध

हम प्रथम सिद्ध कर चुके हैं कि त्यागी, महियाल, पश्चिमा, भूमिहारादि ब्राह्मण दल सभी देश के कर्मवीर, धनी और प्रतिष्ठित अयाचक ब्राह्मणों का एक दल है, जो उसी समय बना जिस समय कान्यकुब्ज, मैथिल, गौड़, सारस्वत और सर्यूपारी आदि ब्राह्मण दल बन रहे थे। अब इस प्रकरण के अन्त में उसी की पुष्टि के लिए इन अयाचक ब्राह्मणों का प्रतिष्ठित मैथिलों, कान्यकुब्जों सर्यूपारियों और गौड़ों से विवाह सम्बन्ध दिखलाते हुये इनके श्रेष्ठ ब्राह्मण होने में प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पण्डित प्रवरों की सम्मतियां दिखला कर इस प्रकरण को समाप्त करेंगे। जिनके दिखलाने से बहुतों की अनभिज्ञतामूलक कुकल्पनायें समूल विनष्ट हो जावेंगी और उनको अपनी पंडिताई का पता लग जावेगा। उस सम्बन्ध को नाम बनाम दिखलाने से प्रथम ही हम उसके विषय में एक-दो बातें कह दिया चाहते हैं। एक तो यह कि जब काशी में भूमिहार ब्राह्मण महासभा की बैठक हुई थी तभी महाराज द्विजराज काशिराज ने अपनी वक्तृता में इस बात का वर्णन किया था कि इन अयाचक ब्राह्मणों का मैथिलों, कान्यकुब्जों, सर्यूपारियों और गौड़ों के साथ विवाह सम्बन्ध होता था और है यद्यपि उन्होंने इसके रोकने के लिये अपनी सम्मति प्रकाशित की थी, परन्तु हम उस अंश से सहमत नहीं हैं। क्योंकि रोकने में उनका तात्पर्य यह था कि हमलोग अयाचक ब्राह्मण हैं, इसलिये हमारा सम्बन्ध उन्हीं में होना चाहिये, न कि याचक ब्राह्मणों में भी। परन्तु जैसा हम प्रथम ही कह चुके हैं और आगे भी विदित होगा कि अयाचक दल में भी बहुत से अयाचक हैं और इन अयाचकों का साक्षात् सम्बन्ध उन्हीं से होता है। क्योंकि दरिद्रों के साथ लोग कब करने वाले हैं। और उन अयाचकों का भी अपने दल के अयाचकों के ही साथ होता है, इस प्रकार से तीन, चार या पांच सम्बन्ध के बाद सम्भवतः याचक भी जुट जाते हैं। तो इससे क्या? वे लोग कुछ दूसरे तो हैं नहीं, केवल आचार भेद होने से उनके मत से साक्षात् सम्बन्ध न होना चाहिये। क्योंकि परम्परा सम्बन्ध तो संसार में किसी के साथ भी बचा नहीं है। सभी ब्रह्मा या ऋषियों की सन्तानें हैं। यदि कोई आदमी किसी चाण्डाल का स्पर्श नहीं करता तो साक्षात् ही नहीं करता परन्तु परम्परा स्पर्श तो रहता ही है। क्योंकि दोनो उसी पृथ्वी पर रहते हैं। बल्कि हम तो साक्षात्संबंध को ही पसन्द करते हैं और बहुत जगह ऐसा होता भी है।

एक बात और भी है कि जैसे भूमिहार ब्राह्मण अयाचक हैं वैसे ही याचक दल में भी तो बहुत से अयाचक हैं। तो क्या वे लोग सम्बन्ध करना ही छोड़कर बिना ब्याहे रह जावें? हां, प्रायः जहां तक होता है साक्षात्सम्बन्ध छोड़ देते हैं। वैसे ही आप लोगों (भूमिहारादि

ब्राह्मणों) में भी है। इसलिये कोई हर्ज नहीं। यदि आप कहें कि हम लोगों ने तो संकल्पपूर्वक दान का परित्याग किया है, न कि याचक दल वाले अयाचकों ने, इसलिये उनका दृष्टान्त नहीं दिया जा सकता। सो तो ठीक नहीं है। क्योंकि जैसा हम अच्छी तरह सिद्ध कर चुके हैं कि क्रमशः याचकों से अयाचक होते गये और कभी-कभी अयाचक से याचक भी इत्यादि। इसलिये संकल्पपूर्वक दान त्यागने में कोई प्रमाण नहीं है। यह तो ऐच्छिक धर्म है।

दूसरे, यह कि मैथिल परमहंस महोपदेशक नामक एक महात्मा ने भी 'ब्राह्मण सम्बन्ध' नाम की एक छोटी-सी पुस्तक लिखी है। यद्यपि उसमें विशेष रूप से मैथिलों और भूमिहार ब्राह्मणों के ही सम्बन्ध दिखलाये गये हैं। तथापि उसके चौथे पृष्ठ में लिखा है कि 'पंजी के पूर्व मैथिल, कान्यकुब्ज, सरवरिया और पश्चिमा ब्राह्मण में सम्बन्ध था, इत्यादि।

इसी जगह यह समझ लेना चाहिये कि मैथिल ब्राह्मणों में दो प्रकार के विवाह प्रचलित है, एक तो उनकी सौराष्ट्र की केवल विवाह सम्बन्धिनी सभा में होता है, जहां कन्या विक्रय प्रधान धर्म माना गया है। जिसके लिये 'मिथिला मिहिर' प्रभृति पत्र और मैथिल महासभा चिल्लाती ही रह गई, मगर कुछ न हुआ। इस विवाह से बड़ा भारी अनर्थ यह होता है कि रुपये देकर अन्य जातियां भी वहां से लड़कियां ब्याह लाती हैं, क्योंकि वहां के विवाह का दारमदार पंजीकारों पर होता। जो बड़े ही लालची होने के कारण जिसी से विशेष घूस पाते हैं उसी का नाम पंजी में लिख देते हैं। फिर क्या? अब तो वेद वाक्य ही हो गया और उसके मैथिल होने में कोई सन्देह नहीं रहा। क्योंकि मैथिलों का निर्भर उसी काल्पनिक पंजी पर ही होता है। इस विषय में बहुत बार विचार और लिखा पढी 'मिथिला मोद' प्रभृति उनके पत्रों में भी हो चुकी है। और भागलपुर की मैथिल महासभा में इस विषय का एक प्रस्ताव भी हो चुका है। यद्यपि इस प्रकार के विवाह पर पुरानी लकीर के फकीर मैथिलों को बड़ा अभिमान है, तथापि सच पूछिये तो यह विवाह नहीं, किन्तु अनर्थ है। परन्तु यह विवाह प्रायः अप्रसिद्ध और गरीबों का ही है। दूसरे प्रकार का विवाह, जिसे पुराने ढंग के मैथिल अच्छा नहीं समझते, युक्त प्रान्तादि की रीति पर तिलक दहेज देकर लड़के, लड़कियों के घर बार देखकर हुआ करता है। जिसमें पूर्व ब्याह की तरह गड़बड़ मचने की सम्भावना भी नहीं रहती। क्योंकि सौराष्ट्र सभा वाला विवाह दो ही चार दिनों में हो जाता है, परन्तु इस में तो परीक्षा के लिये पूर्ण समय मिलता है। इस विवाह को मैथिल लोग 'तिलकौआ विवाह' कहते हैं। यह केवल प्रतिष्ठित और धनी, एवं जमींदार मैथिलों में हुआ करता है। और यही दूसरे प्रकार का विवाह उन लोगों का पश्चिमा ब्राह्मणों के साथ होता है। क्योंकि दोनो दल जमींदार और प्रतिष्ठित ही हैं। इसलिये यह कहने का भी अवकाश नहीं रहा कि मिथिला के विवाह का तो कुछ ठिकाना हीं नहीं, वहां तो धोखे से अन्यों के साथ भी हो जाता है। क्योंकि धोखे की बात प्रथम प्रकार के ही विवाह में रहती है, न कि दूसरे प्रकार के विवाह में भी। यदि पश्चिमा ब्राह्मणों और मैथिलों का परस्पर विवाह सच्ची रीति से होता न रहता, तो भागलपुर की मैथिल महासभा में उस के रोकने का प्रस्ताव क्यों किया जाता, जिसका विवरण आगे मिलेगा?

इसके सिवाय ता० ११ जनवरी १९१६ ई० के भारतमित्र में भी इसी विषय की सम्पादकीय टिप्पणी ऐसी निकली है कि मैथिलों और भूमिहारों के वैवाहिक सम्बन्ध होते हैं। इससे भूमिहार काशीनरेश के ब्राह्मण होने में सन्देह करना व्यर्थ हैं । सम्पादक महोदय को कान्यकुब्जों और सर्यूपारियों के साथ भूमिहार, जमींदारादि ब्राह्मणों के संबंध विदित न थे।

इसलिये उन्होंने उनका वर्णन नहीं किया, यह दूसरी बात है। इस संपादकीय टिप्पणी को देखते ही किसी दरभंगा निवासी मैथिल जीवछ मिश्र का माथा ठनक उठा और चटपट उन्होंने सम्पादक जी को बड़े रोष के साथ लिख भेजा कि आपने विवाह सम्बन्ध के विषय में जो लिखा है वह सब गलत है। जो विवाह मैथिलों के नाम पर होते हैं, वे बनावटी मैथिलों के ही नाम पर, न कि सच्चे मैथिल कभी भूमिहार ब्राह्मणों के साथ विवाह करते हैं। अतः आपको यह बात विचार कर लिखनी थी इत्यादि। यह ता० ११ जनवरी के बाद के भारत मित्र के किसी अंक में संक्षेप से प्रकाशित है।

इस पर पुनः ता० २५-१-१६ ई० के अंक में पूर्व लेख का सम्पादकीय उत्तर यह निकला कि किसी पिछले लेख में हमने लिखा था कि जब भूमिहारों का मैथिलों से वैवाहिक सम्बन्ध होता है, तब भूमिहारों के ब्राह्मण होने में सन्देह नहीं किया जा सकता। इस पर दरभंगे के श्रीयुक्त जीवछ मिश्र हम पर बहुत बिगड़े हैं, परन्तु इसका कोई कारण हमारी समझ में नहीं आता। जब एक समाज का मनुष्य किसी दूसरे समाज के विषय में कुछ लिखता है, तब उस का हाल वह दूसरे से ही सुनकर लिखता है, क्योंकि भीतर की बात विशेष घनिष्ठता हुये बिना वह नहीं जान सकता। परमहंस महोपदेशक नाम के एक सज्जन ने कई वर्ष हुये हमारे पास एक पुस्तक छपने को भेजी थी, जिस में उन्होंने यह बात लिखी थी। हमारे यहां तो वह पुस्तक नहीं छपी, पर वह छपगई या नहीं यह भी हमें मालूम नहीं है, क्योंकि वह यहां से लौटा दी गई थी। उसके बाद हमने एक मैथिल वैष्णव से यही बात पूछी थी और उन्होंने भी परमहंस जी का समर्थन किया था। इस कारण हमने परमहंस जी की बात प्रामाणिक समझी और उसे लिख दिया---। जीवछ जी को अच्छी तरह खोज कर लेना चाहिए और यदि हमारी बात ठीक न ठहरे तो सूचना पाने पर हम सहर्ष उसका खण्डन प्रकाशित कर देंगे।

इसके बाद उक्त मिश्रजी की लेखनी जो रुकी सो आज तक रुकी ही है। फिर ता० २८-१-१६ ई० के अंक में यह प्रकाशित हुआ कि मोकामा से श्रीयुक्त आदित्य नारायण सिंह लिखते हैं :- आपने गत मंगलवार के 'भारतमित्र' में दरभंगे के श्रीयुक्त जीवछ मिश्र जी के क्रोधका जिक करते हुए लिखा है कि 'जब भूमिहारों का मैथिलों से वैवाहिक सम्बन्ध होता है तब भूमिहारों के ब्राह्मण होने में सन्देह नहीं किया जा सकता है।' आपका कथन निस्सन्देह युक्तिसंगत और सत्य है। भूमिहारों तथा मैथिलों के अनेक वैवाहिक सम्बन्ध हुये और होते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक मैथिल और भूमिहार धन के बढ़ घट जाने पर मैथिल से भूमिहार और भूमिहार से मैथिल कहलाने लगते हैं। यदि मेरे कथन पर किसी को विश्वास न हो और इसकी सत्यता जानना चाहे तो मैं उसके साथ घूम कर इसकी सत्यता दिखा दूँगा। इसके सिवाय आपने भी श्रीयुत जीवछ मिश्रजी को अपने कथन की सत्यता प्रमाणित करने के लिये खंडन करने की आज्ञा दे दी है। देखें मिश्रजी खण्डन में क्या लिखते हैं?

इस पर भी मिश्रजी की ओर से किसी की लेखनी न उठी, और अन्त में काशीवासी पं० श्यामनारायण शर्मा, सं० 'भू० ब्रा०' का एक लेख ता० ८-२-१६ ई० के अंक में प्रकाशित होकर यह लिखा पढ़ी बन्द हो गई। वह लेख यों है :-

'गत पौष शुक्ल सप्तमी को प्रकाशित 'दैनिक भारत मित्र' की सम्पादकीय टिप्पणी 'मैथिलों और भूमिहारों के वैवाहिक सम्बन्ध होते हैं, इससे भूमिहारों के ब्राह्मण होने में सन्देह करना व्यर्थ है, देखकर दरभंगा निवासी श्रीयुत जीवछ मिश्रजी आप से बाहर हो गये हैं और

गत किसी अंक में सम्पादक महोदय को उलाहना देते हुए आप लिखते हैं कि पूर्वोक्त विवाह सम्बन्ध की बात मिथ्या है। भूमिहारों के साथ जिन मैथिलों के ब्याह होते हैं वे कल्पित मैथिल हैं इत्यादि। परन्तु मैं कहता हूं कि, यदि वास्तव में सच्चे मैथिलों के साथ भूमिहार ब्राह्मणों के ब्याह नहीं होते, तो गत सन् १९११ ई० में भागलपुर की मैथिल महा सभा के अधिवेशन में इन के रोकने का प्रस्ताव क्यों किया जाता? और उसके लिये एक सिलेक्ट कमिटी क्यों बनाई जाती? इसका विवरण उसी वर्ष के २९ अप्रैल के 'मिथिला मिहिर' नामक उन्हीं लोगों के पत्र में इस प्रकार है :–

तदनन्तर एकटा महाशय (नाम हमरा विस्मृत भैगेल अछि, मि० मि० सं०) ई प्रस्ताव कैलन्हि जे बहुतो मैथिल ब्राह्मण भूमिहार ब्राह्मणसँ सम्बन्ध करैत छथि। एहि विषय में सभा क दिश स प्रबंध होवाक चाही, जाहि सं ई सम्बन्ध बन्द हो। सर्व सम्मति सं ई निश्चय भेल जे एहि विषयक ऊपर विचार करवाक हेतु एकटा सिलेक्ट कमिटी नियत कैलजाय।' बनावटी मैथिलों के नाम पर जो विवाह सम्बन्ध होते थे या होते हैं, वे तो कन्या विक्रय द्वारा कन्या-विक्रय-स्थान 'सौराष्ट्र' नाम्नी मैथिलों की प्रसिद्ध वैवाहिक सभा में हुआ करते हैं। परन्तु भूमिहार ब्राह्मणों के साथ के सम्बन्ध तो तिलक दहेज की रीति पर होते है, जैसी प्रथा संयुक्त प्रान्तादि देशों में प्रचलित है और जिसे मैथिल लोग 'तिलकौआ' ब्याह कहा करते हैं।

क्या दरभंगा प्रान्तस्थ दुलारपुर निवासी मैथिल तुरन्तलाल चौधरी का विवाह उसी प्रान्तस्थ शेरपुर ग्राम के जलेवार मूलवाले भूमिहार ब्राह्मण खगन चौधरी के घर नहीं हुआ है, या वे सच्चे मैथिल नहीं हैं? अथवा उन्हीं के घर देवधा वाले भू० ब्रा० रामबकस राय सनैवार की लड़की का ब्याह नहीं हुआ है? क्या उसी प्रान्त में दहौरा निवासी मैथिल (योग्य श्रेणी के) वनमाली सरस्वती (सरस्वती बाबू) प्रभृति के घर में ठाहर ग्राम के सगोत्र वल्लीपुर निवासी दामोदर चौधरी की बहन का विवाह नहीं हुआ है? जिस ठाहर ग्राम में नया नगरस्थ सनैवार भू० ब्रा० चौधरी झरुला सिंह तथा ऊदनसिंह की बहनों का सम्बन्ध है। तथा कुरसों ग्रामस्थ मैथिल चित्र नारायण चौधरी का ब्याह भिरहा ग्रामस्थ बेलखण्डी राय की पुत्री से और नन्दूराय के घर में कुरसों के सगोत्र दसौत वाले प्यारेलाल चौधरी के पुत्र का ब्याह क्या नहीं हुआ है? जिन भिरहा वाले नन्दूराय मैथिल के लड़के का सकरपुर ग्रामवासी सनैवार भू० ब्राह्मण नथुनी राय के घर में सम्बन्ध है। इत्यादि १२ गांव भिरहा आदि वाले अनरिये मैथिलों का सम्बन्ध भू० ब्राह्मणों से नया नगरादि ग्रामों में है और भिरहावाले बडे-बड़े योग्य[1] और पंजीबद्ध मैथिलों में मिले हुए हैं। यदि आवश्यकता हो तो सहस्त्रों ऐसे सम्बन्ध नाम बनाम दिखलाये जा सकते हैं। यदि मैथिल मिश्र जी को सन्देह हो तो उन ग्रामों में जा जांच कर अपना सन्तोष कर लेवें। मैथिल और भूमिहार ब्राह्मण सम्बन्ध वाली पुस्तक 'ब्राह्मण' सम्बन्ध नाम्नी दरभंगास्थ रामेश्वर प्रेस में छप चुकी है। जिन्हें इच्छा होवे 'बा० महावीर सिंह ग्राम गंगापुर, पो० ताजपुर-दरभंगा के पते से मंगा लेवें। मुफ्त मिलती हैं।'

इसके सिवाय बनावटी मैथिलों के विवाह तो केवल लड़कियों के हुआ करते हैं क्योंकि वहां लड़के वालों को बनावटी बनने का अवसर मिलता है,परन्तु लड़की वाले के तो घर

१. 'ब्राह्मण सम्बन्ध' नाम की पुस्तक से स्पष्ट है कि मैथिल मूर्द्धन्य श्रोत्रिय दरभंगा महाराज का भी सम्बन्ध परम्परया भूमिहार ब्राह्मणें से मिलता है।

जाना पडता है और दो-चार दिन रहना पड़ता है। इसलिये बनावट होवे तो पता ही लग जावे। परन्तु मैथिलों और भूमिहार (पश्चिमा) ब्राह्मणों के संबंध तो लड़की और लड़के दोनों के होते हैं, जैसा आगे विदित होगा। अन्त में हम दरभंगा के नया नगरवासी श्री पारसमणि सिंह नामक अतिवृद्ध, अत्यन्य अनुभवी और विचारशील पश्चिमा ब्राह्मण रत्न सज्जन को हार्दिक धन्यवाद देते हैं, जिस की ही सहायता से विशेष रूप से नाम बनाम सम्बन्ध संगृहीत हुआ है, जैसा नाम है वे वैसे ही हैं। और परमहंस जी तो धन्यवाद के पात्र हैं ही। क्योंकि सम्बन्ध संग्रह का सूत्रपात उन्हीं का किया हुआ है, जिसमें प्रमाण स्वरूप पूर्वोक्त ब्राह्मण संबंध, नामक पुस्तक ही है।

अब विवाह सम्बन्ध दिखलाया जाता है। उसमें भी प्रथम ब्राह्मणों के ही साथ अयाचक ब्राह्मणों का सम्बन्ध दिखला कर पीछे कान्यकुब्जों, सर्यूपारियों और गौड़ों के साथ दिखलाया जावेगा। क्योंकि अभी मैथिलों के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें कह चुके हैं। इस स्थान पर इतना समझ लेना चाहिये कि जिन मैथिलों का अयाचक, पश्चिमा या भूमिहार ब्राह्मणों के साथ विवाह सम्बन्ध होता है वे सामान्यतः दो प्रकार के प्रसिद्ध हैं, एक तो दोगमियां और दूसरे दोगमियों से अन्य। दोगमियां नाम उस प्रान्त में उन मैथिलों का है, जिनका सम्बन्ध पश्चिमा (भूमिहार) ब्राह्मणों से है, और मैथिल ब्राह्मणों से भी। वे दोनो ब्राह्मण दल में विवाह के लिये जाते हैं, अतः दोगमियां कहलाते हैं। उनसे वे अन्य हैं जिनके सम्बन्ध केवल मैथिलों से हैं। यद्यपि जिनका सम्बन्ध केवल मैथिलों से हैं वे भी परम्परया पश्चिमा ब्राह्मणों से दोगमियों के द्वारा विवाह सम्बन्ध से मिल जाते हैं, जैसा आगे स्पष्ट हो जायगा, और कहीं-कहीं ऐसे भी मैथिल हैं जो दोगमियां न भी कहलाने पर साक्षात् पश्चिमा ब्राह्मणों से सम्बन्ध करते हैं। तथापि दोगमियों का सम्बन्ध पश्चिमा ब्राह्मणों के साथ साक्षात् और प्रसिद्ध है जिसे सभी जानते हैं, परन्तु अन्यों का या तो अधिकतर साक्षात् सम्बन्ध है ही नही या है भी तो कम होने से उतना प्रसिद्ध नहीं है। इंसीलिये वे दोगमियां नही कहलाते।

मैथिलों और पश्चिमा (भूमिहार) ब्राह्मणों के सम्बन्ध इस प्रकार हैं– (१) परगना लोआम, जिला दरभंगा, ग्राम दुलारपुर, मूल अड़ैवारनान पुर, गोत्र वत्स, तुरन्तलाल चौधरी मैथिल का विवाह सरैसा, जिला दरभंगा, ग्राम मऊ शेरपुर, गोत्र शांडिल्य अथवा वत्स, मूल जलैवार, खगन चौधरी, और पोखन चौधरी पश्चिमा ब्राह्मण की बहन से है। जिससे उत्पन्न पुत्र बच्चा चौधरी उर्फ कारी चौधरी का विवाह ग्राम भवानीपुर जमसम, परगना हाटी, जिला दरभंगा में किसी योग्य श्रेणी वाले मैथिल के घर में है। इसके अतिरिक्त नीचे के सभी विवाह दरभंगा जिले के ही हैं। (२) पूर्वोक्त तुरन्त लाल चौधरी के ही घर नयानगर स्टेशन के पास ग्राम देवधा, मूल सनैवार, गोत्र भारद्वाज, रामबकस राय की लड़की का विवाह है, जो पश्चिमा ब्राह्मण है। (३) दुलारपुर के मगनी राम चौधरी मैथिल का विवाह भिरहा ग्राम में, परगना जखलपुर, मूल अनरिये, गोत्र शांडिल्य, पारसमणि राय दोगमियां मैथिल की कन्या से है, जिन भिरहावाले अनरियों का सम्बन्ध देवधा, नया नगर इत्यादि ग्राम वाले सनैवार मूल के पश्चिमा ब्राह्मणों में भरा है। (४) दुलारपुर के ही मनोहर चौधरी का विवाह ग्राम माखन पुर बसहा, मूल ब्रह्मपुरिये ब्रह्मपुर, गोत्र शांडिल्य, चुरामन चौधरी की बहन से है। ये ब्रह्मपुरिये मैथिल भी सनैवार पश्चिमा ब्राह्मणों से मिले हुये हैं। (५) पूर्वोक्त भिरहा ग्राम के नन्दूराय मैथिल के पुत्र का विवाह ग्राम सकरपुरा, मूल सनैवार, पश्चिमा ब्राह्मण नथुनीराय की भतीजी से है। (६) उसी भिरहा वाले नन्दूराय के घर परगना भरौरा ग्राम भरौरा, छोटे

झा और जगतमणि झा का सम्बन्ध है। (७) मिरहा वाले वेलखंडी राय मैथिल, मूल अनरिये का भी संबंध सकर पुरा के पश्चिमा ब्राह्मणों से है। (८) जिस बेलखंडी राय की कन्या का विवाह झंझारपुर स्टेशन के पास कुरसो ग्राम, मूल जलैवार, अवध नारायण चौधरी के पिता चित्रनारायण चौधरी मैथिल से है । (९) पूर्वोक्त मिरहा वाले नन्दूराय के ही घर में कुरसो ग्राम वाले प्यारे लाल चौधरी के पुत्र बच्चा चौधरी का विवाह है। (१०) मिरहा ग्राम के शीतल राय मैथिल के भतीजे लालजी राय के पुत्र बच्चन राय का विवाह ग्राम मालपुर के सनैवार पश्चिमा ब्राह्मण नथुनी राय की बहन से है। (११) जिस मिरहा वाले शीतल राय के घर से दरभंगा शहर से पश्चिम पंचाम गांव के कीर्तिनारायण चौधरी के पुत्र द्वारिका नाथ चौधरी मैथिल का विवाह है। (१२) पूर्वोक्त शीतल राय के पुत्र राम किशुन राय का विवाह बस्ती बढ़ौना ग्राम, परगना सरैसा में बबुई लाल चौधरी मैथिल मूल मरैं मगरौनी की पुत्री से हुआ। (१३) उसी बढ़ौना के इशरू चौधरी नया नगर वाले सनैवार पश्चिमा ब्राह्मण बिन्ध्येश्वरी प्रसाद सिंह के नाना हैं। (१४) उसी बढ़ौना के बद्री चौधरी का विवाह मौजे मथाही परगना विसारा में फतेह नारायण सिंह कोदरिया पश्चिमा ब्राह्मण के सगोत्र (गोतिया) के घर में हुआ है और उसके निस्सन्तान होने से बद्री चौधरी उसके हिस्से के मालिक हैं। (१५) उसी बद्री चौधरी के पुत्र बबुवे लाल चौधरी का विवाह मैथिल के ही घर ग्राम पकड़ा, जिला भागलपुर, परगना छई में श्री गूदर सिंह के यहाँ है। (१६) बढ़ौना के ही देवी लाल चौधरी के पुत्र रक्षाराम चौधरी का विवाह जिला पटना ग्राम (स्टेशन भी) पुनारक में श्री यदुनन्दन सिंह भूमिहार ब्राह्मण सावर्ण्य गोत्र वाले के घर हुआ है। (१७) बढ़ौना के ही कुञ्जी लाल चौधरी का विवाह जिला मुंगेर ग्राम (स्टेशन) खगरिया के श्री जानकी प्रसाद सिंह पश्चिमा ब्राह्मण सावर्ण्य गोत्र की बहन से है। (१८) बढौना के ही पदार्थ सिंह चौधरी का विवाह जिला मुंगेर, गांव तथा स्टेशन बरही श्री सन्तोष सिंह पश्चिमा ब्राह्मण की भतीजी से है । बस्ती बढ़ौना वाले मैथिलों का स्टेशन मुही उद्दीन नगर है । बढ़ौना वालों का सबन्ध शांडिल्य गोत्री अनरियों में भी है जो सनैवार मूल के पश्चिमा ब्राह्मणों से मिले हुये हैं। जैसे :– (१९) बद्री चौधरी के सम्बन्धी सूबाराय मैथिल अनरिये, या ब्रह्मपुरिये ग्राम देकुली, परगना जबलपुर। (२०) प्रयागदत्त चौधरी की बहन के लड़के श्री लक्ष्मीनारायण राय मैथिल, अनरिये, गांव यतैली। (२१) तिल्लू चौधरी के संम्बन्धी हरिहर राय अनरिये, ग्राम जगन्नाथपुर। (२२) तिल्लू चौधरी के सम्बन्धी रामगोविन्द झा ग्राम फुलेरा, मूल जलैवार, गोत्र वत्स अथवा काश्यप। (२३) बस्ती गांव, स्टेशन मुहीउद्दीन नगर, जगदीश राय मैथिल, मूल जलैवार का विवाह मथाही ग्राम में अवधसिंह कोदरिया की लड़की से। (२४) बढ़ौना के गंगू चौधरी की पुत्री का विवाह रामसुन्दर झा से, ग्राम बेला, मुजौना के पास, परगना सरैसा। (२५) पूर्वोक्त पनचोभ गांव से उत्तर सिमरी गांव में रहने वाले मैथिल मेवालाल चौधरी के भतीजे का विवाह मिरहा में दिगम्बर राय के यहां है। यह मेवालाल दरभंगा के महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह के मुंहलग्गू मौर मधुबनी के प्रसिद्ध बाबू दुर्गादत्त के तहसीलदार थे। (२६) दरभंगा से दो कोस पश्चिम ग्राम कलि गाँव के मैथिल ज्ञानीलाल चौधरी का विवाह मिरहा वाले भाईलाल की लड़की से। (२७) उसी कलिगांव के कुंवर चौधरी मिरहा वाले धर्मलाल राय के भगिना (बहन के लड़के) हैं अथवा थे। (२८) पूर्वोक्त जगन्नाथपुर के हरिहर राय अनरिये मैथिल का ब्याह सनैवार मूल के ब्राह्मण नया नगर निवासी भुजंगा सिंह की लड़की से और देवधा में सनैवार ही ब्राह्मण लक्ष्मण राय की लड़की

से। (२९) बैरमपुर के अनरिये मैथिल बच्चू राय की शादी नया नगर वाले भुजंगासिंह के घर है। इस तरह १२ गांव वाले अनरिये मैथिलों का सम्बन्ध १२ गांव वाले सनैवार पश्चिमा ब्राह्मणों से एक में एक मिला हुआ है। जिन मिरहा प्रभृति गांव वाले अनरियों का सम्बन्ध कुरसों दसौत इत्यादि ग्रामों में तथा योग्य श्रेणी के मैथिलों में भी है।

इसी प्रकार केवटा, असिनचक प्रभृति गांवों के ब्रह्मपुरिये मैथिल शांडिल्य गोत्री भी सनैवार इत्यादि मूल के ब्राह्मणों में मिले हुये हैं, जैसे (३०) केवटा के गजराज चौधरी की तीन लड़कियों के विवाह नया नगर में सनैवार ब्राह्मण नरसिंह दत्त सिंह, रघुवर शरण सिंह और जालिम सिंह से हुये। (३१) केवटा के वर्त्तमान सेठ रामाश्रय चौधरी के बाबा रघुबर दयाल सिंह की बहन से नया नगर के जीवलाल सिंह का विवाह था। (३२) असिनचक के राम दयाल चौधरी की बहन का विवाह नया नगर वाले महोदय सिंह से। (३३) रामपुर कचहरी के सनैवार ब्राह्मण दिगम्बर राय के पिता लेखा राय की लड़की से देकुली के अनरिये या (ब्रह्मपुरिये) हरख राय के पुत्र सूबाराय का विवाह हुआ। (३४) केवटा के सेठ की लड़की से मिरहा वाले दिगम्बर राय का ब्याह हुआ। (३५) वर्त्तमान सेठ श्री रामाश्रय सिंह चौधरी के चचेरे भाई का विवाह पूर्वोक्त बढ़ौना वाले प्रयाग दत्त चौधरी की लड़की से है।

(३६) और बढ़ौना के ही उदय सिंह चौधरी के घर में नया नगर वाले अमृत प्रसाद और बलदेव प्रसाद सिंह के विवाह हैं। (३७) विभूत पुर नरहन के द्रोणवार ब्राह्मण श्री द्वारिका प्रसाद सिंह के भाई हरिकृष्ण सिंह का विवाह ग्राम बदलपुरा, बेगूसराय स्टेशन के पास,जिला मुंगेर में श्री वेदनारायण सिंह के भाई चमन सिंह की पोती से हुआ है, और वेदनारायण सिंह की पुत्री का विवाह केवटा के सेठ छत्रधारी धरी के पुत्र वर्त्तमान सेठ श्री रामाश्रय सिंह चौधरी से हुआ है। इन छत्रधारी चौधरी के पिता रघुवर दयाल चौधरी दरभंगा के पास के विठौली ग्राम के रामाधीन राय मैथिल के मामा थे। जिस रामाधीन राय की पुत्री का विवाह बछौल परगना, दरभंगा, ग्राम भरतपट्टी, टोले वरदेपुर में बच्चा ठाकुर मैथिल के पुत्र से हुआ । (३८) सेठ छत्रधारी चौधरी की पुत्री का विवाह दरभंगा से ४ कोस पूर्व वैगनी नेवादा ग्राम में सुवंशलाल झा के घर में हुआ (३९) दरभंगा-खिरहर के श्री भातू प्रसाद चौधरी दिघवैत पश्चिमा ब्राह्मण के मामा दुलारपुर के भाई जी चौधरी और खुशी चौ० हैं। क्योंकि भातू प्रसाद के नाना देवधा के मधुसिंह भाई जी चौ० के मामा हैं। भातू चौ० के पिता राम वशिष्ठ चौ० और खुशी चौ० के पिता हंसराज चौ० थे। (४०) कुशेश्वरस्थान के पास केवटगांव के श्री काली प्रसाद सिंह द्रोणवार भूमिहार ब्राह्मण और दरभंगा से पूर्व पोखरांव ग्राम के मैथिल कौशिकी दत्त चौधरी, इन दोनों के विवाह विभूतपुर के पास बेगूसराय सबडिविजन के मेघौल गांव में वंशीराय मैथिल की पुत्रियों से हुये, जिस बंशी राय का लड़का जगद्दीप वर्त्तमान् हैं। (४१) विसुनपुर, बेगूसराय के पास जिला मुंगेर, के श्री रामचौधरी मैथिल, मूल मरैं मगरौनी की पुत्री का विवाह नया नगर वाले श्री पारसमणि सिंह के पोते से हुआ है। (४२) गांव केशवे, मूल दघिअंरे, काश्यप गोत्री मैथिल बाला राय की लड़की का विवाह श्री पारसमणि सिंह के भाई से हुआ। (४३) गांव नाव कोठी, मूल सुरौरे कांटी, गौत्र गौतम मैथिल चौधरी अयोध्या प्रसाद का विवाह नया नगर के श्री शिवनन्दन सिंह की फुफेरी बहन से है। जो मुहम्मदपुर गांव की रहने वाली है और जिसका मूल सिहोरिया और गोत्र शांडिल्य है। (४४) गांव जोगियारा मूल सिहोरिया अथवा सिहुलिया (सोहगौरिया) श्री खूब लाल सिंह के पुत्र ईश्वर दयाल सिंह का विवाह जिला मुंगेर गांव

बीरपुर, छोटी गंडक के तट में, मैथिल मूल सुरगणै, गोत्र पराशर श्री अनूप सिंह के भाई डोमन सिंह की पोती से, और दोनों की फूआ से श्री शिवनन्दन सिंह नया नगर वाले के दादा चौधरी राम दयाल सिंह का विवाह था। जिस शिवनन्दन सिंह के यहाँ गंगापुर के श्री रामबहादुर सिंह द्रोणवार ब्राह्मण का विवाह है।

(४५) देवधा वाले सनैवार ब्राह्मण रामेश्वर प्रसाद सिंह का विवाह केवटा में रामदीन चौधरी मैथिल ब्रह्मपुरिये के घर में है। (४६) पूर्वोक्त भिरहा वाले धर्मलाल राय की पुत्री का विवाह ग्राम ठाहर, परगना जखलपुर, मूल पनचोभे भान पुर, गोत्र सावर्ण्य, मैथिल भगवान दत्त चौधरी से। (४७) उसी शहर ग्राम में मैथिल जीवन चौधरी के यहां नया नगर के चौधरी झरूला सिंह की बहन का विवाह और खेदन चौधरी के घर, चौधरी ऊदन सिंह की बहन का विवाह है। (४८) ठाहर के सगोत्र (गोतिया) बल्लीपुर में, सकरी स्टेशन के पास दहौरा ग्राम के वनमाली सरस्वती प्रभृति (सरस्वती बाबू) योग्य श्रेणी के मैथिल के घर के किसी लड़के का विवाह हुआ है, अर्थात् वर्त्तमान महीन्द्र नारायण सरस्वती का बल्लीपुर में मातृक (ननिहाल) है। जिस सरस्वती बाबू का सम्बन्ध श्रोत्रिय महाराजा दरभंगा से भी है।

(४९) जिस कुरसों का सम्बन्ध प्रथम पश्चिमा ब्राह्मणों से दिखला चुके हैं, उसी कुरसों के अवध नारायण चौधरी की पुत्री से बनमाली सरस्वती दहौरा वाले का विवाह था, जिसके पुत्र लक्ष्मी नारायण सरस्वती हैं। (५०) बल्लीपुर के ही बंशी चौधरी का विवाह परगना सरैसा, ग्राम वमैया, मूल अनरिये, भोली चौधरी की कन्या से हुआ। (५१) ग्राम लामा उजान, मूल जलैवार गरौल, गोत्र काश्यप, वंशीलाल चौधरी मैथिल का विवाह देवधा ग्राम में सनैवार मूल के ब्राह्मण बालमुकुन्द राय की कन्या से हुआ। (५२) नया नगर वालों के आदि पुरुष श्री पीताम्बर सिंह से भिरहा वाले मैथिल रंगलाल राय के बाप की फूआ का विवाह था। (५३) पूर्वोक्त केशावे ग्राम के दधिअरे मूल वाले सभी मैथिलों की लड़कियों के विवाह नया नगर गांव में है। (५४) ग्राम पटोरी, परगना सरैसा के सहदौलिया पश्चिमा ब्राह्मण मणि मिश्र के पुत्र का विवाह पूर्वोक्त बस्ती ग्राम के गोपाल राय मैथिल की बहन से है। (५५) बछवारा स्टेशन के पास नारेपुर के मैथिल मोहन राय की पुत्री से पटोरी के गणपति मिश्र के पुत्र का विवाह है। (५६) परगना पीड़ारुच, गाँव पीड़ारुच गोत्र गौतम, मूल खौवाड़े नानपुर मित्रलाल चौधरी के पिता का विवाह जिला मुंगेर, परगना नईपुर, गांव मरांची मूल जलैवार जाले, गोत्र वत्स खेदू ईश्वर मैथिल की बहन से हुआ। (५७) उसी खेदू ईश्वर की बहन का विवाह भिरहा वाले वेलखंडी राय से। (५८) लोहार-भवानीपुर के योग्य श्रेणी के मैथिल बच्चू चौधरी के पितामह का विवाह भूमिहार ब्राह्मणों के यहाँ मगध देश में था। (५९) समौल ग्राम के फतुरीठाकुर के घर महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह का दूसरा विवाह हुआ और उसी घर में बनैली का सम्बन्ध है। बनैली का सम्बन्ध तो पश्चिमा ब्राह्मणों के यहां दिखाया जा चुका है।

इस प्रकार से दलसिंगसराय स्टेशन से १५, २० कोस उत्तर, दक्षिण और २०, २२ कोस पूर्व, पश्चिम प्रायः सरैसा परगना और उसके आस पास हजारों मैथिल और पश्चिमा ब्राह्मणों के सम्बन्ध होते चले आये है. कहाँ तक गिनाया जा सकता है। (६०) जिस दुलारपुर का सम्बन्ध पश्चिमा ब्राह्मणों से सिद्ध कर चुके हैं, उसी दुलारपुर का सम्बन्ध भौड़खौवाड़े मूल में उस ग्राम में हुआ है, जिस में महामहोपाध्याय श्रीकृष्णसिंह ठाकुर महाराज दरभंगा के सगोत्र रहते हैं। (६१) वर्त्तमान दरभंगा नरेश महाराजा सर रामेश्वरसिंह जी का विवाह

मंगरौनी पारसमणि झा की पुत्री से हुआ है जो कुटिरबूझा की पितिऔत (चचेरी) बहन है। कंटिरबू झा का विवाह कारज के बुच्ची चौ० की फूआ से है। बुच्ची चौ० की चचेरी बहनों का ब्याह सोनबरसा, भागलपुर, के गोरेलाल कुंवर और गौरी पुर के लालजी ठाकुर (चौ०) से है। कारज ग्राम का सम्बन्ध पूर्वोक्त मुंगेर के मरांची ग्राम में लक्खी बाबू के घर और पनचोम ग्राम का सम्बन्ध मरांची है, और मरांची का तथा पनभोच का भी सम्बन्ध पश्चिमा ब्राह्मणों से प्रथम ही दिखला चुके हैं। (६२) मूल बेलौंचे सुदई, ग्राम समौल के दौहित्र कुल में स्वर्गीय श्रीमान् महाराज बहादुर दरभंगा नरेश श्रोत्रिय लक्ष्मीश्वरसिंह का विवाह था। जो छोटी महारानी साहिबा अभी वर्त्तमान हैं, और समौल का सम्बन्ध दुलारपुर और हाबी भौआड़ में है। जिस दुलार पुर का सम्बन्ध प्रथम ही पश्चिमा ब्राह्मणों से दिखला चुके है और हाबी भौआड़ का भी सम्बन्ध दिखलावेंगे। इस प्रकार जब मैथिल शिरोमणि श्रोत्रिय महाराज दरभंगा भी भूमिहार (पश्चिमा) ब्राह्मणों से विवाह में मिले हुये हैं, और योग्य श्रेणी के भी मैथिलों का सम्बन्ध दिखला चुके हैं, तो अन्य मैथिलों का क्या कहना है?

(६३) जिस कारज ग्राम का सम्बन्ध पश्चिमा ब्राह्मणों से सिद्ध हो चुका है उसी का सम्बन्ध परगना सरैसा, सलेमपुर गाँव में है और सलेमपुर का सम्बन्ध मैथिल राजा बनैली से है। (६४) खिरहर, दरभंगा, के दिघवैत ब्राह्मण श्री राम जुल्म चौधरी, और दुलारपुर के तुरन्त लाल चौधरी दोनो मौसेरे भाई हैं। इनकी मातायें परस्पर वैमात्र बहनें हैं और दोनों का ननिहाल समस्तीपुर के निकट झहुरी ग्राम में हैं। (६५) नेहरा के श्री गोपी चौधरी का सम्बन्ध पूर्वोक्त बरारी (भागलपुर) के मैथिल बाबू के यहाँ है और श्री गोपी चौधरी का सम्बन्ध पूर्वोक्त मरांची (मुंगेर) में नन्हा ईश्वर और नूनू ईश्वर मैथिल के घर भी है। जिस मरांची का सम्बन्ध प्रथम ही पश्चिमा ब्राह्मणों से दिखला दिया गया है। इस प्रकार से बनैली के मैथिल महाराज श्रीकीर्त्यानन्द सिंह और बरारी के मैथिल बाबुआन और उन के सम्बन्ध में जितने बाबुआन हैं सभी पश्चिमा ब्राह्मणों से मिले हुये हैं और राजा बनैली का सम्बन्ध महामहोपध्याय श्रीकृष्ण ठाकुर से है, इसलिये उनका भी सम्बन्ध सिद्ध हो गया। इस प्रकार से यदि परम्परा सम्बन्ध का मिलान किया जावे तो मिथिला के किसी मैथिल ब्राह्मण का सम्बन्ध इन अयाचक (पश्चिमा) ब्राह्मणों से बच नहीं सकता। इसीलिये परमहंसजी ने लिखा है कि "धखजरी, कुरसों, बल्लीपुर, दसौत, दुलारपुर, नेवादा और नेहरा प्रभृति के कुटुम्ब (सम्बन्धी), कुटुम्ब के कुटुम्ब और उनके कुटुम्ब में सभी सोति (श्रोत्रिय), योग्य और पञ्जीबद्ध (मैथिल) हैं।" क्योंकि मिथिला में विख्यात ये सभी हैं। अब नाम बनाम सम्बन्ध न दिखला कर केवल उन ग्रामों के कुछ नाम ही लिखते हैं, जिनमें प्रायः पश्चिमा ब्राह्मण दोगमियां मैथिल और अन्य मैथिल रहा करते हैं, और जिनका परस्पर विवाह सम्बन्ध है।

(१) नीचे लिखे हुये नाम प्रायः उन ग्रामों के हैं, जिनमें पश्चिमा ब्राह्मण रहते हैं और उनका सम्बन्ध दोगमियां मैथिलों अथवा अन्य मैथिलों से है। वे ये हैं– जिला मुंगेर, परगना नईपुर में दहिया, रसलपुर, दामोदरपुर, औगान, आलापुर, चिल्हाई, पाली, बनहरा, अम्बा, रामपुर, संजात, नरहरपुर, ताजपुर, घड़िया, हरपुर, नयाटोला, फतहा, रसीदपुर, आगापुर, नारपुर, बछवारा, तेमुहा, सूर्यपुरा प्रभृति। एवं परगना भुसाड़ी में मेघौल, हरखपुरा आदि ग्रामों में सुरगणै मूल पराशर गोत्र वाले ब्राह्मण रहते हैं। दरभंगा जिले के सरैसा परगने के भथाही, सुस्ता, चाँदीचौर प्रभृति १२ ग्रामों में कोदरिये मूल के ब्राह्मण रहते हैं। जलालपुर, रामपुर, सुरौली, मऊ, शेरपुर प्रभृति ग्रामों में जलैवार मूल वाले रहते हैं। देवधा, पटसा,

नयानगर, रामपुर, दुधौना, कचहरी रामपुर, सकरपुर, खड़हैया, मधेपुर, सिंहमा आदि ग्राम सरैसा परगने में सनैवार ब्राह्मणों के हैं। मुंगेर में बदलपुरा, मालती, बहादुर नगर प्रभृति ग्राम मर्रै मगरौनी मूल के ब्राह्मणों के हैं। इनके अतिरिक्त विभूतपुर, महथी आदि ग्रामों को भी जानना चाहिये। इन पूर्वोक्त ग्रामों में या तो पश्चिमा ब्राह्मण रहते हैं, अथवा वे मैथिल भी रहते हैं जिनके बहुत दिनों से पश्चिमा ब्राह्मणों से अधिक सम्बन्ध होते-होते वे भी पश्चिमा ब्राह्मण हो गये हैं।

(२) अब नीचे उन ग्रामों के नाम है जिनमें प्रायः दोगमियां मैथिल रहा करते हैं :- भिरहा, बन्दा, जगन्नाथपुर, दसौत, जोढ़पुरा, बमैया, बेलसंडी, सिहमा, पतैली, ढरहा, रुपौली प्रभृति ग्रामों में जिला दरभंगा, सरैसा परगने में अनरिये मूल के शांडिल्य गोत्री मैथिल रहते हैं। लछिमिनियां, पवरा और कांकड़ आदि ग्रामों में टकवारे मूल वाले वत्स गोत्री मैथिल रहते हैं। अख्तियारपुर, मथुरापुर, ऐस, झखड़ा, गुर्महा, तिसवारा, महेशपुर, बाजीतपुर, खजुटिया, बस्ती, बढौना, तोयपुर, ब्यामपुर, सूर्यपुर, गाऊपुर, कुम्हिरा मोरवा, नौवाचक, भोजपुर प्रभृति ग्रामों में जलैवार मूल के वत्स गोत्री मैथिल सरैया परगने में रहते हैं। उदयपुर आदि ग्रामों में परिसरै मूलवाले शाण्डिल्य गोत्री रहते हैं। पोखराम और मोतीपुर प्रभृति ग्रामों में गर्ग गोत्री बस है। मूलवाले बसते हैं। केवट और असिनचक प्रभृति ग्रामों में ब्रह्मपुरिये ब्रह्मपुर मूल के गौतम गोत्री रहते हैं। नारी ग्राम में करमहेउड़रा मूल वाले रहते हैं।

(३) इन दोगमियों और पूर्वोक्त पश्चिमा ब्राह्मणों का भी सम्बन्ध जिन-जिन ग्रामों में होता है उन मैथिल ग्रामों को अब दिखलाते हैं। जैसे, गरोल, दसौत, कुरसों, शेरपुर, कथवार विष्णुपुर और मकरम पुर आदि में जलैवार गरौल मूल के मैथिल रहते हैं। हाबी भौआड़, वाथो, घड़ोड़ा, बिठौली, मोहली, सिमरामा, उफरदहां, पौड़ी, बेहड़ा आदि ग्रामों में बेलौचे बेहड़ा मूल वाले रहते हैं। बल्लीपुर, गाहड़, बनहार, बडगामा, ठाहर, हसनपुर, बैजनाथपुर, गैघट्टा, टेंगरहा, गूदरघाट और प्रमाना प्रभृति ग्रामों में पनचोभे भानपुर मूल वाले रहते हैं। सहस्राम, पटनियां, डुमरी, जमुवां, मोहद्दीपुर आदि गांवों में टकवारै नीमा मूल के रहते हैं। पड़री, बोरंज, दहियार, बलिगामै, डरहार और गोविन्दपुर प्रभृति ग्रामवासी मैथिल खौवाड़ सिमड़वार मूल के हैं। गंगा पट्टी, सेनुवार आदि ग्रामों में ऊनैवार मूल के हैं। कुशोथर आदि में भुसवड़ै मूल वाले तथा लवानी आदि ग्रामों में कोइयारै जड़ैल मूल वाले रहते हैं। इसी प्रकार थलवार, मंझौलिया कारज, मिश्रौलिया, पीड़ारुच, पनभोच और देवराम प्रभृति भी उन्हीं मैथिलों के ग्राम हैं जिनका साक्षात् अथवा परम्परया अयाचक दल ब्राह्मणों से सम्बन्ध है।

मैथिल ब्राह्मणों के प्रसिद्ध चार विभाग हैं, जिनमें सबसे श्रेष्ठ श्रोत्रिय, उनके बाद योग्य, पञ्जीबद्ध और चौथे जैवार हैं। इन चारों का सम्बन्ध पश्चिमा ब्राह्मणों से दिखलाया जा चुका है। सम्भव है कि कहीं-कहीं मूल, गोत्र या ग्राम दिखलाने में अन्तर पड़ गया हो, परन्तु बात तो ठीक ही निकलेगी। जैसे काशी के प्रान्त में स्थान या डीह कहलाता है, यथा, पिंडी के तिवारियों का पिंडी स्थान है। वैसे ही उसी स्थान को पश्चिम में निकास और मिथिला में मूल कहते हैं और जिन ग्रामों में उनके पूर्व पुरुष रहते थे तथा जिनको किसी प्रकार से उपार्जन किया था, उन दोनों को मिलाकर प्रायः मूल की जगह वहां व्यवहार होता हैं। जैसे पनभोचे भानपुर इत्यादि। एक बात और भी मैथिलों के सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य यह है कि उनके बहुत से मूल और गोत्र वे ही हैं, जो पश्चिमा ब्राह्मणों के; जैसे दिघवै या

दिघवैत मूल, गोत्र शांडिल्य दोनों का एक ही है। इसी प्रकार, कोथवे या कोथवैत मूल, गोत्र विष्णुवृद्ध। सुरगणै मूल, गोत्र पराशर, कोदरिये मूल, शांडिल्य गोत्र, वसहै या वसमैत मूल, गोत्र गर्ग। जनकपुर पिपरा के सुबा गोपालमिश्र बसमैत ही ब्राह्मण थे। जलैवार मूल, गोत्र वत्स या काश्यप। पनचोभे मूल, गोत्र सावर्ण्य। एवं दधिअरै, चकवार और सनेवार प्रभृति को भी जानना चाहिए। यह भी इस बात में दृढ़ प्रमाण है कि मैथिलों और पश्चिमा ब्राह्मणों का सम्बन्ध घनिष्ठ था और है।

सनेवार ब्राह्मणों के पूर्व पुरुष दो भाई थे, गोपालराय और केसरीराय। जिसमें से केसरीराय की सन्तान पटसा प्रभृति ग्रामों में है और गोपालराय की नयानगर प्रभृति में। दो तीन वर्षों से ही पटसा वाले राघवराय और पश्चिमा ब्राह्मणों से पृथक हो मैथिलों में मिले हैं। यद्यपि अभी तक नया नगर वालों से उनका खान पान पूर्ववत् है। सरैसा परगने के लोमा ग्राम में प्रथम कोदरिये ब्राह्मणों के आदि पुरुष रहते थे। वहीं से कुछ लोग भथाही और सुस्ता प्रभृति ग्रामों में जा बसे, जो भूमिहार ब्राह्मण या पश्चिमा ब्राह्मण कहलाते हैं। क्योंकि भूमिहार ब्राह्मण महासभा के सेक्रेटरी श्री रघुनन्दन सिंह जी सुस्ता ग्राम के ही कोदरिया ब्राह्मण हैं। उसी लोमा ग्राम से कुछ लोग धखजरी ग्राम में जा बसे और पंजीबद्ध होकर मैथिलों में मिल गये। जो मुकुन्द मिश्र प्रभृति अब अपने को कोदरिये लोआम अथवा धखजरी लोआम कहते हैं। ये सब बातें क्या दोनो दल की एकता को सिद्ध नहीं करती हैं?

परमहंसजी की पुस्तक 'ब्राह्मण सम्बन्ध' देखने से विदित होता है कि बहुत से मैथिल पश्चिमा (भूमिहार) ब्राह्मणों से ही हुये हैं। दृष्टांत के लिये पूर्वोक्त भारद्वाज गोत्री दुमटिकारों को लीजिये। आगे चलकर कान्यकुब्ज और सर्यूपारियों के सम्बन्ध दिखलाने के समय दिखलावेंगे कि वास्तव में सर्यूपारी ब्राह्मण ही दुमटिकार के तिवारी या पांडे आदि कहलाते हैं। इसलिये ठीक नाम दुमटिकार या दुमटिकरिये होना चाहिये परन्तु भूल से लोग डोमकटार, डम्म या दम्मकटरिये इत्यादि कहने लग गये हैं। पिलखवाड़ ग्राम वासी पंजीकार जयनाथ शर्मा मैथिल ने जो मैथिल ब्राह्मण वंशावली बनाई और सुगौना के बालकृष्ण शर्मा ने छपाई है, उसमें भी भरद्वाज गोत्र के वर्णन में दम्मटरिये मूल आया है। चाहे इस समय मैथिलों ने उनका नाम बदल डाला हो, या वे लोग फिर पश्चिमा ब्राह्मणो में ही मिल गये हों, परन्तु एक समय पश्चिमा से ही मैथिल हुये थे। अब भी दरभंगा स्टेशन के पास मिर्जापुर में डोमकटरिये मैथिल रहते हैं। इस बात को भी परमहंस जी ने सिद्ध किया है कि पश्चिमा से मैथिल, फिर मैथिल से पश्चिमा और पुनः मैथिल हो जाने वाले भी ब्राह्मण बहुत से हैं। दृष्टांत के लिये, सुरौरे मूल वाले पश्चिमा से मैथिल बने और फिर पश्चिमा बने। जैसे सबौड़ा से एघु, एघु से नावकोठी, मोहनपुर, चांदपुर, बन्दोवार और खम्हार। सबौड़ा से ही रामदीरी, गौड़ा, बिजलपुरा, सोंगडाहा और अम्बा आदि हैं। गौड़ा से नौला, और नौला से पुनः मैथिल हुये, जैसे उजियारपुर।

परमहंस जी ने भूमिहार (पश्चिमा) ब्राह्मणों के इस कथन के खंडन में, कि मैथिलों से विवाह नहीं होना चाहिये, यह दिखलाया है कि द्रोणवार ब्राह्मणों के वंश की जड़ तो मैथिलों से ही है। फिर निषेध किसका होना चाहिये? क्योंकि कान्यकुब्ज, देवकली के पांडे साधोराम के पुत्र राजा अभिमान के पुत्र राय गंगाराम ही द्रोणवार ब्राह्मणो के आदि पुरुष हैं। जिनसे गंगापुर और नरहन आदि सभी हुये हैं। उन राय गंगाराम का एक विवाह चकवारों के मूल ग्राम चाक के निवासी राजा सिंह चकवार मैथिल की पुत्री भाग रानी से और दूसरा

तिसवारा ग्राम वासी पंडित गोपी ठाकुर मैथिल ब्राह्मण ही की पुत्री मुक्ता रानी से हुआ था। जिनमें से एक के छह और दूसरी के तीन पुत्र हुए। इन्हीं नौवों से सम्पूर्ण द्रोणवार वंश है। इसलिये सच पूछा जावे तो मैथिल और भूमिहार ब्राह्मणों में बिल्कुल ही भेद नहीं है। इसलिये पूर्वोक्त डाक्टर विलसन और बंगदेशी ब्राह्मण लाहिरी महाशय ने अपने वंगभाषा के 'पृथिवीर इतिहास' में भूमिहार ब्राह्मणों को मैथिल ब्राह्मण लिखा है और इसीलिये मैथिल भाषा के बाभन शब्द का व्यवहार भूमिहार ब्राह्मणों में होता है, जिसका नाम लाहिरी महाशय ने भी लिखा है। जैसा आगे स्फुट होगा।

अब सर्यूपारियों और कान्यकुब्जों के साथ भी जमींदार या भूमिहार ब्राह्मणों का विवाह सम्बन्ध दिखलाते हुये प्रथम सर्यूपारियों के साथ ही दिखलावेंगे। क्योंकि सर्यूपारी कहलाने वालों की ही संख्या काशी के आस पास बहुत है। इतना ही समझ लेना और उसी से अन्दाज कर लेना चाहिये कि जैसे मैथिलों के शिरोमणि महाराजा दरभंगा और महामहोपाध्याय श्रीकृष्ण सिंह ठाकुर का सम्बन्ध स्पष्ट दिखलाया गया है, यों तो मिलाने से सभी के साथ पहुंच सकता है। उसी प्रकार इस तरफ मिलान करने से इधर भी कोई नहीं बच सकते।

जिला प्रयाग, परगना अरैल, गांव पनासा आदि के भारद्वाज गोत्री भूमिहार ब्राह्मणों का उसी जिले में सम्बन्ध नीचे लिखा है। भूमिहार ब्राह्मण हीरा पुरी पांडे कहलाते हैं, जिनका सम्बन्ध काशी के गौतम आदि भूमिहार ब्राह्मणों से है। वे लड़के वाले और सर्यूपारी ब्राह्मण प्रायः लड़कियों वाले हैं। परन्तु कहीं-कहीं विपरीत भी है, जो कह देंगे।

लड़केवाले भू०ब्रा०के नाम	लड़की वाले सर्यूपारी पते सहित
(१) रामकुमार सिंह	पं०महावीर पांडे, ग्राम, पंवर, गौतम गोत्र परगना अरैल
(२) माताबदल सिंह	पं० शीतलाबख्श पांडे, " "
(३) ठाकुर प्रसाद सिंह	पं० बवोलराम पांडे, ग्राम पंवर, गोत्र गौतम. परगना अरैल।
(४) राम किशोर सिंह	पं० सूर्यदीन " " "
(५) शिव बालक सिंह	पं० रामप्रसन्न तिवारी, ग्राम विरौल, गौत्र वसिष्ठ, परगना अरैल
(६) अलोपी सिंह	पं० दुर्गाप्रसाद तिवारी, ग्राम चाका " "
(७) शीतल सिंह	पं० " " " " "
(८) जगन्नाथ सिंह	पं० विन्दा प्रसाद तिवारी, चाका, अरैल।
(९) ठाकुर प्रसाद सिंह	" " " " " "
(१०) बाबूसिंह, मेधई	पं० मदन मोहन " " "
(११) माताबदल सिंह	पं० रामरतन " " " "
(१२) माताबदल सिंह	पं० शिवनन्दन राम " सिंधुवार "
(१३) राधामोहन सिंह	" " " " " "
(१४) रामकृपाल सिंह	पं० दातादीन पांडे ग्राम पँधर, गौतम "
(१५) रामकृपाल सिंह	पं० संपतराम तिवारी, सिन्धुवार, वसिष्ठ

लड़के वाले भू०ब्रा०के नाम	लड़की वाले सर्यूपारी पते सहित
(१६) काशी प्र० सिंह	पं० महावीर प्रसाद " "
(१७) विन्ध्येश्वरीप्र० सिंह	पं० " " " "
(१८) वैरीसाल सिंह	पं० माताप्रसन्न पांडे वामपुरी,चौकी, पराशर, खैरागढ़।
(१९) भोदू सिंह	पं० " " " " "
(२०) दानसिंह, मचैयां पांडे, भारद्वाज गोत्री।	" " " " " "

अब रामगढ़ देवरी, बसही, लकटहा खाईं के भारद्वाज गोत्री, भूमिहार ब्राह्मणों के नाम हैं।

(२१) शिवजगत सिंह रामगढ़	पं० दातादीन पांडे, ग्राम पंवर गौतम गोत्र, परगना अरैल।
(२२) शत्रुहन सिंह "	पं० विन्दाप्रसाद तिवारी, चाका, वसिष्ठ,
(२३) इन्द्रजीत सिंह	पं० मदन मोहन तिवारी " "
(२४) गयाप्रसाद सिंह, देवरी	पं० बोधीराम पांडे, पँवर, गौतम, अरैल
(२५) भरत सिंह	पं० शिवनन्दनराम तिवारी, सिंधुवार, वसिष्ठ
(२६) चन्द्रभान सिंह. वसही	पं० बोधीराम पांडे, पँवर, विरौल, अरैल
(२७) गयाप्रसादसिंह, देवरी	पं० रामनारायण तिवारी, विरौल, वसिष्ठ
(२८) गंगोत्री सिंह, लकठहा	पं० मदन मोहन तिवारी, चाका, अरैल
(२९) रामकृपाल सिंह	पं० संपतराम " " "
(३०) छत्रधारी, खाईं	पं० हरिचंद,पांडे पँवर, गौतम "
(३१) ब्रजमंगल "	पं० शिवनन्दनराम तिवारी, सिंधुवार, वसिष्ठ,

अब खैरागढ़ परगना के वसिष्ठ गोत्री भूमिहार ब्राह्मणों के नाम देते हैं, उनकी उपाधि मिश्र है।

(३२) महावीर सिंह बिगहना,	पं० शीतलबख्श पांडे, पँवर, गौतम, अरैल
(३३) चौ० ठाकुर प्रसाद प्रसाद सिंह	पं० बिन्दुराम तिवारी, सिंधुवार, वसिष्ठ,

लड़के वाले भू०ब्रा०के नाम	लड़की वाले सर्यूपारी पते सहित
(३४) रघुनाथ सिंह, रामनगर	पं० दुर्गा प्रसाद " चाका "
(३५) पं० गंगाराम तिवारी उनवलिया के, ग्राम बसही कोटहा, परगना अरैल, गोत्रवसिष्ठ	श्री पितापालसिंह, ग्राम पुरैती, परगना अरैल, भारद्वाज गोत्री पांडे।
(३६) रामसुन्दर ति०	पं० शिवपरसन सिंह " " "
(३७) समयलाल ति०	पं० जयगोपाल सिंह " " "
(३८) रामफलपांडे, मलैयां गाँव मलाका तहसील सुराम, इलाहाबाद, गोत्र सांकृत,अब महरू डीह में रहते हैं।	जसवंत सिंह गौतम, गंजारी, गंगापुर, कुसवार परगना, बनारस।

श्री जसवन्त सिंह की लड़की का विवाह रामफल मलैयां पांडे से हुआ था। वह अभी तक जीती है। यद्यपि जसवन्त नावल्द हो गये और उनके दायाद गंगापुर में हैं।

(३९) शिष्ट नारायण सिंह, ग्राम गठौली, परगना, अरैल, गोत्र गौतम, मिश्र	रामसेवक तिवारी उनवलिया के ग्राम वसही कोटहा, पर० अरैल, गोत्र वसिष्ठ
(४०) शिव प्रसाद सिंह कटौली, परगना खैरागढ़, इलाहाबाद, गोत्र भारद्वाज, पांडे।	पं० माताभीख तिवारी, मरौ, पर० केवाईं, इलाहाबाद।
(४१) ननकूसिंह, कठौली	पं० शिवलाल तिवारी, हरिपुर " " "
(४२) लौलीन सिंह, "	पं० अयोध्या दूबे, खेमापट्टी, परगना मही, इलाहाबाद।
(४३) शिव संपत सिंह, "	पं० रामावतार दूबे, " " "
(४४) शिव रतन सिंह "	पं० शिवदीन पांडे, मिसिरी गड़ौरा, परगना केवई, प्रयाग।
(४५) शिव दर्शन सिंह, "	पं० रामदीन पांडे " " " "

(४६) हनूमान सिंह	पं० गंगाराम दूबे, कोट " "
(४७) शिवटहल सिंह	पं० यदुनन्दन शुक्ल, कृपालपुर " "
(४८) झग्गा सिंह " "	पं० स्वयंबर मिश्र धर्म पुराके, गूदनपुरा, खैरागढ़।
(४९) राजनारायणसिंह	पं० रामभरोस उपाध्याय, सुरियांवां, भदोही, मिर्जापुर।
(५०) भोलीसिंह "	पं० कोलाहल उपाध्याय, कोड़र, भदोही मिर्जा०
(५१) कोलई सिंह "	पं० कालिका, रामदीन उपा० " अवरना "
(५२) हनूमान सिंह "	पं० परसन उपा० " बरमोहनी " " "
(५३) कालिका सिंह, "	पं० रघू " दोहिया " " "
(५४) गणेश सिंह "	पं० नागेश्वर दूबे " वरमोहनी " " "
(५५) आत्मनारायणसिंह "	पं० झीगुर दूबे, कवल " " "
(५६) शिवशंकर सिंह, कटौली, खरागढ़, प्रयाग।	पं० रामदास दूबे, वरमोहनी, भदोही, मिर्जापुर।
(५७) सूर्यनारायण सिंह "	ईश्वरीराम उपाध्याय, सुरियाँवाँ, " "
(५८) कामता सिंह "	पं० सम्पतिराम " पतूलकी, " "
(५९) भवानीचरणसिंह "	पं० रामकुमार " वसवरा, " "
(६०) रामकृपाल सिंह "	बोधाराम उपाध्याय, अवरना, " "

पूर्वोक्त ब्राह्मणों मे से जिनके गोत्र में सन्देह था उनका गोत्र निश्चित रूप से नहीं लिखा गया है, परन्तु इसी पूर्वोक्त पते से मालूम किया जा सकता है।

अब दो चार प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के साथ भी सम्बन्ध दिखला कर फिर कान्यकुब्ज और सर्यूपारी दोनों के साथ मिले हुये सम्बन्ध एक साथ दिखलावेंगे :–

(६१) परगना सुराम, जिला प्रयाग, आनापुर के श्री देवकीनन्दन सिंह तथा आस पास वाले बहुत से ग्रामों में जो अयाचक (भूमिहार) ब्राह्मण रहते है वे सर्यूपारी ब्राह्मण, शाण्डिल्यगोत्री, पहिती पुर के पांडे, सूक्ष्ममति पांडे के वंशज हैं। यह बात उन लोगों की छपी हुई वंशावली से विदित है परन्तु बहुत दिनों से भूमिहार ब्राह्मणों के साथ विवाह सम्बन्ध करते-करते वे लोग इन्हीं में मिल गये। दृष्टान्त के लिये श्री देवकी नन्दन सिंह की बहन का विवाह काशी के श्री अलरख सिंह से था, जिनके पुत्र कृष्णप्रसाद सिंह हुये। और स्वयं श्री देवकी नन्दन का विवाह जिला आजमगढ़ के सूर्यपुर में कुढ़नियां भूमिहार ब्राह्मण श्री राम गोविन्द सिंह की फूआ से था। (६२) उसी विवाह से जो लड़कियां श्री देवकी नन्दन की हुईं, उनमें एक का विवाह जिला फतेहपुर, गाँव वीरसिंह पुर, परगना कोड़ा जहानाबाद के कान्यकुब्ज ब्राह्मण काश्यप गोत्री सीरू के घर हुआ था, जिनके साथ अभी तक आना जाना बना है। (६३) उनकी दूसरी लड़की का विवाह जिला फतेहपुर, स्टेशन बिंदकी रोड, गाँव सुलतानगंज में कान्यकुब्ज ब्राह्मण हरनारायण सिंह और सुदर्शन सिंह सीरू के अवस्थी काश्यप गोत्री के घर हुआ था, जिनके वंश में इस समय शंकर सिंह गन्धर्वसिंह वगैरह मौजूद हैं और आते

जाते भी हैं। (६४) जिला कानपुर, बिठुर, के चौधरी खुमानसिंह अवस्थी, गोत्र काश्यप के यहां आनापुर श्री सिद्धनारायण सिंह की फूआ का ब्याह है। खुमान सिंह के घर में अब शिव सिंह हैं। (६५) इसी प्रकार श्री प्रद्धिनारायण के पिता की फूआ का ब्याह जिला बस्ती, तहसील हरैया, ग्राम त्रिगनौता, राम नारायण ओझा खैरी के वत्स गोत्री सर्यूपारी के घर था, जिनके पुत्र अवध बिहारी ओझा का आना जाना अब तक पूर्ववत् है। (६६) श्री सिद्धनारायण के पिता की बूआ का सम्बन्ध जिला बस्ती, परगना अमोढ़ा गाँव नाथपुर विसनैयां, कश्यप गोत्री त्रिफला पांडे लक्ष्मीनारायण से था। (६७) जिला गोरखपुर, गाँव महावनखोर में बैसी के दीन मिश्र से उनकी तीसरी फूआ का सम्बन्ध है। ये दोनो सर्यूपारी हैं। (६८) जिला प्रयाग, परगना सुराम, कल्याणपुर के विकमाजीत सिंह आदि भी आनापुर के सगोत्र पहितीपुर के पांडे हैं। परन्तु ये लोग अब जमींदार ब्राह्मण कहलाते हैं। विकमाजीत की लड़की का सम्बन्ध सर्यूपारी से जिला सुलतानपुर गाँव व परगना बेरौंसा में मंगलराम, शिवचरण राम नगवा के शुक्ल गर्ग गोत्री के घर है। (६९) उसी ग्राम के कामताप्रसाद सिंह की लड़की का विवाह बेरौंसा के शीतलराम शुक्ल और बाबू शुक्ल के यहां है। (७०) वहीं के महावीर प्रसाद सिंह की पुत्री बेरौंसा के गोबिन्द राम शुक्ल के घर ब्याही है। (७१) वहां के ही सुखनंदन प्रसाद सिंह की पुत्री का विवाह बेरौंसा में शालग्राम शुक्ल के घर है। इसके अतिरिक्त महरूडीह, सराय गांव, मलाका गांव परेशपुर, चौराहे, आनापुर, इस्माईलपुर, सरायहरीराम, चतुरीपुर, सराय गोपाल और चौरा रोड आदि ग्रामों के जमींदार ब्राह्मणों का संबंध बेरौंसा आदि १० या १२ ग्रामों के नगवा शुक्लों में भरा हुआ है, (७२) जैसे कि बेरौंसा के भगवती शुक्ल महरुडीह वाले बैजनाथ प्रसाद सिंह के चाचा की कन्या के पुत्र हैं इत्यादि। अब कान्यकुब्ज और सर्यूपारियों के साथ मिले हुये सम्बन्ध दिखलाये जाते हैं :–

(७३) जिला मिर्जापुर, कठिनहीं ग्राम के कामता प्रसाद पांडे और दुर्गाप्रसाद पांडे पिण्डी के तिवारी शांडिल्य गोत्री सर्यूपारी ब्राह्मण हैं। उनका सम्बन्ध, प्रयाग-झूंसी के पन्नालाल, बेनी प्रसाद तिवारी के घर है, जो खोरिया के तिवारी सर्यूपारी हैं और जिनकी कोठी आगरा–बेलनगंज में है। उन्हीं पन्नालाल बेनी प्रसाद के पुत्र से जिला प्रयाग, परगना, चायल, चरवा के श्री रामशरण सिंह पांडे की लड़की ब्याही है। यह कौशिक गोत्री टेकार के पांडे हैं, परन्तु अब भूमिहार ब्राह्मणों से मिले हुए हैं। क्योंकि उन्हीं रामशरण सिंह की लड़की का विवाह पूर्वोक्त पनासा के श्री ब्रजविहारी सिंह उर्फ मटर सिंह से भी है। और मटर सिंह की फूआ का विवाह जिला बनारस ग्राम खोचवा के श्री महावीर प्रसाद सिंह से है जो गौतम भूमिहार ब्राह्मण पिपरा के मिश्र है। (७४) उसी पूर्वोक्त, कटिनही केपांडे के घर जिला प्रयाग, परगना करारी, बेरौंचा गांव के निवासी कुसुमी के तिवारी शांडिल्य गोत्री, त्रिपाठी बूआ सिंह के दो पुत्रों का विवाह हुये हैं और बूआ सिंह का, या जिला बांदा के ही मडौर आदि २४ ग्रामों में रहने वाले त्रिपाठी नृपतिसिंह, माधवसिंह, रघुवीरसिंह, अवधसिंह, शिवपालसिंह, और रामशरणसिंह, प्रभृति सर्यूपारी कुसुमी तिवारियों के–जो अब जमींदार ब्राह्मणों के सदृश हो रहे हैं–पुत्रों का विवाह सम्बन्ध सावर्ण्य गोत्री टिकरा के पांडे लोगों में होता है, जो छप्पन गांव बोले जाते हैं और जिला प्रयाग, परगना कड़ा में रहते हैं। जैसे परसरा गांव के विश्वनाथ, ठाकुरदीन, चन्द्रदयाल पांडे आदि, बिसरा के सूर्यपाल, बलदेव पांडे प्रभृति। असवा के रामरत्न, भागीरथ पांडे आदि। बालक मऊ के सुखनन्दन राम, जगमोहन राम पांडे प्रभृति। ककोड़ा के शिव सहाय राम, रघुवीर राम पांडे आदि। विदनपुर के रामप्रसन्न राम पांडे

प्रभृति। टिकरा डीह के रामजियावन पांडे, मधुरा प्रसाद पांडे प्रभृति है। और इन छप्पन वाले टिकरा के पांडे लोगों का सम्बन्ध सुराम परगना के पूर्वोक्त आनापुर इत्यादि ग्रामों और पनासा प्रभृति ग्रामों के पूर्वोक्त भूमिहार ब्राह्मणों में खुल्लम खुल्ला होता है और पूर्वोक्त चरवा ग्राम में भी होता है, जिसका सम्बन्ध पनासा आदि में दिखला चुके हैं। चरवा ग्राम में रामशरण सिंह, रामनिधि सिंह और रामप्रताप सिंह इत्यादि १५० घर सर्यूपारी या जमींदार ब्राह्मण रहते है। चरवा के पास टाटा गांव में भी ब्रह्मदत्त सिंह तिवारी इत्यादि के घर भी छप्पन वालो का विवाह सम्बन्ध होता है। टाटा गांव के पास चौराडीह में मथुरा प्रसाद सिंह तिवारी, साना जलालपुर में श्री कल्लू सिंह तिवारी, सिंहपुर में भग्गूसिंह, फरीदपुर में छेदी सिंह, एव कमालपुर, सुधवल, नीमी और साना प्रभृति १२ गांवों में सर्यूपारी रहते हैं, जो अब प्रायः जमींदार ब्राह्मण हो रहे है और भारद्वाज गोत्री दुमटिकार के तिवारी कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त चरवा में टेकार के कौशिक गोत्री पांडे और परसरा इत्यादि गांवों में सावर्ण्य गोत्री टिकरा के पांडे लोगों को कह चुके हैं और टिकरा डीह भी बतला चुके हैं।

बस, इन्हीं टिकरा, और दुमटिकार के पांडे और तिवारियों में से मगध में टिकारी के महाराज तथा अन्य भूमिहार भारद्वाज गोत्र या अन्य गोत्रों के हैं, जो अब तक बहुत जगह पांडे, तिवारी और दूबे इत्यादि उपाधियों से मगध और तिर्हुत प्रभृति प्रान्तों में प्रसिद्ध हैं और कहीं-कहीं राय, सिंह और चौधरी भी बोले जाते हैं। दुमटिकार के तिवारी और पांडे प्रभृति ये छप्पन वाले ब्राह्मण अपने पूर्वजों का मगध के टिकारी स्थान से आना बतलाते हैं। सम्भव है कि उन लोगों ने वहाँ से आने से ही उसी टिकारी के स्मरणार्थ टिकरा नामक ग्राम बसाया हो।

इसी नाम को लोग भूल से दुमकटार, डोमटेकार, डोमकटार इत्यादि भिन्न-भिन्न रूपों में भिन्न-भिन्न स्थानों में व्यवहार करते और तदनुसार ही बहुत सी मिथ्या कल्पनायें भी किया करते हैं। परन्तु शुद्ध नाम दुमटिकार या दुमटेकार है। इसीलिये सर्वत्र इस का व्यवहार होना चाहिये। ये लोग वास्तव में सर्यूपारी ब्राह्मण हैं।

(७५) पूर्वोक्त छप्पन वालों के लड़कों का विवाह सम्बन्ध फतहपुर जिले में सिराथू स्टेशन के पास सोनही के तिवारियों में होता है। जो भदवा, बह्मनौली और इचौली आदि १२ गावों में रहते हैं और कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं।

(७६) चरवां गांव के ब्राह्मण रामशरणसिंह-जिनका सम्बन्ध पनासा आदि में दिखला चुके हैं–के दायाद मातादयाल सिंह की लड़की का विवाह जिला प्रतापगढ़, परगना नब्राबगंज, ग्राम बम्हनपुरा के लक्ष्मीनारायण मिश्र, मैनच के वत्स अथवा कात्यायन गोत्री से हुआ है, जिनका पुत्र नारायणदास मिश्र है। (७७) माता दयाल सिंह की पुत्री, प्रयाग–कटरा सवाई जयसिंह में जय (ज्वाला) शंकर दूबे, कमलाकान्त दूबे, बेलवा सौरी के गोत्र वत्स के घर भी ब्याही गई है।

जिस कुसुमी के तिवारी बुआसिंह प्रभृति का सम्बन्ध भूमिहार ब्राह्मणों में दिखला चुके हैं उन्हीं की लड़कियों के विवाह रीवां और प्रयाग में सर्यूपारियों के यहां नीचे लिखे जाते हैं। (७८) जि० रीवां, ग्राम रंग पतेरी, बलदेवप्रसाद तिवारी के घर मंडौर के नृपतिसिंह की, (७९) जिला रीवां, ग्राम मटियारी पं० अयोध्याप्रसादमिश्र, पड़रहा के वसिष्ठ गोत्री के घर माधवसिंह की, (८०) जिला प्रयाग-गांव बादशाही मंडई, बैजनाथ मिश्र पिपराके, गौतम गोत्री के यहाँ रघुवीर सिंह की, (८१) जिला प्रयाग, गांव बहादुर गंज महादेव शुक्ल, मामखोर के गर्गगोत्री के घर अवध सिंह की, (८२) प्रयाग, परगना सुराम, किलहनापुर, रुद्रप्रसाद

मिश्र, धर्मपुर लगुनी वाले के यहां शिवपालसिंह की, और (८३) प्रयाग--परगना सुराम, गांव बांधपुर, सुखनंदन राम पण्डित के घर रामशरण सिंह तिवारी की लड़कियों के विवाह हैं। कुसुमी तिवारी लोग बेरौंचा और मंडौर के अतिरिक्त तारी, मऊ, अहिरी, सुरोधा और अखौड़ा आदि गांवों में रहते हैं। (८४) प्रयाग में २ या ३ कोस पर जसड़ा स्टेशन के पास यमुना तट में बेरौल ग्राम के सर्यूपारी रामनारायण तिवारी आदि तिवारियों में पनासा और सुराम परगना के भूमिहार ब्राह्मणों के सम्बन्ध हैं।

पूर्वोक्त अरैल परगना के पनासा आदि और सुराम परगना के कल्याणपुर आदि ग्रामों के भूमिहार ब्राह्मणों से बदर्का के मिश्र, काल्यायन गोत्र के कान्यकुब्ज ब्राह्मणों का सम्बन्ध है, जो जिला इलाहाबाद, परगना मिर्जापुर चौहारी के भागीपुर आदि ग्रामों में रहते हैं। जैसे :–

(८५) भागीपुर के पंडित विन्ध्येश्वरी वख्शसिंह मिश्र का सम्बन्ध अरैल के वरांव गांव वाले राजासाहब श्री राघवेन्द्रनारायण सिंह के घर ही है। (८६) और विन्ध्येश्वरी बख्श के भतीजे रामानन्दसिंह मिश्र की भतीजी का विवाह प्रयाग के सिरसा रामनगर में भूमिहार ब्राह्मण श्री आदित्यनारायण सिंह के घर है, जो गाना के मिश्र, वत्स गोत्री हैं। (८७) इसी प्रकार से जिस चरवा आदि के रामशरण सिंह वगैरह का सम्बन्ध भूमिहार ब्राह्मणों से दिखला चुके हैं उसी चरवा के रामनाथ सिंह और काशी प्रसन्न सिंह के घर में भी पूर्वोक्त विन्ध्येश्वरी बख्श के लड़के का विवाह है। (८८) विन्ध्येश्वरी बख्श के छोटे भाई का विवाह चौरा के अम्बिका प्रसाद सिंह तिवारी, दुमटिकार के, भारद्वाज गोत्री, के घर है। जिन चौरा वालों का भूमिहार ब्राह्मणों से सम्बन्ध सिद्ध हो चुका है अब उसी विन्ध्येश्वरी बख्श का सम्बन्ध अन्य कान्यकुब्जों और सर्यूपारियों से दिखलाते हैं :–

(८९) विन्ध्येश्वरी बख्श की लड़की का विवाह जिला फैजाबाद, गांव अंजना, रामलाल मिश्र, मार्जनी के वसिष्ठ गोत्री, सर्यूपारी के घर है। (९०) विन्ध्येश्वरी बख्श की बहन का विवाह जिला प्रतापगढ़, गांव भकड़ा, काशी नाथ मिश्र, सुगौती के गौतम गोत्री, सर्यूपारी के यहां है। (९१) उनकी ही दूसरी बहन का विवाह जिला जौनपुर, गाँव पहितियापुर, हूबेराज दूबे, राज किशोर दूबे, सरार के, भारद्वाज गोत्री, सर्यूपारी के घर है। (९२) उनकी तीसरी बहन का विवाह जिला प्रतापगढ़, गांव छेमर सरैया, प्रयाग मिश्र, मऊ के, कश्यप गोत्री, सर्यूपारी के यहाँ है।

भागीपुर के अतिरिक्त बदर्का के मिश्र नीचे लिखे गाँवों में रहते हैं। गाँव हुसेनपुर-जिला प्रतापगढ़ (१) दुर्गा प्रसाद सिंह। धीनापुर जिला प्रयाग, (२) मातादयालसिंह। जिला प्रतापगढ़, गाँव वरदहा (३) शीतलदीनसिंह। गाँव केसरुवा (४) सूर्यसिंह। गढ़चम्पा, मानपुर, सिंगही और मुहम्मदपुर में भी बदर्का के मिश्र रहा करते हैं। केसरुवा गाँव में (५) राम सुखसिंह, बरदहा में, (६) जानकी सिंह और ईस्माईलपुर में, (७) शिव शंकर सिंह रहते हैं। इन लोगों के सम्बन्ध इस प्रकार हैं :–

(९३) जिला प्रतापगढ़ गांव छेमर सरैया, शीतलदीनमिश्र, मऊ के कश्यप गोत्री के घर में श्रीयुत् राम सुख सिंह की लड़की ब्याही है। (९४) जिला प्रतापगढ़, गाँव डोमीपुर, जानकी मिश्र, मऊ के कश्यप गोत्री, के यहां जानकी सिंह की लड़की ब्याही है। (९५) प्रतापगढ़, सरुवा के शिवमंगल मिश्र मऊ वाले के यहाँ शिवशंकर सिंह की पुत्री ब्याही है। (९६) प्रतापगढ़, शेखपुर, देवकीनंदन उपाध्याय, खोरिया के भारद्वाज गोत्री सर्यूपारी के यहां

भागीपुर के विन्ध्येश्वरी बख्श सिंह मिश्र की पुत्री का विवाह है। (९७) मिर्जापुर के ओधी आदि गाँव के गौतम गुरईसिंह, राम मनोरथ सिंह वगैरह की पुत्रियों के विवाह रीवां के तिलिया पांती गांव के पाठकों के घर हैं और वहां के एक पाठक ओधी में गोद लिये गये हैं। (९८) जिला प्रयाग, परगना चायल, गांव मर्दापुर के वृजलाल पांडे, नागचौरी के, की बहन मातादयाल सिंह, सराय राघो, परगना नबाबगंज, प्रयाग वाले से ब्याही है। वृजलाल पंडित अभी तक आठ दस गांव के पुरोहित हैं। (९९) पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी, मंत्री किसान सभा का भतीजा विरौंचा के कुसुमी तिवारियों के यहां ब्याहा है। उस लड़की की ननिहाल ककोड़ा है। (१००) पण्डित बलराज सहाय उपाध्याय, वकील प्रतापगढ़ के भतीजे का विवाह भैरो प्रसाद सिंह कल्याणपुर, सुराम, प्रयाग वाले की पुत्री से है और बलराज सहाय के पुत्र का विवाह गया प्रसाद पांडे, मिर्जापुर, के घर है।

इसके बाद अब त्यागियों (तगा) और गौड़ों के भी कुछ विवाह सम्बन्ध दिखलाते हैं। इसमें हरएक नाम के आगे विवाहित का निर्देश है और इसके आगे गांव और ज़िले लिखे हैं। विवाह इस प्रकार हैं—–

	वरपक्षीय त्यागी ब्राह्मण	**कन्यापक्षीय गौड़ ब्राह्मण**
(१)	गंगाराम, स्वयं, गोबिन्द पुरी, अंबाल।	तुलसीराम, बहन, मुलाना, अंबाला
(२)	मधुसूदन दास, स्वयं, गोविन्दपुरी, अंबाला,	कालीराम, पुत्री, छजरौली, अंबाला
(३)	आया राम, स्वयं, गोविन्द पुरी, अंबाला	गीताराम, पुत्री, दसानी, अंबाला
(४)	दीननाथ स्वयं, गोबिन्द पुरी, अंबाला	बद्रीदास, पुत्री, अंबाला, अंबाला
(५)	आशाराम, स्वयं, गोवर्धन पुर, सहारनपुर	मोल्हड़मल, पुत्री, छजरौली, अंबाला
(६)	कृष्णदत्त, स्वयं, गोवर्धन पुर, सहारनपुर	कन्हैयालाल, पुत्री, सरमोरनाहन, अंबाला।
(७)	मूलराज, स्वयं, गोवर्धन पुर, सहारनपुर	गीताराम, पुत्री, साल्हापुर, अंबाला
(८)	शादीराम, स्वयं, गोवर्धन पुर, सहारनपुर	परशुराम, बहन, मुजाफत, अंबाला
(९)	प्रतापसिंह, स्वयं, गोवर्धन पुर, सहारनपुर	शंकरलाल, बहन, दसानी, अंबाला
(१०)	धर्मसिंह, स्वयं, गोवर्धन पुर, सहारनपुर	तेलूराम, बहन, हरियावास, अंबाला
(११)	नानकचन्द, पुत्र, गोवर्धन पुर, सहारनपुर	बद्रीप्रसाद, बहन, दसानी, अंबाला

(१२)	शंभुदयाल, पुत्र, गोवर्धन पुर, सहारनपुर	माड़ेराम, बहन, दसानी, अंबाला
(१३)	कालीराम, स्वयं, गोवर्धन पुर, सहारनपुर	देवीचन्द, पुत्री, जगाधरी, अंबाला
(१४)	हरजस शर्मा, स्वयं गोवर्धन पुर, सहारनपुर	श्री निवास, पुत्री, गामली, अंबाला
(१५)	जीराजसिंह, स्वयं, गोवर्धन पुर, सहारनपुर	रामजीदास, बहन, खूड़ा, अंबाला
(१६)	अमीचन्द, स्वयं, गोवर्धन पुर, सहारनपुर	अनन्तराम, बहन, ममेदी, अंबाला
(१७)	अमीचन्द, स्वयं, गोवर्धन पुर, सहारनपुर	मनसाराम, बहन, गढ़ीलौकरी, अंबाला
(१८)	बादामसिंह, पुत्र, विजैपुरा, सहारनपुर	दौलतराम बहन, हरियावास, अंबाला
(१९)	सीसराम, पुत्र, विजैपुरा, सहारनपुर	दौलतसिंह, बहन, तेहिमा, अंबाला
(२०)	मुख्तारसिंह, स्वयं, गोवर्धनपुर, सहारनपुर	रामप्रसाद, पुत्री, मांड़खेड़ी, अंबाला
(२१)	गिरधारीलाल, स्वयं, गोवर्धनपुर, सहरानपुर	नत्थूराम, पुत्री, हरियावास, अंबाला
(२२)	पृथ्वीसिंह, स्वयं, बड़ागांव, सहारनपुर	तेलूराम, पुत्री, काटकी, बधावली, अंबाला
(२३)	सीसूसिंह, स्वयं, रुल्हाकी सहारनपुर	नन्दराम, पुत्री, रायपुरडमोली, अंबाला
(२४)	मनसाराम, स्वयं, रुल्हाकी, सहारनपुर	रामजीदास, पुत्री, भूड़, ब्राह्मण, अंबाला
(२५)	गोविन्दराम, पुत्र, मेहरवानी, सहारनपुर,	हरिशंकर, पुत्री, मारवा, अंबाला
(२६)	रामचन्द्र, स्वयं, मेहरवानी, सहारनपुर	रामजीसहाय, पुत्री, विलासपुर, अंबाला
(२७)	आशाराम, स्वयं, सुल्तानपुर, सहारनपुर	हीरालाल, पुत्री, मांड़खेड़ी, अंबाला
(२८)	ईश्वरदत्त, स्वयं, गोविन्दपुरी, अंबाला	प्रभुदयाल, पुत्री, करनाल, करनाल

(२९)	बुधराम, पुत्र, गोबिन्दपुरी, अंबाला	सूर्य्यभान, बहन, यारा, करनाल
(३०)	मोलड़सिंह, स्वयं, नुकड़, सहारनपुर	देवीचन्द, पुत्री, जटलाना, करनाल
(३१)	रिसालसिंह,·····अधियाना, सहारनपुर	रामजीदास, ···· साच करनाल
(३२)	बख्तावरसिंह, ···· अधियाना, सहारनपुर	खुशीराम, ···· कोहंड, करनाल
(३३)	मुखराम ···· अधियाना, सहारनपुर	गोपीनाथ, ···· जालखेड़ी, करनाल
(३४)	गंगासिंह, स्वयं, शिकारपुर, दिल्ली	जसराम, भतीजी, दुजाणा, रोहतक
(३५)	सीसासिंह, स्वयं, शिकारपुर, दिल्ली	सन्तू, बहन, मकसूदपुर, रोहतक
(३६)	रामप्रसाद, स्वयं, झटिकरा, गुरुगांव	गंगाराम, बहन, सागीहेड़ा, रोहतक
(३७)	भनवानसहाय, स्वयं, झटिकरा, गुरुगांव	रामरीख, पुत्री, मकसूदरपुर, रोहतक
(३८)	खुशहाली, स्वयं, झटिकरा, गुरुगांव	पीरुशर्मा, पुत्री, मकसूदपुर, रोहतक
(३९)	बालाराम, स्वयं, झटिकरा, गुरुगांव	हरीराम, पुत्री, मकसूदपुर, रोहतक
(४०)	किसुनराम, स्वयं, झटिकरा, गुरुगांव	शिवकरन, पुत्री, मकसूदपुर, रोहतक
(४१)	उदयराम, स्वयं, शिकारपुर, दिल्ली	बख्शीराम, फूआ, दिवाना, रोहतक
(४२)	कूड़ेसिंह, स्वयं, शिकारपुर, दिल्ली	नानकचन्द, बहन, दिवाना, रोहतक
(४३)	खुशिया, स्वयं, शिकारपुर, दिल्ली	हरदेव, बहन, पेरवल, रोहतक
(४४)	साखीराम, स्वयं, केशव पुर, दिल्ली	बद्रीप्रसाद, पुत्री, नागल, रोहतक
(४५)	तृखाराम, स्वयं, केशवपुर, दिल्ली	कूड़ेसिंह, नम्बरदार, नागल, रोहतक

(४६) मोहरा, स्वयं, धर्मपुर, गुरुगांव	नन्दपण्डित, बहन, मकसूदपुर, रोहतक
(४७) परसा, स्वयं, मोमेढरी, गुरुगांव	शोबला, बहन, कन्नौर, रोहतक
(४८) लक्ष्मण, स्वयं, झटिकरा, गुरुगांव	लेखी, पुत्री, भागई, झींद
(४९) देवीसहाय, स्वयं, झटिकरा, गुरुगांव	सौजीराम, पुत्री, सितोबपुर, झींद
(५०) प्रभु, स्वयं, झटिकरा, गुरुगांव	धर्मा, नम्बरदार, पुत्री, भाबास, झींद
(५१) लच्छू, स्वयं, झटिकरा, गुरुगांव	छबीले, पुत्री, घिराना, झींद
(५२) जीराम, स्वयं, धर्मपुर, गुरुगांव	शादीराम, बहन, सितोबपुर झींद
(५३) शादीराम, स्वयं, धर्मपुर, गुरुगांव	तोताराम, बहन, समसपुर झींद
(५४) हातम, स्वयं, भगेल, बुलन्द शहर	बल्लराम, पुत्री, डंडिकारामपुर, झींद
(५५) चन्दसेन, स्वयं, दलेलपुर, बुलन्द शहर	नत्थू, पुत्री, कुरुथल, गुरुगांव,
(५६) रामचन्द्र, पिता सुलखनी, अंबाला	बिशनलाल, बहन, शाहपुर, मछोढ़ा, पटियाला
(५७) फतेह सिंह, स्वयं, धर्मपुर गुरुगांव	पतिराम, पुत्री, बाबल, हिसार
(५८) हरज्ञान, स्वयं, मोमेढरी, गुरुगांव	जयराम, पुत्री, थानेजी, दिल्ली
(५९) हरजस, स्वयं, मोमेढरी; गुरुगांव	शुण्डराम, पुत्री, रोढ़कामुवाना, दिल्ली
(६०) नत्थाराम .... हैबतपुर, अम्बाला	मुन्शीलाल, ... कुतुबपुर, मुजफ्फरनगर
(६१) मथुरादास .... ओंड़ाना, करनाल	उमरावसिंह, ... तेवड़ा, सहारनपुर
(६२) द्वारकादास .... जटलाना, करनाल	गणेशीलाल, ... सुल्तानपुर, सहारनपुर

(६३) रामजीदास .... तेहमा, अंबाला	दीनदयाल, ... सुल्तानपुर, सहारनपुर
(६४) शलिग्राम, ... छोली अंबाला	दीनदयाल, सुल्तानपुर, सहारनपुर
(६५) पं० उमादत्त, पुत्र, सांभली; करनाल	पं० कुन्दनजी, भतीजी, जलवाना, करनाल

वरपक्षीय गौड़ ब्राह्मण	**कन्यापक्षीय त्यागी ब्राह्मण**
(६६) केशव, स्वयं, कन्नौर, रोहतक	जयपाल, बहन, शिकारपुर, दिल्ली
(६७) यमुनादास, स्वयं, सलौधा रोहतक	तूखाराम, बहन, हस्तसाल, दिल्ली
(६८) जीराम, स्वयं, भैंसावाल, रोहतक	मोमचन्द, बहिन, झटिकरा, गुरुगांव
(६९) दुब्बाबुधा, स्वयं, मकसूदपुर, गुरुगांव	मोहराम, पुत्री, धर्मपुर, गुरुगांव
(७०) डा० गीताराम, स्वयं, करनाल, करनाल	नानकचन्द, पुत्री, गोविन्दपुरी, अंबाला
(७१) शिवचरण, पिता, डीघ, करनाल	साहब सिंह; गोविन्दपुरी, अंबाला
(७२) सुन्दरलाल, स्वयं, लाड़वा, करनाल	गंगाराम, पुत्री, गोविन्दपुरी, अंबाला
(७३) जगन्नाथ, स्वयं, डीजलपुर, अंबाला	गंगाराम, पुत्री, गोविन्दपुरी, अंबाला
(७४) बिहारीलाल, पुत्र, बीजलपुर, अंबाला	आशाराम, पुत्री, गोविन्दपुरी, अंबाला
(७५) विश्म्भरदास जज, पोता, सर-कोरनाहन, अंबाला	लायकराम, पुत्री, गोविन्दपुरी, अंबाला
(७६) छज्जूराम, पुत्र, ईसोपुर, अंबाला	रामस्वरूप, पुत्री, गोवर्धनपुर, सहारनपुर
(७७) मोहनलाल, पुत्र, गदौली अंबाला	जगराम सिंह, पुत्री, गोवर्धनपुर, सहारनपुर
(७८) राजाराम, स्वयं, सुलखनी, अंबाला	दीनदयाल, पुत्री, गोवर्धनपुर, सहारनपुर

(७९) झटिकरा, गुरुगांव का निवासी मोल्हड़ रोहतक के मांडू ग्राम के गौड़ों का नाती है और अब मांड् में ही नाना की जायदाद पर रहता है। (८०) शिवलाल त्यागी, रेवला, दिल्लीवाले की बहन ग्राम दतौर, रोहतक में पण्डित हिरौड़ा जी गौड़ से ब्याही गई, जिसके पुत्र खीमा का विवाह रोहतक जिले के कसार गांव में है। (८१) मेरठ, असौंढ़ा के रईस और तालुकेदार चौ० रघुबीर नारायण सिंह जी के चिरंजीवी सुपुत्र चौ० रघुवंश नारायण सिंह का विवाह गोवर्धनपुर, जिला सहारनपुर के रईस चौ० रूपचंदशर्म्मा की पुत्री से है। इसी गोवर्धनपुर के सगोत्र और भाई बिरादर इन गांवों में रहते हैं :— सढौलीहरिया, (पं० रामजी दास), उमरी (पं० परमानन्द), अम्बष्टा वरिजादा (पं० मंगलसेन), रनदेवा (पं० सुगनचन्द) वगैरह। ये लोग गौड़ कहाते हैं और गौड़ों के साथ रोटी बेटी का सम्बन्ध रखते हैं। चौ० रूपचन्द जी शर्म्मा वगैरह के साथ भी इनका खानपान ज्यों का त्यों बना है। पूर्वोक्त गोविन्दपुरी, अंबाला वालों के सगोत्र और सगे भाई बिरादर जी गौड़ कहाते हैं, इन गांवों में रहते हैं :— गदौली (स्वामी भाऊराम, सीताराम), कोराली (स्वायी मोहनलाल), डिगौंली (चौ० हरिवंश, इच्छाराम), नलेड़ा, रायपुर (पं० तुलसीराम) वगैरह। पूर्व के दो गाँव अंबाला में हैं और शेष तीन सहारनपुर में। इनका भी खानपान गोविन्दपुरी वालों के साथ है। गोविन्दपुरी के सगोत्र पं० राजेन्द्र मिश्र वकील अमृतसर में रहते हैं। भगेल, गेझा, कुलेसरा, सुलतानपुर, गिगरोड़ा, ये पांचों गाँव कौशिक गोत्री त्यागियों के जिला बुलन्दशहर में हैं। इनका निकास (डीह या मूल स्थान) पसोर है। मगर पसोर वाले इनके सगोत्री होने पर भी गौड़ कहे जाते हैं।

इस विवाह सम्बन्ध के देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि जैसे मैथिल ब्राह्मणों में कुछ ऐसे हैं जो पश्चिमा और मैथिल दोनों से विवाह सम्बन्ध करते हैं, वैसे ही गौड़ों में भी कुछ ऐसे हैं जो त्यागियों और गौड़ों दोनों के साथ विवाह करते हैं। नागल, जिला रोहतक के पं० बद्री प्रसाद १२ गाँवों के पुरोहित हैं और उनके यहाँ त्यागियों का सम्बन्ध दिखलाया गया है। इसके सिवाय यह भी देखा जाता है कि एक भाई त्यागी है तो दूसरा गौड़ हो गया और बहुत से गौड़ धीरे-धीरे जमींदारी के कारण त्यागी हो गये और होते जा रहे हैं और कितने ही त्यागी वंश गौड़ हो गये हैं। उदाहरण के लिए पं० हेमचन्द जी तहसीलदार सरधना जो पहाड़पुर, सहारनपुर, के निवासी थे गौड़ ब्राह्मण कहे जाते हैं। मगर जिस ग्राम धानूखेड़ी, करनाल से उनके पूर्वज आए थे वहां उन्हीं के भाई अब भी त्यागी ही कहलाते हैं। इसी धानूखेड़ी से ही सहारनपुर के पहाड़पुर और नुकड़ में गए हुए पं० हरप्रसाद जी तथा पं० हरिप्रसादजी के पूर्वज गौड़ ब्राह्मण हो गए और अभी तक उन लोगों के वंशज गौड़ ही हैं। गाँव फेराहेड़ी, सहारनपुर के त्यागियों के कुछ बिरादर रुड़की तहसील के ज्वालापुर में जा बसे और अब दानग्राही होकर गंगापुरोहित गौड़ कहलाते हैं। हरकी पैड़ियों का दान वही लेते हैं। उनमें इस समय सरदार परमानन्दजी हैं। खेड़ी जिम्नारदार, सहारनपुर से कुछ त्यागी वंश वाले जालखेड़ी, करनाल में चले गए और उन्हीं के वंश में पंडित गोपीचन्द जी प्रभृति दानग्राही हो गए। राना जसमोर, जिला सहारनपुर के पुरोहित के वंशज चौ० फतह सिंह वगैरह तेवड़ा जिम्नारदार, सहारनपुर में जाकर जमींदारी करने से त्यागी हो गये। परन्तु अभी तक दोनो दल में सम्बन्ध करते हैं। पूर्वोक्त खेड़ी ग्राम से ही कुछ लोग करौंदी में जाकर ग्राही गौड़ कहाते हैं और बड़गांव, तहसील नुकड़ में भी जाकर दान ग्राही ही हैं। मगर इन्हीं के भाई जाल खेड़ी, करनाल में त्यागी हैं और ग्राही एवं त्यागी दोनों के यहां विवाह करते हैं।

जैसे इस समय पश्चिमा ब्राह्मणों में पुरोहिती करने वाले बहुत हैं और पहले से भी हजारीबाग जिले के चतरा और इटखोरी थाने के बाभनों (भूमिहार ब्राह्मणों) का पेशा पुरोहिती है और यही पेशा कागजों में लिखा जाता है। वे माहुरी वैश्यों, राजपूतों और कायस्थों के पुरोहित हैं। देव-गया के सूर्यमंदिर के पुजारी खेदा पांडे वगैरह भी सोनभदरिया बामन मयूरभट्ट के बंशज हैं। ठीक उसी तरह त्यागियों में भी कहीं-कहीं पहले से ही पुरोहिती करने वाले पाये जाते हैं। दृष्टान्त के लिए जमधरपुर, तुगलपुर, खानपुर, गजरौला, जिला बिजनौर के तगे (त्यागी) रवे राजपूतों के पुरोहित हैं। जरौला के पुरोहित नाथूराम और सलेखू राम वगैरह हैं। लढौरा रियासत, जिला सहारनपुर के पुरोहित तांसी ग्राम, तहसील रुड़की के त्यागी ब्राह्मण हैं। पांचो पुरियों के सरदार और हरकी पैड़ी के दान ग्राही पंडित दिसौंदीरामजी त्यागी वंश से ही हैं जिनके पुत्र सरदार परमानन्द जी वर्त्तमान हैं। इसी प्रकार और भी बहुत से दृष्टान्त ढूँढने से मिल सकते हैं। जिसको मिथिला में मूल और काशी, सर्यूपार एवं कन्नौज में स्थान और डीह बोलते हैं, उसे ही पश्चिमी जिलों में निकास कहते हैं। करनाल जिले के जितने ग्राम विवाह सम्बन्ध में दिखलाये गये हैं वे प्रायः पानीपत, थानेसर और करनाल तहसील के हैं, सहारनपुर वाले सहारनपुर, नुकड़ के और अंबाला वाले अंबाला और जगाधरी तहसील के हैं। नाहन तहसील भी है। गोविन्दपुरी की तहसील जगाधरी और गोवर्धनपुर की नुकड़ है। ये दो गाँव बहुत प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित हैं, एवं इन्हीं गाँवों का संबंध दोनो दलों में बहुत ज्यादा है। सढौलीहरिया, उमरी और डिगौली देवबन्द तहसील में हैं। नलेड़ा रुड़की में है। गदौली, कोराली नारायण गढ़ में हैं।

इस प्रकार से यह स्पष्ट हो गया कि अयाचक ब्राह्मण पूर्व में मिथिला से लेकर पश्चिम में अंबाला, करनाल और पंजाब के झेलम तक फैले हुए हैं। इनमें से पूर्व छोर वाले मिथिला वासी और पश्चिम छोर वाले, या काशी पुरी से पश्चिम के रहने वाले दोनो याचक (पुरोहित) दलवाले ब्राह्मणों से विवाह द्वारा एक में एक मिले हुये हैं। यहां तक कि दोनो दिशाओं में प्रतिष्ठित और प्रधान जो हैं उन सभी का सम्बन्ध अयाचक ब्राह्मणों से मिलता है। इस लिये यदि मध्य के अर्थात् काशी और गण्डक के बीच वालों से अन्य ब्राह्मणों के विवाह सम्बन्ध, अज्ञान या किसी अन्य कारणवश, क्योंकि वहां के याचक दलवाले प्रायः दीन हैं नहीं भी मिलते हैं, तो कोई हर्ज नहीं है और इससे ये मध्य के अयाचक ब्राह्मण अन्य ब्राह्मणों से पृथक् नहीं समझे जा सकते हैं। परन्तु ब्राह्मण समाज के ही सुन्दर और हृष्ट पुष्ट अङ्ग हो सकते हैं। क्योंकि जब इनके दल का आदि और अन्त दोनो ब्राह्मण मात्र से घनिष्ठ मिलाव रखते हैं और अन्य ब्राह्मणों से भिन्न नहीं मालूम हो रहे हैं, तो मध्य में यदि किसी कारण से न मिलने से भेद भी प्रतीत होता होवे तो विवेकीजन उस भेद को सत्य न समझ मिथ्या ही समझते हैं। जैसे यदि किसी रस्सी को अण्डाकार (०) में फैला देवें, तो यद्यपि उसके दो छोर मिले हुये हैं और बीचका भाग एक दूसरे से दूर पड़ गया है, परन्तु सभी की सभी रस्सी ही समझी जाती है, न कि बीचका हिस्सा रस्सी से भिन्न कुछ और ही समझा जाता है। क्योंकि 'जो चीजें किसी एक ही चीज के बराबर होती हैं वे आपस में भी बराबर ही होती हैं', यह इस जगह भी अच्छी तरह लगाया जा सकता है। इसीलिये वेदान्त का सिद्धान्त है कि ब्रह्म में अज्ञान होने से प्रथम और अज्ञान नाश के पश्चात् यदि जीव और ब्रह्म का वस्तुतः भेद नहीं है, तो मध्य में अर्थात् अज्ञान काल में, जो भेद प्रतीत होता है वह मिथ्या ही है, क्योंकि जो राजा निद्रा से पूर्व और निद्रा टूटने पर भी अपने को राजा ही समझता है,

वह यदि निद्रा दोष से स्वप्न देखता हुआ अपने को राजा न देख भिक्षुक के रूप में देखता है, तो उस से वह वस्तुतः भिखमांगा न होकर उस समय भी राजा ही रहता है और विचारशील उसे राजा ही समझते हैं, चाहे वह स्वयं अपने को प्रचण्ड निद्रा, अथवा अज्ञान दोष से राजा न समझे वह दूसरी बात है। इसी लिये भगवान श्री गौडपादाचार्यजी ने माण्डूक्योपनिषद् की कारिकाओं में लिखा है कि :–

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथा।
वितथैः सदृशाः सन्तोऽवितथा इव लक्षिताः॥ ६ प्र० ३॥

और उसी के ऊपर भगवान् श्री शंकराचार्य का भाष्य ऐसा है कि,

यदादावन्ते च नास्ति वस्तुमृगतृष्णिकादि, तन्मध्येऽपि नास्तीति निश्चितं लोके। तथेमे जाग्रद्दृश्या भेदा आद्यन्तयोरभावाद्वितथैरेव मृगतृष्णिकादिभिः सदृशत्वाद्वितथा एव, तथाप्यवितथा इव लक्षिता मूढैरनात्मविद्भिः।

इन दोनो वचनों का तात्पर्य यह है कि जो वस्तु आदि और अन्त में न रहे, परन्तु मध्य में प्रतीत होवे, तो उसे मध्य में भी मिथ्या ही समझना चाहिये। यही संसार की रीति है। केवल मूर्ख उसे सत्य समझते हैं। क्योंकि मरुस्थल में मृगतृष्णा का जल मृग के विचार से प्रथम भी न था और आगे भी न रहेगा, केवल बीच में मालूम होता है। इसीलिये वह मिथ्या है। यही दशा इस प्रकार के पदार्थों की है। क्योंकि वे भी उसी तरह के हैं। फिर उन्हें सत्य मानना मूर्खता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

जब यह स्पष्ट रूप से दिखला चुके हैं कि मैथिल, कान्यकुब्ज, गौड़ और सर्यूपारी सभी ब्राह्मणों में इन अयाचक दल के ब्राह्मणों के लड़के और लड़कियों दोनों के विवाह होते हैं, प्रत्युत्त मिथिला में लड़कियों के ही अधिक और सर्यूपारी प्रभृति में लड़कों के ही और लड़कियों के कम अथवा दोनो जगह बराबर ही और यही दशा गौड़ों की भी है तो बंगाल, बिहार और उड़ीसा की १९११ ई० की मनुष्य गणना की रिपोर्ट में मनुष्यगणना के सुपरिन्टेन्डेन्ट ने जो उस के पांचवें भाग के प्रथम खण्ड के जाति विवरण नामक ११वें प्रकरण के ४४४वें पृष्ठ के नोट में लिखा है कि :–

It is reported that in Purnea there have been a few cases of Babhans marrying Maithil Brahman gitls, but none of Maithil Brahmans taking wives from among Babhans.'

अर्थात् 'यह कहा जाता है कि पुरनियां जिले में बाभनों (पश्चिमा ब्राह्मणों) ने मैथिल ब्राह्मणों की लड़कियों से विवाह किया है,परन्तु किसी मैथिल ब्राह्मण ने बाभनों (पश्चिमा ब्राह्मणों) की लड़कियों से विवाह नहीं किया है।' इससे समझ लेना चाहिए कि रिपोर्ट लिखने वाले को ब्राह्मण समाज या भारत के समाजमात्र का कितना ज्ञान था, या सभी वैदेशिक लेखकों को रहा करता है। इसीलिए ऐसी दशा में वे लोग जिस किसी भारतीय समाज के विषय में जो कुछ न लिख डालें उसी में आश्चर्य है। और उन्हीं के आधार पर समाज के तत्त्व का निर्णय करना कितनी भूल है। हाँ, यदि किसी समाज के मनुष्य ने, जो उसके विषय में पूर्ण परिचित होवे, लिखा हो तो उसके अनुसार वैदेशिकों के भी लेख मानने में कोई हर्ज नहीं है। भला यह कितनी बडी भूल है कि जब आज तक दोनो तरफ बराबर सैकड़ों लड़के-लड़कियों के विवाह हो रहे हैं, तो केवल चन्द बतलाना, सो भी बीते हुए, न कि

वर्त्तमान? उसी मनुष्य गणना की रिपोर्ट में पूर्वोक्त ही स्थान में जो यह लिखा गया है कि :–

The name Bhumihar Brahman bas been recognized by Government, and they are now returned as Babhan (Bhumihar Brahman). It was, however, impossible to have given them a name and status not recognized by their co-religionists, and also because in the returns they would have been merged in the main body of Brahmans, and all records of them as a community would have been lost.

अर्थात् 'गवर्नमेण्ट ने भूमिहार ब्राह्मण नाम को स्वीकार किया है। इसलिए अब ये लोग 'बाभन (भूमिहार ब्राह्मण)' इस प्रकार से रिपोर्ट वगैरह में लिखे जाते हैं। इन लोगों को ऐसा नाम (ब्राह्मण) और ऐसा स्थान देना असंभव था, जिसे इनके सधर्म (समान धर्म वाले ब्राह्मण क्षत्रियादि) स्वीकार नहीं करते। और ऐसा करने से, अर्थात् केवल 'ब्राह्मण' लिख देने से, ब्राह्मणों में ही ये लोग भी मिल जाते और इनके एक पृथक् समाज होने की सब बातें ही लुप्त हो जातीं।' इसमें पहला कारण जो यह दिखलाया गया है कि इन लोगों (भूमिहार ब्राह्मणों) को ब्राह्मण क्षत्रियादि ब्राह्मण नाम देना स्वीकार नहीं करते, वह कहाँ तक सत्य है इसके लिये विशेष कहने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि जब सभी ब्राह्मणों के साथ इन लोगों से विवाह सम्बन्ध और खान-पान मिले हुए हैं, तो हम नहीं समझते कि इससे अधिक ब्राह्मण स्वीकार करना किसको साहब बहादुर ने समझा है। क्या अन्य ब्राह्मणों में भी एक दूसरे को ब्राह्मण स्वीकार करने के लिये सिवाय खान-पान और विवाह सम्बन्ध के और भी कोई रजिस्टरी वगैरह की जाती है? क्या कोई ब्राह्मण अपने से भिन्न क्षत्रियादि के साथ विवाह वगैरह करते देखा गया है?

बल्कि उधर तो मैथिल केवल मैथिल को ही ऐसा स्वीकार करता है ऐसे ही अन्य ब्राह्मण भी, परन्तु इधर तो सभी ब्राह्मण स्वीकार कर रहे हैं। इसलिये इससे बढ़कर और क्या होना चाहिए? क्योंकि एक काम केवल बातों से किया जाता (Theoretical) है, परन्तु दूसरा कार्य रूप में परिणत (Practical) करके दिखलाया जाता है। उनमें से द्वितीय पक्ष को ही श्रेष्ठ मानते हैं और इन अयाचक दलवाले ब्राह्मणों के विषय में दूसरा ही पक्ष है, इसे सिद्ध ही कर चुके हैं।

(७) व्यवस्थायें, सम्मतियां और पत्र आदि

यदि प्रथम पक्ष अर्थात् बातों से कहने का भी आग्रह होवे तो अब अन्त में उसे भी दिखला कर प्रकरण की पूर्ति करते हैं। इससे प्रथम ही इतना और भी समझ लेना चाहिए कि जब इस प्रकार से अयाचक (भूमिहार) ब्राह्मणों के सम्बन्ध और खान-पान अन्य ब्राह्मणों के साथ सिद्ध हो गये, तो जो पूर्वोक्त फिशर साहब ने गाजीपुर के गजेटियर के ४२वें पृष्ट में लिखा है कि 'They may not drink or smoke with Brahman, and only under some restrictions with Rajputs,'

अर्थात् 'वे (भूमिहार ब्राह्मण) (इतर) ब्राह्मणों के साथ स्वयं खान-पान नहीं कर सकते और राजपूतों के साथ तो खानपान करने में केवल बहुतसी बाधाये हैं, इसलिये नहीं कर सकते।' इस में जो ब्राह्मणों के विषय में कहा गया है उसका भी खण्डन हो गया है। परन्तु राजपूतों के विषय में ठीक ही कहा है। क्योंकि ब्राह्मणों का अन्यों के साथ खानपान हो ही कैसे सकता है?

अस्तु, अब प्रकृत में आइये। सब से प्रथम मिथिला के मान्य मीमांसकधुरीण महामहोपाध्याय श्री चित्रधर मिश्र जी की सम्मति इस विषय में देखिये। उन्होंने दरभंगा प्रान्तस्थ पतोर ग्रामवासी पंडित सर्यूप्रसाद मिश्र और राजेन्द्र प्रसाद मिश्रजी की एक व्यवस्था में जिसको आगे दिखलावेंगे, ऐसा लिखा है कि :—

श्री दुर्गा

पश्चिमदेशाभिजनस्य मिथिलानिवासस्य बाबू श्रीसर्यूप्रसादमिश्रस्य ब्राह्मणस्य प्रश्नानामुत्तरोत्रेयानामुत्तरम् :—

ब्राह्मणस्वामिकस्याशीतिरक्तिकापरिमितस्यतदधिकस्य वा स्वर्णस्य स्तेयं महापातकप्रायश्चित्तस्य प्रयोजनम्। ततो न्यूनपरिमाणस्य स्तेयं तु न तत्प्रायश्चित्तस्य प्रयोजकम्, किन्तु प्रायश्चित्तान्तरस्य। अशीतिरक्तिकापरिमितत्वंतदधिकत्वं वा एकखण्डस्य समुदायस्य वा नैतावता कश्चिद्विशेषः। नह्येकपिंस्यैव यत्राशीतिरक्तिकापरिमितत्वादि, तत्रैव तत्स्तेयं महापातकमिति कस्यचिच्छान्त्रस्यार्थं। पश्चिमदेशाभिजनानां ब्राह्मणानां ब्राह्मणत्त्वे चिरकालप्रवृत्तस्य शिष्टानां ब्राह्मणत्वेन परिग्रहस्य दार्ढ्यमेव दृढतरं प्रमाणम्। नह्यन्येषामपि ब्राह्मणानामनदिकालप्रवृत्तं शिष्टानां तत्त्वेन परिग्रहदार्ढ्यं मुक्त्वा ब्राह्मणत्वेऽन्यत्प्रमाणं संभवति, यथा वेदस्य वेदत्वेऽनादिकालवृत्तो वेदत्वेन शिष्टानां परिग्रह एव प्रमाणं न वेदवाक्यं स्मृत्यादि वा, तद्वदितिसंक्षेपः।

यत्रपूर्वैरुषितं सोऽभिजनः।

यत्रस्वयमुष्यते स निवासः। श्रीचित्रधरमिश्रः।

इसका भाव यह है कि सर्यूप्रसाद मिश्र के किसी दामाद के ऊपर सोने की चोरी करने के अपराध में धर्मशास्त्रानुसार उन लोगों ने महापातक का प्रायश्चित्त लगाया था। उस पर किसी मैथिल ने कुछ छल करके एक ऐसी व्यवस्था लिखी जिसमें उसे निर्दोष ही ठहराया। इस पर श्री सर्यूप्रसाद ने लूटनझा नामक किसी विद्वान् से एक व्यवस्था लिखवाई और उस पर बड़े-बड़े पण्डितों के हस्ताक्षर करवाये, जिसे आगे दिखलावेंगे। जब उस व्यवस्था पर श्रीचित्रधर मिश्र जी को सम्मति देने का प्रकरण आया, तो स्वतन्त्ररूप से उन्होंने पूर्वोक्त वचन लिखे जिनका अर्थ यह है कि पूर्वकाल में पश्चिम देश (इसी लिये अयाचक ब्राह्मणों को मिथिला में पश्चिमा ब्राह्मण कहते हैं) और इस समय मिथिला देश वासी बाबू सर्यूप्रसाद मिश्र नामक ब्राह्मण के उन प्रश्नों के उत्तर हम लिखते हैं जिन्हें लोग उत्तर ही से समझ सकते हैं :—

ब्राह्मण का अस्सी रत्ती या उससे अधिक सुवर्ण चुरा लेने पर महा पातक का प्रायश्चित्त करना चाहिये। परन्तु यदि उससे कम हो तो वह पायश्चित्त न होकर उसके लिए दूसरा ही प्रायश्चित्त होता है। वह अस्सी रत्ती का एक ही टुकड़ा होवे, या अनेक इसमें कोई विशेष नहीं है, क्योंकि अस्सी रत्ती के एक ही टुकड़े की चोरी करने से ही महापातक का प्रायश्चित्त करना चाहिए, ऐसा कोई शास्त्र नहीं कहता। पश्चिम देश के पूर्व निवासी ब्राह्मणों (पश्चिमा या भूमिहार ब्राह्मणों) के ब्राह्मण होने में अत्यन्त प्रबल प्रमाण यही है कि शिष्ट (श्रेष्ठ, विवेकी अथवा आस्तिक) लोग बहुत प्राचीन काल से उन्हें दृढ़तापूर्वक ब्राह्मण कहते चले आते हैं। क्योंकि अन्य ब्राह्मणों के भी ब्राह्मण होने में अनादि काल से शिष्ट लोगों के 'ये ब्राह्मण हैं'

इस कथन या व्यवहार को छोड़ कर दूसरा कोई प्रमाण नहीं हो सकता। जैसे वेदों को वेद मानने में अनादि काल से शिष्ट (श्रेष्ठ) पुरुषों का उनको वेद कहना छोड़कर और कोई वेदवाक्य अथवा स्मृत्यादि के वचन प्रमाण नहीं हो सकते। उसी तरह ब्राह्मणों के विषय में भी संक्षेप में यही समझ लेना चाहिये।

जिस जगह अपने पूर्वपुरुष रहते थे उसे अभिजन कहते हैं, और जहाँ स्वयं रहे उसे निवास।

हस्ताक्षर
श्रीचित्रधरमिश्र।

क्या अब इससे भी बढ़कर स्वीकार (recognition) चाहिए? इतना ही नहीं है। अब उस पूर्वोक्त व्यवथा को देखिये, उस में कितने विद्वानों के हस्ताक्षर हैं। उसमें से भी उसके बहुत बृहत् होने के कारण केवल उपयोगी अंशों को लिखते हैं। वह इस प्रकार है :—

ॐ स्वस्ति भूयात् श्रीतारिणी जयति।

धर्मनिर्णयपत्रम्

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः॥
नहि सत्यात्परोधर्मो नानृतात्पातकं परम्।
तस्मात्सर्वात्मना मर्त्यः सत्यमेकं समाश्रयेत्॥
अदण्ड्यान्दण्डयन्राजा दण्ड्याँश्चैवाप्यदण्डयन्।
अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति॥

दरभंगाप्रांतस्थितरघुनाथपुरनगरवास्तव्यो बाबू इतिपदांकितो मिश्रोपाह्वः श्रीयुतः सर्यूप्रसादशर्मा वादी १

तादृशास्तद्दायादायदुवंशनारायणशर्मलक्ष्मीनारायणशर्मभोलाप्रसादशर्मरामशंकरशर्माणः प्रतिवादिनः ४

तत्रवादिदत्तमेकंविज्ञप्तिपत्रं मयाप्राप्तं। तत्र यल्लिखितमासीत्तत्पुरस्ताद्विलिखामि। तथाहि वर्षाष्टादशपूर्वसमये मदीयगृहभित्तिच्छेदनं कृत्वा बहूनि सुवर्णालंकरणादीनि वस्तूनि चोरैरपहृतानि, तत्र बहुमूल्यं सुवर्णालंकरणत्रयंरामवल्लभमिश्रस्यासीत्, यच्चमृतायाः कस्याश्चिदंगनायारामवल्लभशर्मणामदीयगृहे समधारि। अनन्तरं राजदण्डदायकैर्जनैर्धृतास्ताडिताः कियंतश्चौरास्तत्कर्मस्वीकारंचक्रुस्तत्रैकोरामवल्लीशर्मा येन तत्कर्म न स्वीकृतं, परन्तु तदीयगृहाद्रामवल्लभमिश्रस्य पूर्वोक्तसुवर्णालंकरणनिबहूनिबहिर्गतानियेषां मूल्यं राजतमुद्राशतकत्रयाधिकं राजकर्मचारिलेखाद्विज्ञायते। अथेदानीं प्रतिवादिना राजतमुद्राचतुःपंचकपरिमितान्येवसुवर्णानि स्वीकृतानि। किंच नटीसंगमतदीयसिद्धान्नभक्षण दिश्वासमाधाय ग्रामीणैर्जातिबाह्योऽपिकृतः। तत्र स्वामिचौरयोर्ब्राह्मणत्वं स्वकपलकल्पितमश्रद्धेयमितिमृषाविलिख्याभिशप्तप्रायश्चित्तं मुसलिशर्माणादत्तं रामवल्लीशर्मणे। सच तावन्मात्रप्रायश्चित्तानुष्ठानेन पूतो भवितुमर्हतिनवेति व्यवस्थापत्रमस्मभ्यन्दीयतामिति। अनन्तरं मया तदीयवृत्तां जातं राजकीयनिर्णयपत्र-तत्सभापत्रतोऽन्यतश्चावलोक्यपुरस्तादुद्घाट्यते।

अथ महापातकभयपादायसुवर्णस्वामिचौरयोर्ब्राह्मणत्वस्य स्वकपोलकल्पितत्वंयदुक्तं मुसलिशर्मणा तद्दुग्धकन्याधरणं दुष्टकन्याचरणंवेतिविज्ञातम्भवति। तत्रचूडाकरणादिब्राह्मणविहितानांकर्मणां परम्पराचारस्यदर्शनात्, तत्रशर्मान्तनामपाठव्यवहाराच्च, प्राप्तमुक्तिसाम्राज्यमिथिलामहाराज छत्रसिंहाद्यनेक महाराजलिखितपत्रेषु, महाराजकुमारयोर्बाबूइति पदांकितयोर्वासुदेवसिंहगुणेश्वर सिंहयोर्वृत्तान्तपत्रेषु, तद्वंश्यानां बहूनांपत्रेषु च शर्मनमस्कारपदलेखस्य दर्शनाच्च, गतचत्वारिंशदधिकशताब्दसमयलिखित राजकीयमुद्रांकितयवनपत्रे मिश्रोपाह्वस्य दर्शनाच्च, लाटकमिश्नरइत्यादिशब्दप्रसिद्धानां बहूनां राजप्रतिनिधीनां हाईकोर्टइतिप्रसिद्धन्यायस्थानाधीशानां जय्यपदांकितानां महानुभावानां लेखेभ्यश्च, नाना पण्डितदत्तव्यवस्थापत्रेषुब्राह्मणपदलेखस्यदर्शनाच्चशंकोत्थानसामग्र्या एवाभावात्।

तथाचात्र मिथ्याभिशापप्रायश्चित्तेन न मूलपाप शोधनमितिविदुषाम्परामर्ष :–

(१) समान्योऽयमर्थोलूटनशर्मणा।

(२) सम्मतोऽयमर्थः श्रीबच्चाशर्मणः।

(३) समीचीनमिदंव्यवस्थापत्रमितिश्रीमुरलीशर्मणः परामर्षः।

(४) सम्मतिरत्रश्रीमणीश्वरशर्मणः।

(५) सम्मतिरत्रार्थे श्रीनव (लव) सिंहशर्मणः।

(६) व्यवस्थामिमामनुमन्यतेव्याकरणतीर्थः श्रीहरिवंशशर्मा।

(७) व्यवस्थितमर्थं संज्ञापयति श्रीलालजीशर्मा।

(८) पतोरग्रामवास्तव्याः सर्यूप्रसादशर्मप्रभृतयो ब्राह्मणाएवोपनयादिसंस्काराविशेषात्। यदितेषांमध्येकस्यचिदशीतिरक्तिकाऽन्यूनंसुवर्णं स्वामिनोऽसमक्षंकश्चिदाजहार तथा तस्यमहापातकित्वमेव, स्वीकृतनटीसंगमादिपापञ्चाधिकमेवप्रतीयते, नहि कृतयत्किञ्चित्प्रायश्चित्तोऽपिस संग्राह्योभवितुमर्हतीतिश्रीरज्जेशर्मा।

(९) श्रीमतां पण्डितवरझोपाह्वलालजीशर्मामिश्रोपाह्वश्रीरज्जेशर्मझोपाह्वजुड़ावनशर्मणां लेखेन निश्चितब्राह्मणस्वर्णापहपहारोरामवल्लीशर्मामहापातकीति निर्णयतितात्याशास्त्री।

(१०) मुनिप्रणीतवचनान्यालोच्याशुभकर्मणाम्।
व्यवस्थास्वीकृतासेयंश्रीजुड़ावनशर्मणाम्॥

इस पूर्वोक्त व्यवस्था के 'दरभंगा प्रान्तस्थित' इत्यादि भाग का मर्मानुवाद यह है–

'दरभंरा जिले के रघुनाथपुर ग्रामवासी बाबू श्री सर्यूप्रसाद मिश्रशर्मा इस व्यवस्थापत्र में वादी (मुद्दई) हैं।

उसी ग्राम के उनके दायाद यदुवंश नारायण शर्मा, लक्ष्मी नारायण शर्मा, भोला प्रसाद शर्मा और रामशंकर शर्मा ये चार प्रतिवादी (मुद्दआलह) हैं।

वादी ने मुझे एक विज्ञापन दिया था। उसमें जो लिखा था वह यह है कि आज से १८ वर्ष पूर्व मेरे घर में सेन्ध लगाकर बहुत से सोने वगैरह के गहने चोर चुरा ले गये थे। उन गहनों में से तीन गहने अधिक दाम के राम वल्लभ मिश्र के घर की किसी मरी हुई स्त्री के थे। जिन्हें उन्होंने मेरे घर रक्खा था। इसके बाद पुलिस ने बहुत से चोरों को पकड़ कर मार पीट प्रारम्भ की, जिससे उन्होंने उस चोरी को स्वीकार किया। उनमें से एक रामवल्ली शर्मा

भी थे, जिन्होंने गो कि चोरी स्वीकार न की, परन्तु उनके मकान में पूर्वोक्त रामवल्लभ मिश्र के बहुत से सुवर्ण के आभूषण मिले, जिनका दाम अफसर लोगों ने अपने फैसले में तीन सौ रुपये से अधिक लिखा है।

अब उसके बाद रामवल्ली शर्मा ने यह स्वीकार किया कि ४ या ५ रुपये भर सोना हमारे घर था, और किसी नट की स्त्री के साथ भोग और उसके बनाये भोजन खाने का विश्वास करके गाँव वालों ने उन्हें जाति से बाहर भी निकाल दिया। इस पर मुसली शर्मा ने केवल झूठा यह लिखा कि सुवर्ण के स्वामी और चोर दोनों को लोग अपने मन से ही ब्राह्मण मानते हैं। इसीलिए मैं उसे नहीं मानता। ऐसा लिखकर उन्होंने रामवल्ली शर्मा को केवल मिथ्या भाषण या कसम खाने का अपराधी बताकर उसी का प्रायश्चित्त उनको बतलाया। इसलिये मैं पूछता हूं कि रामवल्ली शर्मा केवल उतने प्रायश्चित्त से शुद्ध हो सकते हैं या नहीं इसकी व्यवस्था मुझे दीजिये।'

इस पर मैं इन लोगों के वृत्तान्त को अदालती फैसले, सभाओं की व्यवस्थाओं और अन्य प्रमाणों से निश्चित कर सब के सम्मुख यह घोषणा करता हूं कि:–

मुसली शर्मा ने महापातक के भय से सुवर्ण के स्वामी और चोर दोनों को जो कल्पित ब्राह्मण ठहराया है, यह या तो केवल मूर्खता, या दुष्टता मात्र है, यही मालूम होता है। क्योंकि जब वादी प्रतिवादी अर्थात् भूमिहार ब्राह्मणों में ब्राह्मणों के चूड़ाकरण इत्यादि सभी कर्म परम्परा से किये जाते हैं, इन कर्मों में उन लोगों के नामों के अन्त में शर्मा शब्द का प्रयोग होता है, मुक्ति को प्राप्त मिथिला के महाराज छत्रसिंह आदि अनेक मैथिल महाराजाओं, महाराजकुमार बाबू वासुदेवसिंह तथा बाबू गुणेश्वरसिंह जी और उनके वंश के और बहुत से लोगों के पत्रों में इन सभी लोगों को शर्मा शब्द और साथ ही नमस्कार भी लिखा गया है, १४० वर्ष पूर्व के मुसलमान बादशाह के मुहर सहित आज्ञापत्र में इनको मिश्र लिखा है, बहुत से लाट और कमिश्नर वगैरह के लेखों और हाईकोर्ट के जजों के फैसलों में इन्हें ब्राह्मण लिखा है और बहुत से पण्डितों ने अपनी दी हुई व्यवस्थाओं में इन्हें स्पष्ट ब्राह्मण लिखा है, तो ये लोग ब्राह्मण हैं या नहीं इस शंका का तो कोई कारण ही नहीं है।

इसीलिए मिथ्या भाषण और मिथ्या शपथ के प्रायश्चित्त से मूल पातक (महापातक) का शोधन नहीं हो सकता यही विद्वानों की सम्मति है। हस्ताक्षर और विद्वानों की सम्मतियाँ:–

(१) मैं इस बात को मानता हूं।
हस्ताक्षर श्री बच्चा शर्मा।

(२) मेरी इसमें सम्मति है।
हस्ताक्षर लूटन शर्मा।

(३) यह व्यवस्थापत्र ठीक है ऐसा मैं मानता हूं,
हस्ताक्षर श्री मुरली शर्मा।

(४) इसमें मेरी सम्मति है,
ह० श्री मणीश्वर शर्मा।

(६) इस व्यस्था को मैं स्वीकार करता हूँ।
ह० श्री हरिवंश शर्मा व्याकरण तीर्थ।

(५) इस विषय में मैं भी सहमत हूँ
श्रीलव (नव) सिंह शर्मा।

(७) यह बात बहुत ही उचित है।
ह० श्रीलालजी शर्मा।

(८) पतोर गाँव के रहने वाले श्री सर्यूप्रसाद शर्मा आदि ब्राह्मण ही हैं, क्योंकि इनके उपनयनादि संस्कार अन्य ब्राह्मणों के से ही होते हैं। इसलिए यदि उनमें से किसी ने ८० रत्ती या उससे अधिक सुवर्ण स्वामी के न रहने पर चुराया हो, तो उसे महापातकी ही समझना चाहिये और यदि नटी के साथ भोग आदि स्वीकार किया तो वह पाप अधिक ही है। इसलिये थोड़े बहुत किसी प्रायश्चित्त के करने से वह शुद्ध नहीं हो सकता।ह० श्री रज्जे शर्मा।

(९) श्रीमान् पंडित प्रवर लालजी झा, रज्जेमिश्र और जुड़ावन झा के लेखों से निश्चित है कि रामवल्ली शर्मा ब्राह्मण हैं और उन्होंने ब्राह्मण का सोना चुराया है। इसीलिए मेरा निर्णय यही है कि वे महापातकी हैं। ह० श्री तात्याशास्त्री (काशी)

(१०) धर्म शास्त्रों को विचार कर मैं इस व्यवस्था को स्वीकार करता हूं।

ह० श्री जुड़ावन शर्मा।

इसके अनन्तर इस व्यवस्था के लेखक पंडितवर लूटन झा जी का पत्र दिखलाकर फिर उन पत्रों को दिखलावेंगे जिनका वर्णन व्यवस्था में किया गया है। वह ऐसा है :–

श्रीतारिणी जयति

विविधप्रशंसावलीविराजमानमानोन्नतेषु महोग्रप्रतापकीर्त्त्यलंकृतेषु कृत-तपोनिकरज्वलितेषु निखिलसज्जनानुरंजकस्वभावललितेषु बाबू इति पदो-पशोभितेषु श्रीश्रीमत्सु सर्यूप्रसादशर्ममिश्रपीताम्बरशर्म मिश्रवेणीप्रसाद-शर्ममिश्रेषु महतां महत्सु सविनयनमस्कारशतं समर्प्य निवेदयति कश्चित्। अपने सबहि कां परम सदाचारी ब्राह्मण जानि तत्त्वविज्ञान परम अलभ्य वस्तु लिखि पठाओल अछि, अतीव मननीय पदार्थ जानल जायत, कदाचित् पत्र लिखाव क हो त पताः–

ग्वालियर, रेवती फाटक, हरिप्रसाद भैया के मकान पर लूटन झा लिखल जायत।

ह० लूटनशर्मा

इसका अनुवाद यह है :– विविध विशेषण युक्त अतिप्रतिष्ठित, प्रबल प्रताप एवं कीर्त्ति से सुशोभित, तपस्या बल से दिव्य और निखिल सज्जनों के चित्तों को प्रसन्न करने वाले श्रीमान् बाबू सर्यूप्रसाद शर्मा मिश्र जी को सविनय शतशः नमस्कार समर्पण करने के अनन्तर निवेदन है, कि आप लोगों को परम सदाचारी ब्राह्मण जान कर परम अलभ्य वस्तु तत्त्वविज्ञान नामक एक लेख भेजता हूं, इसको अत्यन्त मनन करने योग्य पदार्थ जानियेगा। कदाचित् पत्र लिखना हो तो पताः– ग्वालियर–रेवतीफाटक– हरिप्रसाद भैया के मकान पर लूटन झा, ऐसा लिखियेगा।

हस्ताक्षर लूटनशर्मा।

अभी हाल की एक व्यवस्था इस प्रकार है :–

नमः सोमाय।

समस्त सृष्टि संरक्षक यज्ञनारायण की अपार दया अथच श्री दाहु चौधरी के उद्योग से सं० १९७९ चैत्र सुदी ७ से १० तक डुमरिया घाट पर "महालक्ष्मीयज्ञ" शाला के सम्मुख तथा श्री १०८ दण्डी स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती, कवि सम्राट पं० श्री देवी प्रसाद जी काशी, व्याकरण केसरी पं० खुद्दी झा, कोइलख, पं० धर्म्मदत्त वेदशास्त्री, काशी, पं० देवराज

चतुर्वेदी, डुमरी, शाहाबाद, श्री राय साहिब रासधारी सिंह, छितरौर इत्यादि सज्जनों की उपस्थिति में कतिपय धार्मिक विषयों पर विचार होकर नीचे लिखा सिद्धान्त निश्चित हुआ।

१. कान्यकुब्ज, मैथिल, भूमिहार, गौड़, उत्कल अथवा समस्त ब्राह्मण जाति मात्र में परस्पर कैसा व्यवहार होना चाहिए?

उत्तर– समस्त ब्राह्मण जाति मात्र में परस्पर (नमस्कार) का व्यवहार होना चाहिये। किन्तु जहाँ अवस्था, विद्या, संबन्धादि की उच्चता हो वहाँ प्रणामादि का व्यवहार हो।

२. भूमिहार ब्राह्मण किस श्रेणी में हैं?

उत्तर– देश भेदानुसार पंच गौड़ों के ही अन्तर्गत हैं।

३. भूमिहार ब्राह्मणों को ६ कर्म्म का अधिकार है या नहीं?

उत्तर– हाँ अवश्य ६ कर्मों का अधिकार है।

४. हस्तदकदान और कुशोदकदान में शास्त्रविहित उत्तम दान कौन है?

उत्तर– हस्तोदकदान शास्त्र विहित होने से उत्तम है, कुशोपरि दान ब्राह्मण के अभाव में काल्पनिक है।

५. एकादशाह के दिन आंगन में सामान्य दान के नाम से जो दूसरा शय्यादान होता है वह होना चाहिये या नहीं?

उत्तर– दूसरे शय्यादान की विशेष व्यवस्था शास्त्र में नहीं है; करना न करना समाज का अधिकार है।

खुद्दी झा	रासधानी सिंह (छितरौर)
देवी प्रसाद शुक्ल	परमेश्वरी प्रसाद सिंह (रहीमपुर)
धर्म्मदत्त त्रिपाठी	देवनाथ कर्म्मकाण्डी

दरभङ्गा के मैथिल महाराजाओं और महाराजकुमारों के पत्र ये हैं :–

(१) श्रीदुर्गा, श्रीमाधव, श्रीगणेश १

(माही) (मोहर)

महाराज श्री श्री रुद्र सिंह बहादुर देव देवानां सदा समरविजयिनां श्री कन्हैया शर्मा वो श्री देवी शर्मा ठीकेदारान तालुका पुसही प्रगन्ना पडरी देहात मिलकिअति सरकार के नमस्कार। आगां तालुका मजकूरक सन् १२५६ बारह सौं छप्पन साल के जागह मध्ये नौ हजार रुपैया ९०००) कलदार बारात कैल अछि कबज लै देव, एहांक तालुका मजकूरक वोआसिलवाकी मध्ये मोजर होएत। ९०००)।

इसका अर्थ यह है। पूर्वोक्त इस पत्र में जिन श्रीदेवीशर्मा, श्रीकन्हैया शर्मा का नाम है वे लोग पूर्वोक्त पतोरग्राम के श्री सर्यूप्रसाद मिश्र प्रभृति के पूर्वज थे, जिनके नाम से लहेरिया सराय (दरभङ्गा) में अब तक कन्हैया मिश्र का तालाब प्रसिद्ध है। और ये लोग दरभंगा राज के ठीकेदार थे। इसलिये महाराजा का यह पत्र रुपये के लिये आया है। जिसका अनुवाद यह है कि 'सदा समर विजयी देव देव महाराज श्री श्री रुद्र सिंह बहादुर का नमस्कार सरकारी मिलकियत तालुका पुसही परगना पड़री देहात के ठीकेदार श्री कन्हैया शर्मा और श्री देवी शर्मा को पहुंचे। आगे पूर्वोक्त तालुके की जगह १२५६ फसली के लिए ९०००) में आप को ठीके में तै की गई है। इसलिये रसीद लेकर रुपये भेजियेगा। आपकी

वासिल बाकी में उसका मोजरा दिया जावेगा। इस पत्र में ऊपर राजा की मुहर और मछली का चिन्ह बना हुआ है। ऐसा ही अन्य पत्रों में भी है। माही = मछली।

(२) श्रीदुर्गा, श्रीमाधव, श्रीगणेश १

(माही) (मुहर)

महाराजकुमार बाबू वासुदेव सिंह देवानां श्री कन्हैया लाल शर्मा के नमस्कार। आगां मौजे वेलौजा गैरह प्रगन्न जरैल देहात मिलकियत सरकार बाबति मालगुजारी महाल वैजु पैडीक मौजे मजकूरक सन् १२५३ बारह सै त्रिपन सालक जागह मध्य बारात कैल अछि कबज लै देव श्रीकन्हाई चौधरीक बत्तीस हजार एकानवै रुपैआ मध्य दुई हजार एक सौ तीस रुपैया चौदह आना कयने छी। २१३०।।।=)।

अर्थ यह है:– महाराज कुमार बाबू श्री बासुदेव सिंह देव का कन्हैया लाल शर्मा को नमस्कार। आगे मौजे वेलौजा परगना जरैल महाल वैजूपट्टी की सरकारी मिलकियत की मालगुजारी का ठीका सन् १२५३ के लिये आपको दिया गया है, रसीद लेकर रुपये कन्हाई चौधरी को दीजियेगा। उनके जिम्मे ३२०९१) में से २१३०।।।=) किये गये हैं।

(३) श्रीदुर्गा, श्रीमाधव, श्रीगणेश १

(मुहर) (माही)

महाराज श्री श्री छत्रसिंह बहादुर देव देवानां सदा समर विजयिनां श्री गिरधारी शर्मा ठीकेदार वो श्री जुपाल शर्मा माल जामीन मौजे हरिआ हरिपुर गैरह परगना पुडरी देहात मिलकिअति सरकारकं नमस्कार। आगां मौजे मजकूरक १२३३ तैतिस साल क जागह मध्ये बारात कैल अछि कबज लै देव चार रुपैआ आठ आना। एहांक मौजे मजकूरक वोआसिल बाकी मध्य मोजरा होएत।४।।)।

यह अर्थ है:-'श्री गिरधारी शर्मा और श्रीजुपाल शर्मा ठीकेदार मौजे हरिया हरिपुर परगना पुडरी देहात मिलकिअति सरकारी को देव देव सदासमर विजयी श्री श्री छत्रसिंह महाराज का नमस्कार। आगे पूर्वोक्त मौजे की जगह का ठीका सन् १२३३ के लिये आपको दिया गया है। रसीद लेकर ४।।) दीजियेगा। आपकी उस मौजे की वासिल बाकी में मोजरा होगा।

(४) श्रीदुर्गा, श्रीमाधव श्रीगणेश १

(माही) (मुहर)

महाराज श्री श्रीमहेश्वर सिंह बहादुर देव देवानां सदा समर विजयिनां श्री देवी शर्मा ठीकेदार मौजे नरगा गैरह प्रगन्ना नरगा गैरह देहात मिलकिअति सरकार के नमस्कार। आगे मौजे मजकूर गैरहक सन १२६१ सालक जागह बारात कैल अछि कबज लै देव रुपैया कलदार। एहांक मौजे मजकूर गैरहक बोआसिलवाकी मध्ये मोजर होयत। १९६७।=)।

इसका अर्थ यह है:-श्री देवी शर्मा ठीकेदार मौजे नरगा परगना नरगा देहात सरकारी मिलकियत को देव देव सदा समर विजयी महाराज श्री श्री महेश्वर सिंह बहादुर का नमस्कार। आगे पूर्वोक्त मौजा १२६१ के लिये आपको ठीके में दिया गया है। इसलिये रसीद लेकर १९६७।=) दीजियेगा। वह उस मौजे की वासिल बाकी में आपको मोजरा दिया जावेगा।

(५) श्री दुर्गा, श्री माधव, श्री गणेश १ (माही)

महाराजश्री श्री लक्ष्मीश्वर सिंह देव बहादुर देव देवानां सदा समर विजयिनां श्री भगवत प्रसाद शर्मा कै नमस्कार। आगां ता० ३० जून मोताबिक आषाढ़ वदी ९ रोज शुक कुमैटी करतथु अछि तैं यहाँ बरोबरी मोकाम दड़िभगा हाजिर आएब। इति आषाढ़ वदी १५ सन् १२९० साल।

अनुवाद यह है:-श्री भागवत प्रसाद शर्मा को देव देव सदासमर विजयी महाराज श्री श्री लक्ष्मीश्वर सिंह देव बहादुर का नमस्कार। आगे ता० ३० जून आषाढ़ वदी ९ शुक्रवार को दरभङ्गा में कमिटी होगी। इसलिये आप अवश्य दरभङ्गा मुकाम पर आवेंगे। इति आषाढ़ वदी १५ सन् १२९० फसली।

(६) श्री दुर्गा, श्री माधव, श्री गणेश १ (माही)

महाराज कुमार बाबू श्री गुणेश्वर सिंह देवानां श्री देवी शर्मा के नमस्कार। आगां एहांक ऐवाक हजूर जरूर अछि, तं लिखल दिखैत बहुत जल्द हजूर हाजिर होएव, ऐवा अर्सा हरगिज हरगिज जनि करिअ। इति सावन वदी सन १२६० साल।

इसका अर्थ यह है कि श्री देवी शर्मा को महाराज कुमार बाबू श्री गुणेश्वर सिंह देव का नमस्कार। आगे दरबार में आप के आने की आवश्यकता है। इसलिये पत्र देखते ही बहुत जल्द आइयेगा। आने में हरगिज हरगिज देर न होवे। इति सावन वदी सन १२६० फसली।

इन पूर्वोक्त पत्रों के अतिरिक्त और बहुत से पत्र महाराज बहादुरों और उनके वंश वालों के पतोर तथा अन्य ग्राम वाले पश्चिमा ब्राह्मणों के नाम से हैं, जिनमें स्पष्ट रूप से शर्मा का प्रयोग है और उन लोगों ने पश्चिमा ब्राह्मणों को नमस्कार ही लिखे हैं। परन्तु उनके लिखने से विस्तार हो जायगा। इसलिये आवश्यकता पड़ने पर वे भी दिखलाये जा सकते हैं। अब दरभङ्गा महाराजाओं के दो पत्र और दिखला कर दूसरी बातें लिखेंगे। उनमें से एक रामगढ़ (नरहन) के श्री कामेश्वर नारायण सिंह द्रोणवार ब्राह्मण के नाम से इस प्रकार है, जो वर्तमान महाराजा बहादुर का है:–

(७) श्री दुर्गा, श्रीमाधव, श्री गणेश १

स्वस्ति। सर्वोपमा योग्य मर्यादा सागर बाबू श्री कामेश्वर नारायण सिंह महाशयेषु विविध विरुदावली विराजमान मानोन्नत महाराजाधिराज मिथिलेश श्री ३ रामेश्वर सिंह बहादुर देव देवानां सदा समर विजयिनां नमस्कारः। शमिह, तत्रत्य तदनुदिवसमीहामहे। अथोदन्तः, एहांक पिताक अचानक परलोक गमन सुनि बहुत खेद भेल, एहां बालक छी शोक बहुत करैत होएब ते जिज्ञासार्थ ओ आश्वासन देवाक हेतु म० म० पण्डित श्री चित्रधर मिश्र के पठावोल अछि धैर्य कए आश्वासन राखब दैवाधीन विषय में साध्य की। विशेष कुशल लिखब इति। माघ शुक्ल पंचम्यां शुक्रे सन् १३११ साल।

अनुवाद यह है:-स्वस्ति, सर्वोपमा योग्य मर्यादा-सागर बाबू श्री कामेश्वर नारायण सिंह महाशय को विविध विरुदावली विराजमान मानोन्नत महाराजाधिराज मिथिलेश श्री ३ रामेश्वरसिंह देव बहादुर देव देव का नमस्कार। यहाँ कुशल है, आपकी कुशल चाहते हैं। समाचार यह है कि आपके पिता का अचनाक परलोकवास सुन कर बहुत ही खेद हुआ। आप बालक हैं। इसलिए बहुत शोक करते होंगे। इसलिये जिज्ञासा और सन्तोष देने के लिये महामहोपाध्याय पंडित श्री चित्रधर मिश्रजी को पठाते हैं। धैर्य करके सन्तोष रखियेगा,

दैवाधीन बात में वश ही क्या है? विशेष हाल लिखियेगा। इति। माघ शुक्ल ५ शुक्र सन् १३११।

निम्नलिखित पत्र काशिराजकुमार श्रीमान प्रसिद्ध नारायण सिंह जी के नाम से आया था, जिसमें मैथिल ब्राह्मण शिरोमणि मिथिलेश महाराज श्री रुद्रसिंह जी ने प्रणाम लिखा है। वह इस प्रकार है:-

(८) श्रीदुर्गा, श्रीमाधव श्रीगणेश १

मदीश्वर।

स्वस्ति। देवद्विजवर दत्त सदा शोभराशि सदाशुभधाम गुणिगण गीत यशोभरशारद शशधर दीपित नाममहाराजाधिराज कुमार बाबू श्री प्रसिद्धनारायण सिंह महाशयेषु विविध विरुदावली विराजमान मानोन्नत महाराजाधिराज मिथिलाधीश श्री श्री श्रीमद्रुद्र सिंह बहादुर देव देवानां सदा समर विजयिनां प्रणतिराशयो विलसन्तु। शमिह, तत्रत्यं तदीशादीहामहे। अथोदन्तः, निमन्त्रण पत्र श्री श्री श्रीकाशिराज बहादुरक द्विरागमनक पहुंचल से देखि अत्यन्त चित्त के आनन्द प्राप्त भेल। श्री मथुरानाथ ठाकुर के पठाबोल अछि न्यौंताक रसूम बमोजिब तपसील दाखिल करताह। श्री भगवानक कृपा सं वोतयक सभक कुशल वो ई कार्य सम्पन्न होयवाक वार्ता शीघ्र लिखल जायत ये चित्त आनन्द होय इति। लेखोऽय माधव सित पंचम्यां चन्द्रात्मजे समजनीति। ॐ॥

इसका अर्थ यह है कि देवता और श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा दी गई शोभा की राशि, सदा तेजस्वी, गुणी लोग जिनकी कीर्ति का कीर्त्तन करते हैं, और जिनका नाम द्विजराज पद से शोभित है ऐसे महाराजाधिराज श्रीकाशिराज के कुमार श्री बाबू प्रसिद्ध नारायण सिंह महाशय जी को विविध विरुदावली विराजमान और मानोन्नत महाराजाधिराज मिथिलाधीश देव देव सदा समर विजयी महाराज श्रीमत् रुद्र सिंह बहादुर का प्रणाम। यहां कुशल है, आपकी कुशल ईश्वर से चाहते हैं। वृत्तान्त यह है कि श्री काशिराज बहादुर के द्विरागमन का पत्र पहुँचा। उसे देख कर प्रसन्नता हुई। श्री मथुरानाथ ठाकुर को भेजते हैं, वे नेवता की रस्म यथोचित रीति से पूरी करेंगे। श्री भगवान की कृपा से वहां के सब लोगों की कुशल और इस कार्य के पूरा होने का हाल लिखियेगा, जिससे चित्त को आनन्द होवे। बैशाख शुक्ल ५ बुधवार।

इन पत्रों से स्पष्ट है कि जब मैथिल ब्राह्मणों के शिरोमणि लोग इन अयाचक दलीय ब्राह्मणों को नमस्कार या प्रणाम आज तक बराबर करते आये और करते हैं, स्पष्ट शब्दों में 'शर्मा' या 'ब्राह्मण' शब्दों से व्यवहार करते हैं, तो फिर अब ब्राह्मण मानना किसे कहते हैं? इसके अतिरिक्त पूर्वोक्त व्यवस्था में काशी के प्रसिद्ध गणनीय विद्वान् तात्याशास्त्री से लेकर मिथिला के महामहोपाध्याय श्री चित्रधर मिश्र जी और अन्य ब्राह्मणों की सम्मतियां दिखला ही चुके हैं।

महामहोपाध्याय तर्कवारिधि श्रोत्रिय श्री कृष्ण सिंह ठाकुर भी अपनी 'ब्राह्मण वंश विवेक' नामक मैथिल ब्राह्मण वंशावली में यही दिखलाते और स्पष्ट रूप से इन अयाचक दलीय ब्राह्मणों को ब्राह्मण पद से सम्बोधन करते हुये मैथिलों और भूमिहार ब्राह्मणों को एक ही बतलाते हैं। जैसा उस पुस्तक के अन्त में यह विज्ञापन या नोटिस सर्वसाधारण को देते हुये लिखते हैं कि,—

मैथिल ब्राह्मणानां भूमिहार ब्राह्मणानां चोपकार बुद्ध्या सर्वसीमाग्रामवास्तव्येन तंत्र्वावन्महेश्वरात्मजेन तर्क वारिधिना श्रोत्रियेणखण्डवलावंशजेनठक्कुरोपाह्व श्रीकृष्ण शर्मणा नानानिबन्ध पुराणादीन्यवलोक्य यथामति ब्राह्मणवंश विवेकनामकोऽयंनिबन्धःखलु विरचय्य मुद्रापयित्वा प्रकाशितः।

इसका अनुवाद यह है कि 'मैथिल ब्राह्मणों और भूमिहार ब्राह्मणों के उपकार के लिये सर्वसीमाग्रामवासी तन्त्रज्ञ महेश्वर पण्डित के पुत्र तर्कवारिधि, श्रोत्रिय और खण्डवला मूल वाले श्री कृष्ण ठाकुर शर्मा ने पुराणादि नाना ग्रन्थों को देख अपनी बुद्धि के अनुसार इस ब्राह्मणवंश विवेक नामक ग्रन्थ को रच कर प्रकाशित किया।'

इस वाक्य में कई बातें समझने योग्य हैं। एक तो यह कि उन्होंने अपनी जाति वाले ब्राह्मणों को समझाने के लिये जैसे ब्राह्मण शब्द से पूर्व 'मैथिल' विशेषण जोड़ा है, वैसे ही इन अयाचक दल वाले ब्राह्मणों को बतलाने के लिये ब्राह्मण शब्द से पूर्व भूमिहार विशेषण लगाया है। इसलिए जैसे मैथिलों को वे ब्राह्मण समझते हैं, ठीक, वैसे ही भूमिहारों को भी, यह उनकी इस लेखशैली से स्पष्ट है। दूसरी बात यह है कि जब 'ब्राह्मणवंशविवेक' नामक ग्रन्थ मैथिल ब्राह्मणों की वंशावली ठहरी, क्योंकि इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही उनकी यह प्रतिज्ञा हो चुकी है कि:—

पञ्जीप्रबन्धसारांशादुद्धृत्य विदुषां मुदे।
मैथिल द्विजवंशानां गोत्रादीन् वच्मि यत्नतः॥

अर्थात् 'पञ्जी नामक मैथिल की प्राचीन लिखित बड़ी वंशावलियों से सारांश निकाल कर मैथिल ब्राह्मणों के गोत्रादि का वर्णन किया जाता है, तो फिर यदि उससे उपकार की सम्भावना है तो केवल मैथिल ब्राह्मणों का नहीं तो फिर सभी ब्राह्मणों का उससे उपकार हो सकता है, न कि केवल मैथिलों और भूमिहार ब्राह्मणों का। तो फिर अन्त में यह लिखना कि 'मैथिल ब्राह्मणों और भूमिहार ब्राह्मणों के उपकार के लिये यह ग्रन्थ बनाया गया है' क्या यह सिद्ध नहीं करता कि श्रीकृष्ण सिंह ठाकुर के मत में मैथिल ब्राह्मण और भूमिहार ब्राह्मण एक ही हैं? इसीलिये दोनों की उपाधियां और गोत्र एवं मूलादि कम से कम मिथिला में प्रायः एक ही मिलते हैं। नहीं तो क्या पञ्जी में मैथिलों को छोडकर किसी अन्य ब्राह्मण समाज के भी गोत्रादि लिखे गये हैं, जिनके सारांश से भूमिहार ब्राह्मणों का भी उपकार हो सकता है? तीसरी बात यह है कि जब उस ग्रन्थ का नाम 'ब्राह्मणवंशविवेक' है और इसीलिये उसमें केवल ब्राह्मणों के वंशों का वर्णन है, तो फिर उससे भूमिहार ब्राह्मणों का उपकार उसी दशा में हो सकता है यदि वे ब्राह्मण माने जावें। नहीं तो जो ब्राह्मणों के नाम या समाज से बाहर हैं, उनका ब्राह्मण वंश, या गोत्र अथवा मूल के निरूपण से क्या लाभ हो सकता है?

इसके अतिरिक्त मैथिल महा सभा के भागलपुर वाले अधिवेशन के विवाह सम्बन्धी प्रस्ताव का वर्णन प्रथम ही कर चुके हैं। उस प्रस्ताव में भी, जैसे श्रीकृष्ण सिंह ठाकुर ने 'भूमिहार ब्राह्मण और मैथिल ब्राह्मण' लिखा है, वैसे ही 'बहुत मैथिल ब्राह्मण भूमिहार ब्राह्मणों से विवाह करते हैं' ऐसा लिखा गया है। इसलिये श्रीकृष्ण ठाकुर की तरह मैथिल महासभा भी ब्राह्मणों के बराबर दो विशेषण मैथिल और भूमिहार देकर दोनों को समान ही ब्राह्मण स्वीकार करती है। मैथिल समाज का 'मिथिला मिहिर' पत्र तो बराबर इन अयाचकों को ब्राह्मण लिखा ही करता है। इसीलिये मैथिल तो स्पष्ट रूप से पश्चिमा लोगों को ब्राह्मण मानते हैं। नीचे लिखी हुई व्यवस्था से भी यह बात स्पष्ट है। वह व्यस्था इस प्रकार की है:—

श्री गणेशाय नमः।

सांढ़ानगरे सम्पादितायां सभायां भूमिहार शब्देन प्रसिद्धानां कान्यकुब्जब्राह्मणानां सर्यूपारीप्रभृतिब्राह्मणान्तरैः सह परस्परं नमस्कारो युज्यते न वेति प्रश्ने उत्तरम्। युज्यते नमस्कार इति। तथाहि सम्प्रदायानुसारि कान्यकुब्जब्राह्मणव्यवहारस्याधिककालव्यापकस्य दर्शनात्, श्रुतिस्मृतिपुराणेति– वनसिद्धस्य चूडाकरणोपनयनादिसंस्कारस्य तथासंन्ध्यावन्दनादि नामांकित द्विजातिविहितकर्मणां समाचारस्यदर्शनात्, गर्भाष्टमेब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्। ब्रह्म वर्चस कामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे, इति वचनेनैव चोपनयने व्यवस्था दृश्यते, अन्यथाराज्ञामेकादशे सैके विशामुपनयनक्रियेत्यादिना व्यवस्था स्यात्, नच तथा भवति। तथा मिताक्षरायां वर्णाश्रमेतराणां नो ब्रूहि धर्मानशेषत इतिवचनव्याख्यायां ब्राह्मणो ब्रह्मचारी पालाशदण्डंबिभृयादित्यादिना प्रदर्शितोव्यवहारएव भूमिहारब्राह्मणानामुपनयनादौ प्रचरितः संगच्छते।

यद्यपिषट्कर्मा ब्राह्मणो भवेदित्यादिना सर्वेषां ब्राह्मणानांषट्कर्माणि भवन्ति, एतेषांभूमिहारब्राह्मणानांच त्रीण्येव कर्माणि अध्ययनं, यजनं, दानं चेति दृश्यते, तानि च क्षत्रियाणां वैश्यानांचाप्युपलभ्यन्ते। तथा चैते भूमिहारब्राह्मणाब्राह्मणान्तराणां नमस्कारयोग्यानेति युक्तं वचः। तथापि ब्राह्मणानां सर्वेषामपि त्रीण्येव कर्माणि यजनमध्ययनं दानंचेतिप्रशस्तानि, अवशिष्टान्यन्यानित्रीणिजीविकार्थान्येव भवन्ति, एवं चाध्यापकस्यायाज्ययाजकस्य शूद्रादितः प्रतिग्राहकस्य च मनुस्मृतिप्रभृतिभिरुक्तं प्रायश्चित्तं संगच्छते।

अपि चाभिषेकादिगुणयुक्तस्य राज्ञः प्रजापालनं परमो धर्म इति लिखितवता मिताक्षराकारेण क्षात्रेण कर्मणाजीवेद्विशां वाप्यापदिद्विज इत्यादितः स्वीकृतं कथंचिद्ब्राह्मणस्यापि राजधर्मपालयतः प्रतिग्रहादीनि त्रीणि कर्माणि निवर्तन्त इति, नतु क्षत्रिय वैश्यवत्पुत्रादिभ्य आचार्येभ्यो गायत्रीदानादीनि निवर्तन्ते इति। तथा वरपक्षीयाणां भूमिहारब्राह्मणानां कन्यापक्षीयैर्ब्राह्मणान्तरैः सह नमस्कारो भवति। अतएवान्योन्यं विप्रान-मन्तीत्यादीन्याप्तवाक्यानिसंगच्छन्ते। अतएवोपनयन कर्मण्येतेषामपि अभि-वादयेविष्णुशर्माऽहंभो इत्यभिवादनं तथाऽऽयुस्मान् भव सौम्येति प्रत्यभिवादनं च संगच्छते। कन्यापक्षीयेभ्यो वरपक्षीयाणां नियतंधनादानं कान्यकुब्जेष्वेवहि प्रसिद्धम्।

करिकरभूमिगतेऽब्दे शिवतिथिशौचवलक्षपक्षे।
इदमन्निकवीविशुद्धधर्मावितरतिपंक्तिमुक्तिनाथशर्मा॥

शाके १८२८ आषाढशुक्ल पक्षीयाष्टमनीतिकियुक्ते शुक्रदिने व्यवस्थापत्रं समाप्तिमगात्।

(१) सम्मतिरत्रार्थे श्री देवकीनन्दनशर्मणः
(२) " " श्री हरिवंशशर्मणः।
(३) " " श्री रामप्रकाशशर्मणः।
(४) " " पं० श्यामानन्दपाण्डेयस्य।
(५) " " ज्योतिर्विद् विद्यानन्दपाण्डेयस्य।
(६) श्री शिवानन्दशर्मा सम्मन्यते।

(७) सम्मतिः श्रीअवधशरणशर्मणः।
(८) सम्मतिः श्रीबच्चूशर्मणः।
(९) विप्राणां विप्रान्तरैः सह नमस्कारोयुक्ततर
इति श्रीमद्रामलोचनशर्मापि।

इसका मर्मानुवाद इस प्रकार है कि 'मुजफ्फरपुर जिले के सांढ़ा गाँव में एक सभा करके यह प्रश्न हुआ कि भूमिहार नाम से प्रसिद्ध जो कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं उनका सर्यूपारी प्रभृति अन्य ब्राह्मणों के साथ परस्पर नमस्कार होना चाहिये अथवा नहीं? इसका उत्तर यह हुआ कि 'होना चाहिए'। क्योंकि बहुत दिनों के परम्परानुसार इन लोगों के सभी व्यवहार कान्यकुब्जों के से हैं, जैसे श्रुति, स्मृति, पुराण और इतिहास सिद्ध जो ब्राह्मण के चूड़ाकरण प्रभृति संस्कार और सन्ध्यादि हैं वे सभी इन लोगों में पाये जाते हैं। 'गर्भ धारण से अष्टम वर्ष में ब्राह्मण का उपनयन संस्कार होना चाहिये' परन्तु यदि ब्रह्म तेज की इच्छा हो तो पांच वर्ष में ही, इस मनुस्मृति के अनुसार ही इनके संस्कार होते हैं। नहीं तो क्षत्रिय का ११ और वैश्य का १२ वर्ष बाद उपनयन करना चाहिये' इस वचन के अनुसार होते। और 'वर्ण, आश्रम और इनसे भिन्नों के धर्म हम लोगों को सुनाइये' इस याज्ञवल्क्यस्मृति के वचन के व्याख्यान के समय मिताक्षराकार ने जो लिखा है कि ब्राह्मण ब्रह्मचारी पलाश का दण्ड धारण करे इत्यादि उसी के अनुसार भूमिहार ब्राह्मणों के उपनयन संस्कार होते हैं।

यद्यपि 'ब्राह्मण षट्कर्मा होते हैं' इत्यादि वचनानुसार सभी ब्राह्मणों के अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह ये षट्कर्म होते हैं, परन्तु इन भूमिहार ब्राह्मणों में तो यजन, अध्ययन और दान ये तीन ही कर्म पाये जाते हैं, जो क्षत्रियों और वैश्यों में भी पाये जाते हैं। इसलिये भूमिहार ब्राह्मण अन्य ब्राह्मणों के नमस्कार योग्य नहीं हैं, यह शंका हो सकती है। तथापि सभी ब्राह्मणों के धर्म के लिये उत्तम कर्म यजन, अध्ययन और दान ये तीन ही हैं, शेष तीन तो केवल जीविका के लिये हैं। इसलिए मनुस्मृति प्रभृति धर्मशास्त्रों में अध्यापनादि करने में दोष भी लिखा है।

एक बात और भी है कि मिताक्षराकार ने 'अभिषेक होने पर राजा का परम धर्म है कि प्रजापालन करे' यह लिखते हुए यह स्वीकार किया है कि 'ब्राह्मण आपत्ति काल में क्षत्रिय और वैश्य के धर्मों से भी जीविका कर सकता है। इसलिए किसी प्रकार से ब्राह्मण भी यदि राजधर्म का पालन करे तो प्रतिग्रहादि तीन धर्म वह नहीं कर सकता'। और जैसे क्षत्रिय प्रभृति उपनयन काल में आचार्य बन कर ब्रह्मचारी को गायत्री का उपदेश नहीं कर सकते, वह बात इन भूमिहार ब्राह्मणों में नहीं है, किन्तु ये लोग आचार्य बन कर उपनयन काल में गायत्री का उपदेश करते ही हैं। और भूमिहार ब्राह्मणों में कन्या और वरपक्ष वाले परस्पर नमस्कार करते हैं, क्योंकि लिखा भी है कि 'ब्राह्मण परस्पर नमस्कार ही करते हैं'। उपनयन काल में इन लोगों के यहाँ ब्रह्मचारी यही कहकर नमस्कार करता है कि 'मैं अमुक शर्मा नमस्कार करता हूँ,' और लोग उनके उत्तर में यही कहते हैं कि 'हे सोम्य, आयुष्मान हो'। जैसा ब्राह्मणों को ही करना चाहिये। एक बात यह भी है कि इन लोगों के यहाँ विवाह में 'तिलक' लेने की प्रबल प्रथा है जो कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में ही प्रबल रूप से पाई जाती है। इसलिये ये लोग कान्यकुब्ज ब्राह्मण ही हैं। इसलिए अन्य ब्राह्मणों के साथ इनका परस्पर नमस्कार बहुत ही उचित है। इस व्यवस्था को मैंने १८२८ शकाब्द आषाढ़ शुक्लपक्ष शुक्रवार को लिखा। हस्ताक्षर पंडित मुक्तिनाथ शर्मा। (१)।

(२) मेरी भी सम्मति इस विषय में है, ह० श्रीदेवकीनन्दनशर्मा।
(३) " " " " " श्री हरिवंशशर्मा।
(४) " " " " " श्रीरामप्रकाशशर्मा।
(५) " " " " " पं० श्यामनन्दन पांडेय।
(६) " " " " " ज्योतिर्विद् विद्यानन्द पांडेय।
(७) मैं इसे मानता हूँ, हस्ताक्षर श्री शिवानन्दशर्मा।
(८) " " " " " श्री अवधशरण शर्मा।
(९) " " " " " श्री बच्चू शर्मा।
(१०) ब्राह्मणों का परस्पर नमस्कार बहुत ठीक है। हस्ताक्षर श्रीमद्रामलोचन शर्मा।

इस व्यवस्था से सिद्ध है कि कान्यकुब्ज और सर्यूपारी ब्राह्मण इन अयाचक दलवाले ब्राह्मणों को स्पष्ट शब्दों में ब्राह्मण स्वीकार करते हैं, बल्कि कान्यकुब्ज ब्राह्मण सिद्ध करते हैं। यह ठीक भी है, क्योंकि इन ब्राह्मणों का 'भूमिहार' विशेषण या नाम कान्यकुब्जों से ही प्रथम चला है, जैसा प्रथम ही दिखला चुके हैं। मैथिलों या सारस्वतों के भी इस कथन को कि ये लोग मैथिल या सारस्वत हैं हम मानते हैं और प्रथम सिद्ध भी कर चुके हैं। क्योंकि ब्राह्मणों में यह एकदल भी उसी समय पृथक् हुआ जब अन्य कान्यकुब्जादि दल पृथक् हुये और जब सभी देश के ब्राह्मणों का व्यवहार प्रायः मिला हुआ था। इसलिए जो जिस में मिल गया वह उसी का हो गया। इस प्रकार इस दल में सभी जगह के धनी, मानी और प्रतिष्ठित अयाचक ब्राह्मण मिलते गये।

इस व्यवस्था में एक दो स्मरण योग्य बातें हैं जिन को प्रसंगवश कहकर पुनः उसी प्रकृत विचार को उठावेंगे। एक तो यह है कि इस में स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है कि इतर ब्राह्मण इन अयाचक दल के ब्राह्मणों को नमस्कार करें और ये लोग भी उन्हें नमस्कार ही करें। और महाराज दरभंगा प्रभृति ने अपने पत्रों में भी इन लोगों को नमस्कार ही लिखा है। फिर जो मैथिल या अन्य ब्राह्मण बिल्कुल योग्यता से हीन हैं और गुरु या पुरोहित भी नहीं हैं, वे लोग जो प्रथम से ही इन लोगों के लिये बिना पूछे ही 'आशीर्वाद की टोकरी लिये आते हैं और 'आशीर्वाद बाबू' यह कहते फिरते हैं, उन्हें इससे शिक्षा ग्रहण करनी और अपनी भूल और दुर्बुद्धि अब से भी सुधार लेनी चाहिए। तथा अयाचक दलवाले ब्राह्मणों को यही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि वे दूसरे दलवाले योग्य ब्राह्मण को भी यदि करें तो 'नमस्कार' न कि प्रणाम आदि।

दूसरी बात यह है कि इसमें यह दिखलाया गया है कि कम से कम तिरहुत में ये लोग परस्पर अपने सम्बन्धियों के साथ 'नमस्कार' का व्यवहार रखते हैं। इनसे अन्य प्रान्त वालों को भी शिक्षाग्रहण करके परस्पर भी नमस्कार ही प्रचार करना चाहिये और बबुआई ठाट को कम से कम इस विषय में अब छोड़ देना चाहिए।

तीसरी बात ध्यान देने योग्य यह है कि जब इसमें स्पष्ट लिखा है कि कम से कम तिरहुत प्रान्त में लड़कों के उपनयन काल में घर वाले ही पिता, चाचा अथवा दायाद प्रभृति आचार्य होते और उन्हें गायत्री का उपदेश करते हैं, न कि गुरु या पुरोहित, जिसे हमने आंखों भी देखा है, और यह उचित भी है। क्योंकि जैसा प्रथम ही दिखला चुके हैं कि या तो

वही ब्राह्मण आचार्य हो सकता है जो वेदादि शास्त्रों को विधिवत् पढ़ावे, या पितादि ही हो सकते हैं। जैसा मनुजी ने द्वितीय अध्याय में लिखा है कि:-

निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि।
सम्भावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते॥ १४२॥

इसका अर्थ भी प्रथम ही कर चुके हैं। इसलिए गर्गस्मृति में लिखा है कि :-

पिता पितामहो भ्राता ज्ञातयो गोत्रजाग्रजाः
उपायनेऽधिकारी स्यात्पूर्वाभावे परः परः।

अर्थात् 'बालक के यज्ञोपवीत संस्कार काल में पिता, पितामह, भाई, दायाद, गोत्रवाले अथवा ब्राह्मण मात्र, यही लोग आचार्य होकर गायत्री का उपदेश कर सकते हैं। उन में भी क्रमशः पूर्व-पूर्व के श्रेष्ठ हैं। और उन के न रहने पर ही बाद वाले हो सकते हैं'। तो फिर पितादि के रहते ही पुरोहित प्रभृति क्यों आचार्य बनने का दावा करते और बनते हैं इसका कारण समझ में नहीं आता। इसलिए इससे उन प्रान्त वालों को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए जहाँ पुरोहितादि ऐसा अत्याचार करते हैं। जिससे यज्ञोपवीत काल में पिता, पितामह और भाई वगैरह ही आचार्य होवें और गायत्री का उपदेश करें, न कि कनफुंकवा गुरु या पुरोहित।

अस्तु, इसी प्रकार जौनपुर जिले के रामपुर ग्रामनिवासी पं० शिवराजमिश्र सर्यूपारी रचित और उनके वंशज पं० ताराप्रसाद मिश्र द्वारा सम्वत् १९५७ में प्रकाशित 'गौतमचन्द्रिका' नामक ग्रन्थ से स्पष्ट है कि उन्होंने कम से कम इन भूमिहार ब्राह्मणों में मिले हुए गौतम वंश मात्र को सर्यूपारी, पिपरा का मिश्र, गौतम गोत्री माना है। क्योंकि इन गौतम लोगों के आदि पुरुष कृष्णमिश्र या किट्टू मिश्र के विषय में ऐसा लिखा है कि:-

"पुनः आसुतोस परितोस कृपाचारज के वंशनु।
सर्यूपार निवास कियो सुखसो बलवन्तनु॥
पिपरामिश्र कहाइ तहां परिवार बढ़यो अति।
केतिकौ पुरुस निवास कियो जेहि कहत धीरमति।
परितोसवंस अवतंसमणि किट्टू मिश्र कहि गायो॥
शिवराज भणैं सरुवार तजि सो काशी सेवन आयो॥२॥
कह त्रैसत सन ही जरी सत्तरि मध्य सुजान।
काल भूप वन्दार के, काशी कर्‌यो टिकान॥ ३॥
हुती पयासी की सुता, ताको प्रेम विचारि।
ब्याह्यो तासों प्रगट भो, देवकृष्ण निरधारि॥ ४॥

हुती नाम की कन्या पयासी मिश्र (सर्यूपारी) की रही, वह (उसने) किसी के तिरस्कार से प्रन (ण) किया कि हम अपना विवाह किट्टू मिश्र से करेंगी। इस कारण किट्टू मिश्र ने उससे विवाह किया"। इत्यादि। इसके बाद उसी किट्टू मिश्र के वंश में काशी या अन्यत्र के गौतम मात्र को बतलाया है। इससे तो स्पष्ट ही उनका स्वीकार सिद्ध हो गया।

काशी में सर्यूपारी ब्राह्मण सभा की तरफ से स्थापित पाठशाला के अध्यक्ष, भदैनी निवासी पं० विजयानन्द त्रिपाठी ने जो पंक्ति पावन परिचय नामक सर्यूपारियों का इतिहास

लिखा है, उसके अन्त में जब काशी के प्रसिद्ध सर्यूपारियों के नाम गिनाये हैं, तो सबसे प्रथम महाराजाधिराज द्विजराज श्रीमत्प्रभुनारायणसिंह काशी नरेश को लिखा है। उसके बाद स्वामी मनीषानन्द (हरिनाथ शास्त्री), श्री सुधाकर द्विवेदी, पं० विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी, पं० चन्द्रभूषण चतुर्वेदी, श्री शिवकुमार शास्त्री, पं० नकछेदराम जी, पं० रामभवन जी, पं० कुबेरपति जी प्रभृति को उसी श्रेणी में गिनाया है।

उसी पुस्तक के २८वें पृष्ठ में भी आपने लिखा है कि "मुझे यह दिखलाना है कि काशी में सर्यूपारियों का दृढ़ निवास कब से हुआ। काशी का राजा जिसका नाम नहीं जानते, कदाचित् जयचन्द के समय में हुआ हो, गोहरण के क्रोध से एक मुसलमान को प्रतिदिन मारता था। स्वप्न में एक तपस्वी ने उसके इस कार्य की निन्दा की और उसके राज्यनाश की भविष्यवाणी कही। उसने यज्ञ किया और चारो दिशाओं से ब्राह्मणों को बुलाया। उनमें से एक श्री कृष्ण मिश्र सर्यूपारी थे। उनको धोखे से पान में लपेटकर एक ग्राम का दान पत्र. दिया। वे ही श्रीकृष्णमिश्र जी महाराज बरिवण्ड सिंह के पूर्वज थे"। इन बरिवण्ड सिंह जी का ही नाम बलवन्त सिंह भी था, जो वर्तमान काशिराज के पूर्वज थे।

कान्यकुब्ज वंशावलियों का हाल कह ही चुके हैं, जिसमें स्पष्ट ही लिख दिया है कि:–

अथकाश्यपमाख्यास्ये गोत्रं तु मुनिसम्मतम्।
पूर्ववंशावलि दृष्ट्वा ज्ञातं षष्टिशतत्रयम्॥ १॥
मदारावपुराख्यस्य भुंइहारा विजास्तु ये।
तेभ्यश्चयवनेन्द्रैश्च महयुद्धमभूत्पुरा॥ २॥ इत्यादि।

अर्थात् 'कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की पूर्व रचित ३६० वंशावलियों को देखकर उनके अनुसार ही काश्यप गोत्र का विवरण लिखते हैं। मदारपुर के अधिपति भुइंहार (भूमिहार) ब्राह्मणों और मुसलमानों से युद्ध हुआ,' इत्यादि। एक दो नहीं, किन्तु ३६० वंशावलियां यदि इस बात को स्वीकार करती हैं कि वर्तमान कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के काश्यप गोत्र से जो दूबे, तिवारी, अवस्थी, दीक्षित, अग्निहोत्री और मिश्र प्रभृति उपाधियों (आस्पदों या पदवियों) वाले ब्राह्मण हैं, वे सभी भूमिहार ब्राह्मणों की सन्तान हैं, तो फिर यही सिद्ध हो गया कि सम्पूर्ण कान्यकुब्जवंश ही इस बात को स्पष्ट रूप से मानता है कि ये जमींदार या भूमिहार ब्राह्मण ब्राह्मण ही क्या बल्कि बहुत से कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के पूर्वज हैं। यह बात जिस कान्यकुब्ज वंशावली को आप देखेंगे उसी में काश्यप गोत्र के निरूपण में पावेंगे।

भारतमित्र के सम्पादक पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी प्रभृति की सम्मति दिखला ही चुके हैं, जिन्होंने स्पष्ट ही लिख दिया है कि भूमिहारों के ब्राह्मण होने में सन्देह नहीं किया जा सकता। और इस बात को उन्होंने खूब ही सिद्ध किया है, जो दिखला ही चुके हैं। इससे निर्विवाद सिद्ध हो गया कि जैसे सम्पूर्ण मैथिल समाज इन अयाचक दल के सभी ब्राह्मणों को खुले रूप से ब्राह्मण मानता है, वैसे ही कान्यकुब्ज और सर्यूपारी समाज भी। सो भी एक प्रकार से नहीं किन्तु हर एक प्रकार से। और इतने ही ब्राह्मणों के साथ ही इनका घनिष्ठ सम्बन्ध भी है, क्योंकि इस देश में ये ब्राह्मण ही पाये जाते हैं। इसके सिवाय बंगाली ब्राह्मणों की सम्मति के बारे में भी हम यह कहते हैं कि वारेन्द्र या राढीय श्रेणी के ब्राह्मण दुर्गादास लहेरी महाशय ने जो पुस्तक 'पृथिवीर इतिहास' नामक बंगभाषा में लिखी और श्री धीरेन्द्रनाथ लहेरी ने हवड़ा (कलकत्ता) से प्रकाशित की है, उसके द्वितीय खंड के अध्याय २२ के ३४७वें पृष्ठ में जो कुछ लिखा है वह इस प्रकार है:–

मैथिल ब्राह्मण–भूमिहार ब्राह्मणगण मैथिल ब्राह्मण गणेरई एकटी शाखा बलिया प्रसिद्ध[१] इहांदेर उत्पत्ति सम्बन्धे किम्वदन्ती एई–परशुराम कर्तृक पृथ्वी निःक्षत्रिया हईले ये सकल ब्राह्मण सेई क्षत्रियगणेर भूसम्पत्ति ग्रहण करने, ब्राह्मणोचित क्रिया[१] कर्म परित्याग करिया राज्यशासनादि कार्ये व्रती हन, ताहाँराई भूमिहार–ब्राह्मण बलिया परिचित हइया छिलेन। आदम सुमारी रा तालिकाय ईहाँरा "बाभन" संज्ञाय अभिहित।

'इसका अनुवाद यों है:–

भूमिहार ब्राह्मणगण मैथिल ब्राह्मणों की शाखा मात्र हैं। उनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में किवदन्ती है कि जब परशुराम ने क्षत्रियों को नष्ट किया था, उस समय जिन ब्राह्मणों ने क्षत्रियों का राज्य लिया और राज्य कर्म में लगने से ब्राह्मणोचित कर्म (प्रतिग्रहादि) को त्याग दिया, उनकी ही सन्तान भूमिहार ब्राह्मण हैं। मर्दुमशुमारी में इनको बाभन लिखा है।

इसके अतिरिक्त उन लोगों ने वंग देश में रहने वाले भूमिहार ब्राह्मणों का नाम 'भूम्यधिकारी ब्राह्मण' ही रख दिया है, जैसा प्रथम ही कह चुके हैं और मुर्शिदाबाद–लालगोला के राजा साहब, जो गाजीपुर के 'पाली' नामक ग्राम के रहने वाले कौशिक गोत्री भूमिहार ब्राह्मण हैं, तथा कांदी प्रभृति स्थानों में जो भूमिहार ब्राह्मण रहते हैं, वे वहां केवल 'ब्राह्मण' कहे जाते हैं। वे सभी प्रायः संयुक्त प्रान्त से गये हैं, और वहां केवल मिश्र, पांडेय इत्यादि नामों से बोले जाते हैं, जैसे विकरा ग्राम में पं० गोपीनाथ तिवारी, काजिया खाली में पं० कार्तिक चन्द्र तिवारी, मुर्शिदाबाद-शेख अलीपुर में पं० रमाकान्त शुक्ल, पं० हरिनारायण मिश्र, आलमशाही ग्राम में पं० कार्तिक पांडे इत्यादि। मिदनापुर गढ़बीटा में श्री विनाशचन्द्र राय वगैरह।

यदि गौडों और सारस्वतों की भी सम्मति लेनी हो तो 'सारस्वत ब्राह्मण इतिहास' नामक ग्रन्थ को देखिये, जिसकी बहुत सी बातें प्रथम ही कह चुके हैं। वह सारस्वत ब्राह्मण पं० दुर्गादत्त ज्योतिषी जी का लिखा हुआ है और उसकी सारस्वत सभा तथा अन्य गण्यमान्य विद्वानों ने प्रशंसा की है, जिनकी सम्मतियां उस पुस्तक के अन्त में लिखी हुई हैं, जिनमें सारस्वत लोगों की संख्या विशेष है। उस ग्रन्थ में पश्चिमा या भूमिहार ब्राह्मणों के सभी राजाओं, बाबुओं, जमींदारों और दोनवार, किनवार सकरवार, जैथरिया और एकसरिया प्रभृति सभी छोटे विभागों को सारस्वत ब्राह्मण लिखा है। यह बात उस पुस्तक में आदि से अन्त तक पाई जाती है।

इसके अतिरिक्त बुलन्दशहर निवासी पं० गंगासहाय जी ने, जो सम्भवतः गौड़ ब्राह्मण हैं, अपनी पुस्तक 'ब्राह्मण कुलदीपक' के २२४वें पृष्ठ में लिखा है कि:–

और यह कौन नहीं जानता कि हिज हाईनेस महाराजा सर प्रभुनारायण सिंह बहादुर, जी०सी०आई०ई० काशी नरेश भी ब्राह्मण हैं इत्यादि।

---

१. हमने आनन्दामृतवर्षिणी पुस्तक पढ़ी थी। उसमें लिखा था कि जैसे अन्धों ने हाथी पाया हो और उसे हाथों से टटोला हो तो जो जिस भाग में टटोलेगा, वह समझेगा कि हाथी ठीक वैसा ही है। ठीक वैसी ही बात हमारे भूमिहार ब्राह्मणों के विषय में चरितार्थ होती है।

१. ब्राह्मणोचित क्रिया कर्म त्यागने का अर्थ मालूम होता है दान न लेने और पुरोहिती न करने से है। परन्तु जानना चाहिये कि ये जीविका के कर्म हैं, उन्हें हम ब्राह्मणोचित कर्म नहीं कह सकते। दूसरे ब्राह्मणों की दशा, जो अच्छी दशा में हैं, इनकी सी ही है।

इसके सिवाय गौड़ ब्राह्मण वंशावतंस व्याख्यान वाचस्पति पं० दीनदयालु शर्मा जी ने सोनपुर के अखिल भारतवर्षीय सनातन धर्म के सभा भवन में गत १९१५ ई० के कार्तिक के मेले के समय २० या २५ हजार मनुष्यों के सम्मुख जो सिंहनाद किया था, उसे भी सुन लीजिये। उन्होंने जो आलंकारिक वाक्य उस समय कहे थे, उनका उल्लेख ता० २७-११-१९१५ ई० के, पाटलिपुत्र में इस प्रकार है

'सभापति (महाराज दरभङ्गा) की बगल में बायीं ओर महाराज रीवां और दाहिनी ओर महाराज हथुवा विराजे। इन लोगों के यथा स्थान विराजने पर व्याख्यान वाचस्पति पण्डित दीनदयालु शर्मा ने खड़ा होकर आनन्द प्रकाश करते हुये कहा:-

महाराज रीवां के शुभागमन से आज यहाँ की अपूर्व शोभा हो गई है। जिस प्रकार हरिहर क्षेत्र में नारायणी, जाह्नवी और मही का संगम है, इसी प्रकार यहाँ रीवां, दरभङ्गा और हथुवा नरेशों का सम्मेलन हुआ है। कहना चाहिए कि यहाँ महाराज रीवां कृष्णभक्त होने के कारण विष्णुरूप से, हमारे सभापति महोदय (रामेश्वर) शिवरूप से और महाराज हथुवा ब्राह्मण होने के कारण ब्रह्मास्वरूप से एकत्र हुए हैं। आज इन त्रिदेवों का सम्मेलन यथार्थ में धर्मसम्मेलन हुआ है।''

उन्होंने स्पष्टरूप से महाराज हथुआ को ब्राह्मण शब्द से सम्बोधित किया था। इसलिये इससे बढ़कर स्वीकार किसे कहते हैं जहाँ मेले के सम्मुख पुकार कर कहा जा रहा है? इस प्रकार सिद्ध है कि सभी प्रकार के ब्राह्मण इन अयाचक ब्राह्मणों को स्पष्टरूप से स्वीकार करते थे और करते हैं।

यदि क्षत्रियों के स्वीकार की आवश्यकता होवे तो क्षत्रिय मूर्द्धन्य विष्णुपरायण रीवांनरेश महाराज श्री रघुनाथ सिंह, जी० सी० एस० आई० ने अपने हाथों लिखित 'रामस्वयम्बर' के ९८९वें पृष्ठ में जो वेंकटेश्वर प्रेस में सम्वत् १९५५ में छपा है, ऐसा लिखा है:-

गवने एक समय हम काशी। विश्वेश्वर के दर्शन आशी।
तहं को भूपति परम सुजाना। गौतम वंश सुविप्र प्रधाना॥
रामनगर गंगा तट माहीं। निवसत गौतम भूप तहांहीं॥
काशिराज महराज कहावैं। पुन द्विजराज प्रतिष्ठा पावैं॥
जासु नाम ईश्वरी प्रसादा। अन्तमाहिं नारायण वादा॥
मिल्यों जाई तिनसों हुलसि, मोहि लिय अंक लगाय॥
निज बालक इव जानि कै, दीन्हीं प्रीति बढ़ाय॥
सुनि मम वचन मुदित काशीशा। फेरत पाणिघाण करि शीशा॥
कीन्ह्यो मैं प्रणाम बहु बारा। आशिष दीन्ह्यौ भूप उदारा॥

इसके अतिरिक्त इन्हीं पूर्वोक्त महाराज बहादुर के सुयोग्य पुत्ररत्न वर्त्तमान रीवां नरेश श्रीमान् वेंकटरमण सिंह जी ने भी महाराजा हथुवा के साथ पूर्वोक्त सनातन धर्म सभा मण्डप में जनसमूह के सम्मुख ऐसा ही व्यवहार किया, जिसके साक्षी हजारों हैं। यह उनका कर्त्तव्य उचित भी है, क्योंकि 'आत्मा वै जायते पुत्रः', अर्थात् पिता की ही आत्मा पुत्र रूप से उत्पन्न होती है', इस वेदानुशासन के अनुसार महाराज श्री रघुराज सिंहजी की आत्मा ही ठहरे। उनके इस कर्त्तव्य का भी उल्लख पूर्वोक्त 'पाटलिपुत्र' के अङ्क में इस प्रकार किया गया है:-

इसी समय महाराज रीवां ने सभामण्डप के दरवाजे पर दर्शन दिया। जनता ने बड़े प्रेम से महाराज रीवां का स्वागत और अभिनन्दन किया। महाराज रीवां के सभामण्डप में प्रवेश करते ही महाराज दरभङ्गा और हथुवा ने सभा मण्डप के बीच अग्रसर हो महाराज की अभ्यर्थना की। ब्राह्मणभक्त महाराज रीवां ने इन दोनो नरेशों के पैर छू प्रणाम किया। यह दृश्य इस गिरे जमाने में भी ब्राह्मणगौरव का माहात्म्य बढ़ाने वाला था।

इसके अलावा भूतपूर्व खड्ग विलास प्रेस, बांकीपुर के अधिष्ठाता बाबू रामदीन सिंह ने 'विहार दर्पण' के १३९वें पृष्ठ में ऐसा लिखा है कि-

बहुत दिनों से यह झगड़ा चला आता था कि बाभन (भुइंहार) कौन वर्ण हैं। महाराज रामकृष्ण सिंह(टेकारी के भूतपूर्व महाराजा) ने निश्चय करवाया कि बाभन शब्द ब्राह्मण शब्द का अपभ्रंश है।

उसी ग्रन्थ के १२२, १२३वें पृष्ठ में भी लिखा कि:-

महाराज रामकृष्णसिंह देव बहादुर की जन्मभूमि सारन में एक गांव रूसी है। इनके पिता का नाम बाबू कैलाशपति सिंह था। और ये जाति के एकसरिया बाभन थे। इनके जीवन चरित्र के पहले यह जान लेना बहुत जरूरी है कि ये एकसरिया बाभन क्यों कहलाते हैं। लोग कहते हैं कि पंडितवर जगन्नाथ दीक्षित नामक एक ब्राह्मण कनौज से आकर एकसार गांव में बसे (यह गाँव छपरा के इलाके में है)। इसीलिए इस देश वाले एकसरिया ब्राह्मण और दीक्षित कहलाने लगे। उसी का अपभ्रंश अब एकसरिया बाभन हो गया है। यथार्थ में ये लोग कन्नौजिया ब्राह्मण हैं।

उसी ग्रन्थ के १२५, १२६वें पृष्ठों में इस प्रकार लिखा मिलेगा :-

और बाबू कैलाशपति सिंह का ब्याह भी इनके पिता ने कसवे शिवहर (तिरहुत में है) के राजा यदुनन्दन सिंह के भाई बाबू राधामोहन सिंह (यह जाति के जैथरिया बाभन थे) की लड़की से बड़ी धूमधाम से किया।

इनके अतिरिक्त ब्राह्मणादि वर्णों की ही कुछ स्फुट सम्मतियां दिखला देते हैं:-

पं० विष्णुकान्त झा, बी० ए०, सम्पादक, 'मिथिला मिहिर' ने सम्वत् १९६७ आषाढ़ के २ मंडल ६ प्रकाश में लिखा है कि 'अभी थोड़े दिन हुए कि टेकारी के ब्राह्मण महाराज ने एक मेम से विवाह किया है'। महाराज गोपालशरण सिंह जी की बात है।

स्वर्गीय डाक्टर राजा राजेन्द्रलाल मित्र ने अपने बंगला मासिक पत्र 'विविधार्थ संग्रह' के पर्व ४ खण्ड ४० पृष्ठ ७३ (शकाब्द १९७९ श्रावण मास) में लिखा है कि 'कान्यकुब्ज ब्राह्मण दीगेर पांच ठो दल आछे, यथा सरवरिंया, सनौढा (सनाढ्य), जिझौतिया, भूमिहार एवं प्रकृत कन्नौजिया।

बाबू गोपाल जी वर्म्मन ने अपनी पुस्तक 'जीव इतिहास प्रसंग' के तृतीय खण्ड के ५२वें पृष्ठ में लिखा है कि 'भूमिहार बाभन लोग निस्सन्देह ब्राह्मण हैं।'

स्वर्गीय महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी, काशी, सदा भूमिहार ब्राह्मणों को ब्राह्मण कहा करते थे। आप ने गत ३० अगस्त सन् १९१० ई० को बनारस के टाउनहाल में जो व्याख्यान किया था, उसमें आपने महाराज काशिराज को 'हमारे पूजनीय काशीनरेश' कहकर सम्बोधन किया था, जैसा 'नवजीवन' समाचार पत्र भाग २, अंक २० के देखने से विदित हो सकता है।

काशी के प्रायः सभी विद्वान चिरकाल से महाराज काशिराज को 'द्विजराज' और, 'शर्मा' कहकर सम्बोधन करते और लिखते हैं, जैसा स्वर्गीय महामहोपाध्याय पं० बापूदेवशास्त्री, सी० आई० ई० का पंचांग और काशी धर्म सभा का पंचांग देखने से स्पष्ट हो जावेगा। इस पंचांग को पं० बलदेवदत्त जी ज्योतिषी के पुत्र पं० गणेशदत्त जी ज्योतिषी रचते हैं, जिस पर काशी के सुप्रसिद्ध प्रायः ४०-५० विद्वानों के हस्ताक्षर रहते हैं।

नदिया पण्डित सभा के सभापति 'कमेण्टरीज औन हिन्दू ला' (Commentaries on Hindu law) और 'व्यवस्थाकल्पद्रुम' आदि ग्रन्थों के रचयिता पण्डित योगेन्द्रनाथ भट्टाचयर्य, एम० ए०, डी० एल० ने अपनी पुस्तक 'हिन्दू कास्ट्स एण्ड सेक्ट्स' (Hindu Castes and Sects) के प्रथमाध्याय में विहार और बनारस प्रान्त के भूमिहार ब्राह्मणों के सम्बन्ध में यों लिखा है:-

The clue to the exact status of the Bhumihar Brahmans is afforded by their very name. The word literally means a land-holder. In the language of the Indian feudal systems, Bhoom is the name given to a kind of tenure similar to the Inams and Jaggirs of Mohamedan times. By a Bhoom according to the Rajputana gazatteer an heriditary, non-resumable and inalienable Property in soil was inseparably bound up with a revenue-free title. Bhoom was given as compensation for bloodshed in order to quell a feud, for distinguished services in the field, for protection of a boarder or for the watch and ward of a village.

The meaning of the designation Bhumihar being as stated above, the Bhumihar Brahmans are evidently these Brahmans who held grants of land for secular services. Whoever held a secular field was Bhumihar. Where a Brahman held such a tenure he was called a Bhumihar Brahman. Where the holder was a Kshatriya he was called Bhumihar Kshatriya. Bhumihar Brahmans are sometimes called simply Bhumihars, just as the masons, whose class name in Bengalee is Raj mistri (Royal architect) are generally called Raj.

The Bhumihars observe all their religious ceremonies in the same manner as the good Brahmans, but as they practice secular occupations they like the Laukik Brahmans of Sothern India, are not entitled to accept religious gift or to minster to any one as priests. The usual surnames of the Bhumihar Brahmans are the same as those of other Brahmans of Northern India. Being fighting castes a few of them have Rajput surnames.

इसका मर्मानुवाद यह है कि 'भूमिहार ब्राह्मणों की असल स्थिति उनके नाम से ही झलक जाती है, क्योंकि इसका अर्थ जमीन रखने या स्वीकार करने वाला, अथवा जमींदार है। भारतवर्षीय 'जागीर प्रदान की रीति' की भाषा में 'भूमि' एक प्रकार के अधिकार का नाम है, जैसा मुसलमानी समय का इनाम या जागीर। राजपूताना 'गजेटियर' के अनुसार 'भूमि' उस पृथ्वी सम्बन्धी अधिकार का नाम होता था जो एक वंश परम्परा के लिये छीनी और

बेची न जा सके और सर्वथा कर (मालगुजारी) रहित होवे। किसी के यहाँ मारकाट होने पर बतौर खेसारा या तावान के कहीं विद्रोह के दमन के लिये, लड़ाई के मैदान में कोई महान कार्य करने के उपलक्ष्य में, सीमा प्रान्त की रक्षा के लिये, अथवा किसी गाँव की पहरा-चौकी या रक्षा के लिये 'भूमि' दी जाती थी।

जैसा ऊपर 'भूमिहार' शब्द का अर्थ कर चुके हैं, उसके अनुसार भूमिहार ब्राह्मण वे ब्राह्मण हैं जिन्होंने पूर्वोक्त सांसारिक कामों के करने के बदले पूर्वोक्त भूमि सम्बन्धी अधिकार प्राप्त किये थे। जिस किसी को उक्त लौकिक कार्यों के करने के बदले उक्त अधिकार मिलता था, वह 'भूमिहार' कहलाता था। इसलिये जब वह भूमि सम्बन्धी अधिकार किसी ब्राह्मण को मिलता था, तो वह भूमिहार ब्राह्मण कहलाता था। और जब किसी क्षत्रिय को अधिकार मिलता था तो वह भूमिहार क्षत्रिय कहलाता था। भूमिहार ब्राह्मण कभी-कभी केवल भूमिहार कहे जाते हैं जैसे बंगाल में जिनका नाम राज मिस्त्री है, वे केवल 'राज' बोले जाते हैं। भूमिहार ब्राह्मण अपने कुलधर्म, आचार-व्यवहार उसी प्रकार सम्पादन करते हैं, जैसे उत्तम ब्राह्मण करते हैं। ये लोग चूँकि सांसारिक व्यवसाय करते हैं, अतएव ये लोग दाक्षिणात्य लौकिक ब्राह्मणों की तरह दानग्रहण और पुरोहिती नहीं करते।' भूमिहार ब्राह्मणों की उपधियाँ साधारणतः वे ही हैं जो उत्तरीय भारत के अन्य ब्राह्मणों की हैं। केवल युद्धप्रिय होने के कारण इनमें किसी-किसी की उपाधियां क्षत्रिय लोगों की उपाधियों के सदृश भी हैं।'

बहुत ही युक्तियुक्त विचार किया गया है। इसका आभास (तात्पर्य) हम 'भूमिहार' शब्द का अर्थ करते हुये प्रथम ही दे चुके हैं और इन्हीं महाशय की सम्मति दिखलाने के लिये प्रथम ही कह भी चुके हैं। भट्टाचार्य महोदय के इस युक्तियुक्त लेख के विचार ने उस संशय का भी उच्छेद कर दिया, जो केवल अज्ञान मूलक कहीं-कहीं 'भूमिहार' नाम वाले क्षत्रियों को देख या सुनकर इन अयाचक दलीय ब्राह्मणों के विषय में हुआ करता है। इस शंका का विशेष रूप से खण्डन द्वितीय प्रकरण में भी किया जावेगा।

ता० ११ दिसम्बर सन् १९१० ई० के 'वीर-भारत' पत्र में ऐसा लिखा गया है; 'काशी नरेश इस समय कलकत्ते में हैं। आपको लार्डमिण्टो सामन्त राजा का अधिकार दे गये हैं। महाराज की जाति है ब्राह्मण। आप बनारस के हिन्दुओं के शिरोमणि कहे जाते हैं। इसी से कहना पड़ता है कि सरकार ने महाराज को सम्मानित कर सनातन धर्मावलम्बी मात्र को सम्मानित किया है। महाराज को कलकत्ते की कई सभाओं ने बड़ी धूमधाम से अभिनन्दन पत्र दिया है।

यथा :-

स्वस्ति, विविधविरुदावलीविराजमान मानोन्नत महाराज श्री काशिराज प्रभुनारायण सिंह शर्मा, जी० सी० आई० ई० महोदय महोदारचरितेषु इत्यादि।

काशी नरेश को 'ब्रिटिश इण्डियन एसोशियेशन' ने उस दिन जो यह एड्रेस दिया था, उसके उन श्लोकों को हम नीचे छापते हैं, जो उनके सम्मानार्थ पढ़े गये थे :-

कारुण्याद्भवतेश्वरप्रतिकृतेर्यद्भारताधीशितुः,
स्वाम्यं लब्धमखण्डिताक्षमधुना श्रीकाशिकामण्डन
स्वे राज्ये द्विजराज ! तेन मुदितैर्वङ्गीयविद्वद्द्विजैः,
दत्तं प्रीतिमयं गृहाण कृपया सद्भावपुष्पाञ्जलिम् १

सार्द्धं कुमारसचिवादिभिरास्तवर्गैर्दीर्घायुराधिरहितोयशसा प्रदीप्तः। वाराणसीक्षितिपते विजयस्व शश्वत्प्रोल्लासयन्न-खिलभारतमुज्ज्वलः श्री ॥ २ ॥ राजकीय संस्कृतविद्यालयाध्य-क्षस्य संस्कृतपरीक्षासमितिसम्पादकस्य वंगीयाध्यापकवर्ग-प्रतिनिधिभूतस्य श्रीकालीप्रसन्नदेवर्शर्मणः ॥

मर्यादा भाग १ संख्या २ पृष्ठ २३ में लिखा गया है कि 'यों तो ब्राह्मणों में कई विभाग हैं, तो भी दो प्रसिद्ध विभाग हैं, एक दान लेने और पुरोहिती करने वाले और दूसरे इन कर्मों से पृथक् रहने वाले। इनमें से कोई किसी को ऊँचा-नीचा नहीं कह सकता'।

'बालहितैषी' नामक मासिक पत्र के सम्पादक श्री विनोद बिहारी सेन राय, एम० ए० ने फरवरी १९११ ई० के अंक के २४वें पृष्ठ में यों लिखा है :– अट्ठारहवीं शताब्दी के आदि में राजा मनसा राम मिश्र ने मुगल बादशाहों की अवनति होने पर बनारस के निकटवर्ती गांवों और नगरों को अपने अधिकार में लाकर अपने राज्य को प्रबल किया था। उनके दादा गौतम ब्राह्मण, जिनकी पदवी मिश्र थी, पुरोहित का काम छोड़कर जमींदार हो गये थे।' स्मरण रखना चाहिये कि यही राजा मनसाराम काशिराज के पूर्वज थे, जिनके विषय में उक्त सम्मति दी गई है।

बाबू साधुचरण प्रसाद कृत 'भारतभ्रमण' के दूसरे अध्याय के पृष्ठ १० में ऐसा लिखा है :–सिवान से ८ मील उत्तर हथुआ ग्राम में एक राजा हैं। राजवंश भूमिहार ब्राह्मण है।

तीसरा खण्ड पृष्ठ ५६–'टिकारी के राजा भूमिहार ब्राह्मण हैं।'

सन् १९१० के बुधवारकी संध्या के 'इम्पायर' पत्र मास दिसम्बर की संख्या १६ में लिखा है कि, "The Hitbadi observes that Pandit K. P. Bhattachary, the Principal of the Sanskrit College, will retire on the 30th current, and will succeeded by Mr. S. C. Udayabhushan. The same paper, while expressing joy at the elevation of Benares to a semi-independent state, points out that. while other indian chiefs are either Rajputs or Kshatriyas etc. the Maharaja of Benares is the only 1 Brahman Prince."

इसका अर्थ यह है कि 'हितवादी' पत्र ने लिखा है कि पं० काली प्रसन्न भट्टाचार्य, जो संस्कृत कालेज के प्रिंसिपल हैं अब ३० तारीख को पेन्शन पावेंगे और उनकी जगह मिस्टर एस० सी० उदय भूषण नियत होंगे। वही पत्र बनारस राज्य के अर्द्धस्वतंत्र राज्य होने पर खुशी मनाता हुआ लिखता है कि जब भारत के अन्य सभी स्वतंत्र राजा राजपूत, क्षत्रिय इत्यादि हैं, केवल महाराजा बनारस ब्राह्मण हैं'।

मीमांसकप्रवर महामहोपाध्याय श्री चित्रधर मिश्र जी ने मुंगेर में होनेवाली गत भूमिहार ब्राह्मण महासभा के विषय में वहां ये श्लोक कहे थे :–

एषा मुद्गगिरौ नृपैर्बहुविधैरागत्य संशोभिता,
सद्धर्मादिविशोधिनी निजसभा देवेन्द्रसंराजिता।
मन्ये देवसभाद्य भूमिममलां कर्तुं स्वतोऽवातरत्,
किन्त्वस्या यदि भूमिहारघटिता नस्यात्समाख्या सदा ॥ ११ ॥

विप्राः सर्वविधाः समेत्य सकलं स्वं स्वं चरित्रं सदा,
एतस्या नियमेन सम्मततरं संशोध्य कुर्युर्मुदा।
एवं चेदखिलस्य भारतदल स्यैषा महाव्यापिका,
कुर्यादिष्टफलानि हानिरियता नैवास्ति काचित्पुनः ॥ २ ॥

इसका अनुवाद यह है कि 'मुंगेर नगर में एकत्रित हुये बहुत से राजा बाबुओं से शोभित और सद्धर्मों का शोधन करनेवाली भूमिहार ब्राह्मण सभा ऐसी प्रतीत होती हैं कि गोया इन्द्र से शोभित देवसभा ही स्वर्ग से यहां आज इस भूमि को पवित्र करने के लिये स्वयं आ गई है। परन्तु यदि इस महासभा के नाम में भूमिहार शब्द न रहता, अर्थात् भूमिहार ब्राह्मण महासभा की जगह केवल 'ब्राह्मण महासभा' इसका नाम होता, तो सभी प्रकार के ब्राह्मण इस महासभा में प्रसन्नतापूर्वक उपस्थित हो इसके सुन्दर नियमों के अनुसार अपने चरित्रों का संशोधन करके उन्हें अच्छी तरह सम्पन्न करते। ऐसा करने से यह सभा महाव्यापक होकर भारतवर्ष के ब्राह्मण दल मात्र की अभिलषित वस्तुओं की साधिका हो जाती और मेरी समझ में ऐसा करने से आप लोगों की कोई हानि भी नहीं है।'

पाठक ही विचारें कि अब इससे बढ़कर और कौन सी सम्मति वा स्वीकार भूमिहार ब्राह्मणों की ब्राह्मणता के विषय में हो सकता है, जिसका न होना पूर्वोक्त मनुष्यगणना के विवरण के लेखक अंग्रेज महोदयजी ने बतलाया है। सुरसर के पास नेपाल राज्य में पिपरा के सूबा पं० गोपाल मिश्र या उनके वंशज, जो गर्गगोत्री वसमैत मूल के भूमिहार ब्राह्मण हैं, नेपाल राजदरबार मे ब्राह्मणवत् ही माने जाते थे और हैं।

सब लोगों को इतने ही से विदित हो गया होगा कि भारतवर्ष की सभी उच्च और प्रतिष्ठित जातियां इन भूमिहार ब्राह्मणों को स्पष्ट रूप से ब्राह्मण स्वीकार करती हैं, क्योंकि उनके नेताओं ने, सभाओं ने स्पष्टरूप से कह दिया है। इसलिये सन् १९११ ई० की बिहार की मनुष्यगणना के सुपरिण्टेण्डेण्ट की बात, कि भूमिहार ब्राह्मणों को इतर हिन्दू केवल ब्राह्मण नहीं मानते किन्तु भूमिहार ब्राह्मण, नितान्त भ्रममूलक होने के कारण मिथ्या है।

दूसरा कारण जो उन्होंने भूमिहार ब्राह्मणों के इतर ब्राह्मणों से पृथक् लिखने में दिखलाया है कि 'ये लोग सभी ब्राह्मणों में मिल जावेंगे जिससे इनका पता न चल सकेगा'। वह यद्यपि सत्य है, तथापि उतने मात्र के लिये ये लोग अन्य ब्राह्मणों से पृथक् लिखे नहीं जा सकते, क्योंकि गौड़, कान्यकुब्ज, सर्यूपारी और सारस्वत प्रभृति जैसे एक ही साथ लिखे जाते हैं वैसे ही ये भी क्यों न लिखे जावें? यदि उन सब की संख्या के लोप हो जाने का डर या विचार साहब बहादुर को नहीं है, तो फिर केवल भूमिहार ब्राह्मणों पर उतने अनुग्रह की कौन सी आवश्यकता ठहरी? और यदि संख्या का पता लगाना चाहेंगे तो जैसे मैथिल महासभा या अन्य ब्राह्मण दलवाली महासभायें डायरियाँ बना कर अपने समाज की संख्या का यथावत् पता लगाती हैं, वैसे ही इन भूमिहार ब्राह्मणों की महासभा भी अपने समाज की डायरी तैयार करा सकती है। इससे यह भी लाभ हो सकता है कि उसके तैयार करने में समाज भर का पता चल जावेगा और यह विदित हो जावेगा कि किस जगह किस बात की आवश्यकता, त्रुटि अथवा कौन सी बुराई है, जिसके लिये महासभा यत्न करके, उसकी पूर्ति का निवारण कर सकती है। यदि न भी संख्या का पता लगे और सभी ब्राह्मण एक में मिल जावें, तो इसके लिये उन्हें चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है? जिसके मकान में आग लगेगी वह स्वयं उसे बुझा लेगा। जो अपने समाज की उन्नति करना चाहेगा वह उसके लिये

यत्न कर लेगा। आपको तो यदि अनुग्रह करना है, तो गौड़, कान्यकुब्ज प्रभृति सभी ब्राह्मण दलों पर करिये, न कि किसी विशेष पर। और साहब बहादुर का यह कहना कि 'इनके एक पृथक् समाज होने का सभी विवरण लुप्त हो जायगा', भी ठीक नहीं है। क्योंकि प्रथम तो पृथक् दल होने का प्रमाण ही नहीं है। क्योंकि सभी ब्राह्मणों के साथ विवाह सम्बन्ध तथा खानपानादि दिखला चुके हैं। यदि मान भी लेवें, तो केवल भूमिहार ब्राह्मण क्यों पृथक् दलवाले हैं? क्या गौडों और कान्यकुब्जों के आचार, व्यवहार अथवा इतिहास वगैरह परस्पर मिलते हैं? बल्कि ये (भूमिहार ब्राह्मण) तो सभी से मिलते हैं। परन्तु न तो मैथिल कान्यकुब्जों या सर्यूपारियों से मिलते और न सर्यूपारी या कान्यकुब्ज ही परस्पर मिलते हैं। इसलिये यदि पृथक् दल कहा जावे, तो प्रथम उन्हीं लोगों का कहा जा सकता है, पश्चात् इन भूमिहार ब्राह्मणों का किसी प्रकार से कह सकते हैं। इसलिये इनके पृथक् लिखे जाने की कोई आवश्पकता नहीं है, जब तक कान्यकुब्ज वगैरह भी अलग-अलग न लिखे जावे।

यदि आपको इनके ऊपर विशेष अनुग्रह करना है, तो 'ब्राह्मण' शीर्षक (heading) वाला एक खाना बनाकर उसके (अ) और (ब) दो विभाग करके एक में 'भूमिहार ब्राह्मण' और दूसरे में 'अन्य ब्राह्मण' ऐसा लिख सकते हैं। जैसे :-

ब्राह्मण	
भू० ब्रा०	अन्य ब्रा०

ऐसा ही त्यागियों और महियालों आदि के विषय में भी कर सकते हैं। ऐसा करने से इनकी संख्या का भी पता लग सकता है और बात भी ठीक हो सकती है। बल्कि युक्त प्रान्त (U. P.) की सरकार तो कुछ विचार न करके भूमिहार ब्राह्मणों और अन्य ब्राह्मणों को केवल 'ब्राह्मण' लिखा करती है। जैसा डाइरेक्टर का सर्क्यूलर स्कूलों और कालेजों में जारी है, जिसके विषय में भूमिहार ब्राह्मण सभा काशी के सेक्रेटरी के पास नीचे लिखा हुआ डाइरेक्टर का पत्र आया है। वह इस प्रकार है :-

No. $\frac{\text{G 15320}}{\text{X -25}}$—1911-12

From,

The Hon'ble Mr. C. F. DeLa Fosse, M. A.
Director of Public Instruction,
United Provinces.

To,

The Secretary,
Bhumihar Brahman Sabha. Benares.
Dated Allahabad. 8th, Feb., 1912.

With reference to his letter. dated the 7th September 1911, has the honour to inform him that the Inspectors of schools have been reqested to show Bhumihars as Brahmans in the Annual Statistical Returns.

S/d P. S.Barell, M. A.,
Assistant Director of P. I.
For C; F. De La Fosse, M. A.
Director of P. I., U. P.

इस पत्र का अनुवाद इस प्रकार है :-

नम्बर $\frac{\text{जी–१५३२०}}{\text{एक्स–२५}}$ १९११-१९१२

आनरेब्ल मिस्टर सी० एफ० डेलाफोस, एम० ए०, डाइरेक्टर, शिक्षा विभाग संयुक्त प्रान्त, के पास से।

सेक्रेटरी, भूमिहार ब्राह्मण सभा बनारस, के पास।

इलाहाबाह, ता० ८वीं फरवरी १९१२ ई०।

आपके ता० ७ सितम्बर सन १९११ ई० के पत्र के उत्तर में यह निवेदन है कि स्कूलों के इन्स्पेक्टरों को कह दिया गया है कि सरकारी कागजों में भूमिहारों को ब्राह्मण लिखा करें।

द० पी० एस० बरल, एम० ए०,
शिक्षा विभाग के असिस्टैन्ड डाइरेक्टर।
सी० एफ० डेलाफोस, एम० ए०,
डाइरेक्टर, शिक्षा विभाग, युक्त प्रान्त के स्थानापन्न।

इसलिये बिहार प्रान्त या अन्यत्र की सरकार को भी यही उचित है कि युक्त प्रान्त की सरकार की तरह या तो अन्य ब्राह्मणों की तरह केवल ब्राह्मण ही लिखा करे अथवा यदि विशेष अनुग्रह या पृथक् लिखने का ही आग्रह होवे तो उस प्रकार से ही लिखे जैसा हम अभी बतला चुके हैं। इससे अन्यथा लिखना उचित नहीं है, जैसा सिद्ध कर चुके हैं।

(८) आईने अकबरी और उपसंहार

यद्यपि जो बातें इन पश्चिमा आदि ब्राह्मणों के विषय में लिखी गई हैं वे सार्वजनिक और स्पष्ट हैं, इसलिये इन सब के रहते हुये इस समाज के विषय में किसी प्रकार की शंका करना या मिथ्या दोषारोपण करते हुये असभ्यतापूर्ण शब्दों का प्रयोग करना बुद्धिमान, सभ्य और प्रतिष्ठित के लिये उचित न था और न है ही। तथापि मध्याह्न में उल्लूपक्षी को अन्धकारमय ही जगत् प्रतीत होता है, अथवा श्रावण मास में किसी प्रकार से नेत्रहीन हो जाने वाले को बारह महीने हरियाली ही सूझती है, प्रकृति के इस अटल नियम को कौन हटा सकता है? अथवा यों कह सकते हैं कि दुष्टों की प्रकृति भी विचित्र ही हुआ करती है। इसलिये उनके निकट अच्छी बात भी बुरी ही लगती और उलटी ही समझते हैं क्योंकि उनके लिये कोई औषध नहीं है। जैसा कि किसी कवि ने सत्य ही कहा है :-

सब की औषधि जगत में, खल की औषधि नाहिं।
धूर होहिं सब औषधी, परिके खलके माहिं ॥

इसलिये ऐसे महात्माओं के लिये ये सब जले तबे पर पानी की तरह उलटा दोष ही सूझने के साधन हो जाती है। क्योंकि :

गुणायन्ते दोषाः सुजनबदने दुर्जनमुखे,
गुणा दोषायन्ते न खलु तदिदं विस्मयपदम्।
यथा जीमूतोऽयं लवणजलधेर्वारि मधुरम्,
फणी पीत्वा क्षीरं वमति च गरं दुःसहतरम् ॥

अर्थात् 'यदि सज्जनों के पास या उनकी दृष्टि में दोष भी गुण की तरह, और इनके विपरीत दुर्जनों के लिये गुण भी दोष की तरह प्रतीत होते हैं, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? क्योंकि मेघ समुद्र के खारे जल को भी पीकर मीठा ही जल बरसाया करता है और सांप दूध को भी पीकर विष ही उगलता है'।

इसलिए ऐसी दशा में ऐसे महात्मा लोग इस समाज या अन्य के विषय में जो कुछ भी 'मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी', अर्थात् 'यदि परमात्मा ने मुख दिया है तो क्यों न कह देंगे कि दस हाथ की हड़र (हरीतकी) हुआ करती है?' इस न्यायानुसार अपने बेलगाम और पवित्र मुँह तथा लेखनी से कह या लिख कर अपनी सज्जनता का परिचय न देवें उसी में आश्चर्य है।

ऐसे ही सज्जनों में 'क्षत्रिय और कृत्रिम क्षत्रिय' नामक अंग्रेजी ग्रन्थ के रचयिता बाबू कुंवर छेदासिंहजी, बी० ए०, बैरिस्टर–ऐटा–ला (Barrister-at-law) और उसके हिन्दी अनुवादक, कुंवर रूपसिंह जी हैं। वह ग्रन्थ 'राजपूत प्रेस', आगरे में छपा है। हम नहीं कह सकते कि शिक्षितता, सुधारकता और सभ्यता का दम भरने वाले नवशिक्षादीक्षित दल के अन्तः पाती उक्त बैरिस्टर महोदय जी की ही पवित्र लेखनी से क्यों ऐसे 'वाग्वज्र' निकल गये, जो अकारण दूसरों के मर्मवेधी हैं।

अथवा उनका शरीर न रह गया, इसलिए पीछे उनके ही नाम बदनाम करने के लिए टट्टी की ओट से उनके किसी मिथ्याचारी, अकारण परद्रोही और स्वार्थान्ध पूज्य अथवा प्रिय भाई ने शिकार खेल कर अपने हृदय की कान निकाली है, क्योंकि यदि चोरी गई तो कम से कम तुम्बाफेरी तो नहीं ही छूटा करती है।

अथवा अनुवादक महोदय की ही असीम कृपा हो सकती है। क्योंकि उक्त अंग्रेजी ग्रन्थ हमें न मिल सका, केवल भाषानुवाद ही हमारे सम्मुख है। परन्तु शिक्षितों की लेखनी से ऐसे शब्दों की सम्भावना करने में जरा चित्त हिचकता है।

अस्तु, जो कुछ भी हो, उस ग्रन्थ की बात को देखिये। उसके ६३वें पृष्ठ में खत्रियों के बनावटी या कृत्रिम क्षत्रिय सिद्ध करने के प्रसङ्ग से आपने भूतपूर्व खत्री अबुलफज्ल रचित 'आईने अकबरी' नानक ग्रन्थ का विचार किया है। क्योंकि उसमें कहीं-कहीं खत्रियों को क्षत्रिय लिखा है। इसलिए आपने प्रथम से ही यह चिल्लाना शुरू कर दिया कि जाति के विषय में 'आईने अकबरी' प्रमाण नहीं मानी जा सकती। जब आपको अपनी इस निर्मूल उक्ति में दूसरा कुछ अवलम्ब न मिला, तो सर विलियम जोन्स की सम्मति इस विषय में दे डाली। क्योंकि जहाज के कौवे को सिवाय उसके मस्तूल के दूसरी शरण ही क्या मिल सकती है? आप ही के लेखानुसार भूतपूर्व खत्री या हिन्दू अबुलफज्ल की बात तो प्रमाण न मानी जावे, परन्तु एक वैदेशिक अंग्रेज की बात उसी विषय में मान ली जावे! यह बुद्धिमत्ता नहीं तो और क्या है?

अस्तु, यह कहकर अन्त में अपनी पूर्व उक्ति का उपसंहार करते हुए आपने लिख मारा कि 'इस लिए आईने अकबरी पुस्तक से हिन्दू जाति के विषय में विशेष हाल नहीं मालूम हो सकता है। अर्थात् इस पुस्तक से भूमिहार और तेली या कहार और डोम में अन्तर नहीं प्रतीत हो सकता है।' पाठक! यदि इसे ही 'अकाण्ड ताण्डव' अथवा 'हँसुए के ब्याह में खुरपी का गीत गाना' नहीं कहते तो और किसे कहते हैं? यदि खत्रियों के साथ आपका विवाद

और उसी का प्रकरण था, तो उपसंहार में यदि तान तोड़ना था तो उन्हीं पर तोड़ते। भूमिहारों के ऊपर तान तोड़ने का वहाँ कौन प्रसंग था, जिससे अपनी आन्तरिक दुर्ज्जनता दिखलाये बिना न रहा गया?

यदि हम भी 'शठे शाठ्यं कुर्यात्' इस न्यायानुसार उलट कर यह कहने लगजावें कि तमाम इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्र प्रभृति से भी क्षत्रियों, वर्णसंकरों, जाटों, सीदियनों, अहीरों और कुर्म्मियों का भेद ब्रह्मा भी सिद्ध नहीं कर सकते, तो हमारी समझ में पूर्वोक्त दुष्ट विचारवाले और प्रकृतिदुष्टों की नानी मरजावे, सारी आई बाई ही हजम हो जावे, हाहाकार मचजावे और जीतों के कौन कहे मरे हुओं तक के कलेजे फट जावें। परन्तु हम ऐसी दुष्टता करना नहीं चाहते। हम नहीं चाहते कि ऐसा काम करे कि प्रत्येक समाज में अन्योन्य संघर्षण होकर उसी कलहानल से वे शुष्ककाष्ठवत् दग्ध हो जाये। हम तो क्षत्रियों को भी परम प्रिय और अपना श्रेष्ठ अंग समझते हैं। और 'उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्' ही हमारा उद्देश्य है। इसीलिए अकारण और व्यर्थ ये सब बातें लिखकर उनका दिल दुखाना नहीं चाहते। ये सब बातें आप जैसे बैरिस्टरों और सत्पुरुषों को ही मुबारक हों। इसलिए यद्यपि,

> **इह कुमतिरतत्त्वे तत्त्ववादी वराकः,**
> **प्रलपति यदकाण्डे खण्डनाभासमुच्चैः।**
> **प्रति वचनममुष्मै तस्य को वक्तु विद्वान्,**
> **नहि रुतमनुरौति ग्रामसिंहस्य सिंहः॥**

अर्थात् 'जो दुर्बुद्धि मिथ्या को सत्य मानने या कहने वाला और नीच प्रकृति पुरुष यदि बिना प्रसंग के ही सत्य बातों का भी बड़े जोर से झूठमूठ ही खण्डन करता है, तो उसकी उन बातों का उत्तर देने की इच्छा कौन विद्वान कर सकता है? क्योंकि क्या कुत्ते के भूंकने पर कहीं सिंह भी उसके बदले में बोलता या भूंकता है'? इस न्यायानुसार कुँवर साहब की उस दुरुक्ति का उत्तर देना उचित नहीं है। तथापि ऐसा न करने से लोग उन्हें बैरिस्टर समझ कहीं भ्रम में पड़ कर उनकी ही उन निस्सार बातों को सत्य न मानने लग जावें, इस लिये उनकी बातों का तत्त्व दिखलाते हुए प्रसंगवश यह दिखला देते हैं कि सर्वमान्य प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थ' 'आईन अकबरी' भी इन अयाचक दल के ब्राह्मणों को केवल ब्राह्मण कहकर अधिक कुछ नहीं कहती।

कुछ कहने से प्रथम इस बात का विचार कर लेना आवश्यक है कि जैसा कुँवर जी ने लिखा है कि जाति के विषय में वह प्रमाण नहीं मानी जा सकती वही ठीक है, अथवा इस अंश में भी उसे प्रमाण मान सकते हैं। हम तो जहाँ तक देखते हैं इस विषय में उसके न माने जाने में कोई युक्ति या प्रमाण नहीं। आपने और तो कुछ युक्ति या प्रमाण दिये नहीं, केवल सर विलियम जोन्स के वचन लिख दिये हैं। परन्तु उनसे हो ही क्या सकता है! क्योंकि यदि अबुलफज्ल को हिन्दू समाज का विशेष ज्ञान न था, क्योंकि वह हिन्दुस्तान का ही रहने वाला प्रथम का हिन्दू या खत्री था, जैसा आपने स्वयं लिखा है, तो सर विलियम जोन्स तो वैदेशिक थे। उनके कथन को आपने इस विषय में व्यास वसिष्ठ का वचन कैसे मान लिया? उस पुस्तक भर में केवल अंग्रेजी और कहीं-कहीं फारसी ग्रन्थों के ही प्रमाण भरे हैं और फिर ऐसा लिखा जाता है कि 'आईने अकबरी' नहीं मानी जा सकती। क्या उन अंग्रेजी और फारसी लेखकों की अपेक्षा भी आईने अकबरी का लेखक अप्रतिष्ठित था? धन्य है ऐसे कहने

दाले को। चूंकि खत्रियों के साथ आपका विवाद है, उन्हीं के ऊपर आपका आक्रमण है, उसके लेखक को आप खत्री बतलाते हैं और आईने अकबरी के मानने से खत्री भी शायद क्षत्रिय सिद्ध हो जावें। इसलिए आपने अच्छा सोचा कि जड़ ही उड़ा देवें, जिससे 'रहे बांस न बाजे बांसुरी' की बात हो जावे। परन्तु स्मरण रखिये। शायद उस मियां जी का सा हाल न हो जावे जिन्होंने अपनी नाक पर बैठने वाली मक्खी से दिक होकर उसके बैठने का अड्डा ही उड़ा दिया।

एक बात और भी विचारने योग्य है कि 'सर विलियम जोन्स' ने भी तो यही लिखा है कि फारसी ग्रन्थों से हिन्दू जातियों का विवरण या विशेष हाल नहीं जाना जा सकता। क्योंकि उन्होंने ऐसा लिखा है कि, 'जो मनुष्य फारसी की किताबों से हिन्दू जातियों का विवरण जानता है, वह वास्तव में हिन्दुओं को नहीं जान सकता है'। 'आईने अकबरी' से हिन्दू जाति के विषय में विशेष हाल नहीं मालूम हो सकता है। परन्तु एकदम ही वह प्रमाण न मानी जावे, यह तो न सिद्ध ही हुआ और न आप इसे मान ही सकते हैं। यदि उस पुस्तक में राज्य की सभी बातों का विवरण विस्तरशः है और हिन्दू जातियों का विवरण संक्षिप्त है, तो इससे जातियों का विशेष ज्ञान नहीं हो सकता, न कि इसके लिये वह ग्रन्थ ही न माना जावे। ग्रन्थ कर्त्ता या उसके बनवाने वाले ने जिसे अपनी समझ में जैसा उपयोगी समझा वैसा लिखा या लिखवा दिया। इससे वह खराब नहीं समझी जा सकती, जब तक उसकी बातें किसी प्रकार मिथ्या न सिद्ध हो जावें। यह बात उसी ग्रन्थ के लिये नहीं है, किन्तु ग्रन्थ मात्र के लिए है कि जो कुछ उसमें लिखा होवे वह सच्चा होवे तो माना जा सकता है, अन्यथा नहीं। इसलिए यदि 'आईने अकबरी' के मानने से आपका अभीष्ट सिद्ध न होवे, तो इससे वह अप्रमाण नहीं हो सकती। क्योंकि यदि किसी का प्रयोजन किसी प्रमाण के मानने से नहीं हो सकता, तो इसके लिए वह प्रमाण क्यों न होगा? क्योंकि 'प्रयोजनमपेक्षन्ते न मानानीतिहि स्थितिः अर्थात् प्रमाण किसी के प्रयोजन को नहीं देखते, किन्तु सच्ची बात बतला देते हैं। इसलिए अवश्य 'आईने अकबरी' सर्वमान्य होने के कारण हिन्दू जातियों के विषय में भी जितना उसमें लिखा है उसके लिए प्रमाण है।

अब हम प्रथम 'आईने अकबरी' का लेख भूमिहारादि ब्राह्मणों के विषय में दिखलाते हैं, जिसे हमने उसके अंग्रेजी अनुवाद के दो ग्रन्थों में एक-सा ही पाया है। उन अनुवादकों के नाम 'ग्लैडविन, (Gladwin) और जैरेट (Jarret) हैं। प्रथम ग्रंथ १७८३ ई० में और दूसरा १८९४ ई० में छपा है। बात यह है कि 'आईने अकबरी' में ब्राह्मणों के लिये 'जुन्नारदार' शब्द आया है। यद्यपि 'जुन्नार' शब्द यज्ञोपवीत मात्र का वाचक है, तथापि वह शब्द आईने अकबरी या अन्य फारसी के ग्रन्थों में केवल ब्राह्मणों के लिये आया है, नहीं तो यज्ञोपवीत (जनेऊ) वाले तो क्षत्रियादि भी हैं, फिर उनका नाम 'क्षत्रिय' ऐसा अलग क्यों लिखा जाता? इसीलिये कान्यकुब्ज, सर्यूपारी या भूमिहारादि ब्राह्मणों के लिये ही 'जुन्नारदार' शब्द उस ग्रन्थ में आया है। इसीलिये 'एसियाटिक रिसर्चेज' (Asiatic Researches) नामक अंग्रेजी ग्रन्थ के जो १७९३ में छपा है, १६वें पृष्ठ में मालावार (Malabar Coast) के इतिहास में 'केरल उत्पत्ति' नामक मालावारी ग्रन्थ के फारसी अनुवाद के आधार पर लिखा है कि :–

Those who are entitled to wear Zunnar, a Brahmanical thread, are superior to or more noble than all the classes of the Malabar coast.

अर्थात् जिनको जुन्नार या ब्राह्मणों का जनेऊ पहनने का अधिकार है, अर्थात् जो ब्राह्मण हैं, वे मालावार की सभी अन्य जातियों से श्रेष्ठ और रईस या प्रतिष्ठित समझे जाते हैं'। इसलिये जुन्नार शब्द के केवल ब्राह्मणों के ही यज्ञोपवीत का नाम होने के कारण आईने अकबरी में जुन्नारदार शब्द केवल ब्राह्मणों के लिये आया है। इसीलिये अंग्रेजों ने अनुवाद में ब्राह्मण शब्द ही रख दिया है। इस जगह हम केवल कर्नल एच० एस० जैरेट के ही अनुवाद के द्वितीय भाग को उद्धृत कर देते हैं। जिसमें भूमिहार ब्राह्मणों से लेकर सभी अन्य ब्राह्मणों को भी केवल ब्राह्मण लिखा है। उसके १६१वें पृष्ठ में इलाहाबाद के जिन-जिन परगनों में ब्राह्मणों की जमींदारी लिखी गई है, या विशेष रूप से जहाँ ब्राह्मण ही प्रतिष्ठित या बाशिन्दे बतलाये गये हैं, वे इस प्रकार हैं :–

Allahabad— **इलाहाबाद।**

Allahabad— इलाहाबाद।	Sikandarpore— सिकन्दरपुर।
Suraon— सुरांव।	Kewai— केवाई।
Singarapore— सिंगरापुर।	Hadia bas (Jhunsi)— झूँसी।

इनमें से विशेष कर सुरांव, सिकन्दरपुर और केवाई परगनों में भूमिहार या जमींदार ब्राह्मण हैं और थे, जैसा विवाह प्रसंग में दिखला ही चुके हैं और शेष परगनों में सर्यूपारी या कान्यकुब्ज थे और हैं।

१६२वें पृष्ठ में गाजीपुर और बनारस के परगनों का विवरण नीचे है :–

Ghazipur— **गाजीपुर।**

Chausa— चौसा।	Mohammadabad— मुहम्मदाबाद।
Saidpur Namadi— सैदपुर नामदी।	Madan Benares— मदन-बनारस (जमानियाँ)।
Zahurabad— जहूराबाद।	

यहाँ सभी केवल भूमिहार ब्राह्मण हैं, जिनमें से चौसा में सकरवार, सैदपुर नामदी में भारद्वाज, जहूराबाद में कौशिक, जमानियाँ में सकरवार और द्रोणवार और मुहम्मदाबाद में किनवार रहते हैं और थे।

Benares— **बनारस।**

Afrad— अफरद।	Pindara— पिंडरा।
Haveli— हवेली।	Kuswar— कुसवार।
Byalisi— बयालिसी।	Harhua— हरहुआ।

इनमें से पिण्डरा में कोलहा भूमिहार ब्राह्मण थे और हैं, कुसवार में गौतम और हरहुआ में दीक्षित। बाकी में सर्यूपारी और भूमिहार ब्राह्मण दोनो थे। पृष्ठ १६३ में जौनपुर के परगनों का विवरण इस प्रकार है :–

Jaunpur— **जौनपुर।**

Chandipur— चाँदीपुर।	Nizamabad— निजामाबाद।
Sanjhauli— सझौली।	Mohammadabad— मुहम्मदाबाद।
Sikandarpur— सिकन्दरपुर।	Negum— निगम।

इनमें से निजामाबाद मे भृगुवंश भूमिहार ब्राह्मण थे और हैं, एवं मुहम्मदाबाद में बरुवार भूमिहार ब्राह्मण थे और हैं। शेष में सर्यूपारी और भूमिहार ब्राह्मण दोनो थे और हैं। इसी प्रकार अवध, लखनऊ, हरदोई आदि जिलों के परगनों और महालों में ब्राह्मण ही लिखे गये हैं और वहाँ सभी कान्यकुब्ज या सर्यूपारी ब्राह्मण थे और हैं भी।

इसी आईने अकबरी के आधार पर मिस्टर नेविल ने बनारस के गजेटियर के १९५वें पृष्ठ में लिखा है कि :–

The Mahal of Haveli Benares comprised of the present Dehat Amanat, Jalhupur and Sheopur. It was held by Brahmans etc. Pindarah has remained unchanged and was held by Brahmans etc. Athgawan was then known as Harhua and was held by Brahmans etc. Kuswar was a large mahal and was held by Brahmans etc.

अर्थात् 'बनारस हवेली महाल में देहात अमानत, जाल्हूपुर, और शिवपुर भी मिले हुये थे और वहाँ ब्राह्मणों का अधिकार था इत्यादि। इसी प्रकार पिंडरा भी ब्राह्मणों के ही अधिकार में था जो आज भी बदला नहीं है इत्यादि। अठगांवां का नाम प्रथम हरहुआ था और यह भी ब्राह्मणों के ही अधिकार में था इत्यादि। कुसवार सबसे बड़ा महाल था और ब्राह्मण ही उसके जमींदार थे इत्यादि।

इसी प्रकार नेविल साहब ने अपने गाजीपुर के गजेटियर के १६४वें पृष्ठ में गाजीपुर के ऐतिहासिक वर्णन के समय अकबर का प्रबन्ध दिखलाते हुए साफ ही लिख दिया है कि गाजीपुर के मुहम्मदाबाद और जमानियां वगैरह महालों में जो ब्राह्मण जमींदार लिखे गये हैं वे भूमिहार ब्राह्मण ही थे और हैं, न कि दूसरे ब्राह्मण। वे इस प्रकार लिखते हैं :–

It was in Akbar's days that Ghazipur became recognized seat of government and the capital of a Sarkar in the province of Allahabad. The Sarkar contained 19 mahals or parganas comprising most of the present district and Ballia, as well as Chausa, now in Shahabad, and Belahabans in Azamgarh. The Ain-i-Akbari affords us a considerable amount of information as to the state of the district at that time, showing the state of cultivation, the revenue and the principal landholders of each pargana. The mahals are Ghazipur Haveli, Pachotar, Bahariabad, Zahurabad, Dehma, Mohammadabad, Madan Benares, Karanda, Sayidpur Namadi, Baraich, Shadiabad, Bhitari, Khanpur and Mahaich. Zahurabad had 13803 bighas of cultivation paying 657808 dams ; it was held by Brahmans, who contributed 20 horsemen and 500 infantry. Mohammadabad Parharbari, as it was then styled, had 44775 bighas under cultivation and paid 2260707 dams. The land-holders were Brahmans, which is the name always given to Bhumihars, and the military force consisted of 100 horse and 2000 foot. The present Mohammadabad pargana also includes the scattered mahal of Qariat Pali, which contained but 1394 bighas of cultivated land and was possessed at 75497 dams. Zamania is shown under the old name of Madan Benares. It

was held by Brahmans, or more probably Bhumihars, who paid 2760000 dams on 66584 bighas of cultivation and furnished 50 horse and 5000 foot. Saidpur Namadi had a cultivated area of 25721 bighas, an assessment of 1250280 dams and the Brahman Zamindars contributed 20 cavalry and 1000 infantry. The remaining parganas were mostly held by Rajputs, while Bhitari by Ansari Shekhs.

इसका अर्थ यह है कि 'अकबर के समय में ही गाजीपुर राज्य कार्य का एक स्थान और इलाहाबाद के सूबे की एक सरकार की राजधानी बन गया। इस सरकार में १९ महाल या परगने थे, जिनके अन्तर्गत वर्त्तमान जिले का बहुत सा भाग बलिया जिला और चौसा भी था, जो अब शाहाबाद में है। इसके अतिरिक्त बेलहा वन भी था, जो अब आजमगढ़ में है। आईने अकबरी से इस जिले की उस समय की दशा का बहुत सा पता चलता है। क्योंकि उसमें उस समय की कृषि की दशा, मालगुजारी और प्रत्येक परगने के प्रधान जमींदारों का उल्लेख है। **उसके महाल ये हैं :– गाजीपुर हवेली, पचोतर, बहरियाबाद, जहूराबाद, डेहमा, मुहम्मदाबाद, मदन बनारस (जमानियां),. करंडा, सैदपुर नामदी, बराइच, शादियाबाद, भीतरी, खानपुर और महाइच। परगना जहूराबाद में १३८०३ बीघे खेती की जमीन थी, जिसकी मालगुजारी ६५७८०८ दाम थी। और इसके जमींदार ब्राह्मण थे, जो २० सवार और ५०० पैदल फौज रखते या उसका खर्च देते थे। मुहम्मदाबाद का नाम उस समय मुहम्मदाबाद परहारबारी था, जिसमें खेती की भूमि ४४७७५ बीघे थी, जिसकी मालगुजारी २२६०७०७ दाम थी। इसके जमींदार ब्राह्मण थे। आईने अकबरी में यह ब्राह्मण नाम भूमिहारों के लिये आया करता है। अर्थात् वहां के जमींदार भूमिहार ब्राह्मण थे जो १०० सवार और २००० पैदल फौज रखते थे।** वर्त्तमान मुहम्मदाबाद परगने में उस समय करियत पाली का तितर-बितर महाल भी मिला हुआ था, जिसके १३९४ बीघे में खेती होती थी और मालगुजारी ७५४९७ दाम थी। जमानियां का प्राचीन नाम मदन बनारस ही लिखा गया है। इसके जमींदार ब्राह्मण थे, जिन्हें भूमिहार ब्राह्मण कह सकते हैं, जिनकी जमींदारी ६६५८४ बीघे थी और मालगुजारी २७६००० दाम थी। ये लोग ५० सवार और ५००० पैदल फौज रखते थे। सैदपुर नामदी के २५७२१ बीघे में कृषि होती थी, जिसके ब्राह्मण जमींदार १२५०२८० दाम मालगुजारी के देते और २० सवार एवं १००० पैदल सेना रखते थे। अवशिष्ट परगने विशेषकर राजपूतों के अधिकार में थे केवल भीतरी पर अंसारी शेखों का दखल था।

अब हमको इस विषय में कुछ नहीं कहना है। पाठक लोग स्वयं ही समझ गये होंगे कि, आईने अकबरी, उसके अनुवादकों और उसके आधार पर इतिहास लेखकों के भी मत से भूमिहार ब्राह्मण ब्राह्मण सिद्ध होते हैं अथवा नहीं। भला जहां इस प्रकार लिखा जा रहा है कि आईने अकबरी में भूमिहार ब्राह्मणों के लिये केवल 'ब्राह्मण' नाम आया है और वैसा ही आईने अकबरी के वाक्य लिखकर स्पष्ट ही दिखला भी चुके हैं, तो फिर वहां भूमिहार ब्राह्मण हैं या नहीं इस संशय की जगह ही कहां है? इन सब ग्रन्थों को उक्त 'क्षत्रिय और कृत्रिम क्षत्रिय' नामक ग्रन्थ के रचयिता कुंवर महाशय जी भी उलट गये हैं, क्योंकि उस ग्रन्थभर में प्रायः इन्हीं की दुहाई दी गई है। ऐसी दशा में पूर्वोक्त लेख का उनकी पवित्र लेखनी से लिखा जाना कैसी सुजनता, सभ्यता, सुधारकता, निष्पक्षपातिता, निर्द्वेषता और उदारता है,

इसे आप ही लोग विचार लेवें। हमारी समझ में तो ऐसी दशा में सम्भवतः वह इन भूमिहार ब्राह्मणों के उद्देश्य से न लिखा गया होगा, क्योंकि इनके विषय में वैसा लिखने की जगह ही नहीं है। किन्तु, जैसा पूर्व भी दिखला चुके हैं कि कहीं-कहीं क्षत्रिय भी भूमिहार कहलाते हैं, जिस बात को 'राजपूत' के सम्पादक कुंवर हनुमन्तसिंह तथा क्षत्रिय समाज स्वीकार करता है। इसलिये खत्रियों पर रञ्ज होकर-क्योंकि उन्हीं के साथ विचार करने का वह प्रकरण है-आपने यह लिख दिया है कि आईने अकबरी के खत्री क्षत्रिय सिद्ध नहीं हो सकते। क्योंकि उससे तो 'भूमिहार अर्थात् भूमिहार क्षत्रिय अथवा क्षत्रिय और तेली या कहार और डोम में अन्तर प्रतीत नहीं हो सकता है।' अगर सच पूछा जावे तो यही तात्पर्य उस वाक्य का घटता है। इसीलिये ऐसी दशा में हम उक्त कुंवर जी को कुछ भी कहना नहीं चाहते और उनके कथन का दूसरा तात्पर्य समझ हमने जो कुछ लिखा है उसे वापस कर लेते हैं। अथवा रहने देने पर भी उनसे और उस कथन से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। इसलिये उनके सम्बन्धियों को इससे बुरा न मानना चाहिये। क्योंकि वे लोग ऐसी दशा में हमारे उक्त कथन के लक्ष्य हैं ही नहीं।

अस्तु, इस प्रकार से श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण, व्यवस्थाओं, पत्रों, प्राचीन वंशावलियों, ब्राह्मणदि के लेखों, चीनी और ग्रीक यात्रियों के लेखों, पाली ग्रन्थों, गवर्नमेन्ट की आज्ञा और आईने अकबरी प्रभृति ग्रन्थों, एवं मैथिल, कान्यकुब्ज, सर्यूपारी और गौड़ ब्राह्मणों के साथ भूमिहार, त्यागी आदि ब्राह्मणों के विवाह सम्बन्ध और खान पानों से सिद्ध हो गया कि सृष्टि काल से ही जो अयाचक और याचक दो प्रकार के ब्राह्मण हैं, उनमें से अयाचक ही श्रेष्ठ और सर्वमान्य हैं और ये भूमिहार, पश्चिमा, त्यागी, जमींदार, महियाल आदि ब्राह्मण उसी अयाचक दल के हैं। इसलिए यदि चाहें तो इन्हें अयाचक ब्राह्मण, भूमिहार, पश्चिमा, त्यागी आदि ब्राह्मण अथवा ब्राह्मण इन तीनों नामों से कह सकते हैं। जैसे कान्यकुब्ज या सर्यूपारी प्रभृति ब्राह्मणों से पूछने पर वे लोग प्रथमतः 'आप कौन हैं?' इस प्रश्न का उत्तर 'ब्राह्मण हैं' ऐसा देते हैं। उसके बाद 'कौन ब्राह्मण हैं?' इस प्रश्न पर 'सर्यूपारी या कान्यकुब्ज' ऐसा बतलाते हैं। वैसा ही अयाचक ब्राह्मणों से पूछने पर कि 'आप कौन हैं?' उन्हें कहना चाहिये कि 'ब्राह्मण हैं।' पश्चात् 'कौन ब्राह्मण हैं?' ऐसा पूछने पर 'अयाचक, अथवा भूमिहार, पश्चिमा, जमींदार, त्यागी, महियाल ब्राह्मण हैं' ऐसा उत्तर देना चाहिये। अथवा जो अयाचक ब्राह्मण दल जिस देश में हैं वह वहां के मैथिल, कनौजिया, सर्यूपारी, गौड़ और सारस्वतादि ब्राह्मण ही अपने को सबसे पहले कह कर पीछे अपनी विशेषता के लिये त्यागी, भूमिहार आदि कह सकते हैं। और यह भी सिद्ध हो गया कि इन अयाचक ब्राह्मणों के भूमिहारादि विशेषण जागीर वगैरह पाने या भूमिपर बल से अथवा अन्य प्रकार से अधिकार कर लेने से ही मुसलमानों के समय में पड़े। जैसे दो या तीन वेदों के पढ़ने, पढ़ाने आदि कामों के करने और मिथिलादि देशों में रहने से दूबे, तिवारी, श्रोत्रिय, मैथिल और गौड़ प्रभृति नाम या विशेषण अन्य ब्राह्मणों के यवन काल में ही पड़े। और राय, सिंह, पांडे और दूबे प्रभृति पदवियां भी उसी समय की हैं, जो कामों के करने से ही पड़ी हैं। साथ ही साथ यह भी दिखला चुके कि पश्चिमा, ज़मींदार और भूमिहार ब्राह्मण, तगा, त्यागी या दानत्यागी ब्राह्मण और महियाल ब्राह्मण इस समय भी एक से ही आचार विचार और प्रतिष्ठा वाले हैं। इसलिये इन लोगों के परस्पर विवाह सम्बन्ध वगैरह होने में कोई हर्ज नहीं

है। और यह भी सिद्ध हो चुका है कि इन लोगों में आज तक कोई शास्त्र निषिद्ध ऐसी बुराई भी नहीं आ गई है, जिससे इनकी दशा या दर्जा ब्राह्मण समाज में किसी प्रकार से भी हीन समझा जावे। बल्कि अन्य ब्राह्मण ही शास्त्रोक्त मार्ग से कुछ भ्रष्ट हो गये हैं। इसलिये इन अयाचक दलवाले ब्राह्मणों को ब्राह्मण समाज में किसी प्रकार से भी हीन मानना, या ऐसा लिख देना, अथवा लिख देने का साहस मात्र भी करना केवल भ्रम या अज्ञान है। इसलिये इस प्रकरण के अन्त में अन्तर्यामी जगदाधार से यही प्रार्थना है कि सभी भारतवासियों और विशेष कर इन अयाचक दल के सभी ब्राह्मणों को शास्त्रीय सुबुद्धि प्रदान करें जिसमें सभी लोगों के पक्षपात या राग द्वेष निवृत्त हो जावें और सभी लोग शास्त्रीय धर्म का हृदय से अनुमोदन करें, भातृभाव की वृद्धि हो और स्वार्थवश हो बेजा तौर से किसी को कोई दबाना न चाहे और ये अयाचक दलीय ब्राह्मण अपने स्वरूप को यथावत् पहचान कर अपने शास्त्रोक्त कर्त्तव्य में परायण होवें॥ इति श्री ब्रह्मर्षिवंश विस्तरे याचकायाचकद्विविधब्राह्मणविचारोनामाद्यं प्रकरणम्॥

॥ श्रीरस्तु॥

ॐ

ब्रह्मर्षि वंश विस्तर।

उत्तरार्द्ध—कण्टकोद्धार।

१— दुरुक्तिदमन।

अन्तश्छिद्राण्यनेकानि कण्टका बहवो बहिः।
कथं कमलनालस्य माभूवन् भंगुरा गुणाः॥

यद्यपि पूर्व प्रकारण में सभी प्रकार के प्रशस्त प्रमाणों द्वारा अयाचक ब्राह्मणों का श्रुतिस्मृत्यादि सिद्ध पवित्र और सर्वमान्य स्वरूप जब दिखला दिया और यह भी सिद्ध कर दिया गया कि अन्य ब्राह्मणों के साथ इनके सभी प्रकार के विवाह सम्बन्ध, खान-पान और नमस्कार इत्यादि मिले हुये हैं, तो फिर किसी को किसी प्रकार का इनके स्वरूप के विषय में संशय या मिथ्या कल्पना करने का अवसर ही न रह गया। और यदि इतने पर भी कोई भ्रम या द्वेषवश कुछ मिथ्या कल्पना करे, तो उसका खण्डन भी पूर्व प्रमाणों द्वारा अपने आप ही हो गया। इसलिये मोहपूर्ण कुकल्पनाओं के पृथक् खण्डन करने की आवश्यकता ही न रह गई। तथापि, जैसे विदेश में रहने वाले बनिये के पास उसके घर से उसकी स्त्री ने रञ्ज होकर अपने पुराने नौकर से यह कहला भेजा कि जाकर कह देना कि आपकी स्त्री विधवा हो गई, क्योंकि वह बहुत दिनों से घर न गया था; इसलिये स्त्री ने अपने को विधवा की तरह समझ उसे व्यंग्य मारे थे। परन्तु उस मूर्ख ने यह सुनते ही कुछ भी विवेक न कर वहां के अपने इष्ट मित्रों से शोक प्रकाश करना प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि उसके बुद्धिमान मित्रों ने यह बहुतेरा समझाया कि जब आप स्वयं जीते ही हैं तो भला यह कब संभव है कि आप की स्त्री विधवा हो गई? परन्तु उस प्रचण्ड मूर्ख ने यही उत्तर दिया कि हां, यह तो अच्छी तरह से समझता हूं कि मेरे जीते जी भला मेरी स्त्री विधवा कैसे हो सकती है? लेकिन मेरे दादा

के समय का यह प्रतिष्ठित, सत्यवादी और बूढ़ा नौकर भी तो झूठ नहीं बोल सकता। उसी तरह बड़े-बड़े उपाधिधारी लोगों की बातें सुनकर विचारहीन पुरुष सम्भवतः इतने पर भी उलटा ही समझने लग जावें। इसलिये उनके इस भ्रम को मिटा देने के लिये दूसरे प्रकरण की आवश्यकता है। जिसमें यह स्पष्ट शब्दों में दिखला दिया जावे कि उन नाम मात्र के उपाधिधारियों के वचन कैसे निस्सार हैं। बड़े-बड़े उपाधिधारियों के वचन सुन केवल अविवेकी लोग उन्हें भूलें न समझ अपने आप ही संशय करने या उलटा समझने नहीं लगजाते हैं, किन्तु बड़े-बड़े लोगों को भी उनकी बातें भ्रम में डाल देती हैं। क्योंकि उनकी बातों को लोग यह तो कभी समझते ही नहीं कि ये भूल से भी हो सकती हैं। जैसा बिहारी जी ने कहा है:–

को कहि सकै बड़ेन की, लखी बड़ीयो भूल।
दीन्हें दई गुलाब के इन डारिन वे फूल॥

एक बात और भी है। यह भी प्रकृति का एक अटल नियम है कि किसी वस्तु के स्वरूप को जितना ही अच्छा बनाइये, अथवा वह स्वयं जितनी अच्छी होगी, उतने ही उसके ऊपर दुष्ट लोगों के आक्रमण होंगे। इसीलिए पंचतंत्र में कहा है कि :–

मूलं भुजंगैः शिखराणि भल्लैः शाखाः प्लवंगैः कुसुमाति भृंगैः।
नास्त्येव तच्चन्दनपादपस्य यन्नाश्रितं दुष्टतरैश्च हिंस्रैः॥

इसका अर्थ यह है 'देखिये, चन्दन का वृक्ष कैसा उपयोगी और सुन्दर होता है, परन्तु उसका कोई अवयव दुष्टों से बचा नहीं है, क्योंकि उसकी जड़ में सांप रहते हैं, चोटियों पर भालू, डालियों में बन्दर और फूलों में भौंरे रहा करते हैं, जो सभी हिंसक और दुष्टतर हैं।' इसलिए केवल स्वरूप के अच्छी तरह से निरूपण कर देने से काम न चलेगा, किन्तु दुष्ट जनों के अविवेकमूलक मिथ्या आपेक्षरूप कण्टको को भी हटाने का पृथक् यत्न अवश्य करना होगा। क्योंकि यद्यपि केतकी या गुलाब के पुष्प बहुत सुन्दर, उपयोगी, मनोरंजक और सभी के ग्रहण योग्य होते हैं, तथापि सघन कण्टकों में पड़ जाने के कारण सभी लोग उनका ग्रहण या आदर नहीं कर सकते, अथवा उनसे लाभ नहीं उठा सकते, किन्तु जो उन पुष्पों के अत्यन्त प्रेमी और कांटों को कुछ भी नहीं समझने वाले होते हैं, वे लोग ही उससे यथावत् लाभ उठा सकते हैं। जैसा कहा है:–

गुलिस्ताने जहां में फूल भी हैं और कांटे भी।
मगर जो गुल के जोया हैं उन्हें क्या खार का खटका॥

इसलिए जिसमें साधारतः सभी लोग उससे लाभ उठा सकें, इसके लिए उन मिथ्या आक्षेपरूप कण्टकों को हटाने के लिए दूसरे प्रकरण की आवश्यकता है। यह बात है भी कि जब तक मनुष्य के भीतर छिद्र या बुराइयां रहतीं अथवा बाहर कांटे रहा करते हैं, तब तक उसके गुणों की कोई गिनती नहीं होती। इसीलिए इस प्रकरण के प्रारम्भ वाले श्लोक को किसी प्रौढ़ कवि ने कहा है। जिसका भाव यह है कि 'कमल के डंडे (पानी में रहने वाले हिस्से) के गुण अर्थात् तन्तु या रेशे क्यों न भंगुर या दुर्बल हों? क्योंकि उसके भीतर छिद्र और बाहर कांटे रहा करते हैं।' इसलिए भीतर आपाततः प्रतीत होने वाले छिद्रों के हटा देने पर भी बाहरी कांटों के हटाने का यत्न करना ही होगा। इसीलिये इस द्वितीय प्रकरण का आरम्भ किया जाता है और तदनुसार ही इस का नाम कण्टकोद्धार रक्खा गया है।

अस्तु, अब हम पाठकों के सम्मुख 'वर्णविवेक चन्द्रिका' नामक १०-१२ पत्रे वाली पुस्तिका को उपस्थित करते हैं जो १०-१५ वर्ष हुये वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई में छपी है और जिसके रचयिता काशीनाथ सूरि हैं। इस पुस्तक का तत्त्व हम भूमिका ही में दिखला चुके हैं और यह सिद्ध कर चुके हैं कि यह सम्पूर्ण पुस्तक स्वकपोलकल्पित और गपोड़ा मात्र है। क्योंकि जिन 'वाराहपुराण' (शूकर पुराण) और 'भुवलतन्त्र' नामक ग्रन्थों के आधार पर ग्रन्थ की रचना रचयिता ने बताई है या तो उन नामों के ग्रन्थ हैं ही नहीं, और यदि नाम में कुछ रद्दबदल करके कोई ग्रन्थ मिलते भी हैं, तो उनमें जाति का कुछ प्रसंग है ही नहीं। इसका सविस्तर विचार कर चुके हैं। ऐसी दशा में वह पुस्तक क्यों कर प्रमाण मानी जा सकती है? नहीं तो, फिर हम भी 'काशीनाथ' के बाप दादा या वंश अथवा समाज के विषय में 'मुर्गीपुराण' और 'गड़बड़ तंत्र' के आधार पर थोड़े से श्लोक बनाये देते हैं। उनको वे अथवा दूसरे लोग क्यों न मानेंगे? इसके अतिरिक्त यदि उनकी कही हुई बातें दूसरे ग्रन्थों से, जिन्हें सभी लोग मानते हैं, विपरीत न होतीं, तो भला कम से कम सुनने के योग्य तो वे बातें होतीं। परन्तु उन्होंने मनु भगवान और याज्ञवल्क्य महर्षि के विपरीत ही लिखा है। क्योंकि उन दोनों महर्षियों का यह सिद्धान्त है कि जो सन्तान एकानन्तर अनुलोम से उत्पन्न होती है, अर्थात् ब्राह्मण पुरुष से क्षत्रिया स्त्री में, क्षत्रिय से वैश्या स्त्री में, वैश्य से शूद्रा स्त्री में वह क्रम से क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ही हुआ करती है। क्योंकि मनुजी ने लिखा है:–

स्त्रीष्वनन्तरजातासु द्विजैरुत्पादितान् सुतान्।
सदृशानेव तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान्॥ ६॥
पुत्रा येऽनन्तरस्त्रीजाः क्रमेणोक्त द्विजन्मनाम्।
ताननन्तरनाम्नस्तु मातृदोषात्प्रचक्षते॥ ४०॥ १०॥

अर्थ यह कि 'जो सन्तानें अनन्तर स्त्री से अर्थात् ब्राह्मण पिता से क्षत्रिय स्त्री में इत्यादि रीति से उत्पन्न होती हैं, वहाँ वीर्य को प्रबल न मानकर वे मातृपक्ष की अर्थात् जो जाति माता की होती है उसी जातिवाली समझी जाती हैं। जो सन्तानें पूर्वोक्त रीति से उत्पन्न होती हैं उनमें मातृपक्ष को ही प्रबल मानकर वे उसी जातिवाली कहलाती है जिस जाति की माता होती हैं।' जो याज्ञवल्क्यस्मृति के आचाराध्याय के ९१वें श्लोक में लिखा है कि,

विप्रान्मूर्द्धावसिक्त (भिषिक्तो) हि क्षत्रियायां विशः स्त्रियाम्।

अर्थात् 'ब्राह्मण' पिता से क्षत्रिया स्त्री में मूर्द्धाभिषिक संज्ञावाला बालक उत्पन्न होता है।' उसका भी यही अर्थ है। क्योंकि मनु जी के अनुसार उसे क्षत्रिय होना चाहिये और 'मूर्द्धाभिषिक्त' क्षत्रिय को ही कहते हैं। इसीलिए अमरकोष में क्षत्रियों के पर्याय में भी मूर्द्धाभिषिक्त शब्द आया है, जैसा प्रथम भी दिखला चुके हैं कि 'मूर्द्धाभिषिक्तों राजन्यो बाहुजः क्षत्रियों विराट्' अर्थात् मूर्द्धाभिषिक्त, बाहुज, राजन्य, क्षत्रिय और विराट् ये सब क्षत्रियों की संज्ञायें हैं। इसलिये वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड में श्रीरामजी ने भरत को मूर्द्धाभिषिक्त कहा है–'नतु मुर्द्धाभिषिक्त नाम्' अर्थात् जब उन्होंने यह प्रण किया है कि यदि आप अयोध्या को न लौट चलेंगे तो हम अनशन करके शरीर यहीं छोड़ देंगे, तो रामजी ने उत्तर दिया है कि अनशन करके शरीर छोड़ देना ब्राह्मणों का कर्म है, न कि मूर्द्धाभिषिक्तों अर्थात् क्षत्रियों का। इसलिए ऐसा करना आपको उचित नहीं है। महाभारत में सैकड़ों जगह मूर्द्धाभिषिक्त शब्द क्षत्रियों के लिये आया है और उसके साथ अन्य स्कन्दपुराण प्रभृति ग्रन्थों के

देखने से भी स्पष्ट है कि ब्राह्मण पिता और क्षत्रिया स्त्री से उत्पन्न बालक क्षत्रिय ही होता है। इस के लिए कम से कम एक सौ वाक्य और दृष्टान्त केवल महाभारत में मिलते हैं। इसलिये अनुलोम सन्तान अलग नहीं होती। इसका सविस्तर विचार 'भूमिहार ब्राह्मण पत्रिका' के सन् १९१५ ई० के नवम्बर प्रभृति मासों के अंकों में मिलेगा।

यदि 'तुष्यन्तु दुर्जनन्याय' से आपके तोष के लिये स्वीकार भी कर लेवें कि अलग ही होती है, तो भी उसका नाम 'मुर्द्धाभिषिक्त' ही होता है न कि 'भूमिहार या पश्चिमा।' यदि भूमिहार ब्राह्मणों की ही 'मूर्द्धाभिषिक्त' संज्ञा आप बिना प्रमाण के ही मानना चाहते हैं, तो अपने ही समाज की 'मूर्द्धाभिषिक्त' संज्ञा क्यों नहीं मान लेते? क्योंकि बहुत से सर्यूपारी या कान्यकुब्ज प्रभृति दल पड़े हैं, जिनका आचार व्यवहार इस समय भूमिहार बाह्मणों का-सा ही हो रहा है। यदि आप यह कहें कि मूर्द्धाभिषिक्त का धर्म तो रथ हांकना या सेनापति आदि का काम करना है, सो तो भूमिहार ब्राह्मणों में भी नहीं पाया जाता है, जैसा अन्य ब्राह्मणों में भी नहीं है। इसीलिये यदि अनुलोम सन्तानों को अलग भी मानेंगे, तो उनकी ही मूर्द्धाभिषिक्त संज्ञा जुदी ही पड़ेगी, न कि वे ही कान्यकुब्ज, मैथिल, पश्चिमा या भूमिहार ब्राह्मण कहे जा सकते। इसी प्रकार जब विलोम सन्तान को लेते हैं, अर्थात् क्षत्रिय पिता और ब्राह्मणी माता रहे, तो उसका नाम पूर्वोक्त महर्षियों के मत से 'सूत' सिद्ध होता है। जैसा लिखा है कि :–

क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः। म० १०॥ ११॥

ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतः। याज्ञ० आचारा० ॥ ९३॥

अर्थात् ब्राह्मणी के गर्भ से क्षत्रिय के वीर्य से जो लड़का होता है उसे सूत कहते हैं। और वर्णविवेक चन्द्रिका में ऐसा लिखा गया बतलाया जाता है कि क्षत्रिय पिता और ब्राह्मणी माता से जो सन्तान (बालक) हुई उसका नाम भूमिहार हुआ। अब बताइये कि उन महर्षियों के विपरीत कहने वाले वर्ण विवेकचन्द्रिकाकार महाशय की बात सुनी भी कैसे जा सकती है? सुन भी उस दशा में सकते थे, यदि उनके इस कथन में कहीं से कुछ प्रमाण मिलता। परन्तु बिना प्रमाण के ही यदि कहना ठहरा तो, ये अपने ही वंश को ऐसा कह लेवें, सो ही अच्छा होगा। क्योंकि उसमें कोई दूसरा विरोधी खड़ा न होगा। वस्तुतः यदि सत्य बात पूछी जावे–यदि उस वर्णविवेकचन्द्रिका की निष्प्रामाणिक बातें मान भी ली जावें–तो भी उनसे पश्चिमा या भूमिहार ब्राह्मणों की क्षति नहीं है। क्योंकि जैसा श्री ज्वाला प्रसाद मिश्र विद्यावारिधि जी ने उसके वाक्य का भ्रममूलक अर्थ कर दिया है और जिसका विधिवत् खण्डन अभी करेंगे, उसी के अनुसार हमने पूर्वोक्त बातें कही हैं। वस्तुतः तो वर्णविवेक चन्द्रिका में ऐसा लिखा है :–

क्षत्रियस्य च वीर्येण ब्राह्मणस्य च योषिति।

भूमिहार्य्यभवत्पुत्रो ब्रह्मक्षत्रस्य वेशभृत्॥ ७०॥

अर्थात् 'क्षत्रिय पिता के वीर्य और ब्राह्मणी माता के रज से जो लड़का उत्पन्न हुआ उसका नाम 'भूमिहारी' हुआ और उसका वेश ब्राह्मण और क्षत्रिय का-सा हुआ।' इससे स्पष्ट है कि 'भूमिहारी' नामक जाति विशेष की ही उत्पत्ति वहाँ लिखी गई है। इसी लिये 'भूमिहारी' शब्द के आगे 'अभवत्' शब्द के आने से ईकार के स्थान में सन्धि होकर 'य' हो गया और 'भूमिहार्य्यभवत्' ऐसा शब्द का स्वरूप हो गया। यदि भूमिहार ब्राह्मणों को कहना होता तो 'भूमिहार' शब्द से आगे अभवत् आने पर 'भूमिहारोऽभवत्' ऐसा रूप शब्दों की

सन्धि होने पर हो जाता। परन्तु वहां तो 'भूमिहार्य्यभवत्' ऐसा ही लिखा हुआ है। यहाँ तक कि स्वयं ज्वाला प्रसाद जी ने भी अपनी 'जातिनिर्णय' नामक पुस्तक में इस श्लोक को उद्धृत करते हुये 'भूमिहार्य्यभवत्' ही लिखा है, अर्थ करने में भले ही सज्जनता और पाण्डित्य दिखलाने में नहीं चुके हैं। भूमिहारी या भुंइहारी नामक कोई शूद्र जाति है, जिसके मनुष्यों की संख्या ३१६७८७, तथा उस जाति का नाम 'भुंइहारी' साधुचरण प्रसाद कृत 'भारत भ्रमण' के प्रथम खण्ड के ४४वें पृष्ठ में लिखा गया है और दर्याफ्त करने से मालूम हुआ कि यह एक व्यापार करने वाली जाति बम्बई के तरफ विशेष रूप से पाई जाती है और शूद्र है। इसीलिये वर्णविवेक चन्द्रिका में भूमिहारी जाति से पूर्व माहुरी वैश्य नामक और बाद में तेली नामक शूद्र जाति का ही निरूपण किया गया है। इससे स्पष्ट है कि वह प्रकरण वैश्य, शूद्र जाति का ही है। इसलिये भूमिहारी जाति वही शुद्र जाति है, जिसका पता बता चुके हैं। जैसे भूमिहार का अपभ्रंश भुईहार हो गया है, वैसे ही 'भूमिहारी' शब्द ही बिगड़ कर 'भुंइहार' हो गया है' वैसे ही 'भूमिहारी' शब्द ही बिगड़ कर 'भुंइहारी' हो गया है। इसलिये यही सिद्ध हो गया कि यदि 'वर्ण-विवेकचन्द्रिका' की बातें मान भी ली जावें तो भी इन ब्राह्मणों की कोई निन्दा या क्षति नहीं है।

अब विद्यावारिधि जी की दुरुक्ति रूप बाडवानलज्वाला का भी परिचय कर लीजिये। आप अपनी पुस्तक 'जाति निर्णय' के ८६वें पृष्ठ में इसी वर्णविवेकचन्द्रिका का श्लोक ज्यों का त्यों उद्धृत करते हैं, क्योंकि यह उनका ग्रन्थ प्रायः उसी वर्णविवेक चन्द्रिका की टीका की तरह है। फिर उस भूमिहारी शब्द का अर्थ भूमिहार करके कोष्ठ के बीच में मैहार लिखते हैं। यहाँ कई बातें विचारने योग्य हैं। एक तो विद्यावारिधि जी को यह विचारना चाहता था कि यदि हम यह श्लोक वर्णविवेक चन्द्रिका से उठाकर लिखते हैं तो वह किसी ऋषि का प्रणीत तो है ही नहीं, इसलिये जिस आधार पर वह श्लोक बनाया गया है उस ऋषिवचन को लिख देवें। परन्तु यदि विद्यावारिधि होने पर भी उसके मूल का पता न चला, तो भलमानुसी इसी में थी कि उसे अपनी पुस्तक में लिखकर अपने आपको और उसे कलङ्कित भी न करते। परन्तु आपने तो यह चालाकी की कि यदि 'वर्णविवेक चन्द्रिका' इसका मूल प्रमाण लिख देते हैं, तो कोई मानेगा ही नहीं और दूसरा प्रमाण तो इस विषय में कुछ मिलता ही नहीं। इसलिये यदि झूठ मूठ ही किसी प्राचीन ग्रन्थ का नाम लेते हैं तो अन्ततोगत्वा पोल खुल ही जायेगी। तो फिर झूठा बनना पड़ेगा। इसलिये यद्यपि उससे पूर्व और बाद के श्लोकों को लिख कर उनके आगे 'इति वर्णविवेक चन्द्रिका' अर्थात् 'ऐसा वर्ण विवेक चन्द्रिका में लिखा है,' ऐसा लिख दिया। लेकिन इस श्लोक को लिखकर 'इति वर्णविवेक चन्द्रिका' भी न कह कर एक बारगी चुप मार गये। जिसमें अविवेकी लोग, विद्या वारिधि महामहोपदेशक पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र जी ने यदि लिखा है, तो अवश्य प्रामाणिक होगा, ऐसा समझ कर इन भूमिहार ब्राह्मणों को गालियाँ देने में न रुकें। वाह! वाह! इसी को तो उपदेशकी कहते हैं। अवश्य आप जैसे महोपदेशकों, सुधारकों और विद्यावारिधियों की कृपा से इस दीन भारत के बह जाने में कोई विलम्ब नहीं है। क्यों जी विद्यावारिधि जी! यदि हम भी ऐसे ही श्लोक आपके समाज अथवा वंश के विषय में रच कर छपवा देवें और आने को महामहोपदेशक लिखने लग जावें तो आप उन्हें मानेंगे या नहीं? हमारी समझ से तो आप कोई उज्र नहीं कर सकते।

जब आपने, जैसा हमने कह दिया है, जैसे अनुलोम सन्तानों को अलग लिखा है वैसे

ही विलोम को भी प्रथम को मूर्द्धाभिषिक्त और दूसरे को सूत लिखा है और इसमें पूर्वोक्त मनु और याज्ञवल्क्य के ही वचन प्रमाण दिये हैं, तो फिर उनके विपरीत और अपने ही पूर्वापर लेख के विपरीत ही कैसे ऐसा लिख दिया? जब क्षत्रिय पुरुष और ब्राह्मणी स्त्री से सूत की उत्पत्ति लिखते हैं, तो फिर उन्हीं दोनों से भूमिहारों की उत्पत्ति लिखते हुये क्या आपको शर्म न आई ? क्या इसी बुद्धि से वेदों के भाष्य बने हैं? यदि इस विषय में कोई स्वकपोलकल्पित व्यवस्था करें भी, तो जब आपने स्वयं उसी पुस्तक के ३२वें पृष्ठ में कान्यकुब्ज या अन्य काश्यप गोत्री ब्राह्मणों की उत्पत्ति भूमिहार (भुइंहार) ब्राह्मणों से लिखी है, तो फिर यहाँ आकर क्यों अर्थ का अनर्थ करने लग गये? क्या इतना भी विचार न रहा कि प्रथम हम क्या लिखा चुके हैं और अब क्या लिखते हैं? क्या आप इन ब्राह्मणों को अपनी पुस्तक में लिखे हुये भूमिहार ब्राह्मणों से भिन्न समझते हैं? क्या ऐसा समझने में आपके पास कोई प्रमाण है? यदि आप की समझ ऐसी ही है, तो फिर अपने को भी उसमें या अन्यत्र लिखे गये कान्यकुब्जों, सर्यूपारियों या गौड़ों से भिन्न समझने में आपको कोई सन्देह ही न होगा। क्योंकि आप उन्हीं ब्राह्मणों में से हैं, क्या इसकी रजिस्टरी या हुलिया आपके पास है और भूमिहार ब्राह्मणों के पास नहीं है?

यदि उस श्लोक में 'भूमिहार्य्यभवत्' लिखा हुआ है तो आपने भूमिहारी अभवत् ऐसा पदच्छेद न करके भूमिहारः अभवत् ऐसा पदच्छेद किस व्याकरण की रीति से किया है? क्या वेदों के भाष्यों की तरह कोई नया व्याकरण भी अपने ही बना लिया है? क्या इसीलिये विद्यावारिधि की पदवी मिल गई है? अथवा विद्या को डुबो कर रसातल भेजने से ही महती पदवी से अलंकृत हुये हैं? या जैसे आपकी और सब बातें कल्पित हैं वैसे ही यह उपाधि भी? आपके वारिधि होने का एक प्रबल प्रमाण यह तो अवश्य है कि इन निर्दोष ब्राह्मणों के लिये कपोलकल्पित कटूक्ति रूप वाडवानल का प्रयोग आपने खूब ही किया है और यह बात आपको शोभा भी देती है। क्योंकि ज्वाला प्रसाद ही तो ठहरे! उसमें भी पण्डित और मिश्र जी! और फिर जो आपने भूमिहार का भैंहार अर्थ किया, वह किस प्रमाण और तात्पर्य से, समझ में नहीं आता। शायद आपके भीतर यह छल भरा हुआ था कि यदि कोई भूमिहार ब्राह्मण हमसे जबाब तलब करेगा और बिना प्रमाण होने से मानहानि का दावा हमारे सिर ठोक देगा, तो इस छल से बच जावेंगे कि हमने तो वह भैंहार जाति के विषय में लिखा है, न कि भूमिहार ब्राह्मणों के विषय में लिखा। परन्तु शोक तो इस बात का है कि आप भैंहार नाम वाली जाति बतला नहीं सकते। इसलिए हारकर मान लेना ही पड़ेगा कि भूमिहार शब्द के अपभ्रंश भुइंहार का ही अपभ्रंश करके आपने वैसा लिखा है।

पाठकवृन्द! हम इस विषय में विद्यावारिधि जी की विशेष बौछार रूप सज्जनता का परिचय दिलाते हैं, और विद्यावारिधिपन का भी। इन ब्राह्मणों के ऊपर आपका विशेष अनुग्रह प्रतीत होता है। इसीलिये अपनी अति भयंकर लहरों से इस समाज को बहा देने के लिये जी-जान से कटिबद्ध हैं। क्योंकि आप और आपके भाई दोनों ने मिलकर कर्नल टाड साहब के 'राजस्थान' नामक अंग्रेजी ग्रन्थ की हिन्दी टीका और टिप्पणी की है। उसमें भी भूमिहार ब्राह्मणों की खूब ही खबर ली है। सभी इतिहासज्ञों और मनुष्यगणना के विवरणों के पढ़ने या जानने वालों को विदित है कि भुइयां, भूमियां अथवा भोमियाँ नामकी एक जंगली जाति है, जो बिहार के सन्थाल परगने वगैरह प्रान्तों, मिर्जापुर के पहाड़ों अथवा राजपुताने के प्रान्तों

आदि में विशेष रूप से पाई जाती है, जो कहीं-कहीं राजपूताने वगैरह में, जहाँ जाट लोग विशेष रूप से पाये जाते हैं, प्रायः उन्हीं में मिली हुई है और अन्यत्र अन्य जंगली जातियों के साथ उसका मेल है। अथवा कहीं-कहीं स्वतंत्र ही है। इसके सिवाय जयपुर के शेखावाटी प्रदेश और अलवर राज्य में बहुत से गौड़ ब्राह्मण भी भूमियां कहे जाते हैं, क्योंकि बड़े-बड़े जमींदार हैं। मगर उनका न तो यहाँ प्रसंग ही है और न विद्या वारिधि का अभिप्राय ही ऐसा है। उसी जातिका विशेष रूप से राजपूताने के इतिहास 'राजस्थान' में कर्नल टाड साहब ने वर्णन किया है और कहीं-कहीं उसका नाम 'भोमियां' (Bhomia) और कहीं-कहीं 'जाट भोमियां' (JatBhomia) लिखा है। परन्तु सबन्धु विद्यावारिधि जी ने कृपा करके जाट शब्द को तो एक प्रकार से एक बारगी छोड़ ही दिया है और भोमियां (Bhomia) शब्द का हिन्दी अनुवाद 'भूमिहार' कर दिया है, जिससे लोगों को साफ ही धोखा हो सकता है। यदि वे लोग अंग्रेजी न पढ़े हों, तो उनके लेखानुसार इन भूमिहार ब्राह्मणों को जंगली जाति ही समझ लेवें। भला भूमियाँ या भोमियाँ शब्द की जगह भूमिहार शब्द लिखना कौन बुद्धिमत्ता है? शायद आपको किसी कोष में भोमियाँ शब्द का ऐसा अर्थ मिला होगा। अच्छा तो होता यदि सभी इतिहासों और मनुष्य गणना के विवरणों का हिन्दी अनुवाद करके भूमियां शब्द का भी हिन्दी अनुवाद कर डालते, जिससे लोगों को सन्देह की जगह ही न रह जाती और अन्य जातियों के नामों का मनमाना हिन्दी अर्थ करके जिस जिससे चाहते बदला चुका लेते। अब हम उन दो चार स्थलों को दिखला देते हैं जहां आपने ऐसी कारीगरी की है वहाँ का अंग्रेजी ग्रन्थ भी लिखकर दिखला देना चाहते हैं कि आपके हिन्दी अनुवाद का मूल अंग्रेजी ग्रन्थ से कितना सम्बन्ध है, जिससे आपकी योग्यता और विद्यावारिधिता का पता लोगों को भी चल जावे।

कर्नल टाड ने अपने 'राजस्थान' के प्रथम भाग के २००वें पृष्ठ में जयपुर के इतिहास में ऐसा लिखा है–

When the tidings of this fatal event were conveyed to Salibahan, for 12 days the ground became his bed. He at length reached the Punjab where he fixed on a spot with abundance of water, and having collected his clansmen around him he laid the foundation of a city which is named after him Salibahanpur. The surrounding Bhumias attended and acknowledged his supremacy. 72 years of the era of Vikrama had elapsed when Salibahanpur was founded upon Sunday the 8th of the month of Bhadon.

इसका अनुवाद मिश्र जी ने स्वरचित हिन्दी 'राजस्थान' के प्रथमाध्याय, द्वितीय भाग, जैसलमेर के इतिहास प्रसंग के ४७०वें पृष्ठ में इस प्रकार किया है:– 'जब यह हृदयभेदी शोचनीय संवाद शालिवाहन तक पहुंचा तब वह महाशोक समुद्र में मग्न होकर १२ दिन तक पृथ्वी पर सोये और अन्त में उन्होंने पंजाब में आकर नदनदी और तड़ागादि से पूर्ण एक देश में सबको इकट्ठा किया और नवीन राजधानी स्थापित करने के उपरान्त अपने नाम के अनुसार उस नगर का नाम शालिवाहनपुर रक्खा। उनकी नवीन राजधानी के चारो ओर के आदि भूमिहारों ने आकर उनको अधीश्वर स्वीकार किया। महाराज विक्रमादित्य के प्रचलित किये सम्वत् ७२ के भादो के महीने की अष्टमी, रविवार के दिन शालिवाहनपुर नामक राजधानी प्रतिष्ठित हुई थी।'

एक तो इस अनुवाद में मूल ग्रन्थ का भाव ठीक नहीं आया है। दूसरी बात यह है कि 'तब वह महाशोक सागर में मग्न होकर' इत्यादि वाक्य ऊपर से घुसेड़े गये हैं और तीसरी यह है कि मूल ग्रन्थ के भूमियां (Bhumia) शब्द का 'भूमिहार' अर्थ जबर्दस्ती किया गया है और उसमें 'आदि' यह विशेषरूप से पेबन्द अपने पास से जोड़ा गया है, जिसमें कुछ छल भरा होगा। अस्तु, अभी और लीला देखिये :

आगे चलकर टाडसाहब २०३वें पृष्ठ में इस प्रकार लिखते हैं :

When Mangal Rao fled from the Kingdom his children were secreted in the houses of his subjects. A Bbumia named Satidas, of the tribe of Tak, whose ancestors had been reduced from power and wealth by the ancestors of the Bhatti prince, determined to avange himself and informed the king that some of the children were conceared in the house of a banker (Sahookar). The king sent the Tak with a party of troops and surrounded the house of Shridhar, who was carried before the king where he would put all his family to death, if he did not produce the young princes of Salibahan. The alarmed banker protested that he had no children of the Raja's for that, the infants who enjoyed his protection were the offsprings of a Bhomia, who had fled on the invasion, deeply in his debt. But the king ordered him to produce them, he demanded the name of their village, sent for the Bhumias belonging to it, and not only made the royal infants of Salibahan eat with them but marry their daughters. The banker had no alternative to save their lives but to consent; they were brought forth in the peasant's garb, ate with husbandmen (Jatt) and were married to their daughters. Then ofspring of KulurRaj became Kulloorea Jatts. Those of Mond Raj and Shiva Raj, Monda and Sheora Jatts, while the younger Phool and Kevala. Who were passed as a barber (Nai) and a potter (Khomar) fell into that class.

विद्यावारिधिजी ने इसका अनुवाद यों किया है :— 'जिस समय मंगल राव अपने पिता के राज्य से भाग गये उस समय उनके पुत्रों की रक्षा प्रजा ने गुप्तभाव से की थी। तक्षक जातीय सतीदास नाम का एक भूमियाँ था, जिसके पूर्व पुरुष गण पुरातन भट्टी राजाओं के द्वारा सामर्थ्यहीन हो अत्यन्त दीन दशा में पड़े थे। उसने पिता का प्राचीन बदला लेने की इच्छा से विजय पाये हुये म्लेच्छराज से प्रगट किया कि मंगलराव के कितने ही पुत्र और कुटुम्ब के मनुष्य इसी नगर में एक महाजन के घर रहते हैं। म्लेच्छराज ने उसके यह वचन सुनकर शीघ्र ही अपनी सेना को उसके साथ भेज दिया। सतीदास उस सेना के साथ उक्त श्रीधर महाजन के घर गया और उसको पकड़कर राजा के सम्मुख ले आया। म्लेच्छराज ने श्रीधर से कहा कि यदि तुम शालिवाहन के प्रत्येक राजकुमार को मेरे सम्मुख नहीं लाओगे, तो याद रक्खो कि तुम्हारे कुटुम्ब में एक को भी जीता न छोडूंगा। इस पर महा भयभीत होकर महाजन श्रीधर ने विनय करके म्लेच्छराजा के सम्मुख निवेदन किया कि मेरे यहां राजा का एक पुत्र भी नहीं है। जो कई बालक मेरे यहां रहते हैं वह एक भूमियां के पुत्र हैं। वह भूमियां मेरे ऋण से बंधा हुआ इस युद्ध के समय भाग गया है। म्लेच्छराज ने महाजन के उन

वचनो पर किंचित भी ध्यान नहीं दिया और शीघ्र ही बालकों को अपने सम्मुख लाने की आज्ञा दी। जब महाजन श्रीधर ने देखा कि राजकुमारों के प्राणों की रक्षा के और कोई उपाय नहीं हैं तब उनके प्राणों की रक्षा करने के लिये वह म्लेच्छराजा की आज्ञानुसार कार्य करने में सम्मत हुआ। शीघ्र यदुवंशी राजकुमार किसान के बालक वेश में म्लेच्छराजा के सम्मुख लाये गये और म्लेच्छराजा ने उनके साथ भूमिहारों की कन्या का विवाह कर दिया। इस प्रकार से शालिवाहन के वंश में उत्पन्न सम्पूर्ण राजकुमार जो श्रीधर के घर में थे उनमें कलोर के पुत्र भी कलोरिया जाट, मुंदराज और श्योराज के पुत्र मुंदाजत और शिवराजत नाम से विख्यात हुये। कुमार फूल और कुमार केवला का नाई और कुम्हार के पुत्र कहकर म्लेच्छराजा के सम्मुख परिचय दिया था, इस कारण उन दोनो जनों के वंश वाले उन दोनो श्रेणियों में गिने गये।'

यह अनुवाद मूल ग्रन्थ से प्रायः सम्बन्ध नहीं रखता। बहुत जगह ऊपर से मिला भी दिया गया है, और मूल ग्रन्थ के कितने ही वाक्य छोड़ भी दिये गये हैं। साथ ही श्योरा जाट और मुंदा जाट जो मूल में लिखे गये हैं, उनको शिवराजत और मुंदाजत लिखा गया है, अंग्रेजी में 'जाट' (Jatt) शब्द लिखा गया है उसका 'जत' अर्थ किया है। इसमें छल तो ऐसा है कि इस इतने लेख में मूल ग्रन्थ में ३ या ४ जगह Bhomia (भूमियां) शब्द आया है जिनमें से और जगह तो आपने उसका दूसरा अर्थ न कर केवल 'भूमियां' ही लिख दिया है, परन्तु एक जगह मध्य में उसका अर्थ 'भूमिहार' कर दिया, जिससे लोग धोखे में पड़ जावें कि उन्होंने भूमियां का अर्थ 'भूमिहार' नहीं किया है किन्तु सचमुच कोई और 'भूमिहार' जाति वहां थी, जिसकी लड़कियों का विवाह शालिवाहन के लड़कों से हुआ। भला इस सज्जनता का कहीं ठिकाना है? आगे चलकर जब फिर 'कर्नल टाड' ने अपने ग्रन्थ के तृतीय परिच्छेद, आमेर वा जयपुर के ही इतिहास के ३४१वें पृष्ठ में बदनसिंह का इतिहास लिखते हुए साफ-साफ लिखा कि, "And when through the intercession of Jey Singh and guarantee of the Buumia Jatts he was liberated" अर्थात् 'जब जयसिंह के बीच में पड़ने और अन्य भूमियां जाटों की जिम्मेवारी पर बदनसिंह छोड़ दिया गया' इत्यादि। तो आप वहां भी 'भूमियां जाट' का अर्थ 'भूमिहार जाट' करने में न चूके जिससे भूमिहार ब्राह्मणों को जाट ही बना डालने में कोई सन्देह न रह जावे। इस प्रकार से उस पुस्तक भर में बहुत सी जगहें हैं, जहां इन मिश्र बन्धुओं की विचित्र लीला देखने में आती है। कहीं तो आप 'भूमियां' ही लिख डालते हैं परन्तु कहीं उसकी ही जगह 'भूमिहार'। शायद ऐसी चाल चलने में लोगों को पूर्वोक्त धोखा देने के अतिरिक्त आपने अपने 'जातिनिर्णय' में लिखे गये 'भूमिहार' शब्द पर आक्रमण होने पर उससे बचने के लिये यह भी उपाय सोचा हो कि हमने तो अन्य ही भूमिहारों के विषय में, यह बात लिखी है, न कि भूमिहार ब्राह्मणों के विषय में, ऐसा कह कर निकल जावेंगे। इससे स्पष्ट है कि विद्यावारिधि जी भूमिहार ब्राह्मणों की खबर लेने के पीछे जी जान से पड़े हैं। परन्तु विद्यावारिधि महाशय! स्मरण रहे, ब्राह्मणों से लगने से किसी का कल्याण नहीं हुआ। यदि एक भी ब्राह्मण की दृष्टि बदल जावे, तो वारिधि का पता न लगेगा।

अब 'भूमिहारोत्पत्ति' नामक ग्रन्थ के तत्त्वों को देखिए। यह ग्रन्थ डुमरांव के भूतपूर्व पण्डित दुर्गादत्त परमहंस जी के वंशजों के परमप्रिय शाकद्वीपी अक्षयवट मिश्र ने पं० शिवबालक त्रिपाठी के नाम पर लिखा और अपने नाम पर उसका मिथ्या भाषानुवाद करके

सीधे सादे चौधरी अविलम्ब राय जी डुमरांव निवासी भूमिहार ब्राह्मण के नाम पर प्रकाशित करवाया है। जिससे उसके विषय में कानून से भूमिहार ब्राह्मण समाज को बोलने की जगह न रह जावे और फिर उक्त परमहंस जी के बंशजों ने ही चेलों में उसे मुफ्त बांट दिया। प्रथम तो जिस स्कन्दपुराण के ११वें अध्याय में इस बात को वे बतलाते हैं, यदि उसी अध्याय में हमें आज मुद्रित पूर्वोक्त पुराण में उसे दिखला देवें तो हमें भी उनकी बुद्धिमता का पता लग जावे। हां, धर्मारण्य माहात्म्य के१०वें अध्याय में इस प्रकार का एक आख्यान आता है। परन्तु उस आख्यान और इस पुस्तक में लिखे हुये आख्यान में बहुत सा अन्तर है। एक तो उस अध्याय में ६० श्लोक मिलते हैं, परन्तु आपकी पुस्तक में ५५ ही। दूसरी बात यह है कि जिस 'कुचर' शब्द का आप कई जगह प्रयोग इस पुस्तक में करते और उसका अर्थ जबर्दस्ती भूमिहार करते हैं, उसका पता उस ग्रन्थ में है ही नहीं, किन्तु उसकी जगह 'कुमार' शब्द आया है और जो भी श्लोक आपने लिखे हैं, वे मुद्रित श्लोकों से आधे मिलते हैं, परन्तु आधे नहीं मिलते। इसके अतिरिक्त आप पुस्तक के अन्त में लिखते है कि, **'इति श्रीस्कन्द पुराणे पातालखण्डे धर्मारण्य माहात्म्यवर्णने भूमिहारोत्पत्ति वर्णन नामैकादशोऽध्यायः'।** इसका अर्थ यह लिखा है कि 'इति श्रीस्कन्दपुराण के पाताल खण्ड में धर्मारण्य माहत्म्य वर्णन में भूमिहारोत्पत्ति वर्णन नामक ग्यारहवां अध्याय समाप्त हुआ।'

परन्तु हम समझते हैं कि इस पुस्तक के लिखने के समय लेखक जी की बुद्धि रसातल में ही चली गई थी। इसीलिये रसातल के समीपवर्ती पाताल खण्ड में लिखी गई यह बात उन्होंने बतलाई है। क्योंकि स्कन्द पुराण में तो पाताल खण्ड है ही नहीं। जैसा लिखा है :–

माहेश्वरोवैष्णवब्राह्मकाश्यास्त्वावन्तिका नागरमत्र षष्ठम् ।
प्राभासिकोविप्रवरेणखण्डाः स्कान्देपुराणेकथिताः सुपुण्याः ॥

अर्थात् 'स्कन्दपुराण में माहेश्वर, वैष्णव, ब्राह्म, काशी, अवन्तिका, नागर और प्रभास ये सात ही खण्ड हैं'। इसीलिये पूर्वोक्त कथा ब्राह्मखण्ड में ही मिलती है। परन्तु वहां भी अन्त में ऐसा नहीं लिखा है, जैसा आप लिखते है कि भूमिहारोत्पत्ति वर्णन समाप्त हुआ। किन्तु वहां तो यह लिखा गया है कि इस अध्याय में बनियों की उत्पत्ति और वाडवों (ब्राह्मणों) की सेवा के लिये उनके स्थापन का वर्णन है। जैसा लिखा है कि:–

इति श्रीस्कान्देमहापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यांसंहियायां तृतीये ब्राह्मखण्डे पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये वणिक्परिग्रहवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः ॥ अर्थात् 'इक्यासी हजार श्लोक वाले स्कन्द महापुराण के तृतीय ब्रह्मखण्डान्तर्गत पूर्व भाग के धर्मारण्य माहात्म्य प्रसंग में वणिक् लोगों की उत्पत्ति प्रभृति का वर्णन नामक दशम अध्याय समाप्त हुआ'। इसलिये भूमिहारोत्पत्ति लिखना केवल आंखों में धूल झोंकना है। इसीलिये उस अध्याय भर में बीसों जगह वणिक् शब्द उन अनुचरों के लिये आया है और उनकी संज्ञा (नाम) गोभुज बतलाई गई है। परन्तु आपने ऐसा यत्न किया है कि बहुत से 'वणिक् शब्दों को निकाल ही दिया है और यदि एक दो को रक्खा भी है, तो उसका अर्थ बनियां न करके 'भूमिहार' किया है और बहुत से 'वणिक् ' शब्दों की जगह 'गोभुज' शब्द, या 'कुचर' शब्द लिखकर इन दोनो शब्दों का अर्थ भूमिहार ही किया है। जैसा वहां एक श्लोक यों है :–

अन्नपानादिकं सर्वं समित्कुशफलादिकम् ।
आपूरयन् द्विजातीनां वणिजस्ते गवात्मजाः ॥

जिसका अर्थ यह है कि 'कामधेनु द्वारा उत्पन्न किये गये वे वणिक् (बनिये) उन ब्राह्मणों के अन्न, पान, समित, कुश और फल वगैरह लाया करते थे'। परन्तु आप अपनी पुस्तक में उसमें और सब ज्यों का त्यों लिखते हैं, केवल 'गवात्मजाः' पद की जगह 'गोभुजाः' लिखते हैं और उसका अर्थ करते हैं कि 'कि वे सब गोभुज (भूमिहार) दिव्य सुन्दर पवित्र धर्मारण्य में बसकर अन्न जल, लकड़ी, कुश, पुष्प, फल, आदि पदार्थों को समय-समय पर लाकर उन सब ब्राह्मणों का कार्य पूर्ण करने लगे'। इस से पूर्व के श्लोक में लिखा है कि **'वणिजश्चमहादक्षा द्विजशुश्रूषणोत्सुकाः ।''** अर्थात् 'वे वणिक् बहुत कुशल और ब्राह्मणों की सेवा में उत्कंठित थे।' परन्तु इस 'वणिक्' पद का अर्थ भी आपने 'भूमिहार' ही किया है। इसके बाद लिखा है कि,

वणिक्पत्नी प्रकुरुते कण्डनं पेषणादिकम् ।

अर्थात् 'उन बनियों की स्त्रियां उन ब्राह्मणों के अन्न कूटती और पीसती थीं।' परन्तु आप लिखते हैं कि 'उन गोभुजों (भूमिहारों) की स्त्री ब्राह्मणों के गृह में कूटना पीसना आदि सकल गृह कार्यों से सेवा करने लगीं' इससे प्रथम ही एक स्थान में लिखा गया है कि :–

गृहीत्वा प्रददौ सर्वा वणिग्भ्यश्च तदा नृप ।

अर्थात् 'हे राजन्, गन्धर्वराज ने सभी कन्यायें उन वणिकों (बनियों) को दे दीं'। परन्तु आप 'वणिग्भ्यश्च' शब्द की जगह 'गोभुजेभ्यः' ऐसा पद लिखकर ऐसा अर्थ करते हैं कि 'हे राजन्, उन सब कन्याओं को लाकर उन गोभुजों (भूमिहारों) के साथ शिवजी ने विवाह कर दिया'। तात्पर्य यह है कि उन ब्राह्मणों की सेवा के लिये ३६००० वणिक् उत्पन्न किये गये थे, जिनका नाम गोभुज था। इसीलिये **'गोभुजा ये वणिग्वराः', 'गोभुजेभ्यः प्रदीयताम्'** वगैरह वाक्यों में 'गोभुज बनियों को दे दो' इत्यादि लिखा गया है और उसी धर्मारण्य माहात्म्य के ३२वें अध्याय में स्पष्ट शब्दों में वैश्य लिख दिया है। जैसा–

षट्त्रिंशच्च सहस्राणि वैश्या धर्मपरायणाः ।
आर्यवृत्तास्तु विज्ञेया द्विजशुश्रूषणे रताः ॥ ४० ॥

अर्थात् 'उस धर्मारण्य में धर्म परायण, परम सदाचारी ३६००० वैश्य थे और वाडवों (ब्राह्मणों) की सेवा में दिन रात लगे रहते थे।' इसीलिये उस अध्याय भर में वणिक् और गोभुज शब्द लगातार उनके लिये आते गये हैं। परन्तु आपने सभी जगह अपनी अगाध पण्डिताई से उनका अर्थ 'भूमिहार' किया है। और कहीं-कहीं कुचर शब्द भी ऊपर से डालकर उसका अर्थ भी ऐसा ही किया है। इससे आपकी सज्जनता और ब्राह्मणता का पूर्ण परिचय मिलता है।

अच्छा पण्डितजी! भला यह तो बतलायें कि वणिक्, गोभुज और कुचर इन तीनो शब्दों का जो आपने भूमिहार अर्थ किया है, उसमें कोई कोश, व्याकरण अथवा निरुक्त आदि प्रमाण हैं, या केवल गपोड़ा ही हांका गया है? यदि ऐसा ही मनमाना अर्थ करना था, तो उसका 'मिश्र' अर्थ करके अपने ही वंश में क्यों न लगा दिया? दूर तक परेशान होने की आवश्यकता ही क्या थी? यदि शायद आपने ऐसा अर्थ लगाया हो कि गो+भुज अर्थात् पृथ्वी के पालने वाले, और कु+चर पृथ्वी (भूमि) को प्राप्त करने वाले। क्योंकि गो नाम पृथ्वी का है और 'भुज' धातु पालने अर्थ में है। इसी प्रकार 'कु' नाम भूमि का है और 'चर' धातु का अर्थ 'गति' है, जिससे प्राप्ति भी ली जाती है। तो फिर गो नाम गाय का है और भुज

धातु का भोजन भी अर्थ है। अर्थात् गौ को ही खा जाने वाले कसाई ऐसा ही अर्थ क्यों न कर लिया? इसीलिये तुलसीदासजी ने भी 'मरु मालव महिदेव गवाशा' इस जगह गवाशा का अर्थ गौ को भक्षण करने वाला कसाई किया है। इससे भी अच्छा होता कि उसका अर्थ ऐसा कर लेते कि कु+चर अर्थात् पृथ्वी में घूमने वाला, यानी भिक्षा वगैरह के लियो जो दिन रात इधर उधर घूमा करे ऐसा ब्राह्मण ही कुचर कहलाता है। इसीलिये सत्यनारायण की कथा में लिखा है कि, **'ब्राह्मणोऽतिदरिद्रोऽहं भिक्षार्थं भ्रमणं मम'।** अर्थात् 'मैं अति दरिद्र ब्राह्मण भिक्षा के लिये पृथ्वी में घूमा करता हूं। तो ऐसा करने से आप ही 'कुचर' कहलाते और वह वृतान्त आपके ही वंश का हो जाता, जिससे आपको अपने वंश का इतिहास भी पृथक् न लिखना पड़ता। इसी प्रकार से गोभुज का भी अर्थ गाय की भुजा या पूंछ पकड़ने वाला (क्योंकि गोदान के समय आपके भाई पुरोहित ऐसा किया, कराया करते हैं) ऐसा करके अपने ही वंश के विषय में उसे क्यों न लगा लिया?

अथवा वे गोभुज वणिक् पृथ्वी को फाड़कर बाहर आये थे, इसीलिये गो भुज कहलाते थे। क्योंकि 'भुज' धातु का अर्थ 'तोड़ना' भी होता है और देवताओं ने ही उन्हें भूमि से इस प्रकार निकाला था। और आपका याचक समाज भी भूसुर कहलाता है, जिसका वही अर्थ हो सकता है कि भूमि से देवताओं द्वारा उत्पन्न किये (पाये) गये। क्योंकि सृ धातु का गति अर्थ है और गति कहते हैं प्राप्ति को भी। इसलिये वे सभी बातें आप में ही घट जावेंगी। आप दूसरे की उत्पत्ति के लिये क्यों व्यग्र हैं? इसीलिये मनमाना अर्थ करने से आप ही का ठिकाना न लगेगा। त्रिपाठी और मिश्र जी! जैसी बिना सिर पैर की मिथ्या रचनाएँ आप लोग इस ब्राह्मण समाज के विपरीत किया करते हैं, वैसी ही सहस्रों रचनाओं का आपके समाज या वंश के विषय में करना कुछ कठिन नहीं है, जिन्हें देखते ही आपकी सुबुद्धि ठिकाने आ जावे। परन्तु हम ऐसी सज्जनता करना नहीं चाहते। ये सब बातें आप ऐसे ही पण्डितों और सज्जनों को मुबारक हों।

जैसी दृष्टि आपने गोभुज वणिकों के ऊपर दी है, वैसी ही यदि उन ब्राह्मणों पर दृष्टि दी होती, जिनकी सेवा के लिये वे वणिक् उत्पन्न किये गये, तो यह होता कि अयाचक ब्राह्मणों की सच्ची स्थिति का परिचय आपको अवश्य लग गया होता। क्योंकि हम प्रथम प्रकरण में ही यह अच्छी तरह से दिखला चुके हैं कि वे सभी ब्राह्मण धर्मारण्य का राज करते और याजन, अध्यापन एवं प्रतिग्रह से रहित होकर इन भूमिहार ब्राह्मणों के ही सदृश त्रिकर्मा थे। और आपका पुरोहित समाज तो त्रिकर्मा होना स्वीकार नहीं करता और वास्तव में है भी नहीं। इसलिये वे धर्मारण्यस्थ ब्राह्मण भूमिहार ब्राह्मणों के पूर्व पुरुष न थे तो और कौन थे? यह बात भी हम प्रबल प्रमाणों द्वारा पूर्व प्रकरण में ही सिद्ध कर चुके हैं कि उन्हीं ब्राह्मणों के वंशजों का प्रथम भूमिहार नाम या विशेषण पड़ा ।। यह भी तो आप विचारें कि प्रथम घर दिया जला कर पश्चात् मस्जिद में जलाया जाता है। इसलिये भूमिहार ब्राह्मणों की उत्पत्ति की चिन्ता में आप क्यों पड़े हैं? प्रथम सर्यूपारियों, शाकद्वीपियों या कान्यकुब्जों की उत्पत्ति का तो पता लगाइये। क्योंकि वेदों, पुराणों या स्मृतियों में तो केवल ब्राह्मण की उत्पत्ति लिखी गई है। वहाँ तो सर्यूपारी, शाकद्वीपी या कान्यकुब्ज शब्द का नाम भी नहीं है और विशेषतः शाकद्वीपी का।

अस्तु, यह तो हुई पं० दुर्गादत्त परमहंस जी के वंशजों, और प्रियपात्रों की काली करतूत! अब स्वयं परमहंस जी की पण्डिताई और परमहंसता देखिये। आपके बनाये हुये

स्वकीय 'दिग्विजय' नामक ग्रन्थ और उसकी मिथ्या उक्तियों का परिचय भूमिका में अच्छी तरह से देख चुके हैं। अब केवल यह दिखलाना है कि आपने अपनी शुभ लेखनी से भूमिहार ब्राह्मणों के विषय में क्या लिखा है और वह कहां तक सत्य है। आपकी उस पोथी का नाम है 'श्रीमद्योगिवर्य प्रियराजेन्द्र दिग्विजय'। जो डुमरांव में सम्वत् १९४१ में छपी है। उसके २८वें पन्ने में ऐसा लिखा हुआ है:–

रक्षणार्थं च विप्राणां भूमिहारोऽपिचाभ्यगात् ॥ २१ ॥

अर्थात् 'इसी प्रकार से ब्राह्मणों की रक्षा के लिये भूमिहारों की भी उत्पत्ति हुई'। इसी श्लोक की टीका करते हुये लिखते हैं :–

एवं परशुरामानुकम्पयया भूमिहारोऽप्यभूदित्याह रक्षणार्थमिति। तदुक्तं स्कान्दे धर्मारण्यखण्डे, तद्यथा 'अनुतान्ब्राह्मणान्दृष्ट्वा निशिरस्कान्कृतान्भुवि। कृतवान्जामदग्न्यो हि ततः प्राह पलायितान् ॥ विप्रा वयं क्षमस्वागो ब्रुवतस्तान्मुनीश्वरः। भवध्वं ब्राह्मणा यूयं धर्मतो विप्ररक्षकाः ॥' इत्यादिना तत्रैव विस्तरः।

इसका भावार्थ यह है कि 'इसी प्रकार भूमिहार लोग भी परशुराम जी की ही कृपा से हुये, इसी बात को मूल ग्रन्थ में 'रक्षणार्थं च' इत्यादि श्लोक द्वारा दिखलाया है कि जब परशुराम जी ने बहुत से क्षत्रियों का सिर काट उन्हें भूमि पर गिरा दिया, तो उस समय बहुत से क्षत्रियों ने अपने को ब्राह्मण बताकर भागना शुरू किया और कहा कि हम लोग ब्राह्मण हैं, हमारा अपराध क्षमा कीजिये। इस पर परशुराम जी ने उनसे कहा कि अच्छा, जाओ, आज से तुम लोग ब्राह्मण धर्मवाले हो जाओ और ब्राह्मणों की रक्षा किया करो, इत्यादि वार्त्ता उसी जगह विस्तारपूर्वक लिखी गई है।

इस कथन में बड़ी-बड़ी विचित्रताएँ भरी हुई हैं। प्रथम तो यह है कि आप भूमिहार ब्राह्मणों की उत्पत्ति या स्थिति इस प्रकार की लिखते हैं, परन्तु आपके ही प्यारे सम्बन्धी लोग इससे विपरीत ही लिखते हैं। इसलिये प्रथम आप लोग घर में ही निपटारा करा लेवें कि दोनो में कौन झूठा है और कौन सच्चा। क्योंकि एक को तो अवश्य मिथ्याभाषी मानना होगा, क्योंकि एक ही बात दो विरुद्ध प्रकारों की हो ही नहीं सकती। आपके मुकाबिले में तो उनकी ही बात मानी जा सकती है, क्योंकि उन्होंने कुछ गलत या सही वहां का ग्रन्थ तो लिख दिया है, चाहे अर्थ करने में भले ही अनर्थ कर गये हैं। इसीलिये उनकी बात पहले ही खण्डित हो चुकी है। परन्तु आपके पूर्वोक्त कथन में तो कुछ प्रमाण नहीं है। आप पूर्वोक्त स्वकपोलकल्पित श्लोकों को 'धर्मारण्यखण्ड' के बतलाते हैं, परन्तु वहां परशुराम जी का प्रसंगमात्र भी नहीं है। तो फिर उन श्लोकों का वहां पता कैसे लग सकता है? धर्मारण्य माहात्म्य नामका एक प्रकरण स्कन्दपुराण के ब्रह्मखण्ड में है, न कि धर्मारण्य खण्ड नाम का कोई खण्ड स्कन्दपुराण में है, जैसा प्रथम ही दिखला चुके हैं। उस धर्मारण्य माहात्म्य में भी केवल ४० अध्याय हैं, जिनमें भगवान रामचन्द्र जी की धर्मारण्य में यात्रा और ब्राह्मणों का विशेष रूप से वर्णन है। वहां तो परशुरामजी का कोई भी प्रसंग आया ही नहीं। हां, उसी पुराण के केवल नागर खण्ड में एक जगह हाटकेश्वर माहात्म्य वर्णन प्रसंग से परशुराम जी की लीला का वर्णन आया है, जैसा प्रथम प्रकरण में दिखला चुके हैं। परन्तु आपके दुर्भाग्य से वहां भी आपके इन कल्पित श्लोकों का पता नहीं है। बल्कि जो कुछ आपने लिखा है, उससे बिल्कुल विपरीत ही वहां पाया जाता है। जैसा प्रथम ही दिखला चुके हैं कि परशुराम जी ने अपनी दारुण प्रतिज्ञा की रक्षा के लिये युवा, वृद्ध, रोगी, बालक और गर्भस्थ बालक तक को भी

मार डाला है, जिससे कोई वचने न पावे। इसीलिये फिर ब्राह्मणों द्वारा क्षत्रियों की बची हुई स्त्रियों ने लड़के पैदा किये हैं! परन्तु उनका भी पुनः उसी प्रकार से नाश किया है। इसी तरह २१ बार तक परशुराम जी ने किया। यही वार्त्ता इसी प्रकार ब्रह्मवैवर्त्त पुराण गणेशखण्ड में लिखी हुई है। फिर नहीं मालूम कि परमहंस महोदय जी को इसके विपरीत लिखने का साहस क्यों कर हुआ?

चाहे पूर्वोक्त बातें वहां न भी लिखी रहें, परन्तु आपकी बातें तो तभी मानी जातीं, यदि आपके लिखे श्लोक वहां मिल सकते। आपको इतना विचार नहीं कि जिस दारुण प्रतिज्ञा के लिए परशुराम जी को महादेव जी प्रभृति ने बहुत ही रोका, जैसा ब्रह्मवैवर्त्त देखने से विदित होता है। परन्तु उन्होंने न माना और यही कहा कि अब तो प्रतिज्ञा कर ही चुके। उसी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने पर यदि कोई मिथ्या ही कह देवे कि हम क्षत्रिय नहीं हैं तो वे कैसे मान सकते थे? क्या वे आपकी तरह योगी न थे? या अल्पज्ञ ही थे, जिससे ब्राह्मण कहने वाले क्षत्रियों को न पहचाना? और यदि उन्होंने अपने को ब्राह्मण ही कहा, तो फिर जैसा आप लिखते हैं, उन्हें भागने की क्या आवश्यकता थी? क्या उन्होंने ब्राह्मणों के भी मारने का प्रण किया था? क्या ऐसी दशा में भी परशुराम जी ईश्वर होकर उन्हें न पहचान सके, जब सामान्य मनुष्य भी पहचान सकता है? सम्भवतः वे आपके सदृश योगिराज न रहे हों। उन्होंने 'तुम लोग ब्राह्मणधर्म वाले हो जाओ' ऐसा कह दिया और ईश्वर थे ही, और साथ ही, वह सत्ययुग या त्रेता का समय था। तो उस समय तो बहुत लोगों की जातियां लपोबल या किसी के वरदान से बदल भी सकती थीं, जिसके लिये शतशः दृष्टान्त पुराणों में भरे पड़े हुये हैं और व्यास वसिष्ठादि की उत्पत्ति के विषय में उन्हीं पुराणों में विचित्र आख्यान दिये गये हैं और उन्हीं के वंशज होने का दम आप लोग भरते हैं। तो फिर भूमिहार ब्राह्मणों में, आपका कथन स्वीकार कर लेने पर भी, अपने से कौन कमी देखते हैं, जिसके लिये उनके ऊपर इतना कटाक्ष है? यदि आप विचारें, तो ऐसा भी मान लेने पर आप लोगों की उत्पत्ति अच्छी ही ठहरेगी।

विचार से तो यही प्रतीत होता है कि जिन क्षत्रियों को परशुरामजी ने ब्राह्मण कहा, वे आप ही लोग हैं। क्योंकि उन्होंने उनके लिये यह आज्ञा दी थी कि तुम लोग ब्राह्मणों की रक्षा करना, और वह धर्म आप में ही पाया जाता है। क्योंकि आपका यह मिथ्या दिग्विजय केवल इसलिये रचा गया है कि जिसमें पुरोहितों की ऐसी प्रशंसा की जावे, कि जब तक सृष्टि रहे तब तक संसार उनकी पूजा ही करता रहे, चाहे वे कैसे भी पतित हो जावें। भला इससे बढ़ कर ब्राह्मणों की रक्षा और क्या हो सकती है? जैसे भानमती के पिटारे से आपने ये कल्पित श्लोक निकाले हैं, वैसे ही श्लोक यदि हम भी आपके वंश के विषय में गढ़ कर लिख देवें और उनका पता भी बतलावें कि पद्म या स्कन्दपुराण के गप्प खण्ड में ये श्लोक लिखे गये हैं, तो आपको भी उन्हें मानकर हवा खानी होगी। हम अच्छी तरह से जानते हैं कि आपके इस विष-वमन का एक मात्र कारण यह है कि भूमिहार ब्राह्मणों से ही आपके वंश की विशेष रक्षा होती है। मगर आप लोग रक्षा के पात्र नहीं हैं। इसलिये आप लोगों को भूमिहार ब्राह्मणों का मान लेना क्या हो गया, गोया साँप को दूध का पिलाना। इसीलिये उसके बदले में आप काटने के लिये सपरिवार कटिबद्ध हैं और बीसों प्रकार की मिथ्या रचनायें ऐन्द्रजालिक की तरह किया करते हैं। जिससे सर्वदा के लिये ये लोग आपके पशु बने रहें। परन्तु अब आपका यह छल नहीं चलने का। क्योंकि आपकी सज्जनता और परमहंसता का पता लोगों को चल गया।

अब हम पाठकों को किसी दूसरे मिथ्या दिग्विजय का हाल सुनाते हैं। उसकी भी पोपलीला देखनी चाहिये। इस पवित्र पुस्तक का शुभ नाम है 'जगतराज दिग्विजय', जो सम्वत् १९६० में चरखारी खास प्रेस में छपी है। इसके रचयिता हरिकेश कवि महाशय हैं। हरिकेश जी ने पूर्वोक्त दुर्गादत्त परमहंस का ही अनुकरण किया है और उन्हीं की बातों को अपनी पोथी में भी उतार उसे पवित्र किया है। आप अपनी इस पोथी के १६९, १७० और १७१ पृष्ठों में सम्वत् १७७७ या सन् १७२० ई० में जगतराज की काशी यात्रा का वर्णन करते हुये लिखते हैं कि उनके काशी में पहुंचने पर काशिराज उनसे आकर मिले, और उसी प्रसंग में परशुरामजी वाली पूर्वोक्त बात इस प्रकार लिखते हैं—

दो०— काशी नृप द्विजकुल करण, मिल्यो आय भगवान।
दै अशीश कर शीश धरि, भेंट्यो जगत दिमान ॥ १०१ ॥

चौपाई।

बूझत जगत राज सब पाहीं। ये द्विज कै क्षत्रिय कोउ आहीं।
अङ्गद कह्यो मर्म सुनि लीजै। इन नृप को द्विज आसन दीजै ॥ ४०२ ॥
परशुराम क्षत्रिन प्रति कोपे। क्षत्र धर्म क्षत्रिन के लोपे।
तब इन बिप्ररूप धरिलीन्ह्यों। जामदग्न्य प्रति आशिष दीन्ह्यों।
तब ते ये भुवहार कहाये। जबते क्षत्रिय धर्म दुराये ॥ ४०३ ॥
दो०—क्षत्रिय ते भूसुर बने, तब ते ये महराज।
अबकरुणा करि दीजिये, आपहु इनको राज ॥ ४०४ ॥

इस जगह कई बातें विचारने योग्य हैं। एक तो यह कि दुर्गादत्त की ही नकल की गई है, इसलिये उसी के खण्डन से इसका भी खण्डन हो गया। क्योंकि इसमें प्रमाण ही नहीं है। दूसरी बात यह है कि जिस सन् १७२० ई० का हाल हरिकेश ने लिखा है उस समय काशी का राजा मुगल बादशाह मुहम्मदशाह या और कोई था। भूमिहार ब्राह्मणों को काशी का राज्य राजा मनसारामजी के समय में सन् १७३० में या उसके बाद १७३२, १७३३ या १७३४ में मिला है। यद्यपि ठीक तिथि में मतभेद है, तथापि १७३० के बाद ही मिला है इसको तो सभी इतिहास लिखने वाले मानते हैं और बलवन्तनामे में, जैसा दिखला चुके हैं, १७३३ या ३४ ई० लिखा गया है। इसलिये सिवाय हरिकेश कवि के स्वप्न या मनोराज्य के उस लेख को और क्या कहना चाहिये? तीसरी बात यह है कि जगत राज कौन से चक्रवर्ती राजा थे, जो काशी में आकर काशिराज को राजतिलक देने लगे? और उन्हें राजतिलक देने का कौन-सा अधिकार था? उस समय काशी का राज्य तो मुगल बादशाहों के ही हाथ में था। सबसे बड़ी बात तो यह है कि यदि उस समय कोई काशी का राजा हिन्दू था, तो उसका नाम उन्होंने क्यों न लिख दिया? इसलिये ये सब केवल मिथ्या बातें लिख कर कवि ने अपनी अभिज्ञता और सज्जनता का परिचय मात्र दिया है। इसके अतिरिक्त जब स्वयं ही अपने कल्पित काशिराज 'द्विजकुलकरण' अर्थात् 'ब्राह्मण कुल में करण के सदृश दानी' और 'द्विज' या 'भूसुर' अर्थात् 'ब्राह्मण' लिखते हैं, क्योंकि उनके ग्रन्थों में वहाँ 'द्विज' पद ब्राह्मण का ही वाचक है। इसीलिये राजा ने पूछा भी है कि ये क्षत्रिय हैं या द्विज अर्थात् ब्राह्मण हैं? तो फिर इस विषय में विवाद ही क्या हो सकता है? क्योंकि ऐसा तो सभी ब्राह्मणों के विषय

में पुराणों में मिल सकता है! हरिकेश कवि कोई ऋषि या सर्वज्ञ तो थे ही नहीं, कि बिना प्रमाण के ही उनका कहा मान लिया जावे और परशुराम वाले इस आख्यान में कोई प्रमाण नहीं मिलता, जैसा सिद्ध कर चुके हैं। यदि ऐसे बिना प्रमाण के ही गाल बजाना है तो हरिकेश के भी बाप दादाओं के विषय में हम वैसे-वैसे बहुत से कल्पित दिग्विजय लिख सकते हैं।

भूमिहार नाम पड़ने का कारण उन्होंने जो कुछ बतलाया है वह क्या ही बुद्धिमत्ता से पूर्ण है! क्यों महाशय जी! क्षत्रिय का वेश छिपा कर ब्राह्मण वेश धारण कर लेने और परशुराम जी को आशीर्वाद देने से भूमिहार नाम कैसे पड़ गया? हाँ, ऐसा हो सकता था, कि भूमि युद्ध स्थल को कहते हैं, इसलिये यदि वे लोग लड़ते-लड़ते वहां हार कर कट मरते तो भूमिहार नाम पड़ भी सकता था। क्योंकि इस प्रकार जो लड़ कर युद्ध क्षेत्र में प्राण देता है उसे कहा करते हैं कि अमुक पुरुष 'खेत हार गया', 'खेत रहा।' परन्तु आप तो ऐसा कहते ही नहीं। यहां तक कि भागना भी बताते नहीं, किन्तु छलमात्र बतलाते हैं, जिस छल को आपके मत में ईश्वरावतार परशुराम जी जान न सके। इससे तो यह भी विदित होता है कि आप महान नास्तिक हैं। क्योंकि ईश्वरों की अनभिज्ञता की बातें लिखा कमते हैं, जिनका प्राचीन ग्रन्थों में कहीं नाम तक नहीं है।

एक प्रश्न हम आपसे और करते हैं, कि यदि भूमिहार नाम त्रेता या सत्ययुग का है, तो फिर इसे पुराणों और स्मृतियों में अवश्य आना चाहिये, जैसे चन्द्रवंश, सूर्यवंश, अथवा कश्यप, वसिष्ठ और गौतम आदि गोत्रों का वर्णन सभी जगह आया करता है। परन्तु भूमिहार शब्द तो केवल आपकी पोथी में इस प्रकार मिलता है। इसलिये उसे ही आप वेद और स्मृति मान लेवें तो भले ही मान सकते हैं। परन्तु हम अथवा विवेकी लोग तो केवल यह कहेंगे कि वह तो केवल इन्द्रजाल की टोकरी है, जिसमें से ऐसी अलौकिक लीलायें निकला करती हैं, जिनका दूसरी जगह नाम या निशान भी नहीं है।

अब 'विशेनवंशवाटिका' नाम की पुस्तक का विचार करते हैं, जो सन् १८८७ में खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर में बाबू रामदीन सिंह द्वारा छपवाई गई है और जिसके रचयिता मझौली क्षत्रिय राजवंश के पुरुष लाला खड्गबहादुर मल जी हैं। इस पुस्तक का बहुत सा परिचय भूमिका ही में दिया जा चुका है। अतएव अवशिष्ट अंश का ही विचार यहाँ करेंगे। आपको किसी कारण से या स्वाभाविक ही भूमिहार ब्राह्मणों से वैर था, इसलिये उसका बदला चुकाना चाहते थे। परन्तु सभी कामों के लिये बुद्धि की अपेक्षा होती है, इसलिये आपको सफल मनोरथ होने में चूकना पड़ा, जैसा अभी विदित हो जावेगा। आप उस पुस्तक के ४५वें पृष्ठ में लिखते हैं कि :–

मयूर भट्ट ने सामवेद मे अधिक परिश्रम किया था। एक बार इन्होंने अयोध्या की यात्रा की। उस समय वहाँ श्रीरामचन्द्र के वंश वाले राज्य करते थे। राजा ने इनकी विद्या और तपस्या देख प्रसन्नतापूर्वक अपनी कन्या सूर्यप्रभा का (जिसका प्रण था कि किसी योग्य पुरुष से ब्याही जाऊँ) इनके संग ब्याह किया। फिर राजगुरु ने (जो वसिष्ठ कुल के ब्राह्मण थे) अपनी कन्या नागसेनी को भी इन्हीं से ब्याह दिया। इनके संग एक कुर्मिनी दासी भी आई। कुछ दिनों बाद मयूर भट्ट ने गाधि कुल के चन्द्रवंशी राजा की कन्या हय कुमारी से तीसरा ब्याह किया। प्रथम स्त्री (सूर्यप्रभा) से विश्वसेन उत्पन्न हुए, जो विश्वसेन कुल के प्रथम पुरुष थे। दूसरी स्त्री (नागसेनी) से नागेश भट्ट या नागेश्वर मिश्र हुये, जो मिश्र पयासी के प्रथम पुरुष थे। तीसरी स्त्री (हय कुमारी) से वक्रसाहि वा बाघम्बरसाहि हुए, जो बगौछिया भूमिहार

के प्रथम पुरुष थे, इत्यादि। वह जो कुछ हमने सुना था सो लिख दिया।

इस लेख में कई बातें विचारणीय हैं। प्रथम तो यह देखना चाहिये कि सूर्यवंशीय लड़की से विशेन क्षत्रिय और चन्द्रवंशीय से बगौछिया भूमिहार ब्राह्मण हुए, यह कहां तक सत्य है। इस लेख में विश्वास कैसे हो सकता है कि दोनों कन्यायें जब क्षत्रिय जाति की थीं, तो उनमें से एक की सन्तान तो क्षत्रिय हुई और दूसरी की भूमिहार ब्राह्मण ? क्या यह कभी हो सकता है कि एक ही प्रकार के क्षेत्र में एक ही प्रकार के बीज बोये जावें, परन्तु उनके वृक्ष भिन्न-भिन्न जाति के हो जावें? आपने इसमें कौन-सा कारण दिखलाया है जिससे दोनों के वंशज दो हो गये? अथवा उलट-पलट क्यों न हो गया? चन्द्रवंशीय कन्या के ही वंशज क्षत्रिय क्यों न हो गये और सूर्यवंशीय के भूमिहार ब्राह्मण? यदि आप का ऐसा तात्पर्य हो कि भूमिहार को भी हम क्षत्रिय ही मानते हैं, सो तो नहीं कहा जा सकता। क्योंकि भूमिहार ब्राह्मण शिरोमणि श्रीकाशिराज को आप स्वयं ही ब्राह्मण स्वीकार करते हैं। जैसा उसी 'विशेन वंश वाटिका' के २४वें पृष्ठ में आपने यह स्पष्ट शब्दों में लिख दिया है कि :–

सरवार देश में पयासी, पिण्डी और पिपरा मुख्य स्थान हैं। इसी पिपरा के गौतम मिश्र के वंश में वर्तमान काशिराज भी हैं।

इसलिये आपको प्रथम अपनी बुद्धि की दवा कर लेनी थी और पीछे ग्रन्थ लिखना उचित था। यह भी देखना चाहिये कि जब एक विवाह उन्होंने याचक दलवाले ब्राह्मण की कन्या से किया, दूसरा क्षत्रिय कन्या से और उनकी तीसरी स्त्री कुर्मिनी थी, तो एक चौथी स्त्री फिर क्यों क्षत्रिय कन्या हो सकती थी? इसलिये वह अवश्य दूसरे ब्राह्मण दल अर्थात् अयाचक ब्राह्मण की ही रही होगी, यही बात मानी जा सकती है। साथ ही यह भी विचारणीय है कि ब्राह्मण होकर भी मयूर भट्ट की अधिक स्त्रियाँ अन्य अर्थात् क्षत्रिय जाति की थीं, यह बात कभी मानी नहीं जा सकती। बल्कि बलात् यही मानना होगा कि उनकी दो स्त्रियां ब्राह्मणी थीं और तीसरी क्षत्रिय कन्या। कोई मनुष्य किसी जाति का होवे, उसकी अधिक स्त्रियां अपनी ही जाति की हुआ करती हैं, चाहें; वह विवेकी भी न हो। परन्तु मयूर भट्ट को आप, तपस्वी और ऋषि मानते हुये कि उनके विषय में ऐसा लिखते हैं, जिससे उनकी अत्यन्त अधमता सिद्ध हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि आपने ऐसा लिखते समय विचार से काम न लेकर द्वेष या स्वार्थान्धता से ही काम लिया है। इसीसे उस पटल ने आपके ज्ञान चक्षु को आच्छादित कर दिया।

आप तो यह लिखते हैं कि मैंने ल[illegible]े जो कुछ सुना था वह लिख दिया। परन्तु हम आप से ही यह बात पूछते हैं कि इस विषय में अंग्रेजों ने जो कुछ लिखा है, क्या उनके घर इस बात के कोई प्राचीन या उस समय के प्रणीत ग्रन्थ हैं या थे? उन्होंने भी तो यहाँ सुन कर ही लिखा है। बल्कि आप रागद्वेष के मारे कुछ नयी बात गढ़ कर भी लिख सकते हैं, अथवा लिखी ही है, लेकिन वे लोग तो केवल इतिहास प्रेमी होने के कारण अच्छी तरह खोज पूछकर जैसा सुनते या पाते हैं वैसा ही लिख देते हैं। इसलिए जनश्रुति का आदर जैसा वे करते हैं वैसा हम लोग नहीं करते। इसीलिये जाति के विषय में यहाँ जो कुछ भी उन लोगों ने लिखा है केवल जनश्रुतियों के आधार पर। अब आप विचारिये कि उन लोगों ने इस विषय में आयी वैसी ही जनश्रुति बतलाई है, जैसी आप बतलाते हैं, अथवा आप से विलक्षण ही वैसी बतलाई है, जैसा इस विषय में हम अभी अपना अनुमान दिखला चुके हैं। इस विषय में हम आप के ही ग्रंथ को प्रमाण देते हैं, जिसमें आप स्वयं ही इलियट साहब की सम्मति

दिखालाते हुए यह लिखतें है, कि जिससे बाघम्बरसाहि उत्पन्न हुये वह भूमिहार ब्राह्मण की स्त्री थी। जैसा उसी विशेन वंश वाटिका के ४१वें पृष्ठ में आप इलियट साहब की सम्मति यों लिखते हैं–

विशेनवंश में सलेमपुर और मझौली के राजा मुख्य माने जाते हैं। इस वंश की जड़ मयूर भट्ट थे, जिनके पूर्व पुरुष नवापार के आसपास जिसे अब परगना सलेमपुर मझौली कहते है) तपस्या करते थे। मयूर भट्ट यद्यपि एक ऋषि थे, तथापि राज्य प्राप्त करने के उत्साह से रहित न हो सके और काशी की यात्रा के पश्चात् हाथ में कृपाण धारण कर गंगा और बड़ी गण्डक (नारायणी) के मध्य की पृथ्वी का अधिकांश अपने अधिकार में कर लिया। मयूरभट्ट की चार स्त्रियां थीं। जिनमें एक राजपुत्री से विश्वसेन उत्पन्न हुये, जिनके नामानुसार विश्वेन शब्द प्रचलित हुआ, जो विशेन कुल के प्रथम पुरुष थे। भूमिहारिन से बाघम्बरसाहि हुये,जिनके वंश में कुआरी (हथुआ) और तमखुही राज हैं। ब्राह्मणी से नागेश हुये, जिनके वंश वाले परगना सलेमपुर मझौली में थोड़े से गाँवों के जमींदार हैं। कुर्मिनी से वह पुरुष उत्पन्न हुआ, जिसके वंश वाले स्थान घोसी जिला आजमगढ़ में रहते हैं।

इससे स्पष्ट है कि आप ही अपना खण्डन करते हैं। इसके अतिरिक्त मिस्टर नेविल के संयुक्त प्रांत के गजेटियर में भी ऐसा ही लिखा है। गोरखपुर के गजेटियर के ११०, ११७वें पृष्ठों में इस प्रकार लिखा हुआ है :–

The early history of the house of Majhauli is lost in tbe mist of antiquity. The founder is traditionally said to have been an ascetic, bearing the name of Mayur or Mevar, and the story goes that he married three wives of different castes, a Brahmani, a Rajputni and a Bhumiharini, while a further lagend states that he kept a Kurmini concubine. From their off spring sprang all the great families of Gorakhpur and the neighbouring country. The house of Tamakhuhi claims descent from the Bhumiharini wife of Mayur.

इसका भाषानुवाद यह है कि मझौली राज का प्राचीन इतिहास पुराने समय के अन्धकार में (कुहरे में) लापता हो गया है। इसके मूल पुरुष की किंवदन्ती एक तपस्वी के विषय में है, जिसका नाम मयूर या मेवार भट्ट था। वह किस्सा इस प्रकार का है कि उसकी तीन विवाहिता स्त्रियां थीं, जिनमें से एक ब्राह्मणी, दूसरी राजपूतनी और तीसरी भूमिहारिन। यह भी जनश्रुति है कि उसके यहाँ एक कुर्मिनी रखनी भी थी। इन्हीं की सन्तानों से गोरखपुर और उसके पास के बड़े-बड़े घराने हुये। तमखुही राजवंश भूमिहारिन स्त्री के वंश से बतलाया जाता है।

यही बात फिशर प्रभृति के भी गजेटियरों में पाई जाती है। सन् १८६५ की मनुष्यगणना की रिपोर्ट में भी मिस्टर डबल्यू चिचाइल प्लाउड़न ने यही लिखा है, जो प्रकाशित अंग्रेजी रिपोर्ट के प्रथम भाग के परिशिष्ट (ब) के ११२वें पृष्ठ (Census of the N. W. P. for 1865, Vol. 1. Appendix B. P. 112) में मिलता है और जिसका हवाला 'रेवरेण्ड शेरिंग' (Rev. Sherring) ने अपने हिन्दू जाति विवरण के प्रथम भाग के २३९वें पृष्ठ में दिया है। और मिस्टर शेरिंग भी स्वयं उसी पुस्तक के २१७ और २१८ पृष्ठों में इस प्रकार लिखते और इसी विषय में पूर्वोक्त सर हेनरी इलियट से सहमत होते हैं–

The founder of the political influence of the family was Mewar Bhatt, whose ancestors had fot many generations resided as devotee in the neighbourhood of Nawapur, now known as Salimpur Majhauli. Mewar Bhatt, though himself a religious man was not able to withstand the solicitations ot ambition; and taking up arms, after returning from a pilgrimage to Benares, acquired possession of the greater part of the country between the Ganges and the Great Gandak. Mewar had four wives, By one, a Rajputni, he had issue, Bisusen, the founder of the name of Bisen, the ancestor of the Raja's family. By a Bhumiharin, He had Bagamar Sahi, the ancestor of the Kawari and Tamakohi Rajas. By a Brahmani he had Nages, whose, descendants hold a few villages in Salimpur Majhauli. By a Kurmini be had the ancestor of those now resident in Ghosi of Azamgarh.

इसका भाषानुवाद वही है,जो विशेनवंशवाटिका में इलियट साहब के कथन का दिया हुआ है और जिसे हम प्रथम ही दिखला चुके हैं। इन सभी वैदेशिकों के लेखों से पाठक समझ गये होंगे कि वास्तव मे बगौछिया ब्राह्मणों के विषय में किम्वदन्ती कैसी है और खड़गबहादुर मल की लिखी जनश्रुति आया सत्य है, या उन्होंने द्वेषवश गढ़ डाली है। क्योंकि यदि सच्ची होती तो कोई अंग्रेज या देशी लेखक उससे सहमत हो ही जाते, कारण कि वे लोग जनश्रुतियों के बहुत प्यासे होते हैं। इससे स्पष्ट है कि उस जनश्रुति से भूमिहार ब्राह्मणों में कोई दोषारोपण किया नहीं जा सकता। क्योंकि मयूर भट्ट भी ब्राह्मण ही थे। इसलिये ब्राह्मण और ब्राह्मणी (भूमिहार ब्राह्मण) के वंशज बगौचिया ब्राह्मण शुद्ध ही ब्राह्मण ठहरे। जैसे मयूर भट्ट के ही वंशज पयासी के मिश्र लोग हैं।

ये जो बातें हमने लिखी हैं, वे सभी मयूरभट्ट वाली किम्बदन्ती को सत्य मानकर ही लिखी हैं। वस्तुतः तो यह किम्वदन्ती अश्रद्धेय है। क्योंकि जिस ब्राह्मण को हम ऋषि, वेदशास्त्रज्ञ, तपस्वी और परमधार्मिक स्वीकार करते हैं, उसके विषय में ऐसे महान अधर्म का कार्य लिखना या कहना विचार से बाहर है। भला ऐसा कब हो सकता है कि ऐसा विचारशील और तपस्वी ब्राह्मण शास्त्रविरुद्ध क्षत्रिय कन्या से शादी कर सकता, या कुर्मिनी को रख सकता था? यदि प्रमाद भी हो जावे तो एकाध, न कि बहुत से अत्याचार ऐसों से हो सकते हैं। इस प्रकार के इतने विवाहों से तो सूचित हो जाता है कि वह कोई अत्यन्त विषयासक्त और लम्पट पुरुष था। परन्तु उन्हें सभी तपस्वी के वंशज और तपस्वी स्वीकार करते हैं। इसलिये ऐसे पुरुष के विषय में ये बिना सिर पैर की बातें नितान्त अश्रद्धेय हैं। दूसरी बात यह भी है कि 'विशेनवंशवाटिका' के कर्त्ता ने मयूरभट्ट से अपने समय तक १५ राजा गिनाये हैं। इससे उनका समय दो वा ढाई हजार वर्षों के मध्य में हो सकता है। उन दिनों ब्राह्मणों में ये भट्ट प्रभृति उपाधियां प्रायः अप्रचलित थीं, जैसा प्रथम ही दिखला चुके हैं। इसलिये उस समय के नामों के साथ आचार्य या ऋषि प्रभृति शब्द ही पाये जाते हैं। इसके साथ ही यह भी निर्विवाद है कि भूमिहार संज्ञा या विशेषण भी किसी अयाचक ब्राह्मण दल का मुसलमानी समय में ही पड़ा है, जैसी ब्राह्मणों की ही कान्यकुब्ज प्रभृति संज्ञायें हैं, जिनके विषय में सविस्तर विचार प्रथम ही किया जा चुका है। इसलिये आज से दो ढाई हजार वर्ष

पूर्ववर्ती मयूरभट्ट ने भूमिहार ब्राह्मण की लड़की से ब्याह किया, जिससे बाघम्बर साही हुये, यह बात भी विश्वास योग्य नहीं है। इसलिये भी विशेन, या दूसरे लोग मयूरभट्ट की सन्तान हैं यह वार्त्ता माननीय नहीं है।

हां, यह बात तो हो सकती है कि सम्राट चन्द्र गुप्त मौर्य के वंशज विशेन लोग होवें। क्योंकि चन्द्रगुप्त को भी दो सहस्त्र वर्षों से अधिक हुये और उसी मौर्य शब्द को देखकर लोग मौर्यवंशी न कह कर विशेनों को मयूरवंशीय या मयूरज कहने लगे। यह कल्पना श्रद्धेय भी मालूम होती है। अब रह गई पयासी के मिश्रों की बात। यदि ये लोग मयूरभट्ट की सन्तान होवें तो कोई खटका या शंका नहीं हो सकती, और यही बात बगौछिया ब्राह्मणों के विषय मे भी कही जा सकती है। परन्तु कुर्मिनी की बात तो बिल्कुल असत्य प्रतीत होती है। वस्तुतः तो बगौछिया लोग मयूरभट्ट के ही वंशज ब्राह्मणी के गर्भ से हुये हैं, इस विषय में भी हम सहमत नहीं हैं। क्योंकि ऐसा कहनेवाले इन भूमिहार ब्राह्मणों के बगौछिया नाम पड़ने का कोई कारण नहीं दिखलाते या दिखला सकते हैं। प्रत्युत सिद्ध है कि सोन के किनारे मयूरभट्ट रहते थे। इसी से उनके वंशज वत्स गोत्री सोनभदरिया ब्राह्मण कहे जाते हैं। वहीं गया जिले में उनका पुराना डीह है। वहीं से कुष्ट रोग ग्रस्त होने पर गया जिले के देव के सूर्य मन्दिर में उन्होंने सूर्य की आराधना की और सूर्य शतक बनाकर आरोग्य लाभ किया। अभीतक सोनभदरियों के ही वंशज पंडित खेदा पांडे के हाथ में सूर्य मन्दिर का कुछ अंश रह गया है और वे उसके पुजारी हैं। शेष अंश गरीबी के कारण शाकद्वीपियों के हाथ उन लोगों ने बेच दिया है। इससे उनकी उक्त कल्पना मिथ्या ही प्रतीत होती है।

प्रथम प्रकरण में ही हम यह वार्त्ता अच्छी तरह सिद्ध कर चुके हैं कि ब्राह्मणों के अवान्तर (छोटे-छोटे) दलों के नाम या व्यवहार स्थानों के नामानुसार पड़े। जैसे, गौड़, मैथिल, पिंडी के तिवारी, दिघवे या दिघवैत, दिघवेसन्दहपुर, किनवार इत्यादि। इसीलिये बगौछिया नाम भी किसी स्थान से ही पड़ा होगा. जैसा एकसार ग्राम के नाम से एकसरिया और जैथर (जयस्थल) से जैथरिया इत्यादि।

वंगप्रदेशान्तर्गत गौड़ देश में कान्यकुब्ज देश से ब्राह्मणों के जाने का जो इतिहास मिलता है, उससे स्पष्ट है कि वत्स, शांडिल्य, सावर्ण्य, भरद्वाज और कश्यप इन पाँच गोत्रों के ब्राह्मण कन्नौज से गौड़देश में गये थे। उन्हीं मे से १९ ब्राह्मणों के विषय में यह भी प्रथम ही दिखला चुके हैं कि वे लोग अयाचक या दान त्यागी हो गये थे, जिससे वल्लाल सेन ने उनकी बहुत ही प्रतिष्ठा की थी। वे लोग वंगदेशान्तर्गत राढ़ और वारेन्द्र देशों में निवास करते थे। वे लोग जिन-जिन ग्रामों में रहते थे, प्रायः उन ग्रामों के ही नाम से उन के नाम हुये, यह भी उस इतिहास से पता चलता है। उन के रहने के बहुत से ग्रामों में से एक ग्राम 'बागछी' नाम का भी था जिस ग्राम में रहने से बहुत से वंगदेशीय ब्राह्मण अब भी 'बागछी' कहलाते हैं। यह बात 'गौड़ हितकारी' पत्र के सितम्बर मास १९११ ई० के अंक में भी 'गौड़देश में ब्राह्मण' शीर्षक लेख में आई है। यद्यपि बागछी ग्राम वासी शांडिल्य गोत्री दो एक ब्राह्मणों का ही नाम वहाँ लिखा गया है, तथापि जो विदित था वही, अथवा अन्यों के विदित रहने पर भी दो-एक के ही नाम लिख दिये हैं। उससे यह कदापि सिद्ध नहीं हो सकता कि वत्स या अन्य गोत्र के ब्राह्मण बागछी ग्राम में नहीं रहते थे। इससे यही अनुमान सत्य और विश्वसनीय हो सकता है कि जिस समय वंगदेशान्तर्गत गौड़देश से गौड़ ब्राह्मण दान त्यागी या तगे ब्राह्मणों के सहित हटे या भाग कर कुरुक्षेत्र के प्रांत और विजनौर प्रभृति

चले गये। उसी समय या उससे कुछ आगे पीछे 'बागछी' ग्रामवाले अयाचक ब्राह्मण भी वहां से हटकर इधर चले आये और सुदूर पश्चिम में न जाकर किसी अनुकूलतावश छपरा प्रान्त में ठहर गये। इसीलिये उनकी संज्ञा 'बागछिया' हो गई जो बिगड़ते-बिगड़ते अब बगौछिया कहलाती है। यह बात लगभग हजारों वर्षों की हो गई। इसीलिये हथुवा या तमकुही बगौछिया राजवंशों की इस देश में प्राचीनता भी रक्षित रह गई और उनके इस नाम के पड़ने का कारण भी ठीक मिल गया। इसलिये वंगदेशीय ब्राह्मणों में वत्स गोत्रीय ब्राह्मण इस समय कम पाये जाते हैं।

वस्तुतः गोरखपुर जिले के तमकुही राज्य के बगौछ गांव में, जो खनुवा नदी के किनारे भरहे चौरा से ६ कोस उत्तर नारायणपुर कोठी के पास है, एक बड़ा डीह है जहां से बगौछिया ब्राह्मणों का विस्तार बताया जाता है। निकट होने से यही अधिक विश्वसनीय प्रतीत होता है। इनके पूर्वज बंगाल या गया से प्रथम बगौछ में ही आये और वहीं से पीछे सर्वत्र फैले। इसलिये यही अनुमान श्रद्धेय और युक्ति-युक्त प्रतीत होता है, जिससे बगौछिया ब्राह्मणों की उज्ज्वलता भी अक्षुण्ण रह गई। अतः विशेनवंशवाटिका की जो बातें भूमिहार ब्राह्मणों के विपक्ष में लिखी गई हैं वे बिना सिर पैर की हैं। उनसे भूमिहार ब्राह्मणों की कोई हानि नहीं हो सकती।

इसके अनन्तर हम 'भारत वर्षीय राज दर्पण' नाम की पुस्तक की आलोचना करते हैं। इसके विषय की बहुत सी बातें भूमिका में ही कही जा चुकी हैं। ग्रन्थ कर्त्ता महोदय निरंजन मुखोपाध्याय ने उक्त ग्रन्थ के ३, ४ पृष्ठों में लिखा है कि :–

'एक और भी जनश्रुति है कि कृष्ण मिश्र का विवाह क्षत्रिया कन्या के साथ हुआ था। इसी से उनकी सन्तान भुइंहार ब्राह्मण कहलाती है। यद्यपि बहुत काल से प्रायः विक्रमादित्य के राज्य के पश्चात् क्षत्रिया कन्या के साथ ब्राह्मण का विवाह अप्रचलित है, तथापि इस विवाह के होने में एक लोकोक्ति चली आती है कि भागलपुर के निकट एक क्षत्रिय की कन्या अपनी बाल्यावस्था में अत्यन्त पवित्रता से रहती थी। यहाँ तक कि अपना वस्त्र और पात्र अपने घर के लोगों से फरक रखती थी। किसी रोज उसके चिढ़ाने के लिये उसकी भ्रातृ-पत्नी ने अपने लड़के को उसके कपड़े पर बिठा दिया। इस पर वह बहुत दिक होकर उस वस्त्र को अशुद्ध समझ उसे धोने लगी। तब उसकी भ्रातृ-पत्नी (भौजाई) ने हास्य कर कहा कि क्या तुम कित्थू मिश्र की स्त्री हो, जिससे हम लोगों को अशुद्ध समझती हो? ऐसा सुनकर उस कन्या ने प्रतिज्ञा की कि कित्थू मिश्र से अन्य के साथ अपना विवाह न करूँगी। ऐसा उसका बहुत काल तक हठ देखकर उसके भाइयों ने कित्थू मिश्र की प्रार्थना करके उसको स्वीकार करवाया।' इससे प्रथम ही आप भूमिहार ब्राह्मणों के विषय में ऐसा लिख चुके हैं कि :–

बनारस के निकट कुसवार परगने में थुथुरिया ग्राम में, जो अब गंगापुर कहलाता है, मनोरंजन सिंह नामक एक भुइंहार ब्राह्मण बसते थे। उनके चार पुत्र थे। सबसे ज्येष्ठ का नाम मनसा राम था, जो बनार के राजवंश के मूल पुरुष थे। थुथुरिया ग्राम के अर्द्धांश के मालिक इनके पिता मनोरंजन सिंह के पूर्व पुरुषों का विवरण कुछ नहीं पाया जाता है। जनश्रुति है कि बनार राजा के राज्य काल में काशी में कृष्ण मिश्र अथवा कित्थू मिश्र नामक गौतम गोत्र के दतरिया ग्राम निवासी एक ब्राह्मण उनके मन्त्र गुरु थे और वे सिद्ध पुरुष थे। राजा के पास से उनके कभी कुछ दान न ग्रहण करने से राजा सर्वदा बहुत खेदयुक्त रहा

करते थे। एक दिन राजा बनार ने विचार कर उनकी पगड़ी में कई ग्राम का दान-पत्र छिपाकर बांध दिया। कित्थू मिश्र जब अपने घर में आकर अपने इष्ट देव के ध्यान में बैठे, तो और दिनों की तरह उनका चित्त एकाग्र न होकर अतिशय चंचल होने लगा। उस पर बहुत आश्चर्यवान होकर चिन्ता करने लगे। पीछे जब राजा का व्यवहार मालूम हुआ तब उन्होंने अत्यन्त क्रुद्धान्तःकरण से शाप देकर कहा कि जैसा तुमने हमारा तेज ध्वंस किया है, वैसा ही तुम्हारा समस्त अधिकार हमारे वंश के आधिपत्य में आवेगा।

अब यहाँ विचारना यह है कि काशी के प्रान्त या सर्यूपार में तो बहुत जिज्ञासा या खोज पूछ करने पर भी कित्थू मिश्र के साथ क्षत्रिय कन्या के विवाह वाली किंवदन्ती का पता नहीं लगता। इसी से अंग्रेजों या अन्य लोगों ने जो केवल किम्वदन्ती के आधार पर चलने वाले हैं, इस किंवदन्ती का वर्णन कहीं नहीं किया है। इससे मालूम होता है कि ग्रन्थ कर्त्ता महोदय के जन्म स्थान बंगाल में ही यह किंवदन्ती प्रसिद्ध रही होगी, जिससे उन्होंने इसको लिखा है। वाह रे द्वेष और मिथ्या कल्पना! जिस भागलपुर की कन्या की बात उन्होंने लिखी है, वह सर्यूपार, गोरखपुर में मझौली राज्य के पास है। वहाँ यह जनश्रुति विशेन क्षत्रियों के विषय में है, जिसे खड्गबहादुरमल ने 'विसेनवंशवाटिका' में लिखा है जैसा प्रथम दिखला चुके हैं। उसके ४५वें पृष्ठ में लिखा है कि 'मयूरभट्ट ने सामवेद में अधिक परिश्रम किया था। एकबार इन्होंने अयोध्या की यात्रा की। उस समय वहां श्रीरामचन्द्र के वंशवाले राज्य करते थे। राजा ने इनकी विद्या और तपस्या देख प्रसन्नतापूर्वक अपनी कन्या सूर्यप्रभा को (जिसका प्रण था कि किसी योग्य पुरुष से ब्याही जाऊँ) इनके संग ब्याह दिया' इत्यादि।

दूसरी बात यह है कि काशी-रामेश्वर के पास के कई ग्रामों में जो गौतम क्षत्रिय रहा करते हैं, वे अपने को कित्थू मिश्र के वंशज कहा करते हैं। जब हमने कइयों से इसका कारण पूछा तो, उन्होंने यही उत्तर दिया कि हमारे पूर्वज कित्थूमिश्र के वंशज भूमिहार ब्राह्मण थे। परन्तु बहुत दिन हुये जब कि कित्थूमिश्र के वंशज अन्य भूमिहार ब्राह्मणों ने उनका हिस्सा दबा लिया, तो उस समय हमारे पूर्वजों ने हिस्से के लोभ से एक क्षत्रिय राजा की कन्या से विवाह कर लिया और उसी दिन से उनके वंशज हम लोग क्षत्रिय कहलाने लगे। यह बात काशी के इस प्रान्त में प्रसिद्ध है। जिसे सभी ब्राह्मण या क्षत्रिय स्वीकार करते हैं। संभव है कि इस बात को निरंजन मुखोपाध्याय ने सुनकर भूल, छल या द्वेष से भूमिहार ब्राह्मणों के विषय में लिख मारा और उसमें कुछ पेबन्द भी लगा दिया। भूमिहार ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों गौतम कहे जाते हैं। इसलिये गौतम नाम देखकर इस भ्रान्ति का हो जाना सम्भव है कि क्षत्रियों के विषय की बात भूमिहार ब्राह्मणों के विषय में लिखी गई।

एक ऐसी ही किंवदन्ती जौनपुर जिले के 'चौपट खम्म' नाम वाले क्षत्रियों के विषय में है। जिसे सुनकर भी निरंजन मुखोपाध्याय को भ्रम हो गया, ऐसी कल्पना की जा सकती है। उसी किंवदन्ती को सन् १८६५ की युक्त प्रान्तीय मनुष्य गणना की रिपोर्ट के प्रथम भाग के ११५वें पृष्ठ में इस प्रकार लिखा है :–

Chowpat Khambha—Two Brahmans named Buldeo and Kooldeo, came form Sarwar, and look up their residence in Mouzah Putkhohee, pergunnah Kirakut Zillah Jownpure. Raja Jaichand, a descendant of Rajah Bindar of the Lunar race, gave his daughter in marriage to Buldeo, and his descendants are called Chowpat Khambha. The origin of the,name is from 'Khambha' a pillar, Kooldeo was annoyed with Buldeo for marrying out of his caste, and setting up a Pillar of a degenerate family; hence the tribe was called Chowpat Khambha.

इसका अनुवाद यह है कि 'चौपटखम्भ–दो ब्राह्मण सर्यूपार से बलदेव और कुलदेव नामक इस देश में आए और जौनपुर के परगने केराकत, ग्राम पटखोही में बस गये। चन्द्रवंशीय क्षत्रिय राजा बनार ने अपनी कन्या का विवाह बलदेव से कर दिया। इसलिये उसके वंशज चौपटखम्भ क्षत्रिय कहलाते हैं। नाम पड़ने का कारण यह है कि खम्भ नाम है स्तम्भ या खम्भे का। चूंकि कुलदेव अपने भाई बलदेव से रंज हो गया, क्योंकि उसने अपनी जाति से अन्य जाति में विवाह कर लिया और इससे एक वर्णसङ्कर या चौपट जाति अथवा स्तम्भ चलाया। इसीलिये उसके वंशज चौपटखम्भ कहलाने लगे।

सबसे विलक्षण और आश्चर्य की बात तो यह है कि आप स्वयं ही कृष्णामिश्र को परम विवेकी, तपस्वी, विद्वान और सिद्ध स्वीकार करते हैं, जो अपने शिष्य राजा बनार से भी एक पैसा स्वीकार करना शास्त्र और सत्पुरुष द्वारा निन्दित होने के कारण अधर्म समझते थे। अतएव बनार के छल से दानपत्र देने से क्रुद्ध होकर शाप दे बैठे। क्योंकि इस अधर्म से उन्होंने अपनी ब्राह्मणता की हानि समझी। फिर ऐसी दशा में वह किसी क्षत्रिय कन्या के साथ, चाहे वह कैसी ही क्यों न हो, क्यों कर विवाह कर सकते थे, जो नितान्त अनुचित और शास्त्र निषिद्ध है? इस बात को आप भी स्वयं स्वीकार करते हैं। इसलिये उनके विषय में ऐसी कल्पना करना केवल पापमयी बुद्धि का फल है।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि 'गौतम चन्द्रिका' में उन्हीं कित्थू मिश्र के वंशज जौनपुर प्रान्त निवासी याचक दल वाले ब्राह्मण पं० शिवराज मिश्र और पं० ताराप्रसाद मिश्र जब यह स्वीकार करते हैं, कि कित्थू मिश्र का विवाह पयासी के मिश्र की कन्या हुती या देवहुती से हुआ था, जिसके ही वंशज वर्त्तमान सभी गौतम भूमिहार ब्राह्मण या अन्य ब्राह्मण हैं, जैसा प्रथम ही दिखला चुके हैं। वहां लिखा है :–

हुती पयासी की सुता, ताको प्रेम विचारि।
व्याह्यो तासों प्रगट भे, देवकृष्ण निरधारि।

हुती नाम की कन्या पयासी मिश्र (सर्यूपारी) की रही। उसने किसी के तिरस्कार से प्रण किया कि हम अपना विवाह कित्थू मिश्र से करेंगी। इस कारण कित्थू मिश्र ने उससे विवाह किया।

तो फिर दूसरे को इससे विपरीत लिखने या कहने का अधिकार ही क्या है? और उसकी बात क्यों कर मानी जा सकती है? पूर्वोक्त 'गौतमचन्द्रिका' के वाक्यों से पाठकों को यह भी विदित हो गया होगा कि निरंजनमुखोपाध्याय ने भूमिहार ब्राह्मणों के विषय में पूर्वोक्त किंवदन्ती लिख केवल अपने हृदय की गाढ़ कलुषता और द्वेष का परिचय दिया है। क्योंकि वह किंवदन्ती या बात पयासी मिश्र की कन्या के विषय में ज्यों की त्यों है, न कि किसी क्षत्रिय कन्या के विषय में।

इसी प्रकार पं० विजयानन्द त्रिपाठी जी ने सर्यूपारीण इतिहास पंक्ति पावन परिचय में सम्पूर्ण गौतम भूमिहार ब्राह्मण वंश और द्विजराज श्री काशिराज को सरयू पारीण ब्राह्मणों में अग्रणी माना है, जैसा प्रथम परिच्छेद के अन्त में दिखला चुके हैं। तो फिर निरञ्जन

मुखोपाध्याय ने केवल मिथ्या लिखा है यही कहा जा सकता है। गौतम चन्द्रिका के अनुसार पयासी मिश्र के घर ही कित्थू मिश्र का विवाह उचित है। इसलिये गौतम भूमिहार ब्राह्मणों के जो पुरोहित ब्राह्मण हैं, उन लोगों का यह कथन है कि आप लोगों के पूर्वजों ने हम लोगों के पूर्वजों को कन्यादान देकर पूजा था, इसलिये उसी समय से हम लोग आप लोगों के मान्य और पुरोहित हुए। इससे मुखोपाध्याय जी की सज्जनता का परिचय अवश्य लग गया होगा। आपका यह कथन भी क्या ही बुद्धिमता का है कि 'कृष्ण मिश्र का विवाह क्षत्रिया कन्या के साथ हुआ था। इसी से इनकी सन्तान भुइंहार ब्राह्मण कहलाई!' क्यों साहब! क्या क्षत्रिया। कन्या के साथ विवाह का होना भूमिहार ब्राह्मण नाम पड़ने का कारण है? उस विवाह और भूमिहार ब्राह्मण नाम से क्या सम्बन्ध है? यदि ऐसा ही माना जावे तो आपके मुखोपाध्याय नाम पड़ने के भी इसी प्रकार के कुत्सित, मिथ्या और कल्पित कारण बताए जा सकते हैं। क्योंकि आपकी ही तरह कुछ अनाप सनाप बक देंगे और वही आपके सिद्धान्तानुसार पत्थर की लकीर हो जावेगी, जिससे आप के होश हवासों का पता न लगेगा और लेने के देने पड़ जावेंगे।

अस्तु, जब इस पर भी आपको सन्तोष न हुआ तो इसके बाद ही लिखते हैं कि 'यह भी प्रसिद्ध है कि मगधाधिपति महाराज जरासन्ध के यज्ञ के समय लक्ष ब्राह्मण भोजन करने के प्रयोजन होने पर राजा के अज्ञात में उनके किसी-किसी कर्माध्यक्षों ने जिनको ब्राह्मणों के लाने की आज्ञा हुई थी, अनेक कष्ट से भी आज्ञानुयायी ब्राह्मण संग्रह करने में असमर्थ होकर राजदण्ड के भय से अपर जाति के लोगों के गले में यज्ञोपवीत डाल भोजन करवा दिया। पीछे उन सब की जाति बिरादरी के उनके साथ आहार व्यवहार परित्याग करने से वे सब कोई राजा जरासंघ के पास गये और उनके कर्माध्यक्ष के नाम पर नालिश करके उन्होंने आद्योपान्त सब वृतान्त प्रकाश कर दिया, जिसपर लाचार होकर उन्होंने उनके गुजरान के लिये अपने अधिकार में भूमि देकर उन सब को बसाया। इसी से उनके खानदानों को आज तक भी भूमिहार ब्राह्मण कहते हैं। और इसका एक प्रमाण यह है कि इन भूमिहारों के वास स्थान उस समय के मगध राज्य की सीमा के बाहर और अन्यत्र प्रायः दृष्टिगोचर नहीं होते हैं।'

इस किंवदन्ती में बहुत-सी बातें विचार योग्य हैं। प्रथम तो यह देखना चाहिये कि जरासन्ध ने इस प्रकार का कोई यज्ञ किया था या नहीं। हमने तो महाभारत से लेकर सभी पुराणों का आलोडन किया, परन्तु जरासन्ध के इस यज्ञ का कहीं पता नहीं है। महाभारत प्रभृति ग्रन्थों में उसके जीवन चरित्र वगैरह का बहुत सी जगह वर्णन है और उसे बहुत ही धार्मिक भी लिखा है। परन्तु यह तो कहीं नहीं आता कि उसने मद्यप की तरह ब्राह्मणों और चमारों को एक पंक्ति में भोजन करा धर्म के नाम पर महान अधर्म किया। अतः इस किंवदन्ती में मूल ही क्या है जिससे यह मानी जा सकें?

दूसरी बात यह है कि जैसे भूमिहार ब्राह्मणों के विषय में आप इस कल्पित किंवदन्ती रूप उपन्यास को खड़ा करते हैं, उसी प्रकार सरयू पारीण, कान्यकुब्ज और मैथिल प्रभृति सभी ब्राह्मणों में इस प्रकार की किंवदन्ती पाई जाती है। मैथिलों के विषय में सेवई सिंह का यज्ञ और सरयू पारियों के विषय में शालिवाहन या दूसरे का यज्ञ इत्यादि बतलाया जाता है। फिर कभी-कभी भूमिहार ब्राह्मणों और अन्य ब्राह्मणों की इन किंवदन्तियों वालें यज्ञकर्त्ता दूसरे ही बतलाये जाते हैं। इससे विश्वास क्यों कर हो सकता है? ये लीलाएँ जिसे देखनी

हों वह हिन्दू जाति के विषय में लिखे हुए अंग्रेजों के ग्रन्थों को देखे। उनमें ये किंवदन्तियाँ भिन्न-भिन्न नामों से आती हैं। यह बात क्यों कर हो सकती है कि सभी ब्राह्मण दलों में हिन्दू राजाओं ने इस प्रकार के अत्याचार किये हों? तिस पर भी करने वाले का ठिकाना नहीं। क्या उस समय एक-दो लाख ब्राह्मण नहीं मिल सकते थे? यह बात तो विश्वास योग्य नहीं है, क्योंकि आजकल की अपेक्षा उन दिनों ब्राह्मणों की संख्या कम न थी। और आज-कल भारत भर में करोड़ों ब्राह्मण मिल सकते हैं। यदि कम ही थी तो क्या उन राजाओं को यह भी न विदित था कि हमारे राज्य में ब्राह्मण हैं? क्या वे लोग शराबी थे, जिससे कुछ भी विचार न करके मनमाना काम कर डालते थे? आप कहते हैं कि सभी जातियों को जनेऊ पहना कर यज्ञ में खिला दिया। क्या उन दिनों ब्राह्मणों की परीक्षा न की जाती थी? क्या महानन्द और चाणक्य की कथा लोगों को नहीं विदित है? क्या परीक्षा करने वालों को अहीर, चमार और ब्राह्मणों में भेद नहीं मालूम हुआ? क्या उस समय सभी वर्ण गायत्री जप वगैरह करते थे, जिससे परीक्षा न हो सकती थी? क्या उन दिनों धार्मिक कार्यों में मनु वचनों का भी लोग अनादर करते थे? क्योंकि मनुजी ने लिखा है कि :-

दूरादेव परीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारगम्।
तीर्थं तद्धव्यकव्यानां प्रदाने सोऽतिथिः स्मृतः ॥ १३० ॥
द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा।
भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्येत विस्तरे ॥ १२५ ॥
सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसम्पदः।
पञ्चैतान्विस्तरोहन्ति तस्मान्नेहेत विस्मत् ॥ १२६ ॥
ज्ञाननिष्ठा द्विजाः केचित् तपोनिष्ठास्तथाऽपरे।
तयः स्वाध्यायनिष्ठाश्च चकर्मनिष्ठास्तथाऽपरे ॥ १३४ ॥
ज्ञा न निष्ठेषुकव्यानिप्रतिष्ठाप्यानि यत्नतः।
यानितुयान्यायं सर्वेष्वेवचतुर्ष्वपि ॥ १३५।३ ॥।

इसका अर्थ यह है कि 'यज्ञादि में खिलाने के समय अच्छी तरह से परीक्षा करे कि यह ब्राह्मण वेदज्ञ है या नहीं, क्योंकि वेद ज्ञाता ब्राह्मण ही देवता और पितरों के अन्न के भक्षण का अधिकारी है। देवकार्य में दो ब्राह्मण और पितृ कार्य में तीन, अथवा दोनो कार्यों में एक-एक ही खिलावे। बहुत धनी होने पर भी अधिक ब्राह्मणों के खिलाने का यत्न न करे। क्योंकि ऐसा करने से पांच बातों की गड़बड़ होती है। ठीक सत्कार नहीं हो सकता, उत्तम जगह और उत्तम समय समुदाय के लिये नहीं मिल सकते, पवित्रता नहीं रह सकती और गुणवान ब्राह्मण नहीं मिल सकते। इसलिये यज्ञादि में ब्राह्मण का विस्तार नहीं करना चाहिये। ब्राह्मण चार प्रकार के होते हैं-ज्ञानी, तपस्वी, वेदपाठी और कर्मकाण्डी। इनमें से श्राद्ध में केवल ज्ञानी को खिलाना चाहिए, परन्तु यज्ञादि में चारों को।'

इसलिये धर्मज्ञ राजाओं ने इसके विपरीत क्योंकर किया? यदि आपका यह कथन मान लिया जावे, तो भी प्रश्न यह उपस्थित होता है, कि क्या उनको थोड़े बहुत भी सच्चे ब्राह्मण न मिल सके? ऐसा तो नहीं कह सकते। क्योंकि यदि ऐसा होता तो तूफान मच जाता। क्योंकि आस-पास के भुक्खड़ ब्राह्मण अवश्य पुकार मचाते। तो क्या सच्चे ब्राह्मणों ने भी मिथ्या

ब्राह्मणों के साथ ही भोजन किया? क्या यज्ञ के कराने वाले ऋत्विक् वगैरह भी साथ ही साथ भोजन करने लग गये? यदि यह कहा जावे कि सभी को कुछ न कुछ घूस देकर कर्मचारियों ने बनावटी ब्राह्मणों के साथ या अलग खिला दिया। तो क्या यह बात विश्सनीय हो सकती है। क्या आजकल भी, जब लोगों के धार्मिक विचार एक बारगी ढीले पड़ रहे हैं, ऐसा देखने में आता है? जब आजकल भी हजार यत्न करने पर भी ये बातें नहीं छिप सकतीं, तो उस समय कैसे हो सकती थीं? साथ ही, इन बातों का कहीं कुछ भी लेख नहीं मिलता। इसलिये ये सब रचनायें एक दूसरे को नीचा दिखलाने के लिये ही की गई हैं। क्योंकि जब एक समाज दूसरे के विरुद्ध कुछ कहता है, तो दूसरा भी प्रथम के विरुद्ध अवश्य कुछ कहता है। इसीलिये सभी ब्राह्मण या अन्य समाजों में इस प्रकार की बातें पाई जाती हैं। अतः इन पर विश्वास नहीं किया जा सकता। विशेष कर भूमिहार ब्राह्मणों के विषय की यह कल्पित किंवदन्ती तो नहीं ही मानी जा सकती। इसीलिये इस विषय में अंग्रेजों ने भी इसका खण्डन किया है। जैसा मिस्टर 'डबल्यू क्रुक' ने अपने 'युक्त प्रान्तीय जाति विवरण' के द्वितीय भाग के ६४वें पृष्ठ और उसके अगले पृष्ठों में लिखा है और इस विषय में रिजले साहब की भी सम्मति दी है। वह लेख यों है :-

The theory that they are mixed race derived from a congeries of low caste people accidentally brought together, is disapproved by the high and uniform type of physiognomy and personal appearance which prevails among them. This, as Mr. Risley says, would not be the case, if they were descended from a crowd of low caste men promoted by the cxigencies of particular occasion, for brevet rank thus acquired, would in no case, carry with it the right of intermarriage with pure Brahmans or Rajputs, and the artificially formed group, being compelled to marry withim its own limits, would necessarily perpetuate the low caste type of features and complexion. As a matter of fact, this is what happens with the Sham Rajputs, whom we find in most of the out lying districts of Bengal. They marry among themselves, never among true Rajputs, and their features reproduce of the particular aboriginal tribe which they may happen to be sprung.

इसका अनुवाद यों है कि 'यह कथन, कि वे (भूमिहार-ब्राह्मण) कई जातियों के समुदाय से बने हैं और उन नीच जातीय लोगों की सन्तान हैं, जो किसी कारणवश इकट्ठे कर दिये गये थे, इन लोगों के ऊँचे और एक समान शरीर के ढाँचे और चेहरे मोहरे से ही खण्डित हो जाता है। ये ढाँचे और चेहरे मोहरे इनमे आज तक पाये जाते हैं। मिस्टर रिजले ने कहा है कि, यदि ये लोग उन नीच जाति के लोगों के वंशज होते, जो किसी विशेष आवश्यकता के कारण ब्राह्मण बना दिये गये, तो इनमें यह बात कहीं न पाई जाती। क्योंकि जिन लोगों का दर्जा इस प्रकार ऊँचा बना दिया जाता, उनको किसी दशा में सच्चे ब्राह्मण या राजपूतों के साथ परस्पर विवाह करने का अधिकार नहीं मिलता। इसलिये वह बनवटी दल अपने ही में विवाह करने को मजबूर होता, जिससे उसके प्रथम के नीच जातियों के ही प्राचीन ढाँचे और चेहरे मोहरे बने रह जाते। यही कारण है, जिससे यही दशा आज तक उन दोगले राजपूतों में पाई जाती है, जो बंगाल के बाहरी जिलों में पाये जाते हैं। क्योंकि वे लोग आपस में ही

विवाह करते हैं, न कि सच्चे राजपूतों में। इसीलिये उनकी शारीरिक बनावट वैसी ही है जैसी उन प्राचीन (जंगली) जातियों की, जिससे वे पैदा हुये होंगे।

आपने उस पूर्वोक्त किंवदन्ती की पुष्टि में जो यह लिखा है कि 'और इसका यह प्रमाण है कि इन भूमिहारों के वासस्तान उस समय के मगध राज्य की सीमा के बाहर और अन्यत्र प्रायः दृष्टिगोचर नहीं होते।' वह भी क्या ही बुद्धिमत्ता है! क्या समस्त तिरहुत, भागलपुर और पूर्णिया जिले को लिये हुये तथा छपरा, गोरखपुर, बस्ती, आजमगढ़, प्रयाग, सुल्तानपुर जिलों को, जिनमें पश्चिमा, भूमिहार, जमींदार ब्राह्मण विशेषरूप से पाये जाते हैं, आप मगध में ही समझते हैं? क्या इस विषय का आपके पास कोई प्रमाण है कि उस समय मगध संज्ञा युक्त प्रान्त तथा तिरहुत वगैरह की भी थी? क्या आपने महाभारत या 'फाहियान' और 'ह्वेनसांग' का मगध वर्णन नहीं पढ़ा है? जब गाजीपुर, बलिया, बनारस और शाहाबाद भी मगध से बाहर हैं, तो अन्य प्रान्तें का कहना ही क्या है? यह भी प्रथम ही दिखला चुके हैं कि प्रथम भी भूमिहार ब्राह्मणों के विशेष वासस्थान प्रायः छपरा वगैरह सभी प्रान्तों में थे, जिससे अन्यत्र जाने पर उन्हीं प्रान्तों के स्थानानुसार उनके एकसरिया प्रभृति नाम पड़े।

और 'चूंकि इन लोगों को जरासन्ध ने भूमि दे दी, इसलिये ये लोग तभी से भूमिहार ब्राह्मण कहलाने लगे, जो अब प्रायः मगध में ही पाये जाते हैं,' यह कैसी बेसमझ और बेसिर पैर की बात है? क्योंकि आप मगधवासी भूमिहार ब्राह्मणों के भूमिहार नाम पड़ने का यह कारण बतलाते हैं। परन्तु यह नहीं देखते कि वहाँ तो, जैसा प्रथम प्रकरण में भी कह चुके हैं, वे लोग आज तक ब्राह्मण या 'बाभन' ही बोले जाते हैं। भूमिहार शब्द का तो प्रयोग वहाँ हुआ ही नहीं। हाँ, अब भूमिहार ब्राह्मण महासभा के होने से कहीं-कहीं पढ़े लिखे लोग भूमिहार शब्द का प्रयोग करने लगे हैं। ये नेत्रों के पटल आपके खुल गये होते, यदि भाग्यवश आपको मगध में जाना पड़ा होता, अथवा भूमिहार ब्राह्मणों के सामाजिक विवरण के पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ होता। उस दशा में आपके मुख से ऊटपटांग बात न निकल सकती। अफसोस और आश्चर्य तो यह है कि आप इन अयाचक ब्राह्मणों को भूमिहार ब्राह्मण कहते और लिखते जाते हैं और साथ ही उनके विषय में बहुत सी मिथ्या कल्पनायें और मनोराज्य भी करते हैं। ऐसी दशा में तो आप वंगदेशीय ब्राह्मण, मैथिल ब्राह्मण, कान्यकुब्ज ब्राह्मण, गौड़ ब्राह्मण और सरयू पारीण ब्राह्मण इत्यादि नामों के भी विषय में कुछ न कुछ मनमानी हाँक सकते हैं। यदि नहीं, तो फिर भूमिहार ब्राह्मण नाम ने ही आप का क्या ले लिया है, जिसके ऊपर इस तरह जी जान से रञ्ज हैं? बस कृपा करिये, रहने दीजिये।

पाठक, यह तो हुई 'भारतवर्षीय राजदर्पण' की बात। जिससे सम्भवतः इस दर्पण के भविष्य में खोलने की अब आवश्यकता या योग्यता न रह गई होगी। क्योंकि यह कुदपर्ण है, जिससे इसमें उलटा ही दीखेगा। अतः इसके खोलने में पश्चात्ताप ही हाथ लगेगा। अब दूसरे दर्पण को खोलते और उसका भी परिचय यहीं देकर उसके भी भविष्य में बन्द करने का अनुरोध आप लोगों से करते हैं। उस दर्पण का नाम है विहार दर्पण। उसके रचयिता भूतपूर्व खड्ग विलास प्रेस, बांकीपुर के अधिष्ठाता या संचालक बाबू रामदीन सिंह थे। इनके विषय में हमें यहाँ विशेष नहीं कहना है। क्योंकि, जैसा प्रथम प्रकरण के अन्त में दिखला चुके हैं, इन्होंने टेकारी के भूतपूर्व महाराज रामकृष्ण सिंह जी के जीवन चरित्र के वर्णन प्रसंग से कई जगह भूमिहार ब्राह्मणों को स्पष्ट शब्दों में ब्राह्मण लिखा और सिद्ध भी किया है। परन्तु हँसी तो हमें उनकी इस बात पर आती है कि, उनसे भी अपनी आन्तरिक कलुषता प्रकट किये

बिना रहा नहीं गया और एक जगह टिप्पणी में वही जरासन्ध वाली किम्बदन्ती को भारत वर्षीय राज दर्पण से ज्यों की त्यों उद्धृत कर दिया और लिख भी दिया कि 'भारतवर्षीय राजदर्पण' में ऐसा लिखा है। भला उनको इस लेख के सारासार का विचार तो करना चाहता था। परन्तु शोक, कि उस अन्ध परम्परा के कीचड़ में आप भी फँस गये। अस्तु, उसके पृथक खण्डन की आवश्यकता नहीं है, किन्तु जिस पुस्तक से उन्होंने उद्धृत किया, उसी पुस्तक के खण्डन से उसका भी खण्डन हो चुका। विशेष हँसी तो हमको उनके इस लेख पर आती है, जो उन्होंने पूर्वोक्त महाराज रामकृष्ण सिंह जी के जीवन चरित्र के वर्णन प्रसङ्ग में लिखा है कि, 'किसी ग्राम के निवासी भूमिहार ब्राह्मण क्षत्रियों के हुक्के पिया करते थे, जिसे महाराज रामकृष्ण ने छुड़ाया।' भला क्या ही विचित्र बात है! आपको वैसा लिखते लज्जा भी न आई! क्योंकि जब मगध या अन्य सभी प्रान्तों में उनके भाई सभी क्षत्रिय भूमिहार ब्राह्मणों को अन्य ब्राह्मणों की तरह पालागन या प्रणाम करते हैं, तो यह कब सम्भव था कि वे ही क्षत्रिय उनके साथ हुक्का पानी रखते थे? और यदि हुक्का पानी था, तो खान-पान या विवाह सम्बन्ध वगैरह भी उनके साथ जरूर रहा होगा। क्योंकि यह नियम है कि जिनके साथ खानपान होता है उन्हीं के साथ हुक्कापानी भी होता है। इसलिये अच्छा हुआ होता कि उस खानपान और विवाह-सम्बन्ध वगैरह का भी परिचय आपने दिया होता। क्योंकि इससे आपके लेख की पुष्टि हो जाती और वह प्रमणित हो जाता। नहीं तो अब यही प्रश्न उठता है कि बिना जड़ मूल के ऐसी बात जो क्षत्रिय और भूमिहार ब्राह्मणों में इस समय कहीं नहीं पाई जाती है, आपने किस आधार पर लिखी? यदि आपको विवेक था, तो उस प्रमाण को भी उसी पुस्तक में उद्धृत कर देना था। नहीं तो यदि हम भी आपके वंश या समाज के विषय में ऐसी कल्पित बातें लिख डालें कि अमुक ग्राम के क्षत्रिय अमुक नीच जाति के लोगों के साथ हुक्का पानी करते थे, जिसे आपके अमुक पुरुष ने हटाया। तो कम से कम आपको भी अवश्य मान लेना पड़ेगा। अब रही बाबू हरिश्चन्द्र की बात, जो उन्होंने अपने मुद्रा राक्षस नाटक के हिन्दी अनुवाद ग्रन्थ में लिखी है। उसके विषय में क्या कहें, जो कुछ कहना था कह चुके। क्योंकि उन्होंने केवल भूमिहार ब्राह्मणों के दिल दुखाने की ही इच्छा से अपने उक्त ग्रन्थ में उसी मगधराज जरासन्ध के यज्ञ वाली किंवदन्ती को भारतवर्षीय राजदर्पण से उद्धृत कर दिया। गोया वह भारतवर्षीय राजदर्पण ऋषि ग्रन्थ हो गया, जिसे ऐसे-ऐसे प्रतिष्ठित लोग भी प्रमाण देने लगे। वाह रे अन्धपक्षपात! जिस ग्रन्थ की बात ऐसी निर्मूल, वही माननीय लोगों मे भी आदर पावे! किसी कवि ने ठीक ही कहा है कि :–

अहोमहान्तोऽपिमहेंद्रजालेमज्जन्तिमायाविवरस्यतस्य॥

अर्थात् 'क्या ही आश्चर्य है कि बड़े लोग भी परमात्मा के माया जाल में फँस कर अनाप-सनाप ही कर बैठते हैं।' बाबू रामदीन सिंह बाबू हरिश्चन्द्र के अनन्य भक्त थे, जिससे उनकी सब पुस्तकें खड्गविलास प्रेस में छपवाईं। इसलिये जो बात रामदीन सिंह लिखें वह इनसे क्योंकर छूटने की? अथवा इनकी बात उनसे क्यों कर छूट सकती थी? इसीलिये दोनों बाबू मिल गये। परन्तु बाबू हरिश्चन्द्र तो हिन्दी समाज में एक बड़े ही प्रतिष्ठित पुरुष थे। अतः उनको यह बात लिखते समय अवश्य यह विचारना था कि किसी समाज के विषय में यह हमारा अकाण्ड तांडव कैसी हलचल मचावेगा। लेकिन उनका अपराध ही क्या कहा जा सकता है ? क्योंकि उस समय तो मुद्राराक्षस लिख रहे थे! यदि उन्होंने ऐसा लिखने का निश्चय ही कर लिया था तो, क्या ही अच्छा होता कि वे इसे प्रमाणित कर देते! जिससे भविष्य के लिये उनकी ये बातें पत्थर की लकीर हो जातीं और कोई उन्हें खण्डन करने का साहस न करता। परन्तु उस बात को तो वैदेशिकों ने युक्ति से ही बात की बात में उड़ा दिया। हालांकि वे लोग हमारे हिन्दू समाज से विशेष परिचित नहीं होते हैं। परन्तु एक मान्य हिन्दू धोखा खा जावे, यह क्या ही आश्चर्य हे!!

अन्त में बाबू हरिश्चन्द्र के दो एक और अनुयायियों और भक्तों की लीला दिखला कर इस विषय को समाप्त करना चाहते हैं। काशी नागरी प्रचारिणी सभा की तरफ से जो रामायण इण्डियन प्रेस में छपी है उसके आरम्भ में उसके सम्पादक बाबू श्यामसुन्दर दास ने तुलसी दास की जीवनी लिखते हुए उनके 'मित्र और स्नेही' प्रसंग में भदैनी, काशी के चौधरी लोगों के पूर्वज टोडर का जिक्र किया है और लिखा है कि 'इस टोडर के वंशज क्षत्रिय हैं।' यही बात फिर उन्होंने स्वसम्पादित सटीक तुलसीकृत में दुहराई है और फिर 'तुलसी ग्रन्थावली' में श्री रामचन्द्र शुक्ल, लाला भगवानदीन और बाबू ब्रजरत्न दास रूप सम्पादकत्रयी ने उसे ही ज्यों की त्यों उद्धृत कर दिया है। इस प्रकार हम देख रहे हैं कि अन्धपरम्परा का प्रवाह बह चला है। बिना समझे बूझे नकल करने की आदत हम लोगों में ऐसी आ गई है कि हम अपने अनुसंधान और विचार को ताक पर रख आँखें मूँद कर दूसरों का थूका चाट लेने में ही अपने को कृतकृत्य मानते हैं। नहीं तो ऐसे विवादग्रस्त विषय में यों आँखें मूदँकर क्यों लिखा जाता? डाक्टर ग्रियर्सन ने उक्त टोडर को अकबर का मन्त्री राजा टोडरमल लिखा, तो आप लोगों ने उसका खण्डन कर उन्हें क्षत्रिय लिख मारा। वाह रे खोज! और वाह रे नागरी प्रचारिणी सभा का अनुन्धान! आप लोग उस के कर्णधार हैं। मगर जब स्वयं बह रहे हैं तो ईश्वर ही बेड़ा पार करे। भलेमानुसो, जिस टोडर को आप लोग क्षत्रिय लिख रहे हैं वे ब्राह्मण हैं। उन्हीं के वंशज भदैनी, नई बस्ती, नदेसर और सुरही के चौधरी लोग हैं। आप लोगों ने जिन पाँच गाँवों का जिक्र किया है वे इन्हीं के अधिकार में थे और इन्हीं से महाराज बनारस को मिले। अभी तक उनका कुछ अंश इन लोगों में से किसी के अधिकार में है भी। ये लोग काश्यप गोत्री भूमिहार ब्राह्मण हैं। मगर इसे लिखने में आप लोगों का दोष ही क्या? जब आप लोगों को साधारण भूगोल का ज्ञान भी नहीं है। क्योंकि कांट ब्रह्मपुर को आप लोग उन्हीं पोथों में बलिया जिले में लिखते हैं। हालांकि वह स्थान शाहाबाद में है। तो फिर यह तो अनुसन्धान की बात ठहरी। पर, स्मरण रहे कि नागरी प्रचारिणी एक जवाबदेह संस्था है न कि आपकी बपौती। यदि उसके नाम पर ऐसा लबड़धोंधों होगा तो ठीक नहीं। इसका परिणाम ठीक न होगा। क्या इसी बुद्धि से 'हिन्दी शब्द सागर' का सम्पादन हो रहा है? खुदा ही खैर करे! यदि शायद यह कहें कि ये लोग क्षत्रिय ही हैं, न कि ब्राह्मण तो हम आप लोगों को शबाशी देंगे और कहेंगे कि आप लोगों ने बहादुर का काम किया। पर याद रहे कि खत्री लोगों को क्षत्रिय लिखने में आपको जितना सबूत मिला क्या भूमिहारों के ब्राह्मण होने में उतना भी न मिला? क्या खत्रियों के साथ क्षत्रियों के विवाह और खान पान वगैरह होते हैं? और भूमिहारों के मैथिलों, कान्यकुब्जों या सरयू पारियों के साथ? इसका पता तो इसी ग्रन्थ से ही लग गया होगा या लग जायगा। हाँ, जाग कर सोना और बात है।

जब ऐसा लिखने का प्रमाण आप से पूछा गया तो आप लिखते है कि 'टोडर को क्षत्रिय मानने का कोई दृढ़ प्रमाण मेरे पास नहीं है। तुलसी दास के दोहे का 'ठाकुरो' शब्द

और टोडर के वंश के नाम से यह अनुमान किया है कि ये लोग क्षत्रिय थे। डाक्टर ग्रियर्सन और पं० सुधाकर द्विवेदी ने भी यही माना है। यदि इस वंश के लोग अपने को भूमिहार कहते हैं तो यही मानना उचित होगा।' यह तो खासी बुद्धिमत्ता ठहरी, कि 'ठाकुर' शब्द और नाम के अन्त में शायद 'सिंह' देखकर क्षत्रिय निश्चय कर लिया! मैथिलो, कान्यकुब्ज, गौड़ और सनाढ्य ब्राह्मणो, सजग! नहीं तो इस चक्की में पिस जाओगे! इस कसौटी पर खरे न निकल सकोगे! क्यों जनाब, क्या तुलसी दास का ही 'कहहिं सचिव सब ठकुर सुहाती' भूल गया, जिससे यह अनर्थ कर डाला? क्या खत्रिय को क्षत्रिय लिखने में इस कसौटी का प्रयोग किया गया है? वहाँ भी तो आपने कमाल किया है! हिन्दी शब्द सागर में उन्हें क्षत्रिय लिखते हैं और यहाँ लिखते हैं कि 'राजा' टोडर मल टण्डन खत्री थे और टोडर के वंशज क्षत्रिय हैं।' उन बेचारों की फजीहत क्यों करते हैं? अथवा मर्जी ही तो ठहरी! अस्तु।

इन्हीं कूपमण्डूक भलेमानुसों की एक और भी काली करतूत दिखला कर बस करेंगे। काशी नागरी प्रचरिणी की तरफ से जो कोश 'हिन्दी शब्द सागर' तैयार हो रहा है उसके सम्पादक तो वही हुजूर श्याम सुन्दर दास हैं और उनके जी हुजूरों में लाला भगवानदीन के सिवाय लाला जगन्मोहन और श्रीरामचन्द्र शुक्ल वगैरह हैं। इस कोश में भी ये महारथी एक प्रकार से लोगों के विधाता ही बन रहे हैं और जिस किसी के बारे में जो ही मन में आता लिख कर दिल की कसक निकाल लेते हैं। साथ ही, अपना और अपने इष्ट मित्रों का काम भी बना लेते हैं। वे 'तगा' शब्द के बारे में लिखते हैं कि 'एक जाति जो रुहेल खण्ड में बसती है। इस जाति के लोग जनेऊ पहनते और अपने आपको ब्राह्मण मानते हैं।' जिस छल, नीचता और चालकी से यह लिखा गया है वह उन्हीं को मुबारक हो। अच्छा, फिर 'भूमिहार' शब्द पर लिखते हैं कि 'एक जाति जो प्रायः बिहार में और कहीं-कहीं संयुक्त प्रान्त में भी पाई जाती है। इस जाति के लोग अपने आपको ब्राह्मणों के अन्तर्गत बतलाते हैं और प्रायः अपने आपको 'बाभन' कहते हैं। इस जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की बातें सुनने में आती हैं। कुछ लोग कहते हैं कि जब परशुराम ने पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित कर दिया था, तब जिन ब्राह्मणों को उन्होंने राज्य भार सौंपा था, उन्हीं के वंशधर ये भूमिहार या बाभन हैं। कुछ लोगों का कहना है कि मगध के राजा जरासन्ध ने अपने यज्ञ में एक लाख ब्राह्मण बुलाये थे। पर, जब इतनी संख्या में ब्राह्मण न मिले, तब उनके एक मन्त्री ने छोटी जाति के बहुत से लोगों को यज्ञोपवीत पहना कर ला खड़ा किया था, और उन्हीं की सन्तान ये लोग हैं। जो हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि इस जाति में ब्राह्मणों के यजन याजन आदि कर्मों का नितान्त अभाव देखने में आता है और प्रायः क्षत्रियों की अनेक बातें इनमें पाई जाती हैं। ये लोग दान नहीं लेते और प्रायः खेती बारी या नौकरी करके निर्वाह करते हैं, सारांश, इससे खराब लिखा नहीं जा सकता।

इन मूर्खतापूर्ण बातों का अब हमें उत्तर देना नहीं है। जो कहना था कह चुके हैं। पर, इतना अवश्य कहना है कि सिवाय कूपमण्डूक के और कोई इसे यदि कहेगा तो सिर्फ पक्षपाती। हजारीबाग में तो भूमिहार पुरोहिती पेशा करते ही हैं और गया-देव-के सूर्य मन्दिर के पुजारी यही लोग हैं। ये गायत्री के आचार्य होते ही हैं। यह पुरोहिती सैकड़ों, हजारों वर्ष से है। इसके सिवाय अब तो इनमें हजारों पुरोहिती करने वाले हैं। फिर पुरोहिती का इनमें नितान्त अभाव बताना मूर्खता नहीं तो और क्या है? लाख या सवा लाख ब्राह्मणों की कहानी तो सभी ब्राह्मण दलों में फैली है और उनकी पुस्तकों में लिखी भी है। फिर सिर्फ भूमिहारों के ही

विषय में उसके नाम लेने की क्या आवश्यकता आ पड़ी? यह केवल आन्तरिक नीचता है। अच्छा, तो क्या कायस्थों और खत्रियों के विषयों में एक बारगी साफ ही मामला है? क्या खत्रियों को लोग क्षत्रिय या क्षत्रियों की एक शाखा मानते हैं या सिर्फ उन्हीं लोगों का—श्याम सुन्दर के भाइयों का—ही दावा है? तो फिर उनके बारे में केवल क्षत्रिय या क्षत्रियों की शाखा ही क्यों लिखा गया और यह दावे की बात क्यों न लिखी गई? सिर्फ इसीलिये कि श्यामसुन्दर दास कोश के सम्पादक ठहरे और वह है उनकी जाति। लाला लोग इसलिये चुप रहे कि कायस्थों के विषय में भी ऐसा ही लिख दिया जायगा, शायद यह समझौता हो चुका था। बस, फिर क्या? 'हम तुम राजी तो क्या करेंगे शहर के काजी।' हम लाला भगवान दीन की 'लक्ष्मी' वाली भलेमानुसी खूब जानते हैं, भूले नहीं हैं।

जब कायस्थों और उनके भेद—करण, अम्बल—का प्रसंग आया तो 'हिन्दुओं की एक जाति का नाम', कायस्थोंका एक अवान्तर भेद', 'कायस्थों का एक भेद' इत्यादि लिखकर मौन हो गये। याज्ञवल्क्यस्मृति के आचाराध्याय के ९१, ९२ और ३३६ श्लोक आप लोग भूल ही गये। क्योंकि आपको तो विशेष चिन्ता इस बात की है कि भूमिहारों का विवरण जैसे हो दिया जावे, दूसरों का नहीं। क्यों हुजूरो, अम्बष्ठ और करण का जो अर्थ मनु और याज्ञवल्क्य ने किया है कि ब्राह्मण पुरुष से वैश्या स्त्री में और वैश्य से शूद्रा में उत्पन्न होने वाली जाति, और जिसे आप लोगों ने भी लिखा है उसमें और आपके करण एवं अम्बष्ठ कायस्थों में यदि कोई भेद है तो उसे भी क्यों न लिख दिया और ३३६वें श्लोक का उत्तर भी क्यों न दे दिया? ताकि आपके राज्य में आप लोगों की जाति अचल हो जाती और आपके भाई खूब समझ जाते कि 'सैंया भये कोतवाल अब डर काहेका।' हालांकि ये लोग तो इस समय भी ऐसा ही समझते हैं। यदि मिथिला और बंगाल के करण और अपने दूसरे भाइयों की दशा जाँचें तो आपकी गर्मी ही ठंढी हो जाय वहाँ दूसरे करण नहीं हैं। हमें तो आश्चर्य है कि जैसे एक 'दास' ने अपने समाज को साफ ही क्षत्रिय लिख दिया वैसे ही दूसरे दो दासों ने ऐसा क्यों नहीं कर डाला? क्या पीछे समझौते में फर्क पड़ गया? हमें 'वर्मा' नामधारियों की इस बदकिस्मती पर तर्स आता है! कोश में 'भूमिका' शब्द पर आप लोगों ने लिख मारा कि 'वेदान्त के अनुसार चित की पांच अवस्थायें, जिनके नाम ये हैं—क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध।' भोलेमानुसो, ये योग के अनुसार चित्त की अवस्थायें हैं। वेदान्त के अनुसार तो ७ हैं, जिन्हें योगवासिष्ठ में 'सप्तभूमिका' कहा है। क्या इसी बुद्धि से शब्द सागर तैयार हो रहा है? वह तो आप लोगों के दिमाग शरीफ का एक छोटा सा नमूना है। आपने कितने अनर्थ करके नागरी प्रचारणी को बदनाम किया होगा, इसका ठिकाना नहीं! अस्तु।

पूर्वोक्त अब तक की बातों से पाठकों को विदित हो गया होगा कि भूमिहार ब्राह्मणों के विषय में जितनी कुकल्पनायें आज तक की गईं और पुस्तकों में भी लिखी गई हैं, वे कैसी निर्मूल और लेखकों के हृदय की कालिमा की सूचक हैं। हिन्दू समाज के प्रतिष्ठित पुरुषों द्वारा किये गये पुस्तकाकार आक्षेप आज तक मेरी दृष्टि में इतने ही पड़े हैं, जिनका समुचित खण्डन इस प्रकरण में कर दिया गया है। इसलिये अब इन्हीं कल्पित आधारों पर अपने-अपने मानसिक प्रासाद खड़ा करने वाले-इन्हीं को ब्रह्म वाक्य मानने वाले-उद्धत सज्जनों से मेरी यही विनीत प्रार्थना है कि, अब इसी अञ्जन से वे अपने ज्ञान को निर्दोष कर लेवें, जिससे भविष्य में उन्हें कभी भूमिहार ब्राह्मणों की सामाजिक स्थिति के विषय में दोष की स्फूर्ति न होवे।

(२) दोनवार आदि शब्द मीमांसा

यह तो हुई हमारे पण्डितमानियों, बाबुओं और नेताओं की पोपलीला। अब उनकी इन पूर्वोक्त कुकल्पनाओं के कल्पित आधारों का भी विचार यहीं कर लेना चाहिये। इन लोगों ने जो कुछ बक डाला, वैदेशिकों ने भी जो कुछ विपरीत स्वर आलापे और बहुतेरे अन्य लोगों को भी जो ऐसी शंकायें उठा कीं या करती हैं, जिनका सम्बन्ध केवल अयाचक ब्राह्मणों की सामाजिक स्थिति से हैं, उन सभी का कारण यह है कि ये सभी कूप मण्डूक-प्राय हो रहे हैं। इसलिये अदनी-अदनी बातों का भी तत्त्व न समझ मनमानी बात सुनाने लग जाते हैं। बात असल यह है कि इस ब्राह्मण समाज में कुछ अवान्तर (छोटे-छोटे) दल (Sub-communities) ऐसे हैं जिन्हें देखते ही अपरिपक्व विचार वालों के दिल फड़क उठते हैं। अर्थात् पश्चिमा, भूमिहारादि ब्राह्मणों में बहुत से छोटे-छोटे दलों के ऐसे नाम हैं जो क्षत्रियों या अन्य वर्णों में भी पाये जाते हैं। जैसे द्रोणवार या दोनवार, सकरवार, किनवार, बरुआर, बेमुआर, कुढ़नियां, गौतम, भृगुवंश, दीक्षित, कौशिक और सोनपोखरिया या सरफकरिया इत्यादि नाम दोनों (ब्राह्मण और क्षत्रिय) समाजों में पाये जाते हैं। बस अब क्या था, इतना देखते ही लोगों ने जो चाहा लिख मारा। परन्तु इस विषय में हमारा निवेदन यह है कि, जब 'आईने अकबरी' जैसे प्राचीन ग्रन्थों में जैसे अन्य ब्राह्मण जमींदारों को ब्राह्मण या जुन्नारदार लिखा, वैसे ही इन दोनवार और किनवार आदि अयाचक ब्राह्मण दलों को भी जुन्नारदार या ब्राह्मण ही लिखा है, जैसा प्रथम परिच्छेद में ही विस्तृत रूप से दिखला चुके हैं, तो क्षत्रियों में या अन्य जातियों में दोनवार आदि संज्ञाएँ देखकर सन्देह करना या मिथ्या कल्पनायें करना अनभिज्ञता नहीं तो और क्या कहा जा सकता है?

एक बात और भी विचारणीय है कि यदि केवल नामों की एकता देखकर एकता का संशय कर लिया जावे, तो दुनिया में क्या एक नाम वाले भिन्न-भिन्न जाति और समाज के लोग नहीं होते? तो फिर क्या उन्हें एक ही जाति के समझ लेना होगा? दूसरी बात यह है कि यदि मैथिल संज्ञा मिथिला के ब्राह्मण और करण कायस्थों की है और दोनों का वेश भी लगभग एक-सा ही है, तो क्या उन दोनों को एक जाति के ही समझ लेना चाहिये? अथवा उसे देख उनमें से किसी की भी असलियत में सन्देह करना उचित है? क्या लोगों को यह नहीं विदित है कि कनौजिया (कान्यकुब्ज) ब्राह्मण, हलवाई, कहार और क्षत्रिय आदि भी कहे जाते हैं? क्योंकि 'कान्यकुब्ज हलवाई वैश्य' नामक मासिक पत्र काशी से ही प्रकाशित होता है। इसी तरह कायस्थ आदि भी गौड़ नहीं कहे जाते हैं क्या ? तो क्या कान्यकुब्ज या गौड़ कहलाने के कारण सभी ब्राह्मण, क्षत्रिय, हलवाई, कहार और कायस्थ एक ही जाति के समझे जावेंगे? बहुत सम्भव है कि उन लोगों के गोत्र भी एक ही होवें। क्योंकि जो ही गोत्र ब्राह्मणों के होते हैं, वे ही अन्य जातियों के भी, कारण कि गोत्र चलाने वाले ऋषि तो प्रायः सभी के एक ही थे।

साथ ही, सम्भवतः इस कारण से यह भी नियम रख दिया गया है कि पुरोहित का जो गोत्र होवे क्षत्रियादि यजमान को भी अपना बताना और संकल्प आदि में उसी का व्यवहार

करना चाहिये [1]।

इसीलिये यदि कोई यह कहने का भी उत्साह करता कि प्रायः दोनवार क्षत्रियों और भूमिहार ब्राह्मणों के गोत्र एक ही होते हैं। इसी प्रकार किनवार वगैरह के भी। इसी से उनके विषय में विविध शंकायें हुआ करती हैं। परन्तु कान्यकुब्ज, गौड़ और मैथिल आदि नाम यद्यपि बहुत सी जातियों के एक ही हैं, तथापि गोत्रों का भेद होने से उनके विषय में कोई शंका नहीं होती। तो उसकी यह उक्ति भी खण्डित हो गई, क्योंकि कान्यकुब्ज कहलाने वालों के भी गोत्र एक ही हो सकते हैं। इसी विषय में अभी आगे भी कहेंगे।

इसी तरह यह भी देखा जाता है कि कायस्थ जाति के जो अवान्तर दल श्रीवास्तव और सकसेना वगैरह कहलाते हैं और क्षत्रियों में राठौर आदि कहे जाते हैं वे ही नाम भड़भूजों में भी पाये जाते हैं। जैसा मिस्टर क्रुक ने अपनी उक्त जाति सम्बन्धी पुस्तक के द्वितीय भाग के १३वें पृष्ठ में यों लिखा है :-

BHARBHUJA—The last census classifies them under the main heads of Bhatnagar, Jagjadon, Kaithiya, Kandu, Rathaur, Saksena, Sribastab. Some illustrate some real or supposed connection with other castes and tribes; such as the Bhadauriya,Chaube, Chauhan, Kanjar, Kayath, Khatri and Lodhi.

P. 13. Vol. 11

इसका अनुवाद यह है कि अन्तिम मनुष्य गणना के अनुसार भड़भूजा लोग भटनागर, जगजादों, कैथिया, कांदू, राठौर, सकसेना और श्रीवास्तव इन छोटे-छोटे दलों में विभक्त हैं। बहुतेरे अपने वास्तविक अथवा काल्पनिक सम्बन्ध भदौरिया, चौबे, चौहान, कञ्जर, कायथ, खत्री और लोधियों के साथ सिद्ध करते हैं।'

इसी तरह गौड़ ब्राह्मणों में चमर गौड़ और गूजर गौड़ इत्यादि संज्ञायें हैं। तो क्या इन सब नामों को देखकर आस्तिक और विचार बुद्धि से यह संदेह करना उचित है कि भड़भूजा, कायस्थ, श्रीवास्तव, सक्सेना, चौबे, चौहान, खत्री और राठौर एवं गूजर, चमर और गौड़ ब्राह्मण इत्यादि एक ही हैं? इन सब बातों को देख कर यही मानना होगा कि नामों के एक हो जाने या गोत्रों के भी एक हो जाने से जाति एक नहीं समझी जा सकती। क्योंकि जो गाजीपुर, बनारस या मुजफ्फरपुर में उत्पन्न होने वा रहने वाले हैं और उनकी जातियाँ भिन्न-भिन्न हैं और सम्भव है कि बहुतेरों के गोत्र भी एक ही हों। अब यदि वे लोग किसी कारण से अन्यत्र चले जावें तो गाजीपुरी, बनारसी या मुजफ्फरपुरी इस एक ही नाम से वे सभी बोले जावेंगे। जैसा लोग कहा करते हैं कि यह तो बनारसी माल, बनारसी साड़ी या बनारसी जवान है। इसी तरह भोजपुरी इत्यादि। ऐसा होने पर भी वे सभी कदाचित् एक नहीं समझे जाते या जा सकते हैं। उसी तरह मिथिला, कान्युकब्ज अथवा गौड़ वगैरह देशों में भी रहने वाले सभी जाति वाले एक ही नाम से कहे जाने पर भी एक जाति या दल के

१. निर्णय सिन्धु, तृतीय परिच्छेद, गोत्रप्रवर के प्रकरण में लिखा है कि 'अज्ञात बन्धोः पुरोहित प्रवरेणाचार्यप्रवरेण वेतिस्वगोत्राद्यज्ञाने'– यदि अपने गोत्रप्रवर का ज्ञान न हो तो पुरोहित वा आचार्य के गोत्रप्रवर से ही व्यवहार किया जाना चाहिये। मगर आश्वलायन, कात्यायन और लौगाक्षि का सिद्धान्त है कि क्षत्रियों और वैश्यों का व्यवहार सर्वदा आचार्य या पुरोहित के ही गोत्रप्रवर से होना चाहिये, जैसा 'पुरोहित प्रवरो राज्ञामेतेन वैश्यप्रवरो व्याख्यातः' इत्यादि।

समझे नहीं जाते या जा सकते हैं। ठीक वही दशा दोनवार और किनवार आदि नामों के भी विषय में समझना चाहिये, कि ब्राह्मण या क्षत्रिय अथवा अन्य जातीय भी एक ही स्थान में रहने से एक नाम से पुकारे जाने लगे, जैसा अभी दिखलाया जावेगा। और यद्यपि सभी एक नाम वाले भूमिहार ब्राह्मण और क्षत्रियों के गोत्र एक नहीं हैं, जैसा इसी प्रकरण से विदित होगा, तथापि जिनके गौत्र एक से हैं उनके विषय में वही बात हो सकती है जैसी अन्य लोगों में कह चुके हैं, कि एक ही गोत्र वाले भी भिन्न-भिन्न जाति वाले एक स्थान में रह सकते हैं और उसी से उनका नाम भी एक ही पड़ सकता हैं।

यह भी बात हुई होगी, कि जब वे लोग किसी स्थान से हट चले, तो क्षत्रियों ने देखा कि हमारे पूर्वस्थान वाले अयाचक ब्राह्मण कहां बसे हैं। और जहाँ उन्हें पाया, आप भी उन्हीं के पास ही बस गये। क्योंकि अन्य देश में जाने पर भी वहां लोग विशेष कर स्वदेश के ही लोगों का साथ ढूँढ़ा करते हैं। इसीलिये एक नाम वाले अयाचक ब्राह्मण और क्षत्रिय एक ही जगह पाये जाते हैं। जैसा मैथिल और गौड़ एवं कान्यकुब्ज नाम वाली सभी जातियां प्रायः पास ही पास पाई जाती हैं। अयाचक ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बहुत से गोत्रों के एक ही होने का एक यह भी कारण हो सकता है, कि कोई ब्राह्मण प्रथम याचक (पुरोहित) रहा होगा और क्षत्रियों की पुरोहिती करता रहा होगा। परन्तु समय पाकर वह अयाचक हो गया, जैसा सर्वदा से हुआ करता है, तो अपने सगोत्र अयाचक ब्राह्मणों में मिल गया, जैसा अभी तक बराबर हुआ करता है। परन्तु पुरोहित होने से उसी का गोत्र उन क्षत्रियों का भी कहलाता था, इसीलिये उसके पश्चात् आज तक एक ही गोत्र कहलाता ही रह गया।

सबसे विश्वसनीय और प्रामाणिक बात यह है कि दोनवार और किनवार इत्यादि नाम वाले जो क्षत्रिय हैं, ये प्रथम अयाचक ब्राह्मण ही थे। परन्तु किसी कारण वश इस ब्राह्मण समाज से अलग कर दिये गये वा हो गए। बनारस-रामेश्वर के पास गौतम क्षत्रिय अब तक अपने को कित्थू मिश्र या कृष्ण मिश्र के ही वंशज कहते हैं, जिन मिश्र जी के वंशज सभी गौतम भूमिहार ब्राह्मण हैं। और भूमिहार ब्राह्मणों से पृथक् होने का कारण वे लोग ऐसा बतलाते हैं कि कुछ दिन हुए हमारे पूर्वजों को गौतम ब्राह्मण हिस्सा (जमींदारी वगैरह) न देते थे, इसलिये उन्होंने रंज होकर किसी बलवान क्षत्रिय राजा की शरण ली। परन्तु उसने कहाकि यदि हमारी कन्या से विवाह कर ले,तो हम तुम्हें लड़कर हिस्सा दिलवा देंगे। इस पर उन्होंने ऐसा ही किया और तभी से भूमिहार ब्राह्मणों से अलग होकर क्षत्रियों में मिल गये, यह उचित भी है। क्योंकि जैसा प्रथम ही इसी प्रकरण में दिखला चुके हैं कि, मनु याज्ञवल्क्यादि सभी महर्षियों का यही सिद्धान्त है कि ब्राह्मण यदि क्षत्रिय कन्या से विवाह कर ले, तो उसका लड़का शुद्ध क्षत्रिय ही होगा। क्योंकि उसका मूर्द्धाभिषिक्त नाम याज्ञवल्क्य ने कहा है और 'मूर्द्धाभिषिक्तो राजन्यः' इत्यादि अमरकोश के प्रमाण से तथा महाभारत और वाल्मीकि रामायण आदि से मूर्द्धाभिषिक्त नाम क्षत्रिय का ही है। मनु भगवान ने तो,

पुत्रा येऽनन्तरस्त्रीजाः क्रमेणोक्ता द्विजन्मनाम्।
ताननन्तरनाम्नस्तु मातृदोषात्प्रचक्षते ॥ अ. १० ॥

इत्यादि श्लोकों में उसे स्पष्ट ही क्षत्रिय बतलाया है। ये गौतम क्षत्रिय केवल काशी-रामेश्वर के पास दो चार ग्रामों में रहते हैं।

इसी तरह किनवार क्षत्रियों की भी बात है। वे केवल बलिया जिले के छत्ता और

सहतवार आदि दो ही चार गाँवों में प्रायः पाये जाते हैं। जिनके विषय में विलियम इरविन साहब (William Irvine Esqr.) कलक्टर १७८०-८५ ई० ने बन्दोबस्त की रिपोर्ट (Reports on the Settlement) में लिखा है कि किनवार ब्राह्मणों के एक पुरुष कलकल राय ने किसी क्षत्रिय जाति की कन्या से ब्याह कर लिया। जिससे उनके वंशज भूमिहार ब्राह्मणों से अलग हो गये और उन्हीं पूर्वोक्त दो चार ग्रामों में पाये जाते हैं। इसी तरह दोनवार क्षत्रिय भी किसी कारणवश दोनवार ब्राह्मणों से अलग कर दिये गये। जो मऊ (आजमगढ़) के पास कुछ ही ग्रामों में पाये जाते हैं, परन्तु वहाँ दोनवार ब्राह्मण १२ कोस में विस्तृत हैं। इसी तरह बरुवार क्षत्रियों को भी जानना चाहिये। वे भी केवल आजमगढ़ जिले के थोड़े से ग्रामों में हैं। परन्तु बरुवार नाम के ब्राह्मण तो उसी जिले के सगरी परगने के १४ कोस में भरे पड़े हुए हैं। सकरवार क्षत्रिय भी उसी तरह किसी कारण विशेष से सकरवार ब्राह्मणों से विलग हो गये, जो गहमर वगैरह एक दो ही स्थानों में पाये जाते हैं। जब सकरवार नाम के ब्राह्मण गाजीपुर के जमानियाँ परगने और आरा के सरगहाँ परगने के प्रायः १२५ गाँवों में भरे पड़े हुए हैं। जो दोनवार अयाचक ब्राह्मण जमानियाँ परगने के ताजपुर और देवरिया प्रभृति बीसों ग्रामों में पाये जाते हैं, उन्हीं में से कुछ लोग किसी वजह से निकल कर क्षत्रियों में मिल गए और गाजीपुर शहर से पश्चिम फतुल्लहपुर के पास दो-चार ग्रामों में अब भी पाये जाते हैं। इसी कारण अन्य भी भूमिहार ब्राह्मणों के नाम वाले क्षत्रियों को जानना चाहिये।

सारांश यह है कि सभी दोनवार आदि नाम वाले क्षत्रियों की संख्या बहुत ही थोड़ी है परन्तु इन नामों वाले भूमिहार ब्राह्मणों की संख्या ज्यादा है। इससे स्पष्ट है कि इन्हीं अयाचक ब्राह्मणों में से वे लोग किसी कारण से विलग हो गये हैं। इसीलिये उनकी दोनवार आदि संज्ञाएँ और गोत्र वे ही हैं जो दोनवार आदि नाम वाले ब्राह्मणों के हैं। इस संख्या वगैरह का पता हमने स्वयं उन-उन स्थानोंमें भ्रमण कर और जानकार लोगों से मिलकर लगाया है। जिसे इच्छा हो वह प्रथम जाँच कर ले, पीछे कुछ कहे या लिखे। यद्यपि सकरवार क्षत्रिय आगरे के आस-पास तथा अन्य प्रान्तों में बहुत पाये जाते हैं, तथापि उन लोगों का गहमर आदि ग्रामों वाले सकरवार क्षत्रियों से कुछ सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि ये सब सकरवार कहे जाते है और आगरे वाले सिकरीवार; कारण कि उनका आदिम स्थान फतहेपुर सिकरी या सिकरी है और इनका स्थान सकरा डीह है। साथ ही, आगरे वालों का गोत्र शण्डिल्य है और गमहर वालों का सांकृत, जैसा सकरवारों के निरूपण में आगे दिखलावेंगे। अतः सकरवारों को सिकरीवारों से पृथक् ही मानना होगा।

बहुत जगह अनेक अंग्रेजों ने यह लिखा है कि जब बहुत से भूमिहार (ब्राह्मणों) और राजपूतों के गोत्र एक ही हैं, जैसे किनवार या दोनवार, तो फिर वे एक ही क्यों न समझे जावें? पर, उनकी यह भूल है। क्योंकि एक तो सामान्यतः वैदेशिकों को यही पता नहीं चलता कि गोत्र या मूल किसे कहते हैं। दूसरे, वे लोग यह भी देखते हैं कि बहुत से लोग गोत्रों से ही पुकारे जाते हैं, जैसे भारद्वाज, गौतम और कौशिक इत्यादि। इससे उन्हें यह भ्रम हो गया कि दोनवार और किनवार भी गोत्रों के ही नाम हैं। इसी से उन्होंने ऐसा बक डाला, जिसे देखकर आजकल के अर्द्धदग्ध लकीर के फकीर भी वही स्वर आलापने लग जाते हैं। परन्तु वास्तव में किनवार और दोनवार आदि संज्ञायें प्रथम निवास के स्थानों या डीहों से पड़ी हैं, जिन्हें मिथिला में मूल कहते हैं, और मेरठ वगैरह में निकास, न कि ये गोत्रों के नाम हैं। जैसे अन्य मैथिलादि ब्राह्मणों तथा अन्य लोगों की गौड़, कान्यकुब्ज, मैथिल, चकवार और सनैवार

आदि संज्ञायें भी स्थानों के नाम से ही पड़ी हैं, न कि ये सब गोत्रों के नाम हैं।

अब हम पाठकों को इन दोनवार आदि नामों का कुछ संक्षिप्त विवरण सुना देना चाहते हैं, जिससे सब शंकायें आप ही आप निर्मूल हो जायेंगी। इस जगह इस बात को पुनः स्मरण कर लेना चाहिये, कि यवन राज्य काल में जब अनेक कारणों से इतस्ततः भगेड़ मच रही थी, तो उन दिनों विशेष धर्मभीरु होने के कारण ब्राह्मणों ने अपनी धर्म रक्षा के लिये छोटे-छोटे दल बनाये, जिनमें एक प्रकार के समीपवर्ती ब्राह्मण सम्मिलित हुए। यह बात प्रथम परिच्छेद में ही सविस्तर दिखलाई जा चुकी है। उसी समय में प्रत्येक ब्राह्मण दल के साथ डीह (पूर्वजों के निवास स्थान) के कहने का भी प्रचार चला। जैसे पिण्डी के तिवारी और खैरी के ओझा आदि। क्योंकि इससे ठीक-ठीक पता लग जाता था कि ये ब्राह्मण वास्तव में कान्यकुब्ज या सर्यूपारी हैं, क्योंकि इनके पूर्वजों के स्थान पिण्डी और खैरी आदि सरयूपार और कान्यकुब्ज आदि देशों में ही हैं। इसी 'डीह' को मिथिला में मूल और पच्छिम में निकास कहते हैं, जिसका अर्थ 'आदिम निवास स्थान' है, जैसा 'डीह' का अर्थ है। परन्तु इस 'डीह' या 'मूल' का व्यवहार प्रायः केवल ब्राह्मणों में प्रचलित था। इसीलिये अब तक भी सिवाय ब्राह्मण के अन्य जातियों में उसका व्यवहार प्रायः कहीं नहीं पाया जाता है। इससे भी स्पष्ट है कि जो क्षत्रियों में किनवार वगैरह नाम हैं, उनके पड़ने का वही कारण है जैसा अभी दिखला चुके हैं। क्षत्रिय लोगों के वंशों के नाम प्रायः उनके प्रधान पुरुषों के नाम से ही होते हैं, न कि किसी डीह से। जैसे रघुवंशी, यदुवंशी इत्यादि।

अस्तु, जिस तरह कान्यकुब्ज लोग डीह का व्यवहार इस प्रकार करते हैं कि क्यूना के दीक्षित, सीरू के अवस्थी और देवकुली के पाण्डे। इसी तरह सर्यूपारी भी। मैथिल लोग वैसा न कह कर मूल पूछने पर या तो उस स्थान का नाम भर बतला देते हैं, जैसे दिघवे, जाले इत्यादि। अथवा जालेवार, दिघवैत, सनैवार, चकवार इत्यादि कहते हैं जिसका अर्थ यह है कि दिघवा, जाले या चाक आदि स्थानों के रहने वाले। और कहीं-कहीं अनरिया, कोदरिया और ब्रह्मपुरिया आदि भी कहते हैं। जिनके अर्थ हैं कि अनारी, कोदरा और ब्रह्मपुर के रहने वाले। इसी तरह करमहे और दधिअरे इत्यादि भी समझे जाने चाहिये। तात्पर्य यह है कि वे लोग 'डीह', या 'मूल' को बहुत तरह से कहा करते हैं। और प्रथम यह बात दिखला चुके हैं कि अयाचक दल वाले ब्राह्मणों ने भी 'डीह', 'मूल' के कहने की रीति प्रायः वही स्वीकार की जो मैथिलों में थी और तदनुसार ही दोनवार, किनवार, कुढनियां, कोलहा, तटिहा, एकसरिया, जैथरिया, ननहुलिया और जिझौतिया आदि कहने लगे। कान्यकुब्जों आदि से भी इनका व्यवहार मिलता है। अतः उनकी तरह भी ये लोग कहीं-कहीं बोले जाते हैं। जैसे भारद्वाज गोत्री कान्यकुब्ज या सरयूपारी बांदा के आसपास और जौनपुर जिले में दो एक जगह रबेली पंचपटिया वगैरह में दुमटेकार के तिवारी कहे जाते हैं और बहुत से भारद्वाज गोत्री भूमिहार ब्राह्मण भी पांडे या तिवारी ही कहे जाते हैं और अपने को दुमटेकार कहते हैं जो कहीं-कहीं बिगड़ कर 'दुमकटार' या 'डोमकटार' हो गया है, एवं बहुत से सरयूपारी, गौड़ और कान्यकुब्ज वगैरह डीह का नाम न लेकर केवल गोत्रों से ही अपने को पुकारते हैं, जैसा भारद्वाज, कौशिक इत्यादि। इस बात को पं० छोटेलाल श्रोत्रिय ने अपनी 'जात्यन्वेषण' नामक पुस्तक में स्पष्ट ही लिखा है। आजमगढ़ के जिले में भी बभनपुरा आदि दो-चार ग्रामों में कुछ सरयूपारी ब्राह्मण दूबे कहलाते हैं और अपने को 'मौनस' गोत्र से व्यवहार करते हुए, 'मौनस' कहा करते हैं। इसी प्रकार भूमिहार ब्राह्मणों में भी बहुत से ऐसे दल हैं, जो कहीं-

कहीं गोत्रों से ही अपने को पुकारते हैं, जैसे खजुरा-धुवार्जुन आदि ग्रामों वाले भारद्वाज ओर सुर्वत-पाली वगैरह ग्राम वाले कौशिक कहलाते हैं। ये सब स्थान गाजीपुर जिले में हैं, इसी प्रकार बनारस में गौतम और आजमगढ़ के टीकापुर–बीबीपुर आदि ग्रामों में दोनों दलवाले भृगुवंश वा भार्गव कहे जाते हैं।

गोत्रों से पुकारे जाने में यही कारण है कि यवन काल से प्रथम तो लोग स्थायी रूप से जहाँ-तहाँ पड़े रहते थे। इसलिये 'डीहों' या 'मूलों' के कहने की कोई आवश्यकता न होने से केवल गोत्रों से आपस के व्यवहार करते थे, जो विवाह वगैरह में आवश्यक भी था। जब यवन काल में इधर-उधर भगेड़ मची तो हुलिया (पहचान) के लिये 'डीह' या 'मूल' का व्यवहार थोड़े दिनों तक चलता रहा। परन्तु उस समय भी जो लोग किसी प्रथम के निश्चित एक ही स्थान में जमे रह गये, उन्हें डीहों की आवश्यकता ही न हुई। इसलिये उनका व्यवहार पूर्ववत् गोत्रों से ही होता रहा। जैसे गौतम लोग प्रथम से ही बनारस में टिके थे और वहीं रह गये। इसलिये वे लोग गौतम ही कहलाते रह गये। परन्तु जो लोग उनमें से ही छपरा के किसी बड़रमी या बड़रम स्थान से भाग गये वे बड़रमियां कहलाये और कहलाते हैं और उन्हीं गौतमों में से जो प्रथम आजमगढ़ के करमा स्थान में रहते थे, जहाँ अब उनके स्थान में बरुवार ब्राह्मण किसी कारण से रहते हैं और वे लोग वहाँ से चले आकर देवगांव के पास १० या १२ गांवों में बस गये वे करमा डीह के कारण करमाई कहलाये। परन्तु वे लोग सरयूपारी ब्राह्मण गौतम गोत्री पिपरा के मिश्र ही हैं, जैसा प्रथम ही कह चुके हैं। इसी प्रकार भृगुवंश भी आजमगढ़ में प्रथम से ही थे और वहीं रह गये। इससे वही नाम रहा। परन्तु जो उनके रहने के तप्पे (परगने या इलाके) कोठा से भागकर बस्ती के कोठिया आदि स्थान में चले गये, वे उसी तप्पे के नाम से 'कोठहा' पुकारे जाते हैं। इसी तरह गाजीपुर के जहूराबाद परगने में पुराने समय से ही रह जाने के कारण वे लोग कौशिक ही कहलाते रह गये। परन्तु छपरा के नेकती नामक स्थान से भागकर मुजफ्फरपुर और दरभङ्गा में जाने वाले कौशिक नेकतीवार कहलाते हैं। इसी तरह के भारद्वाजों और आजमगढ़ आदि के गर्गों को भी समझना चाहिये।

अब दोनवार आदि शब्दों के अर्थ सुनिये। वास्तव में दोनवार ब्राह्मण कान्यकुब्ज ब्राह्मण, वत्स गोत्र वाले देकुली या देवकली के पांडे हैं। यह बात दोनवारों के मुख्य स्थान नरहन, नामगढ़, विभूतपुर और गंगापुर आदि दरभङ्गा जिले के निवासी दोनवार ब्राह्मणों के पास अब तक विद्यमान वृहत् वंशावली में स्पष्ट लिखी हुई है। वहां यह लिखा हुआ है कि देवकली के पांडे वत्सगोत्री दो ब्राह्मण, जिनमें से एक का नाम इस समय याद नहीं, मुगल बादशाहों के समय में किसी फौजी अधिकार पर नियुक्त होकर दिल्ली से मगध और तिरहुत की रक्षा के लिये आये और पटना-दानापुर के किले में रहे। इसी जगह वे लोग रह गये और उन्हें बादशाही प्रतिष्ठा और पेन्शन वगैरह भी मिली। उनमें एक के कोई सन्तान न थी। परन्तु दूसरे भाई समुद्र पांडे के दो पुत्र थे। एक का नाम साधोराम पांडे और दूसरे का माधव राम पांडे था। जिनमें साधोराम पांडे के वंशज दरभङ्गा प्रांत के सरैसा परगने में विशेष रूप से पाये जाते हैं, यों तो इधर-उधर भी किसी कारण वश दरभङ्गा जिले भर और बाहर भी फैले हुए हैं। बल्कि दरभङ्गा के हिसार ग्राम में (जनकपुर के पास) अब तक दोनवार ब्राह्मण पांडे ही कहलाते हैं। माधवराम पांडे के वंशज मगध के इकिल परगने में भरे हुये पाये जाते हैं। साधोराम पांडे के पुत्र राजा अभिराम और उनके राय गंगाराम हुए; जिन्होंने अपने नाम से

गंगापुर बसाया। वे बड़े वीर थे। उनके दो विवाह थे, और दोनों मैथिल कन्याओं से थे। एक स्त्री श्रीमती भागरानी चाक स्थान के राजासिंह मैथिल की और दूसरी मुक्तारानी ...नोरा स्थान के पं० गोपीठाकुर मैथिल की पुत्री थी। एक से तीन और दूसरी से छह, इस प्रकार राय गंगाराम के ९ पुत्र हुए। जिन्होंने नरहन, रामगढ़, विभूतपुर और गंगापुर आदि ९ स्थानों में अपने-अपने राज्य उसी प्रान्त में जमाये। उन्हीं में से पीछे कोई पुरुष, जिनका नाम विदित नहीं है, आजमगढ़ जिले के रैनी स्थान में मऊ से पश्चिम टोंस नदी के पास आ बसे, जिनके वंशज वहां १२ कोस में विस्तृत हैं। फिर वहां से दो आदमी आकर जमानियां परगना, जिला गाजीपुर में बसे और पीछे बहुत गावों में फैल गये। इनमें से ही कुछ बनारस प्रान्त से मद्धूपुर आदि स्थानों में भी आ बसे और इसी तरह दो-दो, एक-एक ग्राम या घर बहुत जगह फैल गये। रैनी स्थान से ही जो लोग बलिया के पास जीराबस्ती आदि तीन या चार ग्रामों में बसे हुए हैं, वे किसी कारणवश पाण्डे न कहे जाकर तिवारी कहलाने लगे, जो अब तक तिवारी ही कहे जाते हैं। जैसे पं० नगीना तिवारी इत्यादि। इस प्रकार साधोराम पांडे के वंशजों की वृद्धि बहुत हुई। परन्तु माधवराम पाण्डे के वंशज केवल मगध में ही पाये जाते हैं। तथापि उनकी संख्या वहां कम नहीं है। दिघवारा (छपरा) के पास बर्भनगांव तथा ऐसे ही दो एक और स्थानों के भी दोनवार लोग अब तक पाण्डे ही कहलाते हैं। जब कि दोनवार नाम के ब्राह्मण बिहार और संयुक्त प्रान्त में भरे हुए हैं और क्षत्रिय दोनवार केववा कुछ ही ग्रामों में पाये जाते हैं। तो इससे निस्संशय यही बात सिद्ध है कि उन क्षत्रियों के विषय में वही बात हो सकती है जो अभी कही जा चुकी है।

अयाचक ब्राह्मणों के दोनवार नाम पड़ने में तीन बातें हो सकती हैं। पहली बात तो यह है कि इनके मूल पुरुष दिल्ली से आये और वह गुरु द्रोणाचार्य का निवास स्थान था, बल्कि उत्तर पाञ्चाल के राजा भी **वहीं थे। इसीलिये वहां** दिल्ली प्रांत के समीप ही गुरुगांव जिला भी है, जिसका भाव यह है कि द्रोणाचार्य गुरु उस स्थानीय गांव में रहते थे, जिससे वह गुरुगांव कहलाता है। परन्तु संभव है कि वही या वहां कोई स्थान द्रोणाचार्य के भी नाम से प्रथम पुकारा जाता रहा हो और वहीं से आने से ये ब्राह्मण लोग उसी डीह से कहे जाने लगे। जिससे इनका नाम द्रोणवार हो गया। जिसका अर्थ यह है कि द्रोण (द्रोणाचार्य) के स्थान में प्रथम के रहने वाले।

दूसरा अनुमान इस विषय में इससे अच्छा और विश्वसनीय यह है कि 'द्रोण' शब्द संस्कृत में देशान्तर (अन्यदेश और विदेश) का वाचक है। जैसा मेदिनी कोश में लिखा है कि **'द्रोणःस्यात्रीवृदन्तरे'** अर्थात् 'द्रोण शब्द देशान्तर का भी वाचक है।' और जब मिथिला देश में काशी देश वाले और पश्चिम के रहने वाले ब्राह्मण यवन समय में गये, तो उन्होंने (मिथिला वासियों ने) अपने और अन्य देशीय ब्राह्मणों को अलग-अलग रखने अथवा पहचान के लिये अपने को तिरहुतिया या मैथिल कहना प्रारम्भ किया और नये आये हुओं को पश्चिमा जिनमें से तिरहुतिया का अर्थ 'तिरहुत देश में रहने वाला' और 'पश्चिमा' का अर्थ पश्चिम देश में रहने वाला' है परन्तु जब तक विशेष रूप से अन्य देशीय ब्राह्मण वहां न गये थे। किन्तु साधोराम पांडे या उनके वंशज ही उन देशों में आये, तो उन मिथिला वासियों ने उन्हें द्रोणवार कहना प्रारम्भ किया, जिसका अर्थ यह है कि ये लोग इस देश (मिथिला) के प्राचीन निवासी नहीं है, किन्तु अन्य देश के। वही व्यवहार मगध में भी चल पड़ा। क्योंकि यह बात प्रथम ही सिद्ध कर चुके है कि मगध और मिथिला के व्यवहार वगैरह प्रायः एक से ही

हैं। परन्तु जब और भी ब्राह्मण मिथिला देश में पश्चिम से आये और द्रोणवार कहने से यह सन्देह भी होने लगा कि आया ये लोग पश्चिम से आये हैं या पूर्व देश से, क्योंकि देशान्तर तो दोनो हैं, और इस सन्देह से विवाह आदि करने में गड़बड़ होने की सम्भावना हुई। क्योंकि धर्म शास्त्रानुसार बंग आदि पूर्व देशों को निषिद्ध समझ लोग उनसे व्यवहार करना घृणित समझते थे। तो प्रथम जिन्हें द्रोणवार कहते थे, उन्हें तथा अन्य नये आये हुए पश्चिम देश के ब्राह्मणों को भी पश्चिमा कहने लगे। परन्तु प्रथम से प्रचलित द्रोणवार शब्द भी रह गया और मिथिला वगैरह देशों में आजकल पश्चिमा और द्रोणवार इन दोनों शब्दों का प्रयोग होता है। पश्चिमा शब्द पश्चिमीय का अपभ्रंश है।

सबसे विश्वसनीय और तीसरा अनुमान इस विषय में यह है कि मगध और मिथिला इन दोनों स्थानों के दोनवारों के मूल पुरुष सबसे प्रथम आकर पटना-दानापुर के बादशाही किले में ठहरे और वहीं से दोनों प्रदेशों में फैले और वह दीना या दानापुर स्थान अति प्रसिद्ध भी था। और साथ ही यह दिखला चुके हैं कि ब्राह्मणों में अपने डीहों के कहने की रीति थी और विशेष रूप से यह भी देखा जाता है कि अधिकतर अपने पुराने डीह से बहुत दूर वे लोग नहीं पाये जाते हैं, जैसा किनवार, सकरवार, बेमुआर, तटिहा आदि के विषय में दिखलावेंगे। इसलिये साधोराम पाण्डे और माधवराम पांडे के वंशजों ने भी उसी दीना या दानापुर डीह के नाम से अपने को दीनावार या दानावार प्रकाशित किया जो समय पाकर बिगड़ते-बिगड़ते दनवार होकर आजकल **दोनवार हो रहा है, जिसका अर्थ यह है कि पहले दानापुर के रहने वाले ब्राह्मण। यही दोनवार शब्द का संक्षिप्त विवरण है जो डीह को बतलाता है।**

अब 'किनवार' शब्द का विवरण सुनिये। किनवार ब्राह्मण भी कान्यकुब्ज ब्राह्मण काश्यप गोत्री, क्यूना के दीक्षित हैं। इसीलिये इनके विषय में किसी का मत है कि, ये लोग काशी के पास विशेष कर गाजीपुर में क्यूना से आये, इसीलिये उसी डीह के नाम से क्यूनवार कहलाने लगे और वही शब्द बिगड़कर किनवार हो गया। परन्तु गाजीपुर जिले में ही इन लोगों के निवास स्थान के पास कुण्डसेर ग्राम के पूर्व और वीरपुर, नारायणपुर से पश्चिम-उत्तर प्रथम ओकिनी नाम की नदी बहती थी, जो अब एकबारगी मिट्टी से पट गई है, केवल उसका थोड़ा सा चिह्न रह गया है और कुण्डेसर से नारायणपुर को जानेवाली पक्की सड़क के पश्चिम ही उसी ओकिनी के तट पर अब तक किनवार लोगों का पुराना डीह ऊँचा सा पड़ा है। इसीलिये उसी ओकिनी के डीह पर रहने से ये लोग ओकिनीवार कहलाते-कहलाते अब ओ शब्द के काल पाकर छूट जाने से किनवार कहलाने लगे।

यद्यपि किनवार ब्राह्मणों की वंशावली में यह लिखा हुआ है कि ये लोग कर्नाटक-पदुमपुर से आये और उस पदुमपुर के विषय में लोगों ने अन्दाज से बहुत कुछ बक डाला है। फिर भी ठीक पता वे न लगा सके और यद्यपि वह पदुमपुर कर्नाटक देश और केरल देश की सरहद पर केरल देश का एक खण्ड है, इस बात को अभी प्रमाणित करेंगे, तथापि किनवार ब्राह्मण प्रथम के कान्यकुब्ज ब्राह्मण ही हैं, न कि केरल देशीय ब्राह्मण। यह बात इनकी प्राचीन वीरता और व्यवहार आचारों से सिद्ध है। यद्यपि कर्नाटक-पदमपुर से ये लोग आये, इस विषय में कुछ विशेष प्रमाण या कारण नहीं मिलता। क्योंकि दक्षिण में ऐसी भगेड़ न थी जैसी कन्नौज वगैरह देशों में थी । इसीलिये इन देशों में दक्षिण देश के ब्राह्मण प्रायः नहीं पाये जाते। तथापि यदि वहां से ही किनवार ब्राह्मणों का आना मान भी

लेवें तो भी ये लोग वहां भी कान्यकुब्ज देश से ही गये थे और फिर किसी कारण वश हटकर इसी देश में चले आये। कान्यकुब्ज देश से केरल देश या उसके पदुमपुर स्थान में ब्राह्मणों के जाने और वहां से आने की बात 'केरल उत्पत्ति' नामक ग्रन्थ में लिखी हुई है। यह ग्रन्थ मालाबारी भाषा में लिखा गया था और पीछे उसका अनुवाद फारसी में हुआ था, जिसे मिस्टर जोनाथन डनकन' ((Jonathan Duncan) ने १७९३ ई० में अंग्रेजी में अनुवादित किया। ये सब पूर्वोक्त बातें एसियाटिक रिसर्चेज (Asiatic Researches) नामक अंग्रेजी पुस्तक में लिखी गई हैं, जो सन् १८०१ में छपी थी। उस ग्रन्थ के ५६वें पृष्ठ में मालाबार देश के प्राचीन विवरण को लिखते हुए उसी सम्बन्ध में ये बातें लिखी गई हैं। उस ग्रन्थ का कुछ अंश नीचे उद्धृत किया जाता है, जिससे पूर्वोक्त बातों का थोड़ा सा पता लग जावेगा–

In the book called Kerul-oodpuppee or the emerging of tbe country of Kerul (of which during my stay at Calicut in the year 1793, I made the best translation into English in my power, through the medium of a version first rendered into Persian, under my own inspection from the Malabarie copy procured from one of the Rajahs of the Zamorin's family), the origin of that coast is ascribed to the piety or penitence or Purcsuram or Purseram (one of the incarnations of Vishnu), who stung with remorse for the blood he had so profusely shed in overcoming the Rajahs of the Kshatery tribe, applied to Varuna, the God of the ocean, to supply him with a tract of ground to bestow on the Brahmans; and Varuna accordingly having withdrawn his waters from the Gowkern (a hill in the vicinity of Mangalore) to Cape Comorin, this trip of territory has, from its situation, as lying along the foot of the Sukhien (by the Europeans called the Ghaut) range of mountains, acquired the name of Mulyalum (i. e, skirting at the bottom of the hills), a term that may have been shortened into Maliyam or Maleam, whence are also probably its common names of Muliever and Malabar; all of which Purseram is firmly-believed, by its native Hindus inhabitants, to have parcelled out among different tribes of Brabmans, and to have directed that the entire produce of the soil should be appropriated to their maintenance and towards the edifications of temples, and for the supports of divine worship; whence it still continues to be distinguished in their writings by term of Kerm-bhoomy or 'the Land of good works for the expiation of sin. The country thus obtained from the ocean, is represented to have remained long in a marshy and scarcely habitable state; in so much, that the first occupants, whom Purseram is said to have brought into it from the eastern and even the northern part of India, again abandoned, and it, being more especially scared by the multitude of serpents with which the mud has then abounded, and to which numerous accidents are ascribed. Until Purseram

taught the inhabitants to propitate these animals, by introducing the worship of them, and of their images, which became from that period objects of adoration.

In Manuscript account of Malabar that I have seen, and which is ascribed to a Biship of Virpoli, (the seat of a famous Roman Catholic seminary near Cochin), he observes, that by the accounts of the learned natives of the Coast, it is little more than 2300 years since the sea came up to the foot of Sukhien or Ghaut mountains ; and that once did so he thinks extremely probable from the nature of, and the quantity of land, oyster-shells and other fragments, met with in making deep excavations.

The country of Malyalum was according to Kerul odpupttee, afterwards divided into the following. Tookrees or divisions.

1st. from Gowkern, already mentioned, to the Perumbura river, was called the Tooroo or Tnuru Rauje.

2nd. from the Perumbura to Poodumputtum, was called the Moshek Rauje.

3rd. from Poodum or Poodumputtum, to the limits of Kunety was called the Kerul or Keril Rauje and as the principal seat of the ancient government was fixed in this middle division of Malabar. Its name prevailed over and was in course of time understood in a general sense to comprehend the three others.

4th. from Kunety to Kunea Koomary, or Cape Comorin was called the Koop Rauje.

However this may be, according to the book above quoted, the Brahmans appear to have first set up and for some time maintained, a fort of republican or aristocratical government, under two or three principal chiefs, elected to administer the government, which was thus carried on, till, on jealousies arising among themselves, the great body of the Brahman land holders had recourse to foreign assistance, which terminated, either by conquest or convention in their regime to rule over them a Permal or Chei Governor from the Prince of the neighbouring country of Choldesh (a part of the Southern Cornatic), this succession of viceroys was changed and relieved every twelve years till at length one of those officers named Sheoram, or Shermanoo Permaloo, and by others called Cheruma Perumal appears to have rendered himself so popular during his government, that at expiration of its term he was enabled, by the encouragement of those over whom his delegated sway had extended, to confirm his own authority, and to

set at defience that of his late sovereign, the Prince of the Choldesh, who is known in their book by the name of Rajah Kishan Rao, and who having sent an army to Malabar with a view to recover his authority, is stated to have been successfully withstood by Shermanoo and the Malabarians; an event which is supposed to have happened about 1000 years anterior to the present period, and is otherwise worthy of notice.

इसका भावार्थ यह है कि 'केरल-उत्पत्ति' नामक पुस्तक में (जिसका १७९३ ई में कालीकट में अपने रहने के समय मैंने यथाशक्ति अंग्रेजी में उत्तम अनुवाद उसके फारसी में अनुवादित उस ग्रन्थ से किया जो प्रथम मालाबारी भाषा की पुस्तक से मेरे सामने लिखा गया था, और जो मालाबारी भाषा की पुस्तक (जमोरिन वंशज एक राजा के यहाँ मिली थी) मालाबार किनारे की उत्पत्ति परशुराम (जो विष्णु के अवतारों में से थे) के उस प्रायश्चित्त के कारण बताई गई है, जो उन्होंने क्षत्रिय राजाओं के नाश के लिये खून बहाने के शोक से किया था और जिसके लिये समुद्रपति (देवता) वरुण से यह प्रार्थना की कि उन्हें वे थोड़ी-सी भूमि ब्राह्मणों को दान करने के लिये देवें। तदनुसार वरुण देव ने मंगलोर के समीपवर्ती गोकर्ण पर्वत से कुमारी अन्तरीप तक का जल हटा लिया। और इस प्रकार वह भूखण्ड सुखेन (घाट) पर्वत के मूल में रहने से मूल्यलम कहलाया, जिसका अर्थ यह होता है कि 'पर्वत की जड़ में निकला हुआ' और सम्भव है कि यही शब्द संक्षिप्त होकर 'मलियम' हो गया हो और इसी से सम्भवतः इसके साधारण नाम मलेवार और मालावार पड़े हों। इसके निवासी हिन्दुओं का यह दृढ़ विश्वास है कि इस सम्पूर्ण भू-भाग को परशुराम जी ने वहाँ की भिन्न-भिन्न ब्राह्मण जातियों में विभक्त कर दिया था और उनको यह शिक्षा दी थी कि इस भूमि की सम्पूर्ण पैदावार को वे लोग अपने पालन, मन्दिरों की मरम्मत और देवपूजाओं में खर्च किया करें। इसलिये उसी समय से इस भूमि को वे लोग अपने कागजों में 'कर्मभूमि' (अर्थात् पाप के प्रायश्चित के लिये सत्कार्य करने की भूमि) लिखने लगे और अब तक वैसा ही करते हैं। इस प्रकार जो देश समुद्र से मिला वह बहुत दिनों तक दलदल से पूर्ण था, जिसमें लोग कठिनता से निवास कर सकते थे। उसकी ऐसी दशा थी कि जिन प्रथम के ब्राह्मणों को परशुरामजी ने वहां भारतवर्ष के उत्तर और पूर्व भाग से लाकर बसाया था, उन लोगों ने फिर उसे छोड़ दिया। क्योंकि उस समय उसके कीचड़ में रहने वाले बहुत से सर्पों से उन्हें बहुत भय हुआ और बहुत से ब्राह्मण उनसे मर भी गये। जब तक फिर परशुराम ने वहां के निवासियों को उन सर्पों और उनकी मूर्तियों की पूजा द्वारा उन्हें प्रसन्न करने की शिक्षा न दी तब तक यह बात रही और वह पूजा उस समय से होने लगी। मालाबार के एक प्राचीन लेख में, जिसे मैंने देखा है और जो विरपोली (कोचीन के निकट रोमन कैथलिक पाठशाला की जगह) के कारण बिशप (पादरी) के पास था, यह लिखा हुआ, बतलाया जाता है कि पढ़े लिखे मालाबारियों के कथन से कुछ अधिक २३०० वर्षों से समुद्र घाट के पहाड़ों की जड़ में नहीं आया है और यह बात वहां की भूमि के विस्तार और उनै सीप या घोंघे वगैरह के देखने से बिलकुल ही सत्य प्रतीत होती है, जो खोदने से भूगर्भ में पाये जाते हैं। 'केरल उत्पत्ति' पुस्तक के अनुसार मलायालम (मालाबार) देश पीछे चार भागों या टुकड़ों में विभक्त किया गया। जिनमें से प्रथम भाग, जो गोकर्ण से परम्बरा नदी तक था, 'तूरू' राज्य कहलाया।

दूसरा जो परम्बरा नदी से पदमपुत्तम (पदमपुर) तक था, 'मशक' राज्य कहलाया। तीसरा, जो पदम या पदमपुत्तम से कुनटी की सीमा तक था 'केरल' राज्य कहलाया। और चूँकि पुरानी राजधानी मालावार के इसी मध्य भाग में थी इसलिये इसी का नाम चारो ओर फैल गया और कुछ दिन बाद लोग शेष तीन खण्डों के सहित सबको सामान्यतः 'केरल' ही समझने लगे। और चौथा भाग, जो कुनटी से कुमारी अन्तरीप तक था 'कूप' राज्य कहलाता था।

अस्तु, जो कुछ भी हो। पूर्वोक्त पुस्तक (केरल उत्पत्ति) के अनुसार पहले पहल ब्राह्मणों ने राज्य-प्रबन्ध के लिये चुने गये दो या तीन सरदारों के अधीन प्रजा- सत्ताक राज्य-प्रबन्ध चलाया और उस दिन तक उसे कायम रखा जब परस्पर द्वेष के कारण अधिकांश जमींदार ब्राह्मण अन्य देशीयों से सहायता की बातचीत करने लगे और उसकी समाप्ति विजय या परस्पर सुलह से हो गई। जिसमें उन लोगों के ऊपर शासन करने के लिये एक चीफ गवर्नर पड़ोस के चोल देश (कर्नाटक के दक्षिण भाग) के शाहजादे की तरफ से नियत किया गया। इन वाइसरायों (चीफ गवर्नरों) की तबदीली हरबारहवें बरस होती हुई उस समय तक चली गई जब उन्हीं अफसरों में एक ने, जिसका नाम शिवराम या शरमनू परमलू था, अपने को उन ब्राह्मणों की दृष्टि में अपने प्रबन्ध काल में ही ऐसा प्रेमपात्र बनाया कि जब उसके शासन काल का अन्त आया तो, जिनके ऊपर वह राज्य करता था उनकी सहायता से अपने अधिकार को दृढ़ बनाने में समर्थ हुआ और चोल देश के राजा के अधिकार को हटा दिया। उस राजा का नाम किशनराव था। उस राजा ने अपने अधिकार को फिर प्राप्त करने के लिये फौज भेजी। परन्तु कहा जाता है कि शरमून और मालाबारियों ने उसे हरा दिया। यह बात आज (१७९३) से लगभग १००० वर्ष पूर्व हुई और और ध्यान देने योग्य है।'

इस पूर्वोक्त कथन से स्पष्ट है कि कर्नाटक से मिला हुआ और उसकी सीमा पर ही पदमपुर स्थित है। इसी से किनवार ब्राह्मणों की वंशावली ने उसे पदमपुर कर्नाटक लिखा है। यह भी स्पष्ट है कि वहां जो ब्राह्मण लाये जाकर उस देश के राजा या जमींदार बनाये गये वे उत्तर पूर्व भारत अर्थात् कान्यकुब्ज देश से ही लाये गये। यह बात सत्य भी है, क्योंकि कान्यकुब्ज देश में बहुत प्राचीन काल से ही ब्राह्मणों का निवास चला आता हैं। इसीलिये इन किनवार ब्राह्मणों का वहां से आना मान भी लिया जावे तो भी ये लोग वास्तव में कान्यकुब्ज ही हैं। और यदि पदमपुर से आए भी होंगे तो, या तो जैसा ऊपर लिखा है कि सर्पों के भय से बहुत से ब्राह्मण लोग भाग गये, उसके अनुसार लगभग २३०० वर्षों से ही वहाँ से आये। अथवा जो युद्ध आज से ११०० वर्ष पूर्व कर्नाटक देश के राजा और मालाबारियों एवं शिवराम के बीच हुआ था उसमें ही हट कर चले आए। क्योंकि शिवराम या उन लोगों की विजय हुयी सही, तथापि एक राजा के विरुद्ध लड़ने से उनको बहुत कष्ट भोगना पड़ा और बहुत ह्रास हो गया। जिससे शिवराम (जिसके लिये युद्ध ठाना गया था) भी दुःखी होकर युद्ध के बाद कहीं अन्यत्र चला गया। यह बात आगे चल कर उसी 'केरल उत्पति' में लिखी गई है। और चूंकि वे लोग इसी देश से गये थे, अतः फिर यहीं चले आये। युद्ध के समय का आना ही विशेष विश्वसनीय हो सकता है, क्योंकि उन दिनों सभी देशों में गड़बड़ मच रही थी और लोग इधर-उधर भाग रहे थे। जो कुछ भी हो, चाहे किनवार ब्राह्मण पदुमपुर से आये अथवा कन्नौज से ही, परन्तु ये लोग कान्यकुब्ज ब्राह्मण, दीक्षित और काश्यप गोत्री हैं और इस समय भूमिहार ब्राह्मण कहे जाते हैं।

किनवार क्षत्रियों का जो केवल बलिया के छत्ता और सहतवार आदि गाँवों में पाये जाते हैं, विवरण प्रथम ही सुना चुके हैं और जहाँ किनवार ब्राह्मण गाजीपुर के मुहम्मदाबाद परगने में भरे पड़े हुए हैं और वीरपुर, नारायणपुर, कुण्डेसर, भरौली, विश्म्भरपुर, परसा, लट्टूडीह, गोंड़उर और करीमुद्दीनपुर आदि उनके बड़े-बड़े ग्राम हैं। वहाँ उनसे पृथक दो या चार गाँवों में रहने वाले क्षत्रियों की बात वही हो सकती है जैसी कही जा चुकी है, और वही बात सन् १८८०-८५ ई० के गाजीपुर की सेट्लमेंट रिपोर्ट में उस समय के कलक्टर विलियम इरविन (William Irvine) ने यों लिखी है–

Amog Dichhit had three sons, Kulkal Rai, Baijal Rai and Mahipal Rai. As they thought that they could not perform all the religious ceremonies required, they began to call themselves Rai, Kulkal Rai, without the consent of his brothers, married the daughter of a chhatri in Pargana Pachotor and therefore he was excluded from his caste of Brahman; but the two brothers, having taken pity on him, gave him some propery and the village Chhata in the Ballia district; as is recorded in the following verse—

Bijal o mahipal bhum adha kar lin;

Jeth putra Kulkal tahiko chhata din. Page 33.

इसका मर्मानुवाद यह है कि 'किनवारों के पूर्वज अमोघ दीक्षित के कलकल राय, बैजल राय और महीपाल राय तीन पुत्र थे। उन्होंने समझा था कि हम लोग पुरोहिती आदि नहीं करवा सकते हैं, इसलिये अपने को दीक्षित की जगह राय कहने लगे। कलकल राय ने बिना अपने भाइयों की सम्मति के ही पचोतर परगने के किसी क्षत्रिय की पुत्री से ब्याह कर लिया, इसलिये वे अपनी ब्राह्मण जाति से च्युत कर दिये गये। परन्तु दोनों छोटे भाइयों ने उनके ऊपर दया करके कुछ धन और बलिया जिले का छाता गाँव उन्हें दे दिया। जैसी कहावत है कि ''बैजल और महिपाल भुइं आधा करि लीन। जेठ पुत्र कलकल, ताहि को छाता दीन।' किनवारों के पुरोहित जो नगवां पांडे कहलाते हैं, काश्यप गोत्री ही हैं और उन लोगों में यह प्रसिद्ध है एवं उनकी वंशावलियों में भी लिखा है कि वे और किनवार दोनों भाई हैं। एक भाई का वंश यजमान हुआ और दूसरे का पुरोहित।

अब सकरवार नाम वाले अयाचक दलीय ब्राह्मणों का विवरण सुनिये। ये ब्राह्मण भी कान्यकुब्ज ब्राह्मण सांकृत गोत्रवाले फतूहाबाद के मिश्र हैं। जो अन्य ब्राह्मणों की तरह यवन राज्यकाल में वहाँ से इस देश में चले आये जैसा प्रथम दिखलाया जा चुका है। फतूहाबाद फतहपुर जिले में एक स्थान है। वहाँ से आकर इनके पूर्वज प्रथम रेवतीपुर, गहमर और करहिया ग्रामों (जो गाजीपुर के जमानियाँ परगने में हैं) के बीच में रहने वाले सकरा नामक स्थान में बसे। जो अब भी नाम के लिये डीह के रूप में ऊँचा स्थान पड़ा हुआ है और वहाँ मकान वगैरह कुछ भी नहीं रह गये हैं। परन्तु लोग उसे 'सकराडीह' अब तक पुकारते ही हैं। फिर वहाँ से बहुत विस्तार होने या और अनुकूलताओं एवं प्रतिकूलताओं के कारण वे लोग हटकर रेवतीपुर, शेरपुर, सुहवल तथा आरा जिले के सैकड़ों गाँवों में जा बसे और उस जिले का सरगहा परगना और जमानियाँ परगने का बहुत सा भाग अब छेंके हुए हैं बल्कि मुहम्मदाबाद परगने (गाजीपुर) में भी शेरपुर, रामपुर, हरिहरपुर आदि गाँवों में रहते हैं। अन्त में सकराडीह से हटकर चारों ओर बसे। इसीलिये सकरा में रहने के समय अपना पूर्व स्थान फतहपुर ही बतलाते थे। परन्तु जब वहाँ से भी हटे तो सकरा ही पूर्व स्थान बतलाने लगे। लेकिन पूर्व का फतूहाबाद या फतहपुर नहीं छूटा, इसलिये सकरवार कहलाने पर भी पूछने पर यही कहते थे कि फतहपुर सकरा से आये हैं, क्योंकि फतहपुर के साथ सकरा भी जुट गया। काल पाकर सकरा की जगह सकरी और सिकरी भी कहलाने लगा और फतहपुर प्रथम का था ही। बस लोग भूल से समझने लगे कि हम लोग फतहपुर सिकरी से आये हैं, जो आगरे के पास है। इस भ्रम या भूल में विशेष सहायता सिकरीवार राजपूतों के (जो आगरे के पास और अन्य जिलों में तथा ग्वालियर में विशेष रूप से पाये जाते हैं) वञ्चक भाटों ने की। क्योंकि उन्होंने सिकरीवार और सकरवार को एक ही समझ लिया और रुपया ठगने के लालच से सकरवार ब्राह्मणों का फतहपुर सिकरी से ही आना बतलाया। परन्तु असल बात तो यही है कि फतहपुर जिले से आकर सकरा में रहे, इसलिये फतहपुर सकरा ही उनके डीह कहे जा सकते हैं। इसमें प्रबल प्रमाण यह है कि सकरवार और सिकरीवार इन नामों के भेद के साथ-साथ गोत्रों में भी भेद है। अर्थात् सिकरीवार राजपूतों का जो आगरे की तरफ पाये जाते हैं शाडिल्य गोत्र है ऐसा अन्वेषण करने से पता लगा है । और इस बात को स्वीकार करते हुए मिस्टर शेरिंग ने भी अपनी जाति विषयक अंग्रेजी पुस्तक (जिसका हाल प्रथम कह चुके हैं) के प्रथम खण्ड के १८९ पृष्ठ में सकरवारों के वर्णन प्रसंग में सिकरी वार क्षत्रियों का शाण्डिल्य गोत्र ही लिखा है। जैसा "They are of Sandil gotra of order. परन्तु सकरवार ब्राह्मणों का तो सांकृत गोत्र प्रसिद्ध ही है।

इससे निःसंशय ही सकरवार ब्राह्मणों को फतेहपुर सकरा से आने के बदले फतेहपुर सिकरी से आना बतलाने वाले सभी ठग हैं।

इन सकरवार नामधारी ब्राह्मणों का प्रसिद्ध सांकृत गोत्र ही उस किम्वदन्ती को मिथ्या सिद्ध कर रहा है जो मुर्खतावश जोड़ी गई है और जिसको बहुत से अंग्रेजों ने भी लिख दिया है कि 'गाजीपुर के प्राचीन राजा गाधि के चार पुत्र अचल, विचल, सारंग और रोहित थे, जिनके ही वंशज रेवतीपुर, सुहवल और सरंगहा परगना आदि स्थानों के सकरवार हैं' इत्यादि । क्योंकि यदि ये लोग गाधि के वंशज होते, तो इनका गोत्र कौशिक होता, जैसा गाधि और उनके पुत्र विश्वामित्र आदि का माना जाता है । इससे ये सब कल्पनायें निर्मूल और अश्रद्धेय हैं इससे इन्हीं के आधार पर करहिया और गहमर के सकरवार क्षत्रियों और सकरवार ब्राह्मणों को एक सिद्ध करने का साहस करना नितान्त भूल है। जब कि वे लोग दो एक गांवों में ही रहते हैं, परन्तु सकरवार ब्राह्मण तो सुहवल, रेवतीपुर, रामपुर और शेरपुर एवं सरंगहा आदि में भरे पड़े हैं। अतः इन सकरवार राजपूतों के विषय में वही बात विश्वसनीय है जिसका कथन प्रथम ही कर चुके और जो दोनवार और किनवार क्षत्रियों के विषय में भी कही जा चुकी है।

यद्यपि कोई-कोई ऐसा कहने का साहस कर सकते हैं कि जो सिकरीवार राजपूत पश्चिम में पाये जाते हैं उन्हीं की एक शाखा ये सकरवार राजपूत भी हैं और सिकरीवार शब्द ही बिगड़ते-बिगड़ते सकरवार हो गया है। तथापि यह उनका प्रयत्न व्यर्थ ही है, क्योंकि ऐसी बात होती तो सिकरीवार और सकरवार इन दोनो राजपूतों के गोत्र एक ही होते। परन्तु वे लोग (सिकरीवार) शाण्डिल्य गोत्र वाले और ये गहमर, करहिया वाले सकरवार राजपूत सांकृत गोत्र वाले ही हैं । ये लोग गाधि राजा के भी वंशज नहीं हैं, क्योंकि ऐसी दशा में इनका गोत्र कौशिक होना चाहिये। इसलिये इन राजपूतों की व्यवस्था वही है

जो कही जा चुकी है। यदि इन सकरवार क्षत्रियों जो गाधि वंशजों या सिकरीवार क्षत्रियों से ही मिलाने का कोई यत्न करे तो अच्छा है, वे लोग उधर ही जा मिलें। इससे भी सकरवार ब्राह्मणों का कोई हर्ज नहीं है। ये लोग तो कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं ही। जैसे अयाचक ब्राह्मणों और राजपूतों में सकरवार नाम वाले पाये जाते हैं, वैसे ही मैथिल ब्राह्मणों में भी सकरीवार या सकरवार नाम वाले ब्राह्मण पाये जाते हैं। यह नाम उन लोगों के प्रथम सकरी स्थान में रहने से है, जो दरभङ्गा शहर से उत्तर पूर्व में स्थित है और बंगाल नार्थवेस्टर्न रेलवे की मधुवनी और झंझारपुर वाली लाइनों का जंक्शन है। इस कथन का यहां तात्पर्य यह है कि एक ही नाम वाले एक या भिन्न-भिन्न स्थानों में रहने से अनेक जातियों के लोग एक ही नाम वाले हो सकते हैं। परन्तु इससे उनके एक जाति सम्बन्धी होने का संशय नहीं किया जा सकता। अतः निर्विवाद सिद्ध है कि ब्राह्मणों का सकरवार भी नाम प्रथम सकराडीह के निवास से पड़ा है।

अब आजमगढ़ के सगरी परगने के १४ कोस में विस्तृत बरुवार नामक ब्राह्मणों का विवरण संक्षेपतः लिखा जाता है। बरुवार ब्राह्मण भी कान्यकुब्ज ब्राह्मण बरुवा के तिवारी काश्यप गोत्री हैं। यह बरुवा स्थान कान्यकुब्ज देश में है। और प्रायः इसी से आने से ये लोग बरुवावार कहलाते कहलाते अब बरुवार कहलाते हैं यद्यपि ये लोग पूछने से केवल इतना बतलाते हैं कि हमारे पूर्वज पश्चिम कन्नौज की ओर से आये और हमलोग का गोत्र काश्यप है। परन्तु वही बरुवार नाम और काश्यप गोत्र इस बात का पता देता है कि ये लोग कन्नौज देश के बरुवा स्थान के रहने वाले थे और यवनों के समय में वहां आकर देवगांव तहसील के बेला तप्पे के जिहुली स्थान में प्रथम बसे। जिहुली के पास ही बेला नाम का गांव भी है। फिर वहाँ से सगरी परगने में पीछे आकर बसे। बहुत सम्भव और विश्वसनीय है कि जैसे भृगुवंश लोग कोठा तप्पे से कोठहा कहलाते हैं, वैसे ही इनका नाम बेला तप्पे से बेलवार होकर अब बेरुवार या बरुवार हो गया। क्योंकि र और ल अक्षरों का उलट फेर बिलार और बिडाल शब्दों में देखा जाता है। भूमिहार ब्राह्मणों के डीह प्रायः निकट के ही हैं, यह बात भी इस अनुमान में अनुकूल है। अस्तु। अभी कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में बहुत से काश्यप गोत्र वाले बरुवा के तिवारी पाये जाते हैं। यद्यपि बरुवार नाम वाले क्षत्रिय भी आजमगढ़ में बरुवार ब्राह्मणों से हटकर पाये जाते हैं। परन्तु इनकी संख्या थोड़ी सी ही है, जैसी दोनवार, किनवार क्षत्रियों की। इसलिये इन बरुवार क्षत्रियों की भी व्यवस्था वैसी ही है, जैसी कि दोनवार, किनवार या सकरवार क्षत्रियों की बतलाई जा चुकी है। अथा सामान्यतः इनके विषय में भी वैसी ही है जैसा प्रथम ही कह चुके हैं। कुछ बरुवार ब्राह्मण आजमगढ़ के मुहम्मदाबाद परगने के केरमा, भुजही और छठियांव नामक ग्रामों में भी पाये जाते हैं।

बेमुवार नामवाले ब्राह्मणों का संक्षिप्त विवरण जानने के लिये प्रथम यह जानना आवश्यक है कि इन का गोत्र सावर्ण्य है और इन सावर्ण्य गोत्र वाले ब्राह्मणों के तीन छोटे-छोटे दल अब प्रसिद्ध हैं। एक पनचोभै, दूसरे अरापै, तीसरे केवल सावर्ण्य या सावर्णियां कहलाते हैं, अर्थात केवल गोत्र से बोले जाते हैं। और सावर्णियां या सावर्ण्य गोत्र वाले ब्राह्मण प्रायः कान्यकब्जों और सर्यूपारियों में नहीं ही हैं और मैथिलों में भरे पड़े हुए हैं। बल्कि जो इनका एक दल पनचोभै कहलाता है वह मिथिला ही में पाया जाता है और ये लोग बिहार में ही विशेष रूप से पाये जाते हैं। और पटना तथा आरा जिले में इनकी संख्या बहुत है। जहां मिथिला से आये हुए दिघवैत वगैरह भी पाये जाते हैं। इसलिये ये लोग पूर्व के

मैथिल ब्राह्मण ही हैं, ऐसा ही हमारा अनुमान है। इनकी पनचोभै और अरापै अति संज्ञाओं के विषय में बहुत सी गढ़न्त किम्वदन्तियाँ हैं, परन्तु सब निर्मूल हैं, ये लोग बनारस के नरवन परगने के कुछ गाँवों में भी पाये जाते हैं। वास्तव में पटना जिले में जहाँ ये लोग विशेष रूप से हैं, उसके पास ही बिहटा स्टेशन से उत्तर कुछ दूर गंगा के पास इनका पुराना गढ़ अरापा नाम का था, जो अब भग्नावस्था में नाम मात्र के लिये कहने को रह गया है और इनके पूर्वज वहाँ प्रथम रहते थे इसलिये ये लोग अरापै कहलाये। इसी तरह मिथिला, दरभंगा से पश्चिम पनचोभ गाँव में रहने से पनचोभै कहलाये, जो वहाँ ही विशेष रूप से इधर-उधर पाये जाते हैं। तीसरा दल जो केवल गोत्र के नाम से ही पुकारा जाता है वह भी मिथिला में बहुत है। इससे भी स्पष्ट है कि ये लोग मिथिला से ही इन पटना आदि के प्रान्तों में आये। परन्तु जो लोग प्रथम से अरापा गढ़ या पनचोभ गाँव में न रहकर अन्य स्थानों में ही पटना प्रान्त में या अन्यत्र प्रथम से ही रहते हुए पीछे तक रह गये वे केवल सावर्णियां, या सावर्ण्य ही कहलाते रह गये। उन्हीं पटना जिले में रहने वाले सावर्ण्य गोत्री ब्राह्मणों में से कुछ लोग इधर उधर बढ़े। जिनमें से कुछ लोग बनारस की ओर भी चले गये और जैसा [illegible]री का कहना है कि औंव नामक स्थान में बसे। परन्तु जो पटना के समीप बेमूपुर नामक परगने में बसे हुए थे, वे लोग जब वहाँ से हट कर बक्सर के आस-पास आरा जिले में ठहरे तो उसी बेमूपुर से आने के कारण बेमुवार नाम वाले कहलाये।

यह बेमूपुर परगना अकबर के समय में था। क्योंकि आईने अकबरीमें जहाँ अकबर के जिलों और परगनों का वर्णन है, वहाँ पटना के आस-पास में ही बेमूपुर नामक महाल या परगना भी लिखा गया है। सम्भव है कि अब वह नाम न होवे। परन्तु बक्सर के पास आरा जिले से भी, डुमरॉव के राजाओं से बराबर लड़ाई होती रहने के कारण, वे लोग हटकर गंगा के उत्तर तट में नरही इत्यादि गाँवों में, बलिया जिले के गड़हा परगने में अकबर बादशाह के पीछे आ बसे और वहां के प्रथम निवासी क्षत्रिय तथा अन्य जातियों को निकाल दिया। अभी नरही, सुहौंव, दुदुआरी, भरौली तथा उजियार आदि गाँवों में आये हुए उन्हें थोड़े ही दिन हुए। जिसे वे लोग स्वयं कहा करते हैं। और इसी कारण से बलिया के गड़हा परगने में अकबर के समय में राजपूतों की ही जमींदारी लिखी हुई है। यह बात कि ये लोग पटना के पास बेमूपुर से आये, यों भी पुष्ट होती है कि ये लोग भी इतना कहते हैं कि हम लोगों के पूर्वज लोग बेमूपुर--पाटन से आये जो आगरे या इटावे के पास है। परन्तु वहाँ तो इस नाम के किसी भी स्थान का पता नहीं चलता। इसलिये पटना को ही भूल से पाटन कहने लग गये और जैसा सब लोग पश्चिम से ही आना बतलाते हैं, वैसा ही इन लोगों ने भी कहना प्रारम्भ किया, यही अनुमान है। ऐसी भूलें हुआ भी करती हैं जैसा पदमपुर कर्नाटक और फतहपुर सिकरी आदि विषय में दिखला चुके हैं।

इससे सिद्ध होता है कि बेमूपुर डीह से जो पटना जिले में है और जहाँ अब तक सावर्ण्य ब्राह्मणों की बहुत बड़ी संख्या है, आने से ही नरही आदि के अयाचक दलीय ब्राह्मण बेमुवार कहलाये। यदि इन्हें सर्यूपारी और इटार के पाण्डे मानें तो भी हमें विवाद नहीं है।

इसी जगह प्रसंगवश हम यह भी शंका हटा देना चाहते हैं, जो लोगों की अनभिज्ञता के कारण हुआ करती है। अर्थात कभी-कभी यह बकने का साहस किया करते हैं, कि 'यदि पश्चिमा, त्यागी, अयाचक, भूमिहारादि ब्राह्मणों को आप वास्तव में कान्यकुब्ज सर्यूपारी, गौड़ और मैथिलादि बतलाते हैं, अर्थात् जिन दिनों मैथिल, गौड़, सर्यूपारी और कान्यकुब्ज आदि

छोटे-छोटे दल ब्राह्मणों में बनने लगे, उसी समय मिथिला, गौड़, कन्नौज और सर्यूपार आदि सभी देशों के अयाचक ब्राह्मणों का भी एकदल संगठित होने लगा। क्योंकि 'स्वगुणे परमा प्रीतिः' अर्थात जो जिस प्रकार का होता है वह वैसों से ही मिलता है'। तो फिर इन लोगों के सभी डीह कन्नौज, सर्यूपार या मिथिला में न बताकर कुछ तो उन देशों में और कुछ अन्यत्र क्यों बतलाते हैं? क्योंकि दोनवार आदि शब्दों को आप डीह या मूल का वाचक बतलाते हैं परन्तु उनसे जो डीह सिद्ध होते हैं ये तो कन्नौज या सर्यूपार आदि देशों में नहीं हैं। यद्यपि एकसरिया वगैरह नामवाले एकसार आदि डीह सर्यूपार के हैं तथापि सब तो नहीं ही हैं इत्यादि। इसका समुचित उत्तर यह है कि सभी ब्राह्मणों में बहुत से डीह ऐसे मिलते हैं। जैसे सर्यूपारियों में मचैयां पांडे या निमेज के ओझा तथा बटवा उपाध्याय या बड़हरिया पाण्डे, इत्यादि कहलाते हैं। और यद्यपि वे लोग अपने को कभी-कभी कान्यकुब्ज भी कहा करते हैं, तथापि सर्यूपारी कहलाने वाले से विवाह करते हैं। परन्तु उनके निमेज, मचियांव, बड़हर और बटवा आदि डीह न तो कन्नौज देश में ही मिलते और न सर्यूपार ही में। किन्तु आरा जिला, पटना या मिर्जापुर आदि में पाये जाते हैं। तो क्या इससे सर्यूपारी होने के अभिमान वाले या सर्यूपारी बनने वाले उनको अपने समाज से पृथक कर देने का साहस भी कर सकते हैं?

साथ ही, जो लोग अन्य देशों में भी रह कर अपना डीह मिथ्या या सत्य ही सर्यूपार में बतलाते हैं, क्या उनके साथ सर्यूपार में रहने वाले सर्यूपारी खान-पान या विवाह सम्बन्ध भी करते वा कर सकते है? तो क्या ऐसा न होने से वे लोग अपने को सर्यूपारी न मानें? मैथिलों में भी यही दशा है। उनमें जो कोवरिया या विधवे इत्यादि नाम वाले मैथिल हैं, उनके डीह या मूल कोवरा और विधवा आदि छपरा प्रान्त में हैं, न कि मिथिला में। परन्तु इससे क्या वे लोग मैथिल समाज से अलग समझे जा सकते हैं? अतः यह शंका निर्मूल ही है।

बेमुवार नाम वाले क्षत्रिय यदि बलिया में या अन्यत्र थोड़े बहुत पाये जाते हों तो या तो उन्हें किसी प्रकार से बेमूपुर से आना सिद्ध करने का यत्न होगा, या दूसरे प्रकार से बेमुवार शब्द की व्याख्या उन्हें करनी होगी। परन्तु यदि उनका भी गोत्र सावर्ण्य ही होवे, तो सावर्ण्य गोत्र वाले क्षत्रिय पटना-बेमूपुर में इस समय पाये नहीं जाते, परन्तु सावर्ण्य ब्राह्मण तो गड़हा, पटना, काशी और दरभंगा में भरे पड़े हुए हैं। अतः ऐसी दशा में इने-गिने बेमुवार क्षत्रियों की वही दशा हो सकती है जो सामान्यतः प्रथम कही जा चुकी है।

कुढ़नियाँ नाम वाले ब्राह्मणों का निवास आजमगढ़ के सूर्यपुर आदि बहुत से ग्रामों में है और इन्हीं में से कुछ दरभंगा जिले के सरायरञ्जन आदि गाँवों में तथा अन्यत्र भी कहीं-कहीं पाये जाते हैं। नये लोग कान्यकुब्ज ब्राह्मण अंटेर के दीक्षित काश्यप गोत्री हैं। इसीलिये इन्हीं की एक शाखा मिर्ज़ापुर के सुधवल आदि १० या १२ ग्रामों में पाई जाती है। जिनमें से ३ ग्रामवाले याचक दलवाले ब्राह्मणों में मिले हुए हैं, परन्तु ९ गांव वाले अयाचक दलवाले ब्राह्मण ही हैं। परन्तु सब के सब अपने को एक ही बतलाते और काश्यप गोत्री अण्टेर के दीक्षित ही कहते हैं और अब तक उनकी पदवी दीक्षित ही है। वे अपने को कुढ़नियाँ नहीं कहते। क्योंकि यहाँ से जाने के बाद ही आजमगढ़ वाले कुढ़नियाँ कहलाये। परन्तु अण्टेर से आकर प्रथम यहीं रहे थे। यह बात कुढ़नियाँ ब्राह्मणों की बृहत वंशावली में लिखी हुई है और अण्टेर स्थान को ग्वालियर के पास बताया है। सो भी ठीक ही है। सुधवल के पूर्वोक्त

ब्राह्मणों के विषय में सन् १८६५ ई० की मनुष्य गणना की रिपोर्ट में इस प्रकार लिखा है:—

There is a Sect of Dikshit Bhoinhars inhabiting Mouzah Soodhawal & etc. Most of them still retain their primary character, and make intermarriages among their own class; and some of them following the manners and customs of Surwaria Brahmins have mixed with them Vol-I.P.120

अर्थात 'भूमिहारों का एक दल दीक्षित कहलाता है और सुधवल आदि गाँवों में पाया जाता है। उनमें अधिकांश प्रथम की तरह अयाचक ही बने हुए हैं और अपने ही दल में विवाह आदि करते हैं। परन्तु थोड़े से सरवरिया ब्राह्मणों की चाल ढाल और रश्म-रिवाजों (याचकता, पुरोहिती आदि) का अनुसरण कर उनमें ही मिल गये हैं। भाग १, पृ० १२०'। इन्हीं दीक्षितों में से कुछ गाजीपुर जिले के शादियाबाद परगने में भी पारा और छपरी गाँवों में पाये जाते हैं जो अब तक काश्यप गोत्री और दीक्षित पदवी वाले ही हैं। ब्राह्मणों के दीक्षित नाम पड़ने का कारण प्रथम ही बतला चुके हैं कि इनके पूर्वजों ने बड़े-बड़े यज्ञ किये थे, जिनमें उन्हें दीक्षा दी गई थी, इसलिये दीक्षित कहलाये। यद्यपि गाजीपुर के पचोतर परगने के क्षत्रिय भी दीक्षित कहलाते हैं, तथापि उनका गोत्र काश्यप नहीं है। परन्तु दीक्षित नाम तो उनका भी वैसे ही पड़ा जैसे ब्राह्मणों का। क्योंकि यज्ञ में जिसकी ही विधिवत् दीक्षा होवे वही दीक्षित कहला सकता है, न कि ब्राह्मण मात्र। क्योंकि यज्ञ करने का अधिकार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णों को है।

अस्तु, कुढ़नियाँ ब्राह्मणों की वंशावली में, जो सूर्यपुर, आजमगढ़ में पाई जाती हैं, यह लिखा है कि अण्टेर से पण्डित प्रवर गोल्हन भट्ट नामक इनके पूर्वज काशी आये और वे बड़े यज्ञ करने वाले थे, इसलिये उनको दीक्षित पदवी मिलीं और काशिराज की ओर से सूर्यपुर के पास पाँच गाँव मिले। इसलिये वे अथवा उनके वशंज वहां जा बसे, और कुछ लोग सुधवल आदि गाँवों में ही रह गये। जो लोग आजमगढ़ में बसे, उनके उस प्रथम निवास का स्थान कुढ़नी नाम वाला तप्पा (परगने का एक भाग) था, इसलिये पीछे वहाँ से इधर-उधर हटने से वे लोग उसी तप्पे के नाम से कुढ़नियाँ कहलाये। कुढ़नी नाम वाला तप्पा सगरी परगने में था और अब घोसी में है और सगरी में ही ये लोग पाये भी जाते हैं। उस तप्पे का नाम आजमगढ़ गजेटियर (Gazetter) में भी लिखा हुआ है। जो लोग कुढ़नियाँ नाम को बिगाड कर कुण्डहवनियाँ इत्यादि कहा करते हैं और उसके स्वकपोल कल्पित अर्थ भी किया करते हैं, वह उनकी भूल है. क्योंकि ब्राह्मणों के ये सब नाम डीह या मूल स्थान से ही पड़े हैं। जैसे एकसार में रहने से एकसरिया, जैथर से जैथरिया और नोनहुल से नोनहुलिया आदि। नोनहुल ब्राह्मण और नोनहुल डीह बलिया जिले में सर्यू के तट पर हैं। इसी तरह एकसार और जैथर छपरा जिले में हैं और एकसरिया तथा जैथरिया ब्राह्मण छपरा और मुजफ्फपुर जिले में पाये जाते हैं। एकसार वगैरह में उनके पूर्व पुरुषों के आने विवरण उन लोगों की वशांवलियों में पाया जाता है और थोड़ा बहुत प्रथम भी लिख चुके हैं। अस्तु, इससे सिद्ध है कि कुढ़नियाँ नाम कुढ़नी स्थान में रहने ही से पड़ा। यदि कुढ़नियां नाम वाले राजपूत थोड़े बहुत कहीं मिलते हों तो या तो कुढ़नी तप्पे में रहने से वे भी कुढ़नियाँ कहलाये, अथवा कारणों से, जैसा साधारणतः कह चुके हैं।

गौतम ब्राह्मणों का तो सविस्तर वर्णन प्रथम ही परिच्छेद में तथा इसमें भी बहुत जगह

किया जा चुका है और काशी के गौतम क्षत्रियों का भी हाल कह ही चुके हैं। गौतम ब्राह्मणों के विषय में १८६५ ई० की मनुष्य गणना की बनारसकी रिर्पोट के ११८ वें पृष्ठ, प्रथम भाग में वही बात लिखी गई हैं जिसका प्रदर्शन आगे करेंगे।

तटिहा नाम वाले ब्राह्मण छपरा जिले में और कुछ बलिया में भी सूर्यू के दोनों तटों पर पाये जाते हैं। ये लोग सर्यूपारी ब्राह्मण सीसोटांड़ के मिश्र काश्यप गोत्री हैं और अब तक सीसोटांड़ में भी पाये जाते हैं। छपरा जिला तो सर्यूपार में गिना जाता है और है ही । ये लोग सर्यूनदी के दोनों तटों पर फैले हुए हैं। इसीलिये इनका नाम तटहा, टटहा या तटिहा इत्यादि पड़ा । जिसका अर्थ यह है कि 'नदी के तट के रहने वाले'। यदि क्षत्रिय भी इस नाम वाले अधिक पाये जाते हों, तो उनका नाम भी तट पर रहने से तटिहा वा टटिहा पड़ा होगा, अथवा उनके विषय में कोई अन्य ही बात होगी। जो लोग तटिहा को बिगाड़ कर टेंटिहा बना देते और उस पर मनगढ़न्त कल्पनायें करते हैं वह उनकी भूल है।

कौशिक नामवाले ब्राह्मण विशेष कर गाजीपुर जिले के जहूराबाद परगने में पाये जाते हैं और छपरा, मुजफ्फरपुर और दरंभगा जिलों में भी उनकी कमी नहीं है। परन्तु वहां नेकतीवार और कुसौंजिया इत्यादि नामों से कहे जाते हैं। जिसका तात्पर्य यह है कि वे लोग प्रथम नेकती या कुसौंजी स्थानों में थे। अतः वहां से हटने पर नेकतीवार और कुसौजिया कहलाये। वे सब लोग अभी तक पाण्डे ही बोले जाते हैं। इससे स्पष्ट ही है कि जहूराबाद वाले कौशिक ब्राह्मण भी प्रथम पाण्डे कहलाते थे, परन्तु पीछे उन्होंने 'राय', की पदवी धारण कर ली । मुर्शिदाबाद—लालगोला के वर्तमान राजा साहब इसी जहूराबाद के सुर्वत पाली ग्राम के रहने वाले कौशिक ब्राह्मण के पुत्र हैं । बहुत दिनों से ये लोग सर्यूपार या कन्नौज से आकर यहीं रहते थे और पीछे भी यहां से न हटे, इसलिये ये लोग पूर्ववत् गोत्र के नाम से ही पुकारे जाते रह गये । आईने अकबरी में भी इनको जहूराबाद का जमींदार लिखा है। यदि क्षत्रिय भी कौशिक नामवाले हों, तो हो सकते हैं। क्योंकि जैसा दिखला चुके हैं कि गोत्र तो सभी जातियों के एक ही हो सकते हैं।

भृगुवंश नामवाले ब्राह्मण निजामाबाद परगने में आजमगढ़ के जिले में पाये जाते हैं। ये लोग टीकापुर, बीबीपुर आदि गाँवों में पाये जाते हैं। इनका गोत्र भार्गव है, और प्रवर भार्गव च्यवन, आवप्नवान, और्व और यमदग्नि हैं। इनके पुरोहित भी भार्गव गोत्री ही हैं। इसी से इन लोगों का कथन हैं कि हमलोग वास्तव में एक ही हैं। परन्तु जो लोग हमीं में गरीब थे वे हमारी ही पुरोहिती करने लगे और याचक कहलाये, और धनी लोग अयाचक या भूमिहार ब्राह्मण कहलाये। अस्तु, जो कुछ हो ये लोग कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं और इनकी प्राचीन पदवी पाण्डे है। इसी से इन्हीं लोगों में से जो बस्ती के कोटिया आदि गाँवों और फैजाबाद में हैं, वे अब तक पाण्डे ही कहलाते हैं। इन्हीं लोगों में से कुछ लोग गाजीपुर जिले के असावर आदि गाँवों में चले गये हैं, जो अपने को प्रथम असावर में रहने से असवरिया कहते हैं और यहीं से जाना बतलाते हैं। इन लोगों के ५० वर्ष के पूर्व के दस्तवेज आदि कागजों में ब्राह्मण कौम ही इनकी लिखी गई है, यहां तक कि भूमिहार शब्द भी नहीं लिखा गया हैं* । ये लोग निजामाबाद परगने के बहुत प्राचीन रहने वाले हैं और वहीं रह

* टीकापुर के श्री मथुरा प्रसाद सिंह के पास सन् १८०९ ई० के एक मुकदमे की गवाही का कागज मिला जिसमें एक भृगुवंश यजमान और पुरोहित दोनों के गवाही देने के समय यजमान के नाम के आगे 'राय, भूमिहार, कौम ब्राह्मण' और पुरोहित के नाम के आगे 'पाठक' कौम ब्राह्मण लिखा है। इससे स्पष्ट

गये, क्योंकि इनका पुराना डीह भी उसी जगह है। इसलिये ये लोग पूर्ववत् अपने गोत्रों से ही पुकारे जाते रह गये, क्योंकि भृगुवंश का अर्थ है भृगु या भार्गव गोत्र वाला।

यद्यपि बनारस के जिले में काशी से दक्षिण बहुत से गांवों में भृगुवंश क्षत्रिय भी पाये हैं, तथापि उनका इन भृगुवंश ब्राह्मणों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि एक भृगुवंश क्षत्रिय से, जो बहुत होशियार था, हमने उसका गोत्र पूछा तो उसने उत्तर दिया कि हम लोगों का गोत्र सावर्ण्य है। परन्तु जब उससे पुनः प्रश्न किया गया कि भृगुवंश कहला कर सावर्ण्य गोत्र आप लोगों का कैसे हो गया ? तो इस विषय में उसने समाधान (उत्तर) करने के लिये बहुत कुछ यत्न किया परन्तु उचित उत्तर न दे सका और अन्त में उसने यही कहा कि हमारा गोत्र किसी तरह से भी हो साण्वर्य ही है, इसमें तो सन्देह नहीं परन्तु हम लोग भृगुवंश क्यों कहलाये यह बात हम नहीं जानते । साथ ही भृगुवंश क्षत्रिय और ब्राह्मण ये दोनो एक दूसरे से बहुत दूर हैं। यदि गोत्र एक भी होता तो भी कोई बात नहीं, क्योंकि गोत्र एक भी हो सकते हैं, यह दिखलाया जा चुका है।

सोनपकरिया, सोनपखरिया या सरपखरिया इत्यादि अनेक प्रकार से कहे जाने वाले ब्राह्मण आजमगढ़ जिले के इन्दारा स्टेशन के आस पास १२ या १४ ग्रामों में फैले हुए हैं। यद्यपि इनको लोग अनेक नामों से पुकारते हैं, तथापि एक उसी दल के चतुर ब्राह्मण से हमने उसका हाल पूछा, तो उसने अपना गोत्र भारद्वाज और सोनपकरिया नाम बतलाया और यह भी कहा कि हमारे पूर्वज खजुरा, धुवार्जुन या सोनबरसा की तरफ से आये । ये सब धुवार्जुन आदि ग्राम गाजीपुर के सैदपुर परगने में हैं और वहां भारद्वाज गोत्र वाले ब्राह्मण २४ गांवों में पाये जाते हैं। सम्भव है कि वहीं के सोनबरसा गांव से आने के कारण ये लोग सोनबरसिया कहलाते-कहलाते इन पूर्वोक्त नामों से कहलाने लग गये हों, क्योंकि काल पाकर शब्दों के रूप बिगड़ जाया करते हैं, यह बात सभी को मालूम है। नहीं तो कहां वाराणसी और कहां बनारस?

अथवा यह सम्भव है जैसा कि आगे लिखा है। वह यह है कि भारद्वाज या भरद्वाज कहलाने वाले ब्राह्मणों के पूर्वज पंडित गजाधर पाण्डे सर्यूपार से आकर आरा जिले के मचियांव गांव में प्रथम बसे और वहां से उनके वंशजों में से एक पुरुष, जो आजमगढ़ में देवगांव की तरफ सिकरौरा, बहादुरपुर आदि गांवों के भारद्वाज गोत्री चौधरी कहलाने वाले ब्राह्मणों के पूर्वज थे उसी तरफ आकर बसे, जिनके वंशज उन दस या बारह ग्रामों में फैले हुए हैं। और दूसरे पुरुष, जो धुर्वार्जुन आदि पूर्वोक्त चौबीस गांववालों के पूर्वज थे, धुवार्जुन आदि की तरफ गाजीपुर जिले में आये और उन्हीं के वशंज उन २४ गांवों में इस समय पाये जाते हैं। उन लोगों का यह भी कहना है कि हमारे पूर्वजों ने प्रथम मसोन की कोट को, जो खंडहर स्वरूप में औरिहार या सैदपुर के पास है अन्य लोगों से जीत लिया था और वहां पर ही अधिकार जमाये बहुत दिन तक रहे। परन्तु जब अन्त में किसी साधु के कोप से वह कोट उजड़ने या उलटने वाली हुई तो वहां से हट कर वे लोग इन २४ गांवों में फैल गये। वह कोट खंडहर कर दी गई या उलट दी गई इसी से उसका नाम मसोन हुआ क्योंकि जितने स्थानों के नाम मसोन या मसौनी आदि हमें मिले हैं, उनका ऐसा ही इतिहास मिलता

होता है कि भूमिहार शब्द पाठक की तरह पेशे या काम का द्योतक है, न कि जाति या दल का ।

है कि वे किसी कारण से खंडहर कर दिये गये। और साधु या फकीर ने उसे मसोन बनाया था, इसलिये उसका नाम मसोनफकीर भी हुआ और वहीं से दूर चले आने के कारण आजमगढ़ के भारद्वाज गोत्र वाले ये ब्राह्मण मसोनफकीरिया कहलाते कहलाते काल पाकर सोनफकीरिया या सोनपकरिया इत्यादि कहलाये।

तीसरी बात यह भी हो सकती है कि जब भारद्वाज लोग मसोन कोट से भाग गये, तो उस समय सोनपकरिया लोगों के पूर्वज मसोन से भागकर इन्दारा के पास पकरी नामक स्थान में बसे। परन्तु वहाँ से भी किसी कारण से हटकर इधर उधर पास में ही फैल जाने से पूर्व के मसोन और हाल के पकरी डीह को मिलाकर अपने को मसोन पकरिया कहने लगे, और कुछ दिन बाद वही नाम सोनपकरिया या सोनपोखरिया इत्यादि हो गया। परन्तु धुर्वाजुन आदि गांवों वाले भारद्वाज गोत्री लोग बहुत प्रथम काल से वहीं थे और रह गये, कहीं दूर न गये। इसलिये उनका नाम पूर्व की तरह गोत्र से ही कहलाता रहा और अब तक वे भारद्वाज कहलाते हैं। आईने अकबरी में इन्हीं भारद्वाज ब्राह्मणों की जमींदारी सैदपुर के परगने में लिखी हुई है, जैसा प्रथम ही कहा गया है। किन्तु वास्तव में सोनपकरिया धुर्वाजुन आदि वाले और सिकरौरा बहादुरपुर वाले चौधरी लोग एक ही वंश के भारद्वाज गोत्री सर्यूपारी मचैयां पाण्डे हैं। इसलिये इन्हीं लोगों में से जाकर बलिया जिले के बैरिया ग्राम में रहने वाले पंडित प्रमोद नारायण पाण्डे वगैरह अभी तक पाण्डे ही कहलाते हैं। और वे लोग 'बैरिया के पाण्डे' प्रसिद्ध हैं, जिनका वंश बड़ा ही कर्मठ, अग्निहोत्र परायण, और आदर्श चरित्र है। क्योंकि अब तक बराबर अग्निहोत्र का अनुष्ठान उनके घर होता है। उनके इस व्यवहार का अनुकरण सभी ब्राह्मणों को करना चाहिये।। यदि क्षत्रिय भी सोनपोखरिया कहलाते हों, तो उनका हाल पूर्ववत् जान लेना चाहिये। यदि वे लोग होगें भी तो नाम मात्र को।

इसी गाजीपुर के ही शादियाबाद परगने के देवा नामक ग्राम में रहने वाले और जुझौतिया कहलाने वाले ब्राह्मणों के जुझौतिया नाम पड़ने का कारण प्रथम परिच्छेद में ही दिखलाया जा चुका है, कि बुन्देलखण्ड के कुछ भाग का नाम प्रथम जुझौती था इस लिये वहां के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण जुझौतिया या जिझौतिया कहलाये और इन्हीं में से कुछ लोग देवा में भी जाकर बसे और अयाचक होने और प्रथम के देश से दूर होने के कारण अयाचक ब्राह्मणों के साथ ही इसी देश में विवाह सम्बन्ध आदि करने लग गये।

इसी तरह एकसरिया और जैथरिया आदि का भी संक्षिप्त विवरण लिख चुके हैं। छपरा–चैनपुर के प्राचीन दंसी परगने से भागकर मुजफ्फरपुर के मिहिला परगने में जा बसने वाले काश्यप गोत्री अयाचक ब्राह्मणों का नाम दंसवार पड़ा और एकसार के पास ही सहदौली ग्राम में रहनेवाले अयाचक ब्राह्मणों के वहां से दरभंगा के पतोर आदि ग्रामों में चले जाने से वे लोग सहदौलिया कहलाये और अब तक वे लोग मिश्र कहलाते हैं, जैसा पण्डित श्रीराजेन्द्र प्रसाद मिश्र इत्यादि। इन लोगों का स्वाभिमान तथा इनके आदर्श सभी ब्राह्मणों के अनुकरणीय हैं। सहदौलिया और एकसरिया लोग एक ही वंश के पराशर गोत्री हैं।

प्रथम आरा अथवा दरभंगे के सहस्राम में रहने के कारण आजकल दरभंगे के रपुरा आदि गांवों में रहनेवाले काश्यप गोत्री ब्राह्मण सहस्राम कहलाते हैं। साहस्राम गांव दोनों जिलों में है। छपरा के दिघवा स्थान में रहने के कारण छपरा या मुजफ्फरपुर और दरभंगा आदि में रहनेवाले ब्राह्मण दिघवे अथवा दिघवैत कहलाये। इन का गोत्र शाण्डिल्य है। जैसे

अरापा डीह में प्रथम निवास के कारण सावर्णियाँ लोग अरापै कहलाते हैं और वह डीह भी उनके पास ही पटना जिले में है। इसी तरह चौधरी टोला—पटना के रहनेवाले श्री रामगोपाल सिंह चौधरी और श्री कृष्ण प्रसाद सिंह चौधरी आदि भी प्रथम शाहाबाद जिले के ही परहाप स्थान में, जहां से वे लोग अपना आना चौधरी टोले में बतलाते हैं, रहने से पश्चात परहापै कहलाये। उनका गोत्र काश्यप है और वे लोग कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं और पांडे उनका आस्पद है। जैसा उनके भाई चौधरी सोना पाण्डे अन्त तक पाण्डेय ही कहलाते रहे और इनके पिता को तो लोग पाण्डे जी कहते ही थे। जो कश्यप गोत्र वाले और मिश्र पदवी वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण भूपाल (मालवा) से आकर हाजीपुर के वैकुण्ठपुर (बकठपुर) आदि गांवों में अब तक रहते हैं वे भूपाली कहलाते हैं। कोई-कोई नामको बिगाड़कर भूमपाली या भूमापाली कहते हैं। ये लोग अब तक बहुत से गाँवों में मिश्र ही बोले जाते हैं, जैसे श्री मूर्त्तिनारायण मिश्र, मुखतार, मुजफ्फरपुर। परन्तु कहीं कहीं सिंह या अन्य पदवियों से भी बोले जाते हैं, जैसे पण्डित सन्त प्रसाद सिंह शर्म्मा, बकठपुर इत्यादि। ऐसे ही और भी अथर्व आदि नामों के अर्थ और विवरण अथर्व वेद के ज्ञाता आदि समझना चाहिये।

गाजीपुर जिले के मुहम्मदाबाद परगने में ही कुछ ब्राह्मण रहते हैं, जिनको कस्तुवार कहते हैं और जिनका वसिष्ठ गोत्र है। इन लोगों का विवरण, जैसा वहां के सभी लोग जानते हैं, कि राजा जयचन्द का चचेरा भाई मान्धाता कुष्ठ रोग से पीड़ित होकर तीर्थ यात्रा के लिये जगन्नाथ जी जाता था। परन्तु जब उसी मुहम्मदाबाद में वर्तमान कठौत (गौसपुर) नामक स्थान के पास आया, तो उस स्थान पर स्थित एक तालाब में हाथ धोने के समय तुरन्त उतने का कुष्ठरोग हटा हुआ देख उस तालाब में उसने स्नान किया, जिससे उसका सम्पूर्ण शरीर कुष्ठ रोग से रहित और दिव्य हो गया। इससे अत्यन्त प्रसन्न होकर पाँच ब्राह्मणों को, जिनकी मिश्र उपाधि (पदवी) थी और जो एक या दो गोत्रों के थे, वहाँ बुलाकर पाँच गांव दान दिये और उसी जगह उनके रहने का स्थान बनवा दिया और अपने आप भी बहुत दिनों तक वहाँ रहा। वहाँ ही इसका कुष्ठ रोग अच्छा हुआ था, अर्थात् वह कुष्ठ रोग से पूत (रहित) हुआ था। इसलिये उस स्थान का नाम कुष्ठपूत हुआ। परन्तु कालान्तर में संस्कृत शब्द 'पूत' का अपभ्रंश 'उत' हो गया, जैसा प्राकृत भाषा में 'पुत्र' शब्द को 'उत्त' कहते है, अर्थात जैसे आर्य पुत्र को 'अज्ज उत्त' कहते हैं, उसी तरह कुष्ठ पूत 'शब्द का 'कुष्ट उत' होकर कुछ दिन और पीछे 'कु (क) ठौत' और 'कठौत' हो गया। जो आज तक कठौत ही कहा जाता है और वहाँ मान्धाता की बनवाई हुई कोट भी अब तक भग्नावस्था में है। और ये ब्राह्मण प्रथम उसी स्थान पर गये थे और रहते भी थे, इसलिये कुष्टौतवार कहलाने लगे, जो पीछे बिगड़ते-बिगड़ते कुष्टवार, कष्टवार और कस्तुवार हो गया। इन सब की पदवी मिश्र है और वसिष्ठ गोत्र है। सम्भवतः कुछ लोगों का गोत्र दूसरा भी हो।

उन्हीं में से जिनको राजा मान्धाता या उनके वंशजों ने योग्यता देख कर अपना प्रधान या मन्त्री बनाया था, अथवा अन्य ब्राह्मणों के ऊपर प्रधान बना कर रक्खा था, वे अब तक प्रधान पदवी वाले ही कहलाते हैं। उन सब ने भूमि लेने के बाद धनी होने के कारण अपनी याचकता वृत्ति छोड़ दी और भूमिहार ब्राह्मणों में मिल गये। अथवा जिन ब्राह्मणों ने दान में भूमि ली थी वे दूसरे ही होंगे। ये लोग तो राजाके प्रधान थे, इसलिये जागीर की तरह इन लोगों को भूमि मिली होगी और उसी से आज तक प्रधान ही कहलाते हैं। अथवा ऐसा भी हुआ होगा कि दान न देकर जागीर के तौर पर ही इनको भूमि दी गई होगी और उसी को

लोग भूल कर दान की तरह मिलना कहते हैं। चाहे जो कुछ भी हो, इसमें किसी प्रकार का हर्ज नहीं है। क्योंकि यह सिद्ध कर चुके हैं कि ब्राह्मण सर्वदा याचक से अयाचक और अयाचक से याचक धनी और गरीब होने के कारण हुआ करते हैं, न कि अयाचक सदा अयाचक ही और याचक सदा याचक ही बने रहते हैं, क्योंकि याचकता और अयाचकता ये दोनों ब्राह्मणों के व्यक्तिगत धर्म हैं। हाँ, याचकता आपत्तिकाल का धर्म है और विवेकी एवं धनी लोग उसका अनादर कर अयाचकता को ही स्वीकार करते हैं, यह अन्य बात है। परन्तु यह बात केवल अपने-अपने विचार और इच्छा पर निर्भर है न कि कोई शास्त्रीय आज्ञा है कि अयाचक कभी पुरोहिती न करे और याचक पुरोहिती को न त्यागे।

बस, पाठक लोग इतने ही से समझ गये होंगे कि अयाचक ब्राह्मणों के छोटे-छोटे दलों के नामों को अन्य समाज के नामों की तरह देखकर लोगों ने जो-जो मिथ्या कल्पनायें की हैं वे कहाँ तक सत्य हैं। सारांश यह है कि ऐसी कल्पनाओं के करने से भारत वर्ष का ब्राह्मण से लेकर शूद्र पर्यन्त सभी समाज एक ही सिद्ध किया जा सकता है, क्योंकि सभी समाजों अथवा उनके छोटे-छोटे दलों के बहुत से नाम एक ही हैं, जैसा अच्छी तरह सिद्ध कर चुके हैं। अतः आशा है कि पाठक उस भूल को सुधार लेगें। नहीं तो कहीं ऐसा न हो जावे कि उसी कल्पित तन्त्री (वीणा) पर विपरीत स्वर आलापने वाले पण्डितमानी लोगों को विचारकों के सम्मुख मुँह की खानी पड़े।

(३) वैदेशिक उक्तियां और उपसंहार।

अब हमारा वक्तव्य यहीं सम्पूर्ण होता है। हमको केवल कुछ अंग्रेजी ग्रन्थ लेखकों (प्रायः वैदेशिकों) की उन सम्मतियों को उद्धृत कर देना है, जो उन्होंने इन अयाचक दलवाले ब्राह्मणों के विषय में प्रकाशित की हैं। यद्यपि यह काम हम अपने वक्तव्य की पुष्टि के लिये नहीं करते हैं, क्योंकि इस विषय में तो सभी कुछ दिखला चुके हैं और अंग्रेजों की सम्मतियों को इस विषय में हम प्रमाण मानते भी नहीं, कारण कि उनको हमारे हिन्दू समाज के आन्तरिक भावों या हमारे रस्म रिवाजों का पूर्णतः परिचय ही क्या है कि वे लोग यर्थाथतः उनकी आलोचना निष्पक्षपात भाव से कर सकें उन्होंने तो जो कुछ सुना, लिख दिया। उसमें भी निज के सिद्धांत को ही सिद्ध करने का यत्न करते हैं कि वर्णव्यवस्था कोई वस्तु है ही नहीं इत्यादि। तथापि जिन बाबुओं की जिज्ञासा रूप पिपासा उन्हीं की उक्ति रूप जल से शान्त होती है--जो उन्हीं की उक्ति रूप स्वाती नक्षत्र की बूँद के प्यासे चातक हैं—उनके ही सन्तोष के लिये हमारा यह यत्न है। सूत्र रूप से यहाँ इतना समझ लेना चाहिये कि सभी वैदेशिकों की सम्मतियाँ अयाचक दलीय ब्राह्मणों के अनुकूल ही हैं। यदि किसी ने केवल एकाध बात कुछ-कुछ विपरीत लिखने का साहस डरते-डराते किया भी है, तो दूसरे ने उसको युक्तियुक्त प्रमाणों से खण्डित कर दिया है जैसा कि प्रसंगवश सम्भव होगा. तो आगे विदित ही होगा और पाठक लोग यत्न करने से–सबकी सम्मतियों को स्वयं जानने का प्रयत्न करने से–अन्यत्र भी देख सकते हैं। सर० एच० इलियट साहब की सप्लीमेण्टल ग्लासरी (Sir Elliot,s Supplemental Glossary) नामक अंग्रेजी पुसतक के अनुसार आगरा जिले के वर्णन में सन् १८६५ ई० की युक्त प्रान्त की मर्दुम शुमारी की रिपोर्ट के प्रथम खण्ड के ६५ वें पृष्ठ में तरह लिखा है:—

(1) Kankubj Proper (2) Sunadh (3) Surwaria (4) Jijhotia (5) Bhoinhar	There are five divisions of the Kankoobj Brahmans, given in the margin. The first two appear in great force in this district, but of the others I have discovered no traces and their true country lies to the east of the Ganges.
(१) प्रधान कन्यकुब्ज (२) सनाढ्य (३) सरवरिया (४) जिझैतिया (५) भूमिहार	कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के पाँच भेद हैं, जो इस पृष्ठ के किनारे पर लिखे हुए हैं। उनमें से प्रथम दो तो इस जिले में अधिकतर पाये जाते हैं, परन्तु अन्य तीनों का यहाँ पता न मिला। उनके निवास स्थान गंगा के पूर्व के देश हैं।

उसी पुस्तक के ९१ वें पृष्ठ में इटावा जिले के विवरण में लिखा है कि:--

The Kankubj, with whom we are chiefly connected in these provinces, contains five sub families–(1) Sunoreea or Sunadh; (2) Canojeea; (3) Jijhotea; (4) Bhooinhar; (5) Surwaria, These do intermarry.

अर्थ यह है कि कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में जिनसे हमको इन प्रांतों में विशेष सम्बन्ध है पांच छोटे-छोटे वंश या दल हैं- (१) सनोरिया या सनाढ्य, (२) कनौजिया, (३) जिझौतिया, (४) भुइंहार और (५) सरवरिया। ये पांचों परस्पर विवाह करते ही हैं।

आगे चल कर उसी पुस्तक के ११७ और ११८ पृष्ठों में मिर्जापुर के वर्णन में लिखा है कि----

Gautams have sprung up from Misra Brahmans, In this tehseeldaree there are no other castes except Gautams residing in Talooqa Majhava. The Gautams were originally Surwaria Misras, the most of whom with a view to show their pomp and splendour on being ilaqadars, commenced smoking hookkah, and consequently rest of their brethren discontinued eating and drinking with them. These Gautams, being thus excommunicated, commenced marriages with Bhoinhars who settled in the eastern districts, and since then this tribe is increasing. As these Guatams sprang up from Misras, who had their gotra or family title, Guatam, they became known by that appellation.

There are several subdivisions among the Bhoinhras. They are the descendants of Ujach Brahmans. In other countries the Ujach Brahmans are called Chitpawan and by other different denominations. The Brahmins have gotras, which they have assumed from Rishees, from whom they have sprung up; for instance Gautambuns who are said to be offspring of Kithoo Misra who descended from Gautam Ujach Brahmins, Kripacharya family. There is no distinction between them and the other Brahmins, besides this that the formers carry arms and have a military life, and consequently they

have assumed the title of Singh and have forsaken eating with other Brahmins. Owing to their title of 'Singh' being celebrated, their original titles of Misra, Pande, Upadhia 8c ., have fallen in to disuse. Still up to this day in some places they are known by their old titles.

अर्थात् 'गौतम लोग मिश्र ब्राह्मणों के वंशज हैं। इस तहसील (मिर्जापुर) में गौतम को छोड़कर, जो मझवा तालुका में रहते हैं दूसरी जातियां नहीं हैं। गौतम लोग सरवरिया ब्राह्मण थे, परन्तु तालुकादार होने पर उनमें से बहुतों ने अपनी बड़ाई और प्रतिष्ठा दिखलाने के लिये तम्बाकू पीना प्रारम्भ कर दिया, जिससे उनके शेष भाइयों ने उनके साथ खान पान छोड़ दिया। ये लोग इस प्रकार अलग होकर भूमिहारों के साथ विवाह आदि करने लग गये जो पूर्व जिलों में रहते थे। उसी समय से ये लोग बढ़ते जा रहे हैं। चूँकि ये गौतम उन मिश्र ब्राह्मणों के वशंज हैं जिनका गोत्र गौतम था इसलिये ये लोग गौतम कहलाने लगे। भूमिहार लोगों के बहुत से छोटे—छोटे दल हैं। ये लोग अयाचक ब्राह्मणों के वंशज हैं। अन्य देशों में अयाचक ब्राह्मण चितपावन एवं अन्य नामों से पुकारे जाते हैं। ब्राह्मणों के गोत्र हुआ करते हैं, जो उन ऋषियों के सूचक होते हैं जिनसे वे लोग पैदा हुए हैं जैसे, गौतम वंश कित्थू मिश्र के वंशज हैं जो कृपाचार्य के वंश के गौतमऋषि नामक अयाचक ब्राह्मण के वंशज थे। इन भूमिहारा ब्राह्मणों और अन्य ब्राह्मणों के बीच कोई भेद नहीं है, सिवाय इसके कि भूमिहार ब्राह्मण अस्त्र शस्त्र ग्रहण करते और वीरों (योद्धाओं) का सा जीवन बिताते हैं और इसीलिये उन्हें 'सिंह' की पदवी मिल गई है और अन्य (याचक) ब्राह्मणों के साथ खाना पीना भूल गये हैं। और इसी 'सिंह' पदवी के प्रसिद्ध हो जाने से उनकी पुरानी मिश्र, पाण्डे और उपाध्याय इत्यादि पदवियों का प्रयोग नहीं होता। तथापि अब तक बहुत से स्थानों में वे लोग उन्हीं पुरानी मिश्र आदि पदवियों वाले पाये जाते हैं'।

उसी पुस्तक में मिर्जापुर की केरा नामक तहसील का हाल यों लिखा है:—

The Brahmins are said to be the aborigines of Kankub, from where a portion of them imigrated in to Surwar and several other places. Among them there are two sects, Shut-Karma and Tri-Karma. They procure their livelihood by priesthood; agriculture and other occupations in this pergannah.

तात्पर्य यह है कि 'ब्राह्मण लोग कन्नौज के प्रथम निवासी बतलाये जाते हैं, जहाँ ये लोग सरवार तथा अन्य देशों में फैले हैं। ब्राह्मणों के दो भेद हैं–(१) षट्कर्मा और (२) त्रिकर्मा। इस परगने में रहने वाले इन लोगों में से कोई-कोई पुरोहिती से जीविका करते हैं और कोई खेती तथा अन्य पेशों से।'

सन् १९०९ ई० के आजमगढ़ के गजेटियर के८५, ८६ और ८७ पृष्ठों में लिखा है कि :—

Next on the list come Bhumihars, who at the last census numbered 55669 parsons, or 4.24 percent of the Hindus. They are to be found in all Tahsils, but nearly half of the total number in Sagri, and nearly one half of the remainder are in Deogaon. According to their own tribal traditions when Parasu Ram destroyed the Kshatris, the soil was given to the Brahmans,

who in taking possession of land assumed the title of Bhumihars. Their Brahman and Rajput neighbours generally insinuate that they are of mixed Brahman and Rajput breed, but there is no evidence in particular to support this view. Some Bhumihars describe themselves as Brahmans and some as Rajputs. In popular estimation they share something of the sanctity attaching to a Brahman, while on the other hand their subdivisions are often the same as those of the well known Rajput clans. All the Bhumihars of Azamgarh claim to be of Brahman stock.

अर्थ यह है कि 'राजपूतों के बाद भूमिहारों की संख्या है, जो गत मनुष्य गणना में ५५६६९, या सब हिन्दुओं में से ४.२४ फी सैकड़े थे। वे लोग सभी तहसीलों में पाये जाते हैं, परन्तु लगभग आधे के केवल सगरी में और शेष के आधे देवगांव में पाये जाते हैं। उनकी जाति के विषय में ऐसा प्रसिद्ध है कि जब परशुराम ने क्षत्रियों का नाश किया तो उनकी भूमि ब्राह्मणों को दी गई और वे ब्राह्मण भूमि के मालिक होने से भूमिहार कहलाने लगे। उनके ब्राह्मण और राजपूत पड़ोसी छिप कर चुपके से यह इशारा करते हैं कि ये लोग ब्राह्मण और राजपूत के मेल से उत्पन्न हुये हैं। परन्तु उनलोगों के इस कहने में कोई खास प्रमाण नहीं है। कुछ भूमिहार ब्राह्मण हैं और कुछ राजपूत भी भूमिहार हैं। जन साधारण की दृष्टि में भूमिहार लोग बहुत सी बातों में वैसे ही पवित्र समझे जाते हैं जैसे (अन्य) ब्राह्मण। लेकिन उनके बहुत से छोटे-छोटे दलों के नाम ऐसे हैं जो राजपूतों के भी हैं। आजमगढ़ के सभी भूमिहार अपने को ब्राह्मण बतलाते हैं'।

राजपूतों के भी भूमिहार नाम पड़ने का कारण और भूमिहार ब्राह्मण तथा राजपूतों के बहुत से नामों के एक होने का पूर्ण विवरण लिखा जा चुका है। इसी ब्राह्मण और राजपूतों के पूर्वोक्त इशारे के खण्डन से मिस्टर 'रीड' वगैरह: ने जो यही इशारा किया है, उसका भी खण्डन गजेटियर ने ही कर दिया। साथ ही, इस गजेटियर के इस कथन से कि 'ये लोग जन साधारण की दृष्टि में ब्राह्मणों की तरह पवित्र समझे जाते है'। और मिस्टर 'ओल्डहम के भी इस कथन से कि, "In popular estimation they share something of the sacredness which attaches to Brahmins' अर्थात बहुत सी बातों में सब लोगों की दृष्टि में ये लोग ऐसे पवित्र समझे जाते हैं,|, जैसे ब्राह्मण लोग'। मिस्टर रीड का वह भी कथन स्वयमेव खण्डित हो गया, जो उन्होंने लिखा है कि लोग इन्हें क्षत्रिय समझते हैं।

गाजीपुर के गजेटियर के ४२ पृष्ठ में लिखा है कि:— 'In popular estimation they share in something of the sacredness that attaches to the Bhramins, and they like genuine Brahmans, were exempted from capital punishment by the old law of the Benares Province.

अर्थात 'जनसाधारण इनको बहुत बातों में ब्राह्मणों की तरह पवित्र समझते हैं और सूबा बनारस के पुराने कानून के मुताबिक जैसे ब्राह्मणों को फांसी की सजा न मिलती थी, वैसे ही इन्हें (भूमिहारो को) भी न मिलती थी।

जरासन्ध वाली किंवदन्ती का खण्डन मिस्टर कुक ने अपनी पुस्तक (The Tribes and Castes of U. P. and Oudh) में इस प्रकार किया है कि:—"The theory that they are a mixed race, derived from a congeries of low caste people accidentally

brought together, is disapproved by the high and uniform type of physiognomy and personal appearance which prevails among them etc.

इसका पूरा अर्थ इसी प्रकरण में प्रथम ही दिखला चुके हैं।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की कार्यवाही की जांच के लिये जो सिलेक्ट कमिटी बैठी थी, उसकी जो पांचवीं रिपोर्ट बंगाल प्रेसिडेन्सी के विषय में प्रकाशित होकर सन् १८१२ ई० में लण्डन में छपी है, उस के प्रथम भाग के ५११ से ५१३ पृष्ठों तक ऐसा लिखा हुआ है :–

SUBAH BEHAR (First Circar Behar) : 3. Ten pergannas zamindary of Meterjet Singh, Brahman, residing at Tekari. 5. Two pergannas zamindary of Jaswant Singh etc. Brahmans, composed of Arenzil and Musaodih. 8. Two Perganns Pilich and Malda, the former held by Nandoo Singh Brahmin in zamindary. 9. Two pergannas Sauret and Bellia, in zamindary, chiefly to Howlass Chowdhery and Anagir Singh Brahmins. 11. One Perganna Gyaspur to Sheo Prasad Singh, Brahmin, with other lessor zamindars. 16. One parganna of Baykoonthpur to Kesari Singh Brahmin.

SIX CIRCAR HAJIPUR. 37. One Perganna Havellee to Hardan Singh etc. Brahmins in zamindary. 38. One Perganna Saraisa to Suchit Singh Brahman. 50. Two Pergannas Rutty and Gursand principally in zamindary to Pertap Singh Brahmin, 51. Five pergannas Moulky etc. in zamindary to Herlal etc., Brahmins, and usually united with the Pergannas of Ballia etc., belonging to Mongeer.

SEVEN CIRCAR SARAN. 53. Pergannas Gowah etc., of which 12 to Gopal Narayan etc., five brothers, 2. Callyanpur and Sipah to Raja Fateh Narayan Singh of Brahman caste.

इसका अनुवाद यह है कि सूबा बिहार (प्रथम सरकार बिहार)—(३) १० परगनों की जमींदारी मित्रजीत सिंह की थी, जो टिकारी के निवासी ब्राह्मण थे। (५) अरंजील और मुसाऊ डीह इन दो परगनों के जमींदार जसवन्त सिंह वगैरह ब्राह्मण थे। (८) पिलिछ और मालदा इन दो परगनों में से पिलिछ के जमींदार नन्दू सिंह ब्राह्मण थे। (९) सौरत और बलिया ये दो परगने खासकर हुलास चौधरी और आनागिर सिंह नामक ब्राह्मणों की जमींदारी थी. (११) ग्यासपुर परगने की जमींदारी शिवप्रसाद सिंह ब्राह्मण की थी और उसमें छोटे-छोटे जमींदार भी शरीक थे। । (१६) बैकुण्ठपुर परगना केसरी सिंह ब्राह्मण की जमींदारी थी। (छह सरकार हाजीपुर (३७) परगना हवेली हरदान सिंह ब्राह्मण का था। (३८) सरैसा परगना सूचित सिंह नामक ब्राह्मण का था। (५०) रत्ती और गुरसंद ये दो परगने प्रधानतया प्रताप सिंह ब्राह्मण की जमींदारी में थे। (५१) मुलकी इत्यादि पाँच परगनों के जमींदार हरलाल वगैरह ब्राह्मण थे। और वे परगने मामूली तौर पर मुंगेर के बलिया वगैरह परगनों में मिले हुए थे। (सात सरकार सारन)– (५३ १५ परगने गोवा वगैरह में से १३ गोपालनारायण इत्यदि पाँच भाइयों के थे और कल्याणपुर और सिपाह ये दो परगने राजा फतेहनारायण सिंह के थे, जिनकी ब्राह्मण जाति थी, ।

जो 'गोल्डेन बुक आफ इण्डिया' (The Golden book of India) नामक अंग्रेजी पुस्तक 'सर रापर लेथब्रिज के सी. आई. ई. (By Sir Ropper Lethbridge K. C. I. E.) द्वारा विशेष आज्ञा से (By special permission) लिखी गई और भारत सम्राज्ञी महारानी श्री विक्टोरिया को १८९३ में समर्पित है (Dedicated to Her Gracious Majesty, Victoria, Queen Empress of India, 1893), उसमें लिखा है कि--

Page 66. Benares—Highness Sir Prabhu Narayan Singh K. C. I. E. Maharaja Bahadur. The family are Brahmans of the Bhumihar class, and their traditions go back to the year 1000 when a Brahman ascetic of Utaria, a village near Benares, forestood the succession of his posterity to the dominions then governed by Hindu Rajas.

Page 67. Bettiah—Maharaja Sir Hirendra Kishore Singh K. C. I.E. Maharaja Bahadur belongs to Jaitheria Brahmans (Hindu family descended from Gangeshwar Deo, who settled at Jaither in Saran, Bengal, about 1244 A. D.)

Page 174. Hathua-Maharaja Sir Krishna Pratap Sahi Bahadur K.C.I.E. Maharaja Bahadur belongs to a Bagochhia Brahman family.

Page 493, Raja Shambhu Narayan belongs to Gautam clan of Bhumihar Brahmans.

इसका अर्थ यह है कि 'पृष्ठ ६६ में लिखा है कि हिज हाईनेस सर प्रभु नारारण सिंह के. सी. आई. ई. महाराजा बहादुर बनारस का वंश ब्राह्मणों में भूमिहार ब्राह्मण दल वाले ब्राह्मणों से है। इनके विषय में यही प्रसिद्ध है कि १००० वर्ष पूर्व बनारस के पास उतरिया गाँव में एक तपस्वी ब्राह्मण रहते थे। उन्होनें उस समय के हिन्दू राजा के राज पर अपने वंशजों का राज्य चलाया।

६७ पृष्ठ में लिखते हैं कि महाराज सर हीरेन्द्र किशोरसिंह के. सी. आई ई. महाराज बहादुर बेतिया, जैथरिया ब्राह्मण वंश के हैं। यह वंश गंगेश्वरदेव से चला, जो बंगाल के सारन (छपरा) जिले के जैथर गांव में १२४४ ई० में रहते थे।

१७४ पृष्ठ में है कि महाराजा सर कृष्ण प्रताप साही बहादुर के. सी. आई. ई. महाराजा बहादुर हथुवा बगौछिया ब्राह्मण वंश के हैं।

और ४९३ पृष्ठ में है कि राजा शम्भुनारायण सिंह (औसानगंज) भूमिहार ब्राह्मणों के गौतम वंश के हैं।

डाक्टर विलियम ओल्डहैम (William Oldham B. C.S. LL. D.) ने स्व पुस्तक North Western Provinces Historical and Statistical Memoir of the Ghazipur District के प्रथम भाग के ४३ पृष्ठ में लिखा है कि , 'Bhoinhars, both by themselves and by ethnologists, are belived to be the descendants of Brahmins, who on becoming cultivators and landholders gave up their priestly functions. In popular estimation they share in something of the sacredness which attached to the Brahmins, and by the old law of the Benares Province, they like the

genuine Brahmins, were exempted from capital punishment; but family priests, or spiritual guides are never choosen from among them by men of their own race nor by other Hindus.

अर्थ यह है कि 'भूमिहार लोग अपने आप और वंश परम्परा के जानने वालों द्वारा भी उन ब्राह्मणों में से माने जाते हैं, जिन्होंने कृषक और जमींदार होने पर पुरोहिती छोड़ दी। जन साधारण की दृष्टि में बहुत से अंशों में ये लोग अन्य ब्राह्मणों की तरह पवित्र समझे जाते हैं और इन्हीं की तरह इन लोगों को भी बनारस प्रान्त के पुराने कानून के अनुसार प्राण दण्ड (फांसी) की सजा नहीं मिलती थी, (क्योंकि हिन्दू धर्म में ब्राह्मणों को फांसी देना वर्जित है, लेकिन ये लोग न तो अपने ही समाज के पुरोहित और गुरु होते हैं और न अन्य हिन्दुओं के ही'। डाक्टर ओल्डहैम के बहुत से अंशों में अन्य ब्राह्मणों की तरह पवित्र माना जाना' लिखने का तात्पर्य अन्त के वाक्यों से स्फुट है। अर्थात ये लोग गुरु या पुरोहित नहीं होते, इसीलिये सब अंशों में ब्राह्मणों की तरह पूजा कैसे हो सकती है?

५६पृष्ठ में लिखा है कि 'A Bhumihar family of Pande Brahmins settled at Byreah in Doab Pergannah, have for generations past been the Tehseeldars or land agents of the Domaraon family.'

अर्थात 'पांडे कहलाने वाले ब्राह्मणों में से एक भूमिहार ब्राह्मण वंश, जो बलिया जिले के दोआब परगने के बैरिया गांव में प्रथम से ही आकर बसा है, बहुत पीढ़ियों से डुमरांव राज्य का तहसीलदार होता चला आया है'।

६८ पृष्ठ में लिखा है कि 'The family of the Benares Rajahs belong to a clan of Gowtum Bhumihar Brahmans, land holders of the Pergannah Kuswar, which lies a few miles to the west of Benares. They trace their descent from a Brahmin Kitthoo Misra etc.

अर्थात 'बनारस के राजाओं का वंश गौतम भूमिहार ब्राह्मण है। जो काशी से चन्द मील दूर पश्चिम तरफ के कुसवार परगने के जमींदार हैं। ये लोग अपनी उत्पत्ति किट्थू मिश्र नामक एक ब्राह्मण से बतलाते हैं इत्यादि'।

फिर उसी पुस्तक के द्वितीय खण्ड के ४३वें पृष्ठ में उक्त साहब बहादुर ने लिखा है कि:–

The Hindu land—owning tribes of Benares are either Bhumihars, secular Brahmans, of Rajputs,

अर्थात् 'बनारस जिले के मुख्य जमींदार या तो भूमिहार यानी दुनियावी ब्राह्मण हैं (यहां दुनियावी का अर्थ याचकों या पुरोहितों से भिन्न है, क्योंकि वे लोग पुरोहितों को हिन्दू धर्मानुसार पारलौकिक समझते हैं), या राजपूत।'

बाबू नीलमणि दाय राय बहादुर, सदरआला, मुजफ्फरपुर के १८९७ ई० के फैसले की जो अपील राजकुमार श्री गिरिजा नन्दन सिंह जी ने महारानी जानकी कुंवरि के विरुद्ध की थी, उसके फैसले के १०७ पृष्ठ में इस तरह लिखा है कि :–

Maharajadhiraj Rajendra Kishore Sinha Bahadur, son of Mahraj Nawal Kishore Sinha Bahadur, proprietor of Nimaksaeer Mahal out of Saraar

Champaran inhabitant of Kasaba Betteah, Perganna Majh va Jaitharia Brahman by caste, a zaminadar by professon.

अर्थात् 'महाराजा राजेन्द्र किशोर सिंह बहादुर महाराजा नवल किशोर सिंह बहादुर के पुत्र, और निमक सायर महाल के मालिक हैं, जो चम्पारन सरकार से बाहर है ये मझवा परगने के कसवा बेतिया में रहते हैं। इनकी जाति जैथरिया ब्राह्मण और पेशा जमींदारी है।'

इसी प्रकार बेतिया के समीपवर्ती मधुवन के मुकदमे के सन् १९०७ के फैसले की अपील के फैसले १०७८वें पृष्ठ में लिखा है कि:–

This statement of Sir W. B. Hudson is fully borne out by the acknowledgment of Sir Ropper Leth bridge in the introduction to his compilation, called tbe Golden Book of India, in para 67 of which work we find Maharaja Sir Harindra Kishore Sinha described as jaithria Brahman, descended from Gangeshwar Deo, the ancestor of Raja Ugrasen Sinha

अर्थ यह है कि 'सर डबल्यू० बी० हडसन का यह कथन सर रापर लेथब्रिज के कथन से अच्छी तरह प्रमाणित हो जाता है। क्योंकि उन्होंने अपनी पुस्तक 'गोल्डनबुक आफ इण्डिया' की भूमिका के ६७वें पारा में लिखा है कि महाराज हरीन्द्र किशोर सिंह जैथरिया ब्राह्मण, गंगेश्वर देव के वंशज हैं, जो राजा उग्रसेन सिंह के पूर्वज थे।'

गाजीपुर के इस्तमरारी बन्दोबस्त की रिपोर्ट, सन् १८८०-८५ ई० के २७वें और ६३वें पृष्ठों में विलियम इरविन (William Irvine) साहब कलक्टर ने लिखा है कि 'Raja Shambhu Narajan Sinha is Bhumihar Brahaman. Gauri Shankar Prasad Sinha and Harishankar Prasad Sinha are great grand sons of Deokinandan Sinha, Brahman of the Allahabad district.

अर्थात् 'राजा शम्भुनारायण सिंह भूमिहार ब्राह्मण हैं। गौरी शंकर प्रसाद सिंह और हरिशंकर प्रसाद सिंह ये दोनों देवकीनन्दन सिंह नामक प्रयाग जिले के एक ब्राह्मण के प्रपौत्र हैं।'

सन् १८९१ ई० में की भारत वर्षीय मनुष्य गणना के विवरण के १९१ और २०३ पृष्ठों में लिखा हुआ है कि–

The Babban is a caste, confined, according to thereturns, to Behar, but the Bhumihars of the adjacent territory ot the N. W. P should, no doubt, be added. It is an offshoot of a communityof fairly pure Arya blood, descended from some of the early settlers of Hindustan.

In the Brahman caste, returned as such, we have every sort and grade of sub-divisions, In the Punjab there is the Mohial, whose aim is militray service, like Pande of the Gangotri basis in Hindustan. The cultivating classes of Orissa are both turned Mastans but this tide is shared by other castes of cultivating Brahmans in Upper India. Some of the last perform the whole cycle of operations connected with tillage, whilst others draw the line at holding the plough, and employ their serfs on that task. There is a

considerable number of Brahmans engaged as family and village priest, but the majority have taken to secular pursuits and been divided accordingly.

In Hindustan the number of Brahman cultivators is very large, and on the West Coast of, both in Malabar and along the Kankan, this caste in various district communities is prominent amongst the land holders. In the Deccan, again, the Brahmans almost monopolise the occupations barring trade, that require reading and writing.

अर्थ यह है कि 'बाभन एक जाति है जो सर्कारी विवरण के अनुसार बिहार में पाई जाती है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि समीप के युक्त प्रदेशवाले भूमिहार भी इसी में शामिल हैं। ये लोग उन शुद्ध आर्य वंशजों के एक दल हैं, जो भारतवर्ष के प्रथम के कुछ निवासियों के वंश में थे। ब्राह्मण जाति में, जिसे मनुष्य गणना में ब्राह्मण जाति नाम से लिखा है, हर प्रकार और दर्जे के छोटे-छोटे दल पाये जाते हैं। पंजाब में महियाल लोग हैं जिनका मुख्य उद्देश्य युद्ध सेवा है जैसे भारत वर्ष के गंगोत्री स्थान के मूल में रहने वाले पांडे लोग हुआ करते हैं। दक्षिण गुजरात की कृषक जाति जो देसाई कहलाती है और उसी तरह के उड़ीसा निवासी ये दोनों मस्तान लिखे जाते हैं। लेकिन यह पदवी उत्तर भारत की अन्य कृषक ब्राह्मण जातियों की भी है। उत्तर भारत के बहुत ब्राह्मण कृषि सम्बन्धी कार्य करते हैं,परन्तु कुछ लोग हल जोतना अच्छा या उचित न समझ उसके लिये हलवाहे नौकर रखते हैं। कुछ ऐसे ब्राह्मण हैं जो खानदानों या गांवों की पुरोहिती किया करते हैं, परन्तु अधिकांश दुनियाबी कामों में लग गये हैं और इसी से पृथक भी हो गये हैं। ओल्डहैम साहब ने भी भूमिहार ब्राह्मणों को दुनियाबी लिखा है और ऐसा करने से ही इतर ब्राह्मणों से अलग बताया है, जैसा दिखला चुके हैं)। हिन्दुस्तान में खेती करने वाले ब्राह्मणों की संख्या बहुत है और कोकण तथा मालाबार के पश्चिमी किनारे पर यह जाति जिले के भिन्न-भिन्न समाजों में सबसे बड़ी भूम्यधिकारिणी है। दक्षिण में भी जो काम वाणिज्य के सिवाय हैं और जिनमें पढ़ने लिखने की आवश्यकता है, उनको ब्राह्मणों ने सम्पूर्ण अधिकार में कर लिया है'।

सर हेनरी एम० इलियट (Sir Henry M. Elliot K. C. B.) की जो 'सप्लीमेन्ट्री ग्लासरी आफ इण्डियन टर्म्स' (Supplementray Glossary of Indian Terms) नामक पुस्तक है और उस पर जो टिप्पणी जान बीम्स (John Beames M. R. A. S.) ने की है, उसके प्रथम भाग के २१वें पृष्ठ में यों लिखा है –

By Elliot—Bhumihar. A tribe of Hindus to be found in great number in Gorakhpur, Azimgarh and the province of Benares, The Maharaja of Benares is of this caste. They call themselves some times Brahmans and sometimes Thakurs, They were originally Brahmans of Sarawaria stock; but from having, as theysay, receivedthe Parganna of Kaswar from Raja Banar, and become addicted to agricultural pursuits and cultivators of land they last their rank of Brahmans, though they frequently receive marks of respect due only to that privileged class. Others say when Parsram destroyed all the Kashatriyas, he introduced Brahmans to occupy thier place, and hence they became proprietors of land. It will be observed that several of these are

subdivisions of the Sarawaria Brahmans, and those whose origin is distinguished, by newnames, have all same titlesconnecting them with the Sarawaria stock. Thus the Sakarwars are Misras, the Donwars Tewaris and so on.

BY BEAMES—Form that day they ranked as an inferior caste of Brahmans. They are a fine manly race with the delicate Aryan type of feature in full perfection.

Page 85. Domtikar, one of the subdivisions of Sarwaria Brahman.

Page 116. The Jaganbansi Kanaujia Brahmans of Kora are said to have received the Chandrahat of that Purgannah from Birsingh Deo, a Gautam chieftain.

Page. 141. Jaganbansi, a tribe of Brahmans, who hold zamindari possession in PurgannahKora, zillah Fatehpur.

Page. 146. Of Brahmans there are ten well Known sub-divisions, of which five are Gaur and five Dravida. Of the five Gaurs, Kanaujia is one and also is considered the most numerous, as it extends from the Sivalik Hills to the Narbada, and the Bay of Bengal. The sub-divisions of the Kanaujia are five; Kanaujia proper, Sarwaria, Sanadh or Sanaudha, Jijhoutia and Bhumihar.

Page. 149. The Sarwarias including the Bhumihars touch the Kanaujia one the East.

Page. 150. In the census of N. W. P. in 1865, the Brahmans of the Province are thus classified and numerated :—

Kanaujia ... ...
Sarwaria ... ...
Sanadhya ... ...
Jijhautia ... ...
Bhumihar 5 2 1 9 9, Gorakhpur, Benares.

अर्थ यह है 'इलियट साहब भूमिहार ब्राह्मणों के विषय में लिखते हैं कि यह एक हिन्दू जाति है, जो बहुत संख्या में गोरखपुर, आजमगढ़ और बनारस के प्रान्तों में पाई जाती हैं। महाराज बनारस इसी जाति के है। ये लोग अपने को कभी ब्राह्मण कहा करते हैं और कभी ठाकुर[1]। ये लोग प्रथम सरवरिया ब्राह्मण थे। परन्तु राजा बनार से कुसवार परगना पाने और खेती करते तथा भूमि सम्बन्धी काम करने से, जैसा वे लोग कहते हैं, उन लोगों ने अपने ब्राह्मण दर्जे को खो दिया। गोकि अभी तक अकसर उनलोगों को वे ही प्रतिष्ठायें मिला

१. अन्य ब्राह्मण भी ठाकुर कहे जाते हैं, जैसा दिखला चुके हैं और चूंकि जमींदार हैं, इसलिए ठाकुर कहलाते हैं, क्योंकि उसका अर्थ जमींदार हैं।

करती हैं जो अन्य ब्राह्मणों को मिलती हैं। अन्य लोगों का यह कहना है कि जब परशुराम ने क्षत्रियों का नाश किया तो ब्राह्मणों को ही उनकी जगह नियत किया। इसलिये ये लोग भूमि के मालिक बन गये। यह भी देखा जाता है कि इन लोगों (भूमिहार ब्राह्मणों) के बहुत से छोटे-छोटे दल वे ही हैं, जो सरवरिया ब्राह्मणों के हैं और जिनके मूल का पता उनके नवीन नामों से लगता है, उन लोगों की पदवियां सब की सब वे ही हैं जो उनको सरवरिया ब्राह्मणों में मिला देती हैं। जैसे सकरवार मिश्र कहलाते हैं और दोनवार तिवारी इत्यादि।

मिस्टर इलियट के पूर्वोक्त कथन 'खेती करने से इन लोगों ने अपने ब्राह्मण दर्जे को खो दिया' का तात्पर्य मिस्टर बीम्स ऐसा लिखते हैं कि 'उस समय से ये लोग ब्राह्मणों में मध्यम समझे जाने लगे इत्यादि'[1]। ये लोग उत्तम मनुष्य जाति के हैं और इनके शरीर की सम्पूर्ण बनावट ठीक और बहुत ही सुन्दर एवं आर्यों की ही है।

८५ पृष्ठ में इलियट साहब ने लिखा है कि दुमटिकार लोग सरवरिया ब्राह्मणों के एक भेद हैं। (इससे स्पष्ट है कि दुमटिकार ही नाम ठीक है, दुमकटार या डोमकटार कहना भूल है, जैसा प्रथम ही सिद्ध कर चुके हैं)।

११६ और १४१ पृष्ठों में जगनवंशी या जगद्वंशी ब्राह्मणों को लिखते हैं कि ये लोग ब्राह्मणों की एक जातिवाले हैं, जो फतेहपुर जिले के कोड़ा परगने के जमींदार हैं। जो जगद्वंशी कनौजिया ब्राह्मण कोड़ा में रहते हैं' उन्हें उस परगने का चन्द्रहाट स्थान एक गौतमवंशी क्षत्रिय वीर सिंह देव द्वारा प्राप्त हुआ है।

१४६ पृष्ठ में लिखा है कि ब्राह्मणों के प्रसिद्ध दस भेद हैं, जिनमें से पाँच द्राविड़ और पाँच गौड़ हैं। पांच गौड़ों में कनौजिया भी एक भेद है। ये लोग सब से अधिक हैं; क्योंकि सिवालिक पर्वत से नर्बदा और बंगाल की खाड़ी तक फैले हुए हैं। कनौजियों के पांच भेद हैं, (१) खास कनौजिया, (२) सरवरिया, (३) सनाढ्य या सनौढा, (४) जिझौतिया और (५) भूमिहार।

१४९ पृष्ठ में लिखा है कि 'भूमिहारों को अपने में लेते हुए सरवरिया लोग पूर्व में कनौजियों से मिल जाते हैं। १५० पृष्ठ में लिखा है कि युक्त प्रान्त की १८६५ ई० की मनुष्यगणना में इस प्रान्त के ब्राह्मणों के विभाग और उनकी संख्या यों है :–

कनौजिया	...	...	...	...	...	...	...	...
सरवरिया	...	...	...	...	...	...	...	...
सनाढ्य	...	...	...	...	...	...	...	...
जिझौतिया	...	...	...	...	...	...	...	...
भूमिहार	...	५२१९९	...	गोरखपुर और बनारस				

मिस्टर शेरिंग (Rev. M. A. Sherring M. A. LL.B.) ने जाति विवरण (Tribes and Castes) नामक पुस्तक में इस तरह लिखा है :–

Part I. Page. 6, 10. Great inportant distinctions subsist between the various tribes of Brahmans. Some are given to learning, some to

१. परन्तु खेती करने से ब्राह्मण मध्यम नहीं हो सकता है, यह अच्छी तरह प्रमाणित किया जा चुका है।

agriculture, some to politics and some to trades. The Mahratta Brahman is a very different being from the Begnali, while the Kanaujia differs from both.

Only those Brahmans that perform all these six duties are reckoned perfectly orthodox. Some perform three of them, namely, the first, third and fifth and omit the other three; yet they suffer in rank in consequence. Hence Brahmans are divided into two kinds, the Shat-karmas and the Tri-karmas or those who perfotm the six duties and those who perform the three only. The Bhumihar Brahmans, for instance, are Tri karmas, and merely pay heed to three duties.

Page 23. The Bhumihars, of whom many, though not all belong to the Sarju Pariya division, are a large and infuenitial body in all that province.

अर्थ यह है 'प्रथम भाग ९ और १० पृष्ठ– ब्राह्मणों की बहुत सी जातियों में बड़े-बड़े और प्रसिद्ध भेद हैं। कोई केवल पढ़ता है, कोई केवल खेती, कोई राजनीति और कोई वाणिज्य में लगा रहता है। महाराष्ट्री ब्राह्मण बंगाली ब्राह्मणों से बिल्कुल भिन्न हैं और कनौजिया दोनों से भिन्न हैं।

केवल वे ब्राह्मण, जो षट्कर्म करते हैं, कट्टर समझे जाते हैं।

बहुत से ब्राह्मण षट्कर्मों में प्रथम, तृतीय और पंचम (अध्ययन, यज्ञ और दान) तीन ही करते हैं शेष तीन छोड़ देते हैं। इसीलिये उनका दर्जा कुछ नीचा समझा जाता है। इस प्रकार ब्राह्मणों के दो भेद हैं, षट्कर्मा और त्रिकर्मा। अर्थात् एक तो वे जो छह कर्मों को करते हैं और दूसरे वे जो केवल तीन करते हैं। दृष्टान्त के लिये भूमिहार ब्राह्मणों को ले सकते हैं, जो केवल तीन कर्मों पर ध्यान देते हैं।

२३ पृष्ठ–भूमिहार लोग जिनमें सब नहीं तो अधिकांश सर्यूपारी ब्राह्मण हैं, इस प्रान्त भर में बहुसंख्यक और प्रभावशाली हैं।

आगे चल कर मिस्टर शेरिंग ने ब्राह्मणों के निरूपण प्रकरण में ही पंच गौड़ों में से सर्यूपारियों के निरूपण प्रसंग में ही जिझौतिया, सारस्वत एवं गौड़ों से प्रथम भूमिहार ब्राह्मणों का निरूपण करते हुए ३९ और ४० पृष्ठ में ऐसा लिखा है :–

BHUMIHAR BRAHMANS. These Brahmans belong chiefly, though not exclusively, to the Sarwaria branch of the Kananujia tribe. They are found in large numbers in the city of Benares, and in the district and Province of the same name, and even as far as the northern part of Behar. Some doubt has been thrown on the purity of their blood as Brahmans. It has been said that they are Kshatriya Brahmans: or partly Rajputs and partly of other castes; or are a race of bastard Brahmans. I have been unable to obtain any trustwonthy evidence for such assertion. Nevertheless there is no question that they do not occupy a high rank and position among the Brahmanical races. The reasons for this I conceive to be three-fold :—

(1) The Bhumihars are addicted to agriculture, a pursuit considered to be

beneath the dignity of pure or othodox Brahman. The word is partly derived from Buuin or Bhumi 'land.'

(2) They have accepted and adopted in their chief families the secular title of Raja, Maharaja and so forth distinctions which high Brahmans altogerther eschew. Hence, such Bhumihars have in a sense degraded from their position of Brahmans to that of Rajputs, whose honoric title of Singh thay commonly affix to their names. The Maharaja of Bernares, who is the acknowledged head of the Bhumihar Brahmans in that city, is styled Maharaja Ishwaree Narain Singh. The title is borne by all the members, near and remote, of the Maharaja's family.

(3) The Bhumihars only perform a half of the prescribed Brahmanical duties. They give alms, but donot receive them; they offer sacrifices to their idols, but donot perform the duties and offices of priest hood; they read the sacred writings, but donot teach them.

Sir Henry Elliot says—'we perhaps have some indications of the true origin of Bhumihars in the name of Gargabhumi and Vatsabhumi, who are mentioned in the Harvansa as Kshatriya Brahmans, discendants of Kasiya princes. Name of Bhumi, and residence at Kasi (Benares), are much in favour of this view. Moreover, there are to this day Garga and Vatsa Gots or Gotras, amongst the Sarwaria Brahmans.

It is quite true, as before remarked, that this tribe is numerous in Benares and its neighbourhood, though not as descendants of Kasiya princes. The Maharaja of Benares is undoubtedly a Bhumihar; but his family dates only from the first-half of the preceeding century. There is no evidence to show that in olden times princes of Benares were ever Bhumihars.

By the people of the country of other castes among whom they dwell, they are called indiscriminatly Bhumihars, Gautams and Thakurs. The term Brahman, is not, I belive applied to them in common conversations as it is to other Brahmans; but this is no valid argument against their right to the title. The Bhumihars call themselves Brahmans; have the Gotras, titles and family names of Brahmans; practise, for the most part, the usages of Brahmans, and, in default of proper evidendce to the contrary, must be regarded as Brahmans, while the Gautams, of Benares are called Bhumihars they are so simply from the accident of the Bumihars mostly belonging to the Gautam Gotra. There are other Gotras of Bhumihars besides the Gautam. Moreover althogh the Bhumihars are chiefly united whith the Sarwaria branch of the Kankubja tribe of Brahmans, yet some of them are allied to the Kanaujia Brahmans Proper. For instance, the Babus of Chainpur, in the

Chaprah district are Bhumihars of the latter sub-tribe. The name of their clan is Ekasariya; of their Gotra Parsar; of their title Dikshit.

In face of the peculiar Brahmanical terminology and nomenclature in use among the Bhumihars, who differ 'in toto coelo' from those employed by all other castes of their Brahmanical habits and customs of their claim to be regarded as Brahmans, the statement of Mr. Campbell in his recent work on the ethnology of India (page 66). that "there seems to be no doubt that this class is formed by an intermixture of Brahmans with some other inferior caste," is untenable. He assigns no reason for such an observation further than that, "they live in strong and pugnatious brotherhoods, and are in character much more like Rajpoots than Brahmins." The opinion of Mr. Beames, in his edition of Sir H. Elliot's Supplemental Glossary on the physical charcteristics of the Bhumihars, is true and worth recording. "They are fine manly race, with the delicate Aryan type of feature in perfection, yet." he adds, 'their character is bold and overbearing, and decidedly inclined to be turbulent,"- a strong expression, which it would not be easy to substantiate or justify. The most important of these clans in Benares is the Bipra branch of the Gautam Gotra, of the Misra rank, to which belongs the Maharaja of Benares together with the noble families connceted with him, and the family of the Late Raja Sirdeo Narayan Singh and of his son Raja Shambhu Narain Singh.

It is of the Kauthumiya Sakha, or branch, of Brahmans, following the ritual of the Sama Veda. It has three Parvars (distinguished by the number of Knots in the Brahminical card) the Gautam, Angiras and Authathiya. The clan intermarries with the Bhumihars, of the Madhyandina Sakha, or branch of Brahmans, observing the ritual of the Yajur-Veda. It is traditionally allied to the Sarjupari Brabmans of the village of Madhubani, beyond the Gogra who, strange to say, are Shat-karmas that is, perform the six duties enjoined on Brahmans. This relationship seems to show that the Bhumihar, Brahmans, who now observe only three of the Brahmanical obligations, were once orthodox, and observed the entire six.

इसका मर्मानुवाद यह है :– 'भूमिहार ब्राह्मण– ये ब्राह्मण, यद्यपि सब नहीं, तथापि अधिकांश, कनौजिया ब्राह्मणों के सरवरिया दल वाले ब्राह्मणों में हैं। ये लोग बहुसंख्यक बनारस शहर, बनारस जिला और बनारस प्रान्त में और बिहार के उत्तर भाग तक पाये जाते हैं। इनके शुद्ध ब्राह्मण वंशज होने में कुछ सन्देह किया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि ये लोग क्षत्रिय अथवा राजपूत ब्राह्मण हैं, राजपूत तथा अन्य जातियों के मेल से हुए हैं, अथवा दोगले ब्राह्मण हैं। परन्तु मैं इस कथन में कोई विश्वास योग्य प्रमाण पाने में असमर्थ हूँ। तथापि इस बात में तो कुछ कहना ही नहीं कि ब्राह्मण जातियों में इनका दर्जा ऊँचा नहीं

माना जाता। मेरी समझ में इसके तीन ही कारण हैं :– (१) भूमिहार लोग कृषि किया करते हैं, जो सच्चे (कट्टर) ब्राह्मणों का धर्म नहीं माना जाता है। भूमिहार शब्द भी इसी भुइं या भूमि शब्द से बना है। (२) उनके बड़े-बड़े वंशों में राजा, महाराजा इत्यादि पदवियों का स्वीकार और प्रयोग होता है, जिससे कट्टर ब्राह्मण बिल्कुल ही घृणा करते हैं। इसीलिये लोगों ने यह मतलब लगा लिया है कि भूमिहार लोग ब्राह्मण दर्जे से हट कर राजपूत दर्जे को प्राप्त हो गये हैं और उनकी पदवियों को बहुधा अपने नामों के पीछे लगाया करते हैं। महाराजा बनारस, जो बनारस के भूमिहार ब्राह्मणों के माननीय नेता हैं, महाराज ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह कहलाते हैं। महाराजा के वंश के निकट या दूर के सभी लोग 'सिंह' कहलाते हैं। (३) भूमिहार लोग ब्राह्मणों के षट्कर्मों में से तीन ही करते हैं, अर्थात् वे लोग दान देते हैं, परन्तु लेते नहीं, यज्ञ करते हैं, परन्तु करवाते नहीं, और पवित्र ग्रन्थों को पढ़ते हैं, परन्तु पढ़ाते नहीं[1]।

सर हेनरी इलियट ने कहा है कि 'भूमिहार लोगों के वास्तल्कि मूल का कुछ पता सम्भवतः हमें गर्गभूमि और वत्सभूमि इन नामों से चलता है, जो हरिवंश (पुराण) में क्षत्रिय ब्राह्मण और काशी के राजाओं के वंशज लिखे गये हैं। उनका भूमि नाम और काशी (बनारस) के पास निवास भी इस अनुमान के अनुकूल है। इसके अतिरिक्त सर्यूपारी ब्राह्मणों में आजकल गर्ग और वत्सगोत्र भी पाये जाते हैं।

जैसा प्रथम कह चुके हैं, उससे यह बात तो ठीक है कि ये लोग बनारस और उसके आस-पास में बहुत पाये जाते हैं। परन्तु प्राचीन काशी के राजाओं के वंशज नहीं कहलाते। यद्यपि महाराजा बनारस भूमिहार हैं इसमे सन्देह नहीं है, परन्तु इनका वंश केवल गत शताब्दी के पूर्वार्द्ध से यहाँ पर सिद्ध होता है। इसमें कोई प्रमाण नहीं है कि प्राचीन समय में भी काशी के राजा भूमिहार ही थे। इस देश की अन्य जातियों के लोग, जिनके मध्य में ये लोग रहा करते हैं, इन्हें अज्ञान वश कभी भूमिहार, कभी गौतम और ठाकुर कहा करते हैं। मेरा विश्वास है कि साधारण बातचीत में इनके नाम के साथ ब्राह्मण शब्द नहीं लगाया जाता है। परन्तु इन्हें ब्राह्मण मानने के विपरीत यह कोई सच्चा प्रमाण नहीं है। क्योंकि भूमिहार लोग अपने को ब्राह्मण कहते, ब्राह्मणों के ही गोत्र, उनकी ही पदवियों और वंशनाम रखते और अधिकांश ब्राह्मणों के ही रस्म रिवाजों को करते हैं। इसीलिये इनके विपक्ष में कोई उचित प्रमाण न होने के कारण इन्हें अवश्य ब्राह्मण समझना चाहिये।

बनारस के गौतम लोग भूमिहार कहलाते हैं। यह बात इस कारण से है कि वहाँ भूमिहार लोग अधिकांश गौतम गौत्री ही हैं। गौतम गोत्र के अतिरिक्त भी भूमिहार ब्राह्मणों में गोत्र पाये जाते हैं। इसके सिवाय गोकि विशेषतः भूमिहार ब्राह्मण सरवरिया ब्राह्मणों से ही मिले हुए हैं तथापि, बहतु से भूमिहार ब्राह्मण खास कनौजिया ब्राह्मण भी हैं। जैसे, चैनपुर के

१. ये तीन कारण, जिनसे लोग भूमिहार ब्राह्मणों को हीन समझने का भ्रम करते हैं, प्रथम ही खण्डित किये जा चुके हैं और यह प्रमाणित किया जा चुका है कि कृषि ब्राह्मणों का प्रधान कर्म है और राय, सिंह इत्यादि पदवियाँ भी क्षत्रिय या ब्राह्मण विशेष की न होकर उन सभी की हैं जो इसके योग्य थे या हैं। इसीलिये ब्राह्मणों और अन्य जातियों में भी आज तक पायो जाती हैं। और वस्तुतः ब्राह्मण त्रिकर्मा ही होते हैं, न कि षट्कर्मा होना उनका धर्म है, यह भी सिद्ध उो चुका है। यज्ञ करा या पढ़ा करके केवल द्रव्यार्जन करना अनावश्यक है, जिसे भूमिहार ब्राह्मण नहीं करते। परन्तु उपकार केलिए या धर्मार्थ पढ़ाने आदि से उन्हें इन्कार नहीं है। परन्तु मिस्टर शेरिंग ने तो अन्य लोगों की धारणा मात्र बतलाई है, न कि अपनी राय। अब तो सब करते हैं।

भूमिहार बाबुआन कनौजिया ब्राह्मण हैं। वे लोग एकसरिया कहलाते हैं और उनका गोत्र पराशर और पदवी दीक्षित है।

जो अन्य जाति के लोगों में बिल्कुल ही नहीं पाये जाते, ऐसे जो केवल ब्राह्मण सम्बन्धी संकेत और नाम इन भूमिहार ब्राह्मणों में पाये जाते हैं, उनके मुकाबले में, इन लोगों को ब्राह्मण सम्बन्धी रस्म रिवाजों और स्वभाव के मुकाबले में और इन लोगों के ब्राह्मण होने के दावे के भी मुकाबले में मिस्टर कैम्पबेल की वह उक्ति तुच्छ या अनादरणीय है, जो उनके हाल के भारतीय जाति विवरण सम्बन्धी ग्रन्थ के ६६वें पृष्ठ में है कि 'इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह जाति ब्राह्मण और कुछ नीच जातियों के मेल से बनी है।' क्योंकि वे अपने इस कथन की पुष्टि में इससे अधिक प्रमाण नहीं देते कि 'ये लोग मजबूत और लड़ाके पड़ोसियों में रहा करते और चाल ढाल में ब्राह्मणों की अपेक्षा क्षत्रियों से अधिक मिलते हैं[1]।'

सर हेनरी इलियट की सप्लीमेण्टल ग्लासरी में जो मिस्टर बीम्स की सम्मति भूमिहार लोगों की शारीरिक रचना के विषय में है वह सत्य और उल्लेख योग्य है अर्थात् वे कहते हैं कि 'ये लोग बहुत ही सुन्दर मनुष्य जाति के हैं और इनकी शरीर रचना पूर्णतया सुन्दर और आर्यों की शारीरिक बनावट जैसी है।' परन्तु उनका यह कथन कि 'ये लोग साहसी और झटपट उबल पड़ने वाले, एवं निःसन्देह झगड़ालू होते हैं' बहुत ही सख्त (कड़ा) है, जिसको प्रमाणित करना जरा टेढ़ी खीर है।

भूमिहार ब्राह्मणों में सबसे प्रसिद्ध बनारस में गौतम गोत्र और मिश्र पदवी वाली विप्र शाखा है, जिसमें महाराज बनारस अपने सम्बन्धी बड़े-बड़े वंशों के साथ सम्मिलित हैं और भूतपूर्व राजा सर देवनारायण सिंह और उनके पुत्र राजा शम्भुनारायण सिंह का वंश भी उसी में शामिल है। ब्राह्मणों की कौथुमी शाखा ही इनकी शाखा और सामवेद ही वेद है। इन लोगों के तीन प्रवर गौतम, अंगिरस् और औतथ्य हैं, जिनकी सूचना के लिये यज्ञोपवीत में तीन ग्रन्थियां दी जाती हैं। ये लोग यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा वाले भूमिहार ब्राह्मणों के साथ विवाह करते हैं और इनके विषय की कथा ऐसी है जिसमें इनलोगों का सम्बन्ध सर्यूपार के मधुबनी ग्राम के सर्यूपारी ब्राह्मणों से सिद्ध होता है। जिनके विषय में यह कहते आश्चर्य होता है कि वे लोग षट्कर्मा ब्राह्मण हैं। इस सम्बन्ध से यह भी पता चलता है कि भूमिहार ब्राह्मण, जो अब केवल तीन कर्म करते हैं, प्रथम कट्टर और षट्कर्मा ब्राह्मण ही थे।'

शेरिंग साहब ने पूर्वोक्त ग्रन्थ के द्वितीय खंड के १८९ और २२९ पृष्ठों में लिखा है कि :– The truth is that the word Bhumihar applies to Rajputs as well as to Brahmans. A similarity of nature, however, amounting even to an exact correspondence, is frequently found subsisting between Brahmans and Rajputs. Both races have their Gautams, their Bhumihars, their Kinwars and likewise; have the same Gotras, thereby professing to be descended from the same Rishis or sages of primitive Hinduism.

१. इन बातों का खण्डन उनके पूर्वोक्त रस्म रिवाजो इत्यादि से ही हो गया, जो केवल ब्राह्मणों में पाये जाते हैं। और जमींदारी करने के कारण मजबूती वगैरह की जरूरत मजबूर होकर ही पड़ती है। अतएव मिस्टर शेरिंग इस विषय में कैम्पबेल का अनादर करते हैं।

अर्थात् 'सत्य बात तो यह है कि भूमिहार शब्द का प्रयोग राजपूत और ब्राह्मण दोनों जातियों में किया जाता है। राजपूतों और ब्राह्मणों में स्वभाव की भी समानता पाई जाती है' जो ठीक-ठीक मिल जाती है। दोनों में गौतम, भूमिहार, किनवार आदि भेद और बहुत से एक ही गोत्र पाये जाते हैं, जिससे यह कहा जाता है कि वे लोग एक ही ऋषि के वंशज हैं।'

श्री युक्त योगेन्द्रनाथ भट्टाचार्य, एम० ए०, डी० एल० की सम्मति भूमिहार ब्राह्मणों के विषय में दी जा चुकी है। यहां केवल उनके कथन के उस अवशेष्ट अंश को लिखते हैं, जिसमें उन्होंने मिस्टर रिजले तथा अन्य लोगों के मिथ्या आक्षेपों का युक्तियों द्वारा खण्डन किया है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिन्दू कास्ट्स ऐण्ड सेक्ट्स' के १०९-११३ पृष्ठों में इस प्रकार लिखा है :-

The Bhumihar Brahmans of Behar and Benares—There are various legends regarding the origin of the caste. The Bhumibar Brahmans themselves claim to be true Brahmans, descended from the rulers whom Parsuram set up in the place of the Kshatriya kings slain by him. The Brahmans and the Kshatriyas of the country look down upon them and insinuate that they are of a mixed breed, the offspring of Brahman men and Kshatriya women. It is even said that the class was formed by the promotion of low caste men under the orders of a minister to a Raja, who wanted a very large number of Brahmans to celebrate a religious eeremony; but for whom his minister could not procure the required number of true Brahmans. But the legendry theory is strongly contradicted by the Aryan physiognomy of the Bhumihars, who in respect of personal appearance are in no way inferior to the Brahmans or the Rajputs. One of the most important points of difference between the Bhumihar Brahmans and the majority of the ordinary Brahmans is, that while the latter are divided into only those Exogamous classes called Gotras, the former have among them, like Rajputs, a two-fold division based upon both Gotra and tribe. From this circumstance Mr. Risley has been laid to conclude that the Bhumihar Brahmans are an offshoot of the Rajputs and not true Brahmans. But as there are similar tribal divisions among the Maithila Brahmans of Tirhut and the Saraswat Brahmans of the Punjab, it might, on the same ground, be said that the Saraswats and the Maithias are offshoots of the Rajputs.

In theory that Bhumihar Brahmans are an offshoot of the Rjaputs, involves the utterly unfounded assumption that any of the military clans could have reason to be ashamed of their caste-status. The 'royal race' had very good reason to be proud of such surnames as Sinha, Roy and Thakur, and it seems very unlikely that any of their clans could, at any time, be so foolish as to club together for the purpose of assuming the Brahmanic surnames of Dube, Tewari, Chaube and Upadhyay. On the theory

that the Bhumihar Brahmans are an offshoot of the Rajputs, the clans that now profess to be Bhumihar Rajputs, are residents to that havestuck to their original status, and have never aspired to a higher one. But on this supposition it would be difficult to find any reason for the distinctions between Bhumihar Rajputs and the ordinary Rajputs.

The usual surnames of the Bhumihar Brahmans are the same as those of the other Brahmans of northern India. Being a fighting caste, a few of them have the Rajput surnames.

अर्थ यह है '**बिहार और बनारस के भूमिहार ब्राह्मण**—इस जाति की उत्पत्ति के विषय में बहुत सी किम्वदन्तियां हैं। भूमिहार ब्राह्मण स्वयं अपने आप को पक्के ब्राह्मण कहते हैं और उन ब्राह्मणों के वंशज बतलाते हैं, जिन्हें परशुराम जी ने क्षत्रियों को मारकर उनकी जगह स्थापित किया था। इस देश के ब्राह्मण और क्षत्रिय उनको हीन दृष्टि से देखते और चुपके से इशारा करते हैं कि वे लोग ब्राह्मण पुरुष और क्षत्रिया स्त्री के संयोग से उत्पन्न हुए हैं। यह भी कहा जाता है कि यह जाति उन नीच जातियों के पुरुषों से बनी है जो किसी राजा के मंत्री की आज्ञा से ब्राह्मण बना दिये गये। क्योंकि उस राजा ने किसी धार्मिक कार्य के करने के लिये बहुसंख्यक ब्राह्मणों के लाये जाने की इच्छा प्रगट की थी; परन्तु वह मंत्री उतने ब्राह्मण न पा सका। परन्तु ये सब किम्वदन्तियां भूमिहार ब्राह्मणों की शारीरिक रचना से ही अच्छी तरह खण्डित हो जाती हैं। क्योंकि देह की बनावट में वे लोग ब्राह्मणों या क्षत्रियों से किसी प्रकार न्यून नहीं हैं। बहुत से साधारण ब्राह्मणों और भूमिहार ब्राह्मणों में भेद होने के प्रसिद्ध कारणों में से एक यह भी है कि साधारण ब्राह्मणों का विभाग गोत्रों के ही अनुसार होता है परन्तु राजपूतों की तरह भूमिहार ब्राह्मणों में भी गोत्र और अवान्तर जाति दोनों के अनुसार विभाग होता है। इसी को देख कर मिस्टर रिजले ने यह नतीजा निकाला है कि भूमिहार ब्राह्मण राजपूतों के वंशज हैं, न कि सच्चे ब्राह्मण। परन्तु अवान्तर जाति के अनुसार तिर्हुत के मैथिल ब्राह्मणों और पंजाब के सारस्वत ब्राह्मणों में भी ऐसे ही विभाग पाये जाते हैं। अतः इसी पूर्वोक्त कारण से मैथिल और सारस्वत ब्राह्मण भी राजपूतों के वंशज सिद्ध हो सकते हैं[1]।

भूमिहार ब्राह्मण राजपूतों के वंशज हैं, इस कल्पना के मानने में यह भी बिल्कुल ही निर्मूल कल्पना माननी होगी कि कोई जाति युद्ध विशारद बनने में अपने जातीय दर्जे के सम्मुख (विचार से) लजा सकती थी (क्योंकि उसे राजपूत बन जाना पड़ता)। राजपूत जातियां अपनी सिंह, राय और ठाकुर आदि पदवियों का बड़ा अभिमान रखती थीं। इससे यह कल्पना एकदम असम्भव जान पड़ती है कि उनमें से कोई जातियाँ ऐसी मूर्ख हो गईं, जिससे वे एक दल में इसलिये पृथक हो गईं कि उनको ब्राह्मणों को दूबे, तिवारी, चौबे और उपाध्याय इत्यादि पदवियाँ मिलें। भूमिहार ब्राह्मणों को राजपूत वंशज मानने में यह भी बात माननी होगी कि जो राजपूत अपने को भूमिहार कहते हैं वे अपनी प्राचीन ही दशा में पुराने वाशिन्दों की तरह पड़े हुए हैं और ऊँचे दर्जे की कभी इच्छा नहीं करते। साथ ही, उनके और

१. वस्तुतः तो सभी ब्राह्मणों में दोनो प्रकार के विभाग पाये जाते हैं, क्योंकि खैरी के ओझा और पिण्ड के तिवारी ये विभाग तो गौत्र के अनुसार नहीं हैं और न दुमटिकार इत्यादि ही।

साधारण राजपूतों के बीच कोई अन्तर मालूम करना इसी कल्पना के कारण कठिन हो जावेगा।

भूमिहार ब्राह्मणों की पदवियाँ विशेष कर वे ही हैं जो उत्तर भारत के अन्य ब्राह्मणों की। परन्तु वीर जाति होने के कारण उनमें से कुछ लोगों ने राजपूतों की पदवियों को भी स्वीकार कर लिया है।

मुजफ्फरपुर के गजेटियर में मिस्टर एल० एस० एस० ने लिखा है कि :–

These traditions are not recognzied by the Babhans themselves, who claim to be true Brahmans. According to their own account, they are pure Brahmans, and have been recognized as such from the rest of the Brahmans only in having taken to cultivation and given up the principal functions of Brahmans connecred with priestcraft, viz, officiating as priests in religious Ceremonies, leading teaching Vedas, and receiving alms; and they therefore call themeslves Bhumihar Brahmans. They clain that, even at the present day Maithil Brahmans, who seccede from their own community, are admitted, among them on condition that they give up occupations, and they contend that many of their ceremonies are performed in the same manners and styles, and with the same Mantras as those of the Brahmans.

अर्थात् 'बाभन इन किंवदन्तियों को स्वयम् नहीं मानते और अपने सच्चे ब्राह्मण होने का दावा रखते हैं। उनके कथननुसार वें लोग सच्चे ब्राह्मण हैं और अनादि काल से सच्चे ब्राह्मण माने जाते हैं। उनका कहना है कि अन्य ब्राह्मणों से उनका भेद इसलिये है कि वे खेती करते हैं और पुरोहिती सम्बन्धी प्रधान कर्मों को बिल्कुल नहीं करते। अर्थात् न पुरोहिती करते, न वेदों को पढ़ाते और न दान लेते हैं और इसी से भूमिहार ब्राह्मण कहलाते हैं। उनका दावाा है कि आज तक भी जो मैथिल ब्राह्मण अपने समाज से अलग होना चाहता है वह हमारे समाज में इस शर्त पर मिला लिया जाता है कि वह फिर पुरोहिती नहीं करेगा। वे लोग यह भी कहते हैं कि हमारे बहुत से कर्म उसी रीति से और उन्हीं मंत्रों द्वारा किये जाते हैं, जैसे अन्य ब्राह्मणों के।'

The Right Hon'ble Sir Richard Temple, Bart, M. P., G. C. S., C. I. E, D. L., LL. D., F. R. S. Governor of Bombay, Lieutennat Governor of Bengal and Finance Minister to India Government (राइट आनरेब्ल सर रिचर्ड टेम्पुल, बार्ट ने जो बम्बई के गवर्नर, बंगाल के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर और भारत सरकार के अर्थ सचिव थे), अपनी पुस्तक 'सन् १८८० ई०, को भारत वर्ष' (India in 1880) के १११ और ११७ पृष्ठों में इस प्रकार लिखा है :–

Higher in the scale are those Brahmans who follow secular pursuits, apart from their brethren of the priestly orders. Their influence in landed concerns is comparatively sligh in Northern India, but is considerable in Eastern, western and Central India and almost dominant in many parts of the country.

The priestly classes are still numerous through out the Empire. The Hindu priest-hood includes only those Brahmans who follow religious calling, and not those who are engaged in secular pursuits, though a certain sanctity is attached to them.

अर्थात् 'प्रतिष्ठा की दृष्टि से वे ही ब्राह्मण बड़े माने जाते हैं जो दुनियाबी कार्य (व्यापार और कृषि आदि) करते हैं और अपने पुरोहित भाइयों से पृथक् हैं। यद्यपि उनकी जमींदारी उत्तर भारत में कुछ कम है, तथापि पूर्व, पश्चिम और मध्य भारत में अच्छी है और देश के बहुत से भागों में तो बहुत ही प्रबल या अधिक है।

पुरोहिती करने वाले भी ताहम बहुत हैं और ब्रिटिश राज्य भर में फैले हुए हैं। हिन्दू पुरोहित वे ही ब्राह्मण लोग कहलाते हैं जो केवल धार्मिक काम किया करते हैं, न कि वे लोग भी, जो दुनियबी काम करते है, गोकि बहुत अंशों में वे भी पवित्र समझे जाते हैं।

विन्सेन्ट ए० स्मिथ, एम० ए० (Vincent A. Smith, M. A.) ने भारत का 'प्रारम्भिक इतिहास' (Early History of India) के ३७४वें पृष्ठ में लिखा है कि :–

Occasionally a Raja might be a Brahman by caste. But the Brahman's natural place at court was that of minister rather than that of king. Chandra Gupta Mourya presumably was considered to be a Kshatriya, his minister Chanakya certainly was a Brahman.

अर्थ यह है कि 'कभी-कभी ब्राह्मण भी राजा हुआ करते थे। परन्तु ब्राह्मणों का राजदरबार में स्वाभाविक कार्य राजा के कार्य की अपेक्षा मंत्री का अधिक हुआ करता था। सम्भवतः चन्द्रगुप्त मौर्य क्षत्रिय समझा जाता था, परन्तु उसका मंत्री चाणक्य तो अवश्य ब्राह्मण था।'

'मीडोज टेलर' (Meadows Taylor) ने अपने 'भारत वर्ष के इतिहास' (A Student Manual of theHistory of India) के २४, ४७ और ५४ पृष्ठों में क्रमशः ऐसा लिखा है :–

Brahmans who follow the profession of the priesthood only, frequently hold themselves superior to, and distinct from others, who are soldiers or merchants, or who have taken themselves to any secular callings for a livelihood. Hence an immense variety of Brahmanical cases have been created, which, though in general terms they have not affected the peculiar sanctity and exclusiveness of their original foundation, have yet broken the unity of their order, and reduced its power.

The power of the Brahman priesthood in all Spiritual matters was very great, and they were esteemed holy, as yet they had not adopted secular employmenst and lived apart as professions of religion.

At KanauJ, in Oudh, under the hills of Nepal another great Hindu Dynaasty sprang up, or at least meterially increased in power during the period under notice. Their princes did not join the Boodhist movement. They were exclusively Hindus. and perhaps Brahmans.

It is lesat certain that they protected vast numbers of Brahmans during their persecution by the Boodhists; for one of the most numerous of the Northern Brahmanicla sects is termed Kanaujia. Grants of land were made to them, and they became farmers, as many continue to be. The Kanaujia Brahmans are not esteemed as of the purest rank by others; they seldom hold priestly offices, and many of them enter the military service. They are perhaps, the finest physical race in India and of true Aryan type.

अर्थात् 'जो ब्राह्मण केवल पुरोहिती करते हैं, वे प्राय: अपने को उन ब्राह्मणों से श्रेष्ठ और अलग समझते हैं जो योद्धा या व्यापार करने वाले होते हैं। अथवा जो जीविका के लिये कोई दुनियाबी कार्य करते हैं। इसी से ब्राह्मणों में बहुत से जाति भेद हो गये हैं, जिनसे साधारण तौर पर उनकी पवित्रता नहीं नष्ट हुई है और न उनकी जड़ ही बिगड़ने पाई है, तथापि उनकी एकता नष्ट हो गई और शक्ति घट गई।

सभी पारलौकिक कार्यों में पुरोहित का दर्जा बहुत बड़ा था एवं वे लोग पवित्र समझे जाते थे। और चूंकि अभी तक वे लोग दुनियाबी काम न करते थे, अत: केवल पृथक् रूप से पुरोहिती या धार्मिक कार्य ही में लगे रहते थे।

अवध प्रान्त की नेपाली पर्वतों की तराई में कनौज में एक दूसरा बड़ा भारी हिन्दू वंश उत्पन्न हुआ, अथवा कम से कम उस समय शक्ति सम्पन्न हुआ। उस वंश के राजा बुद्धधर्म को नहीं मानते थे और वे लोग बिल्कुल ही हिन्दू और सम्भवत: ब्राह्मण थे। कम से कम यह तो निश्चित है कि उन्होंने बहुसंख्यक ब्राह्मणों को बौद्धों द्वारा सताये जाने से बचाया। क्योंकि उत्तर भारत के ब्राह्मणों के बड़े-बड़े दलों में से एक दल कनौजिया भी है। उन लोगों को भूमि दी गयी और वे लोग कृषक हो गये, जैसा बहुत से अब तक वैसे ही पाये जाते हैं। दूसरे लोग कनौजिया ब्राह्मणों को अति उत्तम या सच्चे दर्जे के नहीं मानते। वे लोग मुश्किल से पुरोहिती करते हैं, और बहुतेरे उनमें से युद्ध का काम करते हैं। सम्भवत: वे लोग शारीरिक बनावट में सबसे अच्छे और सच्चे आर्यों के सदृश होते हैं।'

आनरेब्ल माउन्ट स्टुअर्ट एल्फिन्स्टन (Mount stuart Elphinston) ने अपनी 'हिस्ट्री आफ इण्डिया' (History of India) के १११वें पृष्ठ में लिखा है कि "A strict Brahmin performing his full ceremonies, would still be occupied for not less than four hours in the day. But even a Brahman, if engaged in worldly affairs, may perform all his religious duties within half an hour. Of the eighty four Gurus (or spiritual chiefs) of the sect of Ramanuja, for instance, seventy nine were secular Brahmins."

अर्थ यह है कि 'कट्टर ब्राह्मण अपने धार्मिक कार्यों के करने में अब भी प्रति दिन चार घंटे से कम न लगा रहेगा। लेकिन तो भी जो ब्राह्मण सांसारिक कार्यों में लगा रहता है वह आध घंटे में ही अपने धार्मिक कार्यों को कर डालता है। दृष्टान्त के लिये रामानुज सम्प्रदाय के ८४ गुरुओं में से ७९ केवल दुनियबी (सांसारिक) ब्राह्मण थे अर्थात् पुरोहित दल के न थे।'

हिन्दूस्तान के 'इम्पीरियल गजेटियर' (The Imperial Gazetteer of India), जो आक्सफोर्ड-क्लेरेन्डन प्रेस (Oxford Clarendon Press) में छपा है, के द्वितीय भाग के ३१५ पृष्ठ में इस प्रकार लिखा है :-

The eleventh and twelveth centuries were the Golden age of the new civilization. That civilization was founded partly on theocracy; partly on military despotism. The Brahmans were divine by birth. They sometimes dignified to hold the highest offices of state, but their special business was the pursuits of literature, science and philosophy; and the Rajput courts vied with each other in the patronage of learning, Brahmans of low rank were the spiritual guides (purohits) of the people and even they condescended to act as the priest of the more respectable and popular deities.

अर्थ यह है कि 'ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दियाँ (सदियाँ) नवीन सभ्यता के सत्युग थीं। वह सभ्यता कुछ तो दैविक शक्ति और कुछ नवीन सैनिक अत्याचार पर निर्भर थी। ब्राह्मण जन्म से ही देवता माने जाते थे। वे लोग कभी-कभी राज्य के सबसे ऊँचे दर्जे पर भी रहते थे, लेकिन उनका प्रधान काम साहित्य, विज्ञान और दर्शनों का पढ़ना था। विद्या की अभिभावकता या प्रभुत्व के लिये राजपूत दर्बार परस्पर चढ़ा बढ़ी किया करते थे। हीन दर्जे के ब्राह्मण ही लोगों के पुरोहित हुआ करते और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध सर्वप्रिय देवताओं के पुजारी भी हुआ करते थे।'

बस, अब हम वैदेशिक विद्वानों या अंग्रेजी लेखकों के बहुत से वचन लिखकर ग्रन्थ विस्तार करना उचित नहीं समझते। पाठकों को इतने ही से पता चल गया होगा कि उन लोगों की सम्मतियाँ इन ब्राह्मणों के विषय में कितनी अनुकूल हैं और यह भी पता लग गया होगा कि इस अयाचक ब्राह्मण समाज के विषय में जो कुछ मिथ्या आक्षेप इस देश या अन्य देश के लोगों ने किये हैं, उनका खण्डन भी उन्हीं लोगों ने करके इस बात में 'मियाँ की जूती और मियाँ का ही सिर' वाली कहावत चरितार्थ कर दी है, जिसके लिये अब पृथक् यत्न करने की आवश्यकता ही न रह गई। साथ ही, यह भी विदित हो गया कि इस देश के कोई-कोई बाबू लोग जो किसी अंग्रेजी विद्वान के लेख के एक अंश को लेकर इस ब्राह्मण समाज पर आक्षेप कर बैठते हैं वे कितनी भूल करते हैं क्योकि ऐसा कोई आक्षेप नहीं है जिसका खण्डन उसी अंग्रेज विद्वान या अन्य विद्वानों ने न किया हो। अत: ऐसे साहसियों को अब इस ग्रन्थाञ्जन से अपने ज्ञानचक्षु को निर्मल कर लेना और करने का उद्योग करना चाहिए जिससे भविष्य में ऐसा ही साहस करने से पश्चात्ताप और निन्दा का भागी न होना पड़े। अन्त के वाक्यों ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि पुरोहिती करना हीन ब्राह्मणों का ही काम है और था, न कि श्रेष्ठ और प्रतिष्ठितों का, जैसा सभी लोग समझते थे और समझते हैं।

अब सभी विद्वन्मण्डली से बद्धाञ्जलि यही प्रार्थना है कि जो कुछ बातें इस द्वितीय 'कण्टकोद्धार' नामक परिच्छेद में किसी के वाक्यों के खण्डन मण्डन रूप में कही गई हैं, उनका निष्पक्षपात भाव से परिशीलन कर हंसवत् नीरक्षीर का विवेक करें और साथ ही यह भी ध्यान रखें कि ये बातें उन विपरीत लेखकों या अन्य समाज पर आक्षेप दृष्टि से नहीं लिखी गई हैं, किन्तु केवल अपने पक्ष की परिपुष्टि के लिये । जैसा मीमांसा भाष्यकार श्री शबर स्वामी ने कहा कि 'नहि निन्दा निन्द्य, निन्दयितु प्रवर्त्तते, किन्तु निन्दितादितरत्प्रशंसयितुम्' । अर्थात् किसी की निन्दा ग्रन्थों में इसलिये नही की जाती है कि वह वास्तव में निन्द्य समझा जावे। किन्तु निन्दित वस्तु से भिन्न वस्तु की प्रशंसा के ही लिये हुआ करती है।'. इसलिये इसे आक्षेप समझ कर व्यर्थ किसी को दुखी न होना चाहिये।

क्योंकि किसी का दिल नाहक ही दुखाना हमें इष्ट नहीं है। और यदि कहीं आपाततः आक्षेप प्रतीत हो तो वह प्रसंगवश दूसरे लोगों की राय ही होगी, न कि हमारा स्वतन्त्र लेख होगा।

उपसंहार में उस विश्व व्यापक अन्तर्यामी से यही प्रार्थना है कि वह अपने नैसर्गिक अनुकम्पा सलिल से लोगों की बुद्धि के कालुष्य का संक्षालन कर देवे, जिससे लोग स्वाभाविक रागद्वेष रहित होवें और परस्पर भातृभाव की अभिवृद्धि करें। साथ ही, लकीर के झूठे फकीर न हो तथ्यातथ्य का विचार करें, निष्पक्षपातभाव का आदर करना सीखें, हमारे इस केवल परोपकारार्थ परिश्रम से लाभ उठाने का यत्न करें और लाभ उठावें। और इन अयाचक दलीय ब्राह्मणों को भी ऐसी सुबुद्धि और जागृति का प्रदान करे कि ये लोग अपने वास्तविक पवित्र और सर्वोत्तम ब्राह्मण स्वरूप को पहचान कर उस के कर्मों में यत्नशील होवें, कल्पित बाह्य आक्षेपों का मर्दन कर निर्द्वन्द्व बनें और अपने आन्तरिक छिद्रों को ऐसा दूर करें कि उनका निशान भी न रहने पावे। जिससे इस प्रकार बाह्य कण्टक और आन्तरिक छिद्रों को हटा देने से स्थायी गुणवान हो इस लोक और परलोक में देववत् पूजित और प्रतिष्ठित होवें।

॥ ॐ शम् ॥

इति श्री ब्रह्मर्षिवंशविस्तरे कण्टकोद्धारो नाम द्वितीयं प्रकरणम् ॥

ब्रह्मर्षि वंश विस्तर।

पूर्व परिशिष्ट।

अहिंसैकपरा नित्यमप्रतिग्राहिणस्तथा।
सत्रिणो दाननिरताः ब्राह्मणाः पंक्तिपावनाः बृ. उशनाः।

(१) स्फुट प्रश्न समालोचना।

यद्यपि पूर्व के दो प्रकरणों में युक्ति और प्रमाणों द्वारा ब्राह्मणों के वास्तविक स्वरूप और धर्मों के प्रदर्शन कर देने, याचक और अयाचक दल वाले ब्राह्मणों का परस्पर प्रसिद्ध विवाह सम्बन्ध एवं खान-पान दिखला देने और अज्ञान तथा द्वेष मूलक अयाचक ब्राह्मणों के ऊपर किये गये निर्मूल, अतएव मिथ्या आक्षेपों को विविध उपायों द्वारा विधिवत् निर्मूल कर देने से अयाचक ब्राह्मणों का सर्वोत्तम और शास्त्र सिद्ध वास्तविक स्वरूप अच्छी तरह विदित ही हो गया। अतः अब कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। तथापि दो एक प्रसिद्धतर प्रश्नों की मीमांसा करते और बंगदेशीय कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में से दो चार प्रसिद्ध घरों के साथ भी विवाह सम्बन्ध दिखलाते हुए अत्यन्तोपयोगी और नित्य कर्त्तव्य सन्ध्योपासन एवं श्राद्धादि विषयों की आवश्यकता और उनमें भोजन कराने योग्य ब्राह्मणों का निरूपण करके इस ग्रन्थ को सम्पूर्ण करना है। इसीलिये थोड़ा सा यह यत्न और भी कर दिया जाता है। यद्यपि जिन प्रश्नों की मीमांसा यहाँ की जावेगी उनकी भी सामान्य रूप से प्रथम ही आलोचना हो चुकी है, तथापि वे बहुत प्रसिद्ध या प्रचलित हैं, इसीलिए उनका विशेष रूप से विचार किया जाता है।

प्रथम और सबसे प्रचलित प्रश्न तो यह है कि जब कभी और जहाँ कहीं ब्राह्मणों के स्वरूप या धर्म का विचार उपस्थित होता है, वहाँ लोग झट यह कह बैठते हैं कि, अजी साहब! जैसी कान्यकुब्ज और सर्यूपारी आदि ब्राह्मणों की उत्पत्ति शास्त्रों में मिलती है, एवं क्षत्रिय वगैरह की भी, वैसी भूमिहार आदि ब्राह्मणों की उत्पत्ति का तो कहीं पता नहीं है, फिर यदि इनके विषय में कुकल्पनाएँ न हों तो और होवे क्या? और यदि आप इनके विषय में किसी तरह का दावा करते हैं तो बस, इनकी उत्पत्ति कहीं दिखला दीजिये, हम आपकी सब बात मानने को तैयार हैं। इस पर यदि उन लोगों से यह कहा जावे कि अच्छा, तो फिर प्रथम आप ही बतलाइये कि कान्यकुब्ज, सर्यूपारी या गौड़ आदि की उत्पत्ति कहां लिखी है? तो वे लोग झटपट बोल बैठते हैं कि 'ब्राह्मणऽस्य मुखमासीत्" इस वेद मंत्र, 'लोकानां तु विवृद्धर्थम् मुखबाहूरुपादतः। ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्त्तयत्'। इस मनुवाक्य और समस्त पुराणों में ही लिखी है। इसमें पूछनें की क्या बात है? परन्तु विचारने की बात है कि जिन वचनों का नाम ऊपर लिया गया है उनमें केवल ब्राह्मण शब्द आया है, न कि कान्यकुब्ज या गौड़ आदि शब्द आये हैं। वहां कान्यकुब्जोऽस्य मुखमासीत्', 'गौडोऽस्य मुखमासीत्' ऐसा तो लिखा हुआ है नहीं। अब यह देखना चाहिये कि उस ब्राह्मण शब्द से कान्यकुब्ज या गौड़ आदि ब्राह्मण ही लिये जावेंगें और भूमिहार, त्यागी, पश्चिमा आदि ब्राह्मण

नहीं, इसमें प्रमाण ही क्या है? क्या इसकी कोई रजिस्टरी या हुलिया उनके पास खासतौर पर है कि वहां ब्राह्मण शब्द उन्हीं का वाचक है, कि त्यागी आदि ब्राह्मणों का भी? यह अन्ध पक्षपात या मिथ्या अभिनिवेश नहीं है तो और है क्या?

दूसरी बात यह है कि जब कान्यकुब्ज लोग स्वयं ही इस बात को स्वीकार करते हैं कि काश्यप गोत्रवाले सभी कान्यकुब्ज मदारपुर के अधिपति भूमिहार ब्राह्मणों के ही वंशज हैं और उन काश्यप गोत्रवाले कान्यकुब्जों का खानपान या विवाह सम्बन्ध सभी गोत्रवाले कान्यकुब्जों से होता है और सर्यूपारी लोग भी उन्हीं कान्यकुब्जों की एक शाखा अपने को स्वीकार करते हैं। तो फिर हमारा इस विषय में केवल इतना वक्तव्य है कि आप सर्यूपारी या कान्यकुब्ज ही अपनी-अपनी उत्पत्तियाँ बतलावें, उसी से भूमिहार आदि ब्राह्मणों की उत्पत्ति का भी पता चल जावेगा, क्योंकि वे लोग भूमिहार ब्राह्मणों के ही वंशज हैं। अथवा संक्षेपतः इस उत्पत्ति वाले प्रश्न का यही उत्तर है कि भूमिहार आदि ब्राह्मण कान्यकुब्ज आदि ब्राह्मणों के पिता या पूर्वज है। जैसी कि उनकी राय और सिंह वगैरह पदवियाँ दूबे और चौबे आदि पदवियों की जन्माने वाली प्रथम ही सिद्ध की गई है। कान्यकुब्ज और भूमिहार आदि शब्दों का विचार करते हुये यह बात प्रकरण में ही सविस्तर वर्णित है। अतः इसका विशेष ज्ञान वहीं से प्राप्त कर लेना चाहिये।

दूसरा प्रश्न हुआ करता है कि यदि दान लेना ब्राह्मणों का धर्म नहीं है, तो भूमिहार ब्राह्मण कन्या दान को क्यों स्वीकार करते हैं? वाह। वाह! क्या ही अच्छा प्रश्न है! हमने यह कब कहा है कि दान लेना सर्वथा ही ब्राह्मणों का धर्म नहीं है? किन्तु उसे केवल आपद्धर्म बतलाया है, जिसका तात्पर्य यह है' कि जब जिस दान के ग्रहण किये बिना काम किसी प्रकार चल नहीं सकता, तो उस समय उसका स्वीकार ब्राह्मण कर सकता है। और कन्यादान के स्वीकार बिना किसी प्रकार भी काम चल नहीं सकता, प्रत्युत वंश या संसार का ही उच्छेद हो जावेगा और महान उत्पात मच जावेगा। इसलिये अगत्या उसके करने की शास्त्र ने भी आज्ञा दी है। परन्तु वह हमारी इच्छा पर निर्भर है, चाहे हम उसे लेवें या न। दूसरी बात यह है कि हम सामान्य रूप से दान का निषेध करते हैं, न कि नाम लेकर एक एक का। ऐसी दशा में यदि कोई विशेष वचन किसी कन्यादान आदि विशेष दान के स्वीकार की आज्ञा देता है तो उससे उस सामान्य निषेध का विशेष अंश में संकोच होकर यह तात्पर्य सिद्ध होगा कि कन्यादानादि से भिन्न दानों का स्वीकार शास्त्र निषिद्ध है, क्योंकि सामान्य शास्त्र को विशेष शास्त्र बांध लेता है। न कि उस कन्यादान स्वीकार वाले शास्त्र के विशेष वचन के बल से सभी दानों का ग्रहण करना सिद्ध हो जावेगा। यदि ऐसा होने लगे तो फिर शास्त्रों में बड़ा ऊधम मच जावेगा और 'मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि' अर्थात किसी प्राणी की हिंसा न करे। यह जो वचन सामान्यतः सभी हिंसाओं का निषेध करता है, उसके विरोधी 'अग्नीषोमीयं पशुमालभेत ' अर्थात अग्नीषोमीय याग में पशु की हिंसा (वा स्पर्श) करनी चाहिये' इस वचन के होने से उस सामान्य वचन का सम्पूर्ण बाध होने पर सभी प्रकार की हिंसाएं शास्त्र विहित हो जावेंगी। इसीलिए भगवान पतंजलि ने महाभाष्य में कहा है कि:--

प्रकल्प्य चापवादविषयं तत उत्सर्गो निविशते।

इसका तात्पर्य वही है जो पूर्व दिखला चुके हैं कि विशेष वचन के होने पर सामान्य शास्त्र का विशेष अंश में संकोच हो जाया करता है। बड़ी खूबी तो इस प्रश्न में यह है

कि जिस कन्यादान के स्वीकार से आप लोग दान लेना ब्राह्मणों का उच्च धर्म सिद्ध किया चाहते हैं, उसे ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल पर्यन्त सभी करते हैं, तो फिर क्या आपकी इस दलील के अनुसार चाण्डाल पर्यन्त सभी जातियों को दान ग्रहण करना चाहिये? तो फिर आप इस युक्ति से इतना भी कदापि सिद्ध नहीं कर सकते कि जो दान न लेवे वह श्रेष्ठ ब्राह्मण ही नहीं है।

तीसरा प्रश्न यह किया जाता है कि जैसे अन्य जातीय याचक, भिक्षु या पुरोहित दलवाले ब्राह्मणों को पूजते या प्रणाम करते हैं, वैसे ही आप के याचक या भूमिहार आदि भी किया करते हैं। तो फिर इनके विषय में संदेह या कुकल्पनायें क्यों न हों? परन्तु इस प्रश्न को भी सुनकर हंसी आती है क्योंकि यदि इसी दलील के अनुसार अयाचक ब्राह्मणों के विषय में संदेह किया जावे, अथवा वे ब्राह्मण ही न समझे जावें, तो फिर सभी ब्राह्मण कहलाने वालों की अपनी ब्राह्मणता का बाजीदावा लिखना या उससे हाथ धोना पड़ेगा। क्योंकि ऐसा प्रश्न करनेवाला जो ही याचक दल वाला ब्राह्मण होगा वही अपने गुरु या पुरोहित को वैसे ही प्रणाम करता है, या उनकी पूजा करता होगा जैसे अयाचक ब्राह्मण किया करते हैं। क्योंकि गुरु या पुरोहित तो सभी के हुआ करते हैं। तो फिर वह याचक दलवाला ब्राह्मण भी इसी दलील के मुताबिक ब्राह्मण न ठहरा। इसी प्रकार उसके गुरु या पुरोहित के भी गुरु और पुरोहित होंगे और फिर उनके भी वैसे ही होंगे और वे लोग भी अपने-अपने गुरुओं और पुरोहितों के पूजन और प्रणाम करने से ब्राह्मण न ठहरे। इसका अन्त में नतीजा यह निकलेगा कि कोई ब्राह्मण सिद्ध न हो सकेगा। यह तो वही 'सूद के लिये मूल के भी गँवाने वाली बात हुई।

बात तो असल यह है कि अधिकतर अयाचक ब्राह्मण तो पुराहिती वगैरह करते ही नहीं। ऐसी दशा में अगत्या याचक ब्राह्मणों को पुरोहित वगैरह बनाकर यदि अयाचक ब्राह्मण उन्हें प्रणाम आदि करते हैं तो इसमें हानि ही क्या है? यदि कोई ऐसा कहने का साहस करे कि सभी अयाचक सभी याचक ब्राह्मणों को प्रणाम आदि करते हैं तो यह बात कभी मानी नहीं जा सकती। जैसा प्रथम ही कह चुके हैं कि ऐसे ऐसे अयाचक दलीय ब्राह्मण वंश पड़े हुए हैं जिन्हें याचक दल वाले प्रथम ही प्रणाम करते हैं। यहाँ तक कि उस दल के राजा महाराज भी प्रणाम करते और पत्र वगैरह में भी लिखा करते हैं। इसके लिये प्रमाण स्वरूप बहुत से पत्र और व्यवस्थायें प्रथम ही प्रकरण में प्रदर्शित कर दी गई हैं। जिन्हें इस बात का आग्रह हो उन्हें हम ऐसे-ऐसे लाखों दृष्टान्त दिखला सकते हैं। यदि कहीं-कहीं पुरोहितादि से भिन्न याचक दलवालों को भी अयाचक ब्राह्मण लोग प्रणाम करते हों तो इससे भी पुरोहित दलवालों की उत्तमता सिद्ध नहीं हो सकती, किन्तु इसका कुछ और ही कारण है। वह यह कि जिन गुरु या पुरोहित से भिन्न किसी-किसी याचक ब्राह्मण को अयाचक ब्राह्मण कहीं कहीं प्रणाम कर देते हैं, उनके पूर्वज प्रथम बड़े-बड़े तपस्वी और शास्त्रज्ञ थे। जिससे 'विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यम्' अर्थात ब्राह्मणों में अधिक ज्ञान वाला ही ज्येष्ठ समझा जाता है, न कि अधिक अवस्था वाला' इस मनुवचन के अनुसार उन्हें ज्येष्ठ समझ कर गुरु या पुरोहित न होने पर भी अयाचक ब्राह्मणों के पूर्वज प्रणाम कर दिया करते थे। जैसा करना उचित हो है और याचक दल वाले भी किया करते थे और करते भी हैं परन्तु सभी घुरहू कतवारू को आँखे मूंदकर प्रणाम न तो याचक ही और न अयाचक ही किया करते थे, या किया करते हैं। काल पाकर यद्यपि उनके वशंजों में वह योग्यता न भी रह गई जिससे उन्हें

प्रणाम करना उचित था परन्तु लोक की अन्धपरम्परा है। जो बात एक बार चल पड़ी उसे रोकना सहज नहीं है, जैसा नीतिकारों ने कहा कि है कि:—

गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकाः।

अर्थात 'संसार अन्धपम्परा की तरह देखा देखी किया करता है न कि सच्ची या झूठी, अथवा योग्य, अयोग्य, बातों का विचार किया करता है' । इसलिये अब तक उनके वशंजों को कहीं—कहीं लोग प्रणाम कर दिया करते हैं । इसके लिये दृढ़तर प्रमाण एक तो याचकों का आचरण ही है और दूसरा यह है। जैसा कि सभी लोग जानते और देखते हैं कि प्रायः प्रत्येक गांव में जो गोसाईं हुआ करते हैं जिन्हें लोग घरबारी गोसाईं या अतीथ कहा करते हैं और जिनके लड़के बाले भी होते हैं उन्हें प्रायः सभी जाति के लोग जहाँ तहाँ 'नमो नरायन बाबा, कहकर प्रणाम किया करते हैं। परन्तु यदि विचार दृष्टि से देखा जावे तो वास्तव में वे किसी के प्रणाम के योग्य नहीं हैं, क्योंकि जैसा लिखा है कि जो कि संन्यासी होकर स्त्री रख लेता है, या विवाह कर लेता है वह और उसके वंशज पतित हो जाते हैं । वे वचन इस प्रकार हैं:–

चाण्डालाः प्रत्यवसिताः परिव्राजकतापसाः ।
तेषां जातान्यपत्यानि चाण्डालैः सह वासयेत् । द. ।४।२०॥
येतुप्रव्रजितापत्या याथैषाबीजसंततिः ।
विदुरानामचाण्डाला जायन्तेनात्रसंशयः ।अ.३५।१६५।
यस्तु प्रव्रजिताज्जातो ब्राह्मण्यांशूद्रतस्तथा ।
द्वावेतौ विद्धि चाण्डालौ सगोत्राद्यस्तु जायते । ग. ।४२।२१॥

अर्थात् 'दक्षस्मृति का वचन है और अग्निपुराण में भी लिखा है कि जो चाण्डाल, अन्य के छूने के अयोग्य, सन्यासी और तपस्वी (वानप्रस्थ) हैं, इन चारों के लड़के बराबर ही होते हैं। अतः उन्हें चाण्डालों के साथ ही रहना या खाना-पीना चाहिये। जो लोग संन्यास लेकर स्त्री से भोग करते हैं और उससे जो लड़के उत्पन्न होते हैं वे सभी विदुर नाम वाले चाण्डाल होते हैं, इसमें संशय नहीं है। गरुड़ पुराण के प्रेतखण्ड में लिखा है कि जो संन्यासी से जन्मा हो, जो ब्राह्मणी में शूद्र के वीर्य से पैदा हो, जो सगोत्र में ब्याह से पैदा हो उन्हें चांडाल जानो। अग्नि पुराण वाला ही श्लोक अत्रिस्मृति के आठवें अध्याय का १८वां है। इसी लिये इन लोगों का यात्रा वगैरह में दर्शन निषिद्ध मानते हैं। न कि संन्यासी (दण्डी) का दर्शन निषिद्ध है क्योंकि वह तो नारायण स्वरूप है। जैसा कि लिखा है कि :–

दण्डग्रहणमात्रेण नरोनारायणो भवेत् ।

अर्थात 'ब्राह्मण दण्ड धारण करने से ही नारायण स्वरूप हो जाता है।' और नारायण का दर्शन सिवाय मंगल के अमंगल हो सकता नहीं। अस्तु, फिर भी लोग उन्हें प्रणाम करते ही हैं। इसका कारण यह है कि इन गोसाइयों के पूर्वज प्रथम सच्चे संन्यासी थे । इसी से लोग उन्हें 'ॐ नमोनारायणाय' कहकर प्रणाम किया करते थे। परन्तु यद्यपि काल पाकर वे या उनके बाद के जो साधु (संन्यासी) उस स्थान पर रहते थे; वे भ्रष्ट भी हो गये और स्त्री लड़केवाले हो गये परन्तु लोग वही पुरानी लकीर के फकीर होकर अब तक वैसे ही प्रणाम करते चले आते हैं, और वही 'ॐ नमोनारायणाय'' बिगड़कर 'नमोनरायन बाबा !' हो गया तो इतना होते रहने पर भी वे गोसाईं वास्तव में उन प्रणाम करने वालों से श्रेष्ठ हो सकते हैं? बस, यही दशा अन्य याचक ब्राह्मणों की भी समझ कर सन्तोष कर लीजिये ।

चौथा प्रश्न जो प्रायः हुआ करता है कि यदि अयाचक ब्राह्मण लोग उत्तम ब्राह्मण हैं तो फिर दान देकर क्यों नहीं पचा लेते ? परन्तु यह निरी अनभिज्ञता को प्रगट करता है । क्योंकि दान लेकर हजम करना तो प्रायः श्रेष्ठ ब्राह्मणों का कर्म है ही नहीं, प्रत्युत वे लोग उसे निन्दित कर्म ही समझते हैं, यह बात प्रथम ही सिद्ध की जा चुकी है । और वास्तव में पूछा जाय तो जो याचक ब्राह्मण दान लेकर हजम करने के अभिमान वाले हैं वे भी यह नहीं समझते कि, वे लोग आया दान लेकर उसे हजम कर लेते हैं अथवा अपनी हजम करने वाली शक्ति का कुछ भी विचार न कर इतना दान ले रहे हैं जिससे उन्हें बदहजमी हो रही है और अन्त में पेट के फट जाने से मर जावेंगे। अर्थात् उन्हें परलोक में नरक वासी होना होगा। क्योंकि प्रथम ही यह सिद्ध कर चुके हैं कि बिना तप करने और वेद पढ़ने वाले के जो दूसरा ब्राह्मण प्रतिग्रह की इच्छा भी करता है वह दान को लेकर ही पत्थर की नाव की तरह डूब जाता है । जैसा मनु भगवान ने कह दिया है कि–

अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः ।
अम्भस्यश्मप्लवेनेव सह तेनैव मज्जति ॥

तो फिर कैसे कहा जा सकता है कि आजकल के निरक्षर भट्टाचार्य लोग दान को हजम करने वाले हैं? किन्तु हार कर यही मानना पड़ेगा कि उन्हें बदहजमी हो रही है। परन्तु अयाचक ब्राह्मण लोग तो प्रायः कीचड़ में पाँव डाल कर पीछे धोना और बदहजमी से तंग होना नापसन्द करते थे और करते हैं क्योंकि बुद्धिमान उसे ही कहते हैं जो कभी हीन कार्य न करे । यदि दान को हजम करने के ही अभिमान से आप श्रेष्ठ बनने की डींग हाँकते हैं, तो फिर महापात्र या महाब्राह्मण तो आपसे भी श्रेष्ठ सिद्ध हो जावेंगे, क्योंकि जिस शय्यादान आदि को आप भी हजम नहीं कर सकते, उसे वे पचा जाने का दावा करते हैं। इतना ही क्यों? शायद आपकी इस दलील के मुताबिक चाण्डाल सभी ब्राह्मणों से अथवा सारे संसार से श्रेष्ठ ठहर गया, क्योंकि जिस ग्रहण काल के दान को आप लोग कोई पचाने की शक्ति नहीं रखते उसे वह हांक देकर पचाने का दावा रखता है। इसलिये ऐसे-ऐसे प्रश्नों की चर्चा करना न चाहिये, प्रश्न तो दूर रहें, नहीं तो लेने के देने पड़ जावेंगे। ये सब प्रश्न अत्यन्त प्रसिद्ध है, अतः इनका स्वतन्त्र विचार कर दिया।

ब्राह्मण तो दस प्रकार के ही हैं, ग्यारहवें कहाँ से आ गये? इसका तो उत्तर हो ही चुका है कि अयाचक ब्राह्मण दशविध ब्राह्मणों से बाहर हैं नहीं। इसके अतिरिक्त 'सारस्वताः कान्यकुब्जाः' इत्यादि श्लोक आधुनिक हैं। क्योंकि वे जितनी जगह मिलते हैं उतने ही प्रकार से उलटा पलटा लिखे हैं और किसी किसी ने उनमें सर्यूपारी आदि पद घुसेड़कर अन्य पद निकाल दिये हैं। जैसा पं० दुर्गादत्त के दिग्विजय और ब्राह्मणोत्पत्तिमार्त्तण्ड आदि से विदित है। यथा :–

कार्णाटकाश्च तैलंगा द्राविडा महाराष्ट्रकाः ।
गुर्जराश्चेति पञ्चैव द्राविडा विन्ध्यदक्षिणे ॥ १६॥
सारस्वताः कान्यकुब्जा गौडा उत्कल मैथिलाः ।
पंच गौडा इतिख्याता विन्ध्यस्योत्तरवासिनः ॥ १७ ॥ पृ० ३ ॥
त्रिहोत्रा ह्यग्निवैश्याश्च, कान्यकुब्जाः कनौजियाः ।
मैत्रायणाः पंचविधा एते गौडाः प्रकीर्त्तिताः ।३। पृ० ३४९ ॥ ब्राह्मणोत्पत्ति मार्तण्ड

सारस्वताः कान्यकुब्जा गौडाश्च मैथिलोत्कलाः।
गौडाः पंच समाख्याता विन्ध्यस्योत्तरवासिनः ॥ २३ ॥
महाराष्ट्रा द्राविडाश्च तैलंगा गुर्जरास्तथा।
कार्णाटा द्राविडाः पंच विन्ध्यदक्षिणवासिनः ।२४। पृ०- १२ ॥ शैवब्राह्मणोत्पत्ति
महाराष्ट्राश्च तैलंगा द्राविडा गुर्जरास्तथा।
कारणाटाश्च पंचैते दाक्षिणात्याः प्रकीर्त्तिताः ॥
सरय्वाः कान्यकुब्जाश्च सारस्वताश्च मैथिलाः।
नागराश्चेति पंचैते पंच गौडा प्रकीर्त्तिताः ॥ पृ० २ ॥ पं० दुर्गादात्तदिग्विजय

यदि शक्ति संगम तन्त्र के भी होते तो भी उनकी ऐसी दुर्दशा न होती। अथवा उसमें मानने पर भी वह भी आधुनिक ही है। साथ ही, यदि दस प्रकार के ही ब्राह्मण माने जावेंगे तो सर्यूपारी, सनाढ्य, जिझौतिया और बंगाली आदि ब्राह्मणों की क्या व्यवस्था होगी ? वैसी ही यहां भी जान लीजिये। अवशिष्ट सब प्रश्नों या बातों का विचार तो अच्छी तरह से प्रथम ही किया जा चुका है।

(२) वंगीय ब्राह्मण सम्बन्ध।

अब कान्यकुब्ज तथा अन्य देशों से बंगाल में गये हुए प्रसिद्व कान्यकुब्ज और सर्यूपारी ब्राह्मणों के साथ दो एक भूमिहार ब्राह्मणों के विवाह सम्बन्ध दिखला देते हैं:–

मुर्शिदाबाद–लालगोला के राजा साहब योगेन्द्र नारायण राय गाजीपुर–सुर्वत पाली से गये हैं और कौशिक गोत्री भूमिहार ब्राह्मण हैं। उनकी पुत्री की शादी गाजीपुर–सुहवल निवासी श्री श्यामनारायण राय के पुत्र श्री सुरेन्द्र राय, एम. ए. से हुई थी और राजा साहब के दामाद श्री गिरीश नारायण राय के घर भी श्री श्याम नारायण का सम्बन्ध है। उक्त राजा साहब के दामाद श्री शरदिन्दु नारायण राय और श्री द्विजेन्द्र नारायण राय दो भाई मुर्शिदाबाद–जमुवाँ में रहते हैं। उन्हीं शरदिन्दु नारायण राय की बहन का विवाह रिपन कालेज के प्रिंसिपल डाक्टर रमेन्द्र सुन्दर द्विवेदी जी से हुआ था जो जुझौतिया ब्राह्मण पुण्डडीक गोत्र के थे। उक्त राजा साहब के राजकुमार श्री सत्येन्द्र नारायण राय और हेमेंन्द्र नारायण राय की लड़कियों से मुर्शिदाबाद–टेयां ग्रामवासी डाक्टर नृसिंह प्रसाद द्विवेदी के पुत्रों की शादी हुई है, कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। मुर्शिदाबाद–शेखअलीपुर में श्री शशि भूषण राय रहते हैं, जो सावर्ण्य गोत्र वाले भूमिहार बाह्मण बलिया के नरही ग्राम से गये हैं। उनकी शादी राजशाही जिले के हरग्राम के निवासी सर्यूपारी गर्ग गोत्र वाले श्री सुमेश्वर राय शुक्ल के यहाँ हुई है और उसी ग्राम में मालदह–सिंहाबाद के राजा साहब भैरवेन्द्र नारायण राय की बहन का ब्याह श्री रामचन्द्र शुक्ल के यहाँ हुआ है। राजा भैरवेन्द्र नारायण राय किनवार ब्राह्मण गाजीपुर के सोनाड़ी से गये हैं। मुर्शिदाबाद–आलमशाही ग्राम निवासी सर्वेश्वर पाण्डे से पूर्वोक्त श्री शशिभूषण राय की बहन का विवाह हुआ है। बागडांडा निवासी श्री मानवेन्द्र नारायण की बहन से जैसोर–वन्दनपुर निवासी मन मोहन पाण्डे (मिनर्वा थियेटर वाले) का विवाह है और उनके भाई का विवाह मालदह–बुलबुल चण्डी निवासी राजेन्द्र बाबू की स्त्री की बहन से हुआ है। ये दोनों जमुवाँ के पास खोसावासपुर निवासी श्री किष्टनाथ राय

की कन्याएं हैं। इत्यादि सहस्त्रों विवाह सम्बन्ध वहाँ भी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध–सर्यूपारियों, कनौजियों और जिझौतियों से हुये और होते हैं।

(३) आवश्यक कर्त्तव्य

जैसे यह बात दिखलाई गई है कि गोसाई लोगों को प्रणाम करना बहुत ही निन्दित और अनुचित है। परन्तु लोग अन्ध परम्परावश करते चले आते हैं और समझदार होने पर पीछे से भी छोड़ देते हैं। उसी तरह यह भी देखा जाता है कि बहुत से ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वंशों के आचार्य या मंत्र देने वाले (कान फूँकने वाले) गुरु वे ही गोसाई या निरक्षर भट्टाचार्य और दुराचारी याचक दलवाले ब्राह्मण उसीं पूर्वोक्त अन्धपम्परा के अनुसार चले आते हैं परन्तु उनको हटाकर अपने ही दल का गुरु बनाना चाहिये, क्योंकि अब उनमें वह योग्यता न रह गई जो उनके पूर्वजों में थी। शास्त्रों का तो यहां तक कथन है कि यदि गुरुवंश या आचार्य वंश अपढ़ और दुराचारी हो गया हो तो उसे आगे के लिये ही नहीं छोड़ देना चाहिये, किन्तु जिस समय ही उसके इन दुर्गणों का पता लग जावे उसी समय उसे त्याग देना चाहिये। जैसा वाल्मीकि रामायण के अयोध्या काण्ड में श्री रामजी के प्रति लक्ष्मणजी ने कहा है कि :—

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः
उत्पथं प्रतिपन्नस्य शास्त्रैस्त्यागो विधीयते ॥

अर्थात 'गुरु भी यदि अभिमानी हो जावे, अपने कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को न जाने और शास्त्रनिन्दित काम करता हो तो उसका दण्ड करने और उसे त्याग देने की आज्ञा शास्त्रों में है।

पूर्व ग्रन्थ के अवलोकन से ब्राह्मणों का सच्चा स्वरूप और उनके धर्मों का यथावत् ज्ञान हो गया और यह विदित हो गया कि उनका सच्चा स्वरूप वही है जो अयाचक नामधारी ब्राह्मणों का सदा से चला आता है। इसलिये औशनस स्मृति में लिखा भी है कि :–

अहिंसैकपरो नित्यमप्रतिग्राहिणस्तथा।
सत्रिणो दाननिरताः ब्राह्मणाः पंक्तिपावनाः ॥

अर्थात 'जो ब्राह्मण हिंसा और प्रतिग्रह (दान लेने) से रहित हों और सत्र(यज्ञ) करनेवाले एवं दान देने वाले हों, वे पंक्तिपावन कहलाते हैं, अर्थात जिस पंक्ति में बैठते हैं उसे पवित्र कर देते हैं'। इसलिये हमारा वक्तव्य इन अयाचक ब्राह्मणों के स्वरूप या धर्म के विषय में कुछ रह नहीं गया, जिसके लिये विवाद या आकांक्षा होवे। इसी से हम इन सब विषयो कों अब यहाँ ही छोड़कर ग्रन्थ के अन्त में ब्राह्मण आदि वर्णों के अत्यन्त उपयोगी और नित्य अथवा नित्य नहीं तो बहुधा पड़ने वाले विषयों का कुछ संक्षेपतः निरूपण कर देते हैं। जिससे लोगों को अल्प श्रम से ही विशेष लाभ होवे। मनु भगवान ने अपनी स्मृति के द्वितीय अध्याय में ब्राह्मण के जन्म से लेकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश से प्रथम के धर्मों को बतलाया है। वे संक्षेपतः ये हैं:—

नामधेयं दशंम्यांतु द्वादश्यां वास्य कारयेत्।
पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ॥ ३० ॥

मंगल्यं ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलान्वितम् ।
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ॥ ३१ ॥
शर्मवद्ब्राह्मणस्यस्याद्राज्ञोरक्षासमन्वितम् ।
वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम् ॥ ३२ ॥
ततश्च नाम कुर्वीत पिता वै दशमेऽहनि ।
देवपूर्वं नराख्यं हि शर्मवर्मादिसंयुतम् ॥ ३ । १० । ८ ॥
शर्मवद्ब्राह्मणस्योक्तं वर्मेतिक्षत्रसंयुतम् ।
गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः ३ ।१० ।९ ।
चतुर्थे मासि कर्त्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात् ।
षष्ठेऽन्नप्राशनंमासि यद्वेष्टं मंगल कुले ॥ ३४ ॥
चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः ।
प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्त्तव्यं श्रुतिचोदनात् ॥ ३५ ॥
गर्भाष्टमेऽब्देकुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशेविशः ॥ ३६ ॥
ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पंचमे ।
राज्ञोबलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे ॥ ३७ ॥
आषोडशाद्ब्राह्मणस्य गायत्री नातिवर्त्तते ।
आद्वाविंशात् क्षत्रबंधोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥ ३८ ॥
अत ऊर्ध्वं त्र्योऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः ।
सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः ॥ ३९ ॥
नेतैरपूतैर्विधिवदापद्यपिहि कर्हिचित् ।
ब्राह्मान्यौनांश्च सम्बन्धानाचरेद्ब्राह्मणैः सहः ॥ ४० ॥
कार्ष्णरौरववास्तानि चर्माणि ब्रह्मचारिणः ।
वसीरन्नानुपूर्व्येण शाणक्षौमाविकानि च ॥ ४१ ॥
मौञ्जात्रिवृत्समाकार्या श्लक्ष्णाविप्रस्यमेखला ॥
क्षत्रियस्य तुमौर्वीज्या वैश्यस्यशेणतान्तवी ॥ ४२ ॥
कार्पासमुपवीतंस्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत् ।
शणसूत्रमयं राज्ञो वैश्स्याविकसौत्रिकम् ॥ ४४ ॥
ब्राह्मणो वैल्वपालाशौ क्षत्रियावाटखादिरौ ।
पैलवौदुम्बरौ वैश्यो दण्डानर्हन्ति धर्मतः ॥ ४५ ॥
केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्डः कार्यः प्रमाणतः ।
ललाटसम्मितो राज्ञःस्यात्तु नासान्तिकोविशः ॥ ४६ ॥
पिता पितामहा भ्राता ज्ञातयो गोत्रजाग्रजाः ।

उपायनेऽधिकारीस्यात् पूर्वभावे परः परः ॥ वृद्धगर्ग ॥
पितैवोपनयेत्पूर्वं तदभावे पितुः पिता ।
तदभावे पितुर्भ्राता तदभावे तु सोदरः ॥ वृद्धगर्ग ॥
उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः ।
आचारमग्निकार्यं च सन्ध्योपासनमेवच । ६९ ॥
प्राक्कूलान्पर्युपासीत पवित्रैश्चैवपावितः ।
प्राणायामैस्त्रिभिःपूतस्ततओंकारमर्हति ॥ ७५ ॥
अकारं चाप्युकारंच मकारंच प्रजापतिः ।
वेदत्रयान्निरदुहद् भूर्भुवःस्वरितीति च ॥ ७६ ॥
त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादंपादमदूदुहत् ।
तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्यापरमेष्ठी प्रजापतिः ॥ ७७ ॥
एतदक्षरमेतां च जपन्व्याहृतिपूर्विकाम् ।
सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते ॥ ७८ ॥
सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत् त्रिकं द्विजः ।
महतोऽप्येनसो मासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते । ७९ ॥
एतयर्चा विसंयुक्तः काले च क्रियया स्वया ।
ब्रह्मक्षत्रियविड्योनिर्गर्हणां याति साधुषु ॥ ८० ॥
ओंकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्यथाः ॥
त्रिपदा चैव गायत्री विज्ञेयं ब्रह्मणोमुखम् ॥ ८१ ॥
योऽधीतेऽहन्यहन्येतांस्त्रीणिवर्षाण्यतन्द्रितः ।
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान् ॥ ८२ ॥
एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परन्तपः ।
सावित्र्यास्तुपरंनास्तिमौनात्सत्यंविशिष्यते ॥ ८३ ॥
विधियज्ञोज्जपयज्ञा विशिष्टो दशभिर्गुणैः ।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ॥ ८५ ॥
पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत् सावित्रीमार्कदर्शनात् ।
पश्चिमां तु समासी नः सम्यगृक्षविभावनात् ॥ १०१ ॥
पूर्वां सन्ध्यांजपंस्तिष्ठेन्नैशमेनो व्यपोहति ।
पश्चिमांतुसमासीनोमलंहन्तिदिवाकृतम् ॥ १०२ ॥
न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।
सशूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥ १०३ ॥
विप्रोवृक्षस्तस्यमूलंचसन्ध्यावेदाः शाखाधर्मकर्माणि पत्रम्
तस्मान्मूलंयत्नतोरक्षणीयंछिन्नेमूलेनैवशाखानपत्रम् । वि०।

शय्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत् ।
शय्यासनस्थश्चैवैनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत् ॥ ११९ ।
ऊर्द्ध्वंप्राणाह्युत्क्रामन्ति यूनःस्थविर आयति ।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ॥ १२० ॥
अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि सम्प्रवर्द्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम् ॥ १२१' ॥
आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने १२५
ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत् क्षत्रबन्धुमनामयम् ।
वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च ।. १२७ ॥
उपाध्यायान्दशाचार्यआर्याणां शतं पिता ।
सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिच्यते ॥१४५॥
न हायनैर्नवलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ॥ १५४ ॥
विप्राणां ज्ञानतोज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणान्तु वीर्यतः ।
वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः ॥ १५५ ॥
न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः ।
यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरंविदुः ॥ १५६ ॥
यथाकाष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नामबिभ्रति ॥ १५७ ॥
यथाषण्ढोऽफलः स्त्रीषु यथा गौर्गविचाफला ।
यथाचाज्ञेऽफलंदानं तथा विप्रोऽनृचोऽफलः ॥ १५८ ॥
वेदमेव सदाऽभ्यस्येत्तपस्तप्स्यन्द्विजोत्तमः ।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ॥१६६ ॥
नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ ।
गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनोभवेत् ॥१९८ ॥
यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् ।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्त्तुमं वर्षशतैरपि ॥ २२७ ॥
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा ।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥२२८ ॥
सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः ।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ॥ २३४ ॥

इसका अनुवाद यह है कि 'पुत्र के उत्पन्न होने के ग्यारहवें अथवा तेरहवें दिन उसका नाम रक्खे । अथवा अच्छी तिथि, अच्छे मुहूर्त्त और शुभ नक्षत्र में उसके बाद भी जब चाहे तभी रक्खे । ब्राह्मण का नाम मंगल सूचक होना चाहिये। पुत्र का नाम पिता ही रक्खे और वह नाम पुरुष वाचक और आदि में देवताओं के नाम से युक्त हो जैसे सोम शर्मा आदि, न कि यमुना प्रसाद वगैरह । ब्राह्मण के नाम के अन्त में शर्मा पदवी, क्षत्रिय की वर्मा, वैश्य की गुप्त और शूद्र की दास पदवी होनी चाहिये । बच्चे को जन्म वाले (प्रसूति) गृह से चौथे मास में बाहर निकालना और छठे महीने में अन्न प्राशन (अन्न खिलाना) उचित है, अथवा जैसी कुल परम्परा होवे वैसा ही करे । एक अथवा तीन वर्ष के होने पर बालक का मुण्डन करवाना चाहिये । गर्भ के आठवें वर्ष ब्राह्मण का, ग्यारहवें वर्ष क्षत्रिय का और बारहवें वर्ष वैश्य का उपनयन संस्कार (यज्ञोपवीत वा जनेऊ) होना चाहिये । परन्तु यदि ब्राह्मण को ब्रह्मतेज की, क्षत्रिय को बल की और वैश्य को धन की इच्छा होवे तो क्रम से ५, ६ और ८ वर्षों में ही यज्ञोपवीत करे । जन्म से १६ वें वर्ष तक भी ब्राह्मण का, २२ वें तक क्षत्रिय और २४ वें तक ,वैश्य का यज्ञोपवीत कर देने से वे पतित नहीं हो सकते । परन्तु इसके उपरान्त बिना यज्ञोपवीत के वे लोग गायत्री पतित और सत्पुरुषों द्वारा निन्दित होते और व्रात्य कहलाते हैं। ये लोग प्रायश्चित्त[1] करके फिर संस्कार और यज्ञोपवीत द्वारा यदि पवित्र न किये जावें, तो ब्राह्मण इनके साथ खान-पान, पठन-पाठन और विवाह सम्बन्ध कभी न करे । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ब्रह्मचारियों को बिछाने के लिये क्रमशः कृष्णमृग, रुरुमृग और बकरे के चर्म और पहनने के लिये सन, दुकूल और भेड़ के बालों के कम्बल रखने होते हैं । ब्राह्मण ब्रह्मचारी के लिये कमर में पहनने को तीन तागे वाली मूँज की मौंजी (मेखला) बनानी चाहिये, क्षत्रिय के लिये मूर्वा औषध की धनुष की तांत की तरह और वैश्य को सन की तीन

---

१. व्रात्य लोगों के लिये प्रायश्चित्त मनुस्मृति के ग्यारहवें अध्याय में इस प्रकार लिखा हुआ है:—

येषां द्विजानां सावित्री नानूच्येत यावििधि ।
तांश्चारयित्वा त्रीन्कृच्छान् यथाविध्युपनाययेत् ॥१९१ ॥

अर्थात 'जिन लोगों के संस्कार ठीक समय पर न होने से वे व्रात्य हो गये हों, उनसे तीन कृच्छ्र (प्राजापत्य) व्रत करवा कर पुनः विधिवत् उनके यज्ञोपवीत करवावे।

प्राजापत्य का स्वरूप मनु भगवान ने स्वयं आगे बतलाया हैः—

त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम् ।
त्र्यहं परंच नाश्नीयात् प्राजापत्यं चरन्द्विजः ॥ २११ ॥

अर्थात 'प्रथम तीन दिन तक दिन में, बाद तीन दिन तक रात्रि में और फिर तीन दिन तक बिना माँगे किसी समय मिलने पर एक बार भोजन करे और फिर तीन दिन तक भूखा ही रहे तो एक प्राजापत्य (कृच्छ्र) व्रत होता है।

सायंद्वाविंशतिर्ग्रासाः प्रातः षड्विंशतिस्तथा ।
अयाचिते चतुर्विंशत् परं चानशनं स्मृतम् ॥
कुक्कुटाण्डप्रमाणं च यावांश्च प्रविशेन्मुखम्
एतं ग्रासं विजानीयात् शुद्ध्यर्थम ग्रासमात्मनः ॥
हविष्यंधान्नमश्नीयाद्यथा रात्रौ तथा दिवा ।

अर्थात 'आपस्तम्ब लिखते हैं कि दिन में २६, रात्रि में २२ और बिना मांगे २४ ग्रास खावे। ग्रास मुर्गी के अण्डे भर के होवें, अथवा मुख में जितना जा सके उतने बड़े होवे । सर्वदा हविष्य (खीर वगैरह) भोजन करना चाहिये। किसी के मत से व्रात्यस्तोम भी प्रायश्चित के लिये करते हैं।

तागे वाली । ब्राह्मण का जनेऊ रूई का, क्षत्रिय का सन और वैश्य का भेड़ के बाल का होता है। ब्राह्मण के लिये बिल्व अथवा पलाश, क्षत्रिय को वट या खदिर और वैश्य के लिये पीलुवृक्ष या गूलर के दण्ड बनाने चाहियें । ब्राह्मण का दंड शिखा तक, क्षत्रिय का ललाट तक और वैश्य का नासिका तक का होना चाहिये । यज्ञोपवीत काल में प्रथम तो पिता ही गायत्री का उपदेश करे, परन्तु उनके न रहने पर पितामह, भाई, दायाद और गोत्र वाले क्रम से एक के न रहने पर दूसरे गायत्री का उपदेश करें । परन्तु जब ये कोई न होवे तो कुलीन ब्राह्मण ही करे । यज्ञोपवीत के बाद गुरु शौच, आचार, अग्निहोत्र और सन्ध्योपासन शिष्य को सिखलावे । कुशों का अग्रभाव पूर्व को करके उन पर बैठे और कुशों से शरीर पर जल छिड़क और तीन प्राणायाम करके पुनः ओंकार युक्त गायत्री का उच्चारण करे। ओंकार में जो अ, उ और म ये तीन अक्षर हैं। उन्हें और भूः, भुवः और स्वः इन महाव्याहृतियों को परमात्मा ने क्रम से तीनो वेदों से मथ कर निकाला है। और गायत्री मन्त्र के २४ अक्षरों में जो आठ-आठ अक्षरों के तीन चरण हैं उन्हें भी क्रम से तीनों वेदों से ही दूह कर भगवान ने निकाला है। इसलिये सायं प्रातःकाल जो ब्राह्मण ओंकार, व्याहृति और गायत्री मन्त्र को मिलाकर–ओं भूर्भुवःस्वःतत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्–जप करता है उसे सब वेदों के पाठ करने का पुण्य मिलता है।[1]

एक मास तक ग्राम से बाहर एक हजार प्रतिदिन गायत्री जप करने से महापाप से भी आदमी छूट जाता है, जैसे सर्प केंचली से अलग हो जाता है। सायं प्रातःकाल जो द्विज इस गायत्री का जप और अग्नि होत्र आदि नहीं करता है उसको सत्पुरुष निन्दित समझते हैं । ओंकार और तीन महाव्याहृतियों के सहित गायत्री मन्त्र परमात्मा का मुख है। जो ब्राह्मण इस पूर्वोक्त गायत्री का तीन वर्ष तक बराबर जप करता है वह स्वेच्छाविहारी और परमात्मा का स्वरूप हो जाता है । ओंकार परमात्मा का स्वरूप है, प्राणायाम से बढ़ कर तपस्या और गायत्री से बढ़ कर मन्त्र नहीं है और मौन रहने की अपेक्षा सत्य बोलना अच्छा है । सब यज्ञों की अपेक्षा बोल कर भी गायत्री या अन्य मन्त्र का जप करना दस गुना फल देता है, केवल ओष्ठ हिलते हुये जप करना सौगुना मन से जप करना तो हजार गुना फल देने वाला है। प्रातः काल में खड़ा होकर तारे दीखते रहने से सूर्य दीखने तक और सांयकाल में सूर्य

---

१. यद्यपि यह प्रमाण मिलता है:—

ओंकारं प्रर्वमुच्चार्य भूर्भुवः स्वस्तथैवच ।
अन्ते च पूणवंदद्यादेतज्जपमुदाहृतम् ॥

अर्थात 'प्रथम ओंकार, फिर भूर्भुवः स्वः और उसके बाद 'तत्सवितुः' इत्यादि, और अन्त में पुनः ओंकार लगा कर जप करना चाहिये' । तथापि देवी भागवत में लिखा है कि :—

सम्पुटैकषडोंकारा गायत्री त्रिविधा मता ।
तत्रैकप्रणवा ग्राह्यागृहस्थैर्ब्रह्मचारिभिः ॥

अर्थात 'दो, छह और एक ओंकार वाला, इस प्रकार गायत्री मन्त्र तीन प्रकार का है । उनमें से गृहस्थ और ब्रह्मचारी को एक ओंकार वाले का अर्थात आदि में ही ओंकार लगाकर जप करना चाहिये' । इस वचन के अनुसार दो ओंकार वाला वानप्रस्थ के लिये है, गृहस्थ और ब्रह्मचारी एक ही ओंकार लगावें, ऐसा ही प्रतीत होता है। मनु जी की भी ऐसी ही प्रतीत होती है।

दीखते रहने से तारे दीखने तक बैठ कर जप करे । प्रातःकाल खड़ा होकर गायत्री जपने से रात्रि भर भूल चूक वाले पापों का, और सांयकाल बैठ कर जपने से दिन भर के ऐसे पापों का नाश हो जाता है । जो एक दिन भी प्रातः और सायं संध्या नहीं करता वह शूद्र की तरह किसी द्विज कर्म का अधिकारी नहीं रहता है । ब्राह्मण रूप वृक्ष की जड़ संध्या, शाखा वेद और अन्य धर्म कर्म पत्ते हैं, अतः सध्या रूप जड़ की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि जड़ के कटने पर शाखा और पत्ते एक भी नहीं रह सकते । अपने से श्रेष्ठ माता-पिता वगैरह के आने के समय छोटे लोगों के प्राण ऊपर को निकलते हैं, परन्तु उठकर उन बडों को प्रणाम करने से फिर शरीर में रह जाते हैं । माता-पिता आदि बड़ों के साथ अथवा उनके सामने आसन या खाट पर न बैठे और यदि बैठा भी हो तो उनके आने पर उठ कर उन्हें प्रणाम करे । जो वृद्ध जनों को नित्य प्रणाम और उनकी सेवा करते हैं उनकी आयु, विद्या, यश और बल बढ़ते हैं। अपने से छोटे ब्राह्मण को प्राणम करने पर 'हे सौम्य' आयुष्मान्भव ' ऐसा कहना चाहिये । यदि समान अथवा अल्प अवस्था वाला विशेष अपरिचित कोई ब्राह्मण मिले तो उसे प्रणाम न कर 'कुशलम्?' ऐसा पूछे, क्षत्रिय को 'अनामयम्?' वैश्य को 'क्षेमम्?' और शूद्र को 'आरोग्यम्? ऐसा केवल पूछ भर लेवे । दस उपाध्याय के बराबर एक आचार्य सौ आचार्यों के बराबर एक पिता और हजार पिता के बराबर एक माता श्रेष्ठ है। अवस्था अधिक होने, बाल पकने और अधिक धन और बन्धु वर्ग होने से ब्राह्मण श्रेष्ठ नहीं होता । किन्तु जो ही वेद शास्त्र का ज्ञाता है वही श्रेष्ठ है। अधिक ज्ञान वाला ही ब्राह्मण, अधिक बल वाला क्षत्रिय, अधिक धन वाला वैश्य और अधिक अवस्था वाला शूद्र ही श्रेष्ठ माना जाता है । इसलिये बाल पकने से ही ब्राह्मण श्रेष्ठ नहीं होता । किन्तु यदि अल्प अवस्था वाला भी वेदज्ञ हो तो वही श्रेष्ठ है. जैसे काठ का हाथी और चमड़े का मृग बेकार है, वैसे ही जो ब्राह्मण नहीं पढ़ता वह नाम मात्र के लिये है । जैसे स्त्री के लिये नपुसंक पति, गाय के लिये गाय और मूर्ख को दान देना ये सब निष्फल हैं, वैसे ही वेद का न जानने वाला ब्राह्मण भी निष्फल है। यदि ब्राह्मण को तप करना हो तो सदा वेद का अभ्यास करे, क्योंकि उसके लिये वही महान तप है। ज्ञानोपदेश करने वाले गुरु तथा श्रेष्ठ जनों के सम्मुख नीचे आसन पर बैठे। उनके सामने हाथ पाँव फैल कर न बैठे। पुत्र के जन्म में माता पिता को जो क्लेश होता है उसका उद्धार पुत्र से सैकड़ों वर्षों में भी नहीं हो सकता । माता, पिता और ज्ञानोपदेश करने वाले गुरु के इच्छानुसार ही सदा काम करे, क्योंकि उनके प्रसन्न रहने से ही सब तपस्याओं के फल मिल जाते हैं। जो इन तीनों का आदर करता है, उसने सब धर्म कर लिये। परन्तु जो इनका अनादर करता है उसके सभी धर्म निष्फल हो जाते हैं।'

असपिण्डा च या मातुर सगोत्रा च या पितुः ।
सा प्रशस्ता द्विजातोनां दारकर्मणि मैथुने ॥ ५ ॥
महान्स्यपि समृद्धानि गोऽजाविधनधान्यतः ।
स्त्री सम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥
हीनक्रियम निष्पुरुषं निश्छन्वो रोमशार्शसम् ।
क्षेय्यामयाव्यपस्मारि रिवत्रिकुष्ठिकुलानि च ॥ ७ ॥
अ।च्छाद्य चार्चयित्वाच श्रुतिशीलवते स्वयम् ।
आःहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्त्तितः ॥ २७ ॥
न कन्यायाः पिता विद्वान् गृह्णीयाच्छुल्कमण्वपि ।

गृह्णंश्छुल्कं हि लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी ॥ ५१ ॥
स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवन्ति मानवाः ।
नारी यानानि वस्त्रं वा ते पापा यान्त्यधोगतिम् ॥ ५२ ॥
कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥ ६३ ॥
पंच सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः ।
कण्डनी चोदकुम्भश्च वध्यते यास्तुवाहयन् ॥ ६८ ॥
तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थम महर्षिभिः ।
पंच क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥ ३९ ॥
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्प्पणम् ।
होमोदैवोबलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ ७० ॥
देवताऽतिथिभृत्यानां पितॄणामात्मनश्च यः ।
ननिर्वपति पंचानामुच्छ्वसन्न स जीवति ॥ ७२ ॥
कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ।
पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ॥ ८२ ॥
वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येग्नौ विधिपूर्वकम् ।
आभ्यः कुर्यादेवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥ ८४ ॥
अग्नेः सोमस्यचैवादौ तयोश्चैव समस्तयोः ।
विश्वेभ्यश्चैवदेवेभ्यः धन्वन्तरय एव च ॥ ८५ ॥
कुह्वैचैवानुमत्यै च प्रजापतय एव च ।
सहद्यावापृथिव्योश्च तथा स्विष्टकृतेऽन्ततः ॥ ८६ ॥
एवं सम्यग्घविर्हुत्वा सर्वदिक्षु प्रदक्षिणम् ।
इन्द्रान्तकाप्पतीन्दुभ्यः सानुगेभ्योबलिंहरेत् ॥ ८७ ॥
मरुद्भ्यइतितुद्वारि क्षिपेदप्स्वद्भ्यइत्यपि ।
वनस्पतिभ्यइत्येवं मुमुसलोलूखले हरेत् ॥ ८८ ॥
उच्छीर्षके श्रियंकुर्याद्भद्रकाल्यै च पादतः ।
ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्यां तु वास्तुमध्येबलिं हरेत् ॥ ८९ ॥
विश्वेभ्यश्चैवदेवेभ्यो बलिमाकाश उत्क्षिपेत् ।
दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तं चारिभ्य एवच ॥ ९० ॥
पृष्ठवास्तुनि कुर्वीत बलिं सर्वात्मभूतये ।
पितृभ्योबलिशेषं तु सर्वमं दक्षिणतो हरेत् ॥ ९१ ॥
शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम् ।
वायसानां कृमीणांच शनकैर्निर्वपेद्भुवि ॥ ९२ ॥

द्वै दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ।
भोजयत्सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्येत विस्तरे ॥ १२५ ॥
सत्क्रियां देशकालौच शौचं ब्राह्मणसम्पदः ।
पंचैतान्विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेतविस्तरम् ॥ १२६ ॥
श्रोत्रियायैवदेयानि हव्यकव्यानि दातृभिः ॥
अर्हत्तमाय विप्राय तस्मै दत्तं महाफलम् ॥ १२८ ॥
एकैकमपि विद्वांसं दैवे पित्र्ये च भोजयेत् ।
पुष्कलं फलमाप्नोति नामंत्रज्ञान्बहूनपि ॥ १२९ ॥
ज्ञाननिष्ठा द्विजाः केचित्तपोनिष्ठास्तथापरे ।
तपःस्वाध्यायनिष्ठाश्च कर्मनिष्ठास्तथापरे ॥ १३४ ॥
ज्ञाननिष्ठेषु कव्यानि प्रतिष्ठाप्यानि यत्नतः ॥
हव्यानि तु यथान्यायं सर्वेष्वेव चतुर्ष्वपि ॥ १३५ ॥
एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः ।
अनुकल्पस्त्वयं ज्ञेयः सदा सद्भिरनुष्ठितः ॥ १४७ ॥
मातामहं मातुलं च स्वस्रीयं श्वशुरं गुरुम् ।
दौहित्रं विट्पतिं बन्धुमृत्विग्याज्यौचभोजयेत् ॥ १४८ ॥
न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् ।
पित्र्ये कर्मणि तु प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः ॥ १४९ ॥
चिकित्सकान्देवलकान् मांसविक्रयिणस्तथा ॥ १५२ ॥
भृतकाध्यापको यस्तु भृतकाध्यापितस्तथा ॥ १५६
कुशीलवोऽवकीर्णी च वृषलीपतिरेवच ।
ब्राह्मैर्यौनैश्च सम्बन्धैः संयोगं पतितैर्गतः ॥ १५७ ॥
हस्तिगोश्वोष्ट्रदमको नक्षत्रैर्यश्चजीवति ॥ १६२ ॥
आचारहीनः क्लीबश्च नित्यं याचनकस्तथा ।
कृषिजीवी श्लीपदी च सद्भिर्निन्दित एवच ॥ १६५ ॥
एतान्विगर्हिताचारानपाङ्क्तेयान्द्विजाधमान् ।
द्विजातिप्रवरो विद्वानुभयत्र विवर्जयेत् ॥ १६७ ॥ याज्ञ० ।
अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु श्रोत्रियो ब्रह्मविद्युवा ।
वेदार्थविज्ज्येष्ठसामा त्रिमधुस्त्रिसुपर्णिकः ॥ २१९ ॥
स्वस्त्रीयऋत्विग्यामातृ याज्यश्वशुरमातुलाः ।
त्रिणाचिकेत दौहित्र शिष्यसम्बन्धिबान्धवाः ॥ २२० ॥
कर्मनिष्ठास्तपोनिष्ठाःपञ्चाग्निर्ब्रह्मचारिणः ।
पितमातृपराश्चैव ब्राह्मणाः श्राद्धसम्पदः ॥ २२१ ॥

इन सब पूर्वोक्त श्लोकों का तात्पर्य यह है कि 'जो स्त्री माता के पाँच पुरुषों तक की अथवा माता के गोत्र की न हो तथा पिता के सात पुरुषों तक की और पिता के भी गोत्र की न हो उससे ही विवाह करना चाहिये। जिस वंश में जातकर्म और प्रेतकर्म आदि न होते हों, केवल लड़कियां हों, वेद न पढ़ा जाता हो, शरीर में अधिक बाल होता हो, बवासीर हों, क्षय और अन्य रोग हों, श्वेत और दूसरे प्रकार के कुष्ठ हों, धन धान्य से पूर्ण भी इन दस कुलवालों के साथ विवाह न करे। कन्या और वर दोनों को प्रीतिपूर्वक बुला कर, सुन्दर वस्त्र पहना कर और आभूषणों से अलंकृत कर शास्त्र ज्ञानी और शीलवान वर को जो विधिवत् कन्यादान किया जाता है उसे ही ब्राह्मविवाह कहते हैं। कन्या का पिता वर से कुछ भी न लेवे, क्योंकि ऐसा करना कन्या विक्रय कहलाता है। जो मनुष्य मोहवश कन्या के बदले वर से द्रव्य, दासी, यान या वस्त्र आदि लेते हैं वे पापी नरकगामी होते हैं। कुत्सित विवाह करने, सन्ध्या और अग्निहोत्र आदि के न करने, वेदों के पठन पाठन न करने और विद्वान एवं तपस्वी ब्राह्मण का निरादर करने से वंश नीच हो जाते हैं। गृहस्थों के यहां चूल्हा, चक्की, ओखली, झाड़ू जल के पात्र ये पांच स्थान हिंसा के हैं, जिनसे प्रतिदिन पाप हुआ करता है। इन्हीं पाँच हत्याओं को मिटाने के लिये महर्षियों ने गृहस्थों को प्रतिदिन पंच महायज्ञ करने को बतलाया है। वेद शास्त्रों तथा स्तोत्र आदि का पठन पाठन ब्रह्मयज्ञ, तर्पण पितृयज्ञ, अग्निहोत्र अथवा अन्य गायत्री आदि मंत्र द्वारा हवन देवयज्ञ, भोजन के समय काक वगैरह की बलि (भाग) निकालना भूत यज्ञ और अतिथि सत्कार मनुष्य यज्ञ कहलाता है। जो इन पाँच यज्ञों को नहीं करता, श्वास लेता हुआ भी मुर्दा है। प्रतिदिन पितरों की तृप्ति के लिये अन्न, जल, दूध, मूल या फलों से ही श्राद्ध करे, और इसी प्रकार पितृपक्ष आदि में भी। अग्निहोत्र की अग्नि से भिन्न अग्नि में पकाये अन्न से बलि वैश्वदेव करने के लिये इन अगले मंत्रों से हवन करे। (१) अग्नये स्वाहा, (२) सोमाय स्वाहा, (३) अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा, (४) विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा, (५) धन्वन्तरये स्वाहा, (६) कुह्वैस्वाहा, (७) अनुमत्यै स्वाहा, (८) प्रजापतये स्वाहा, (९) द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा, (१०) अग्नयेस्विष्टकृते स्वाहा। इसके बाद पूर्व दिशा में, (११) इन्द्रायनमः इन्द्रपुरुषेभ्योनमः। दक्षिण दिशा में (१२) यमायनमः यमपुरुषेभ्योनमः। पश्चिम दिशा में, (१३) वरुणायनमः वरुणपुरुषेभ्योनमः। उत्तर दिशा में (१४) सोमायनमः सोमपुरुषेभ्योनमः। द्वार में, (१५) मरुद्भयोनमः, जल में (१६) अद्भयो नमः, ओखली और मूसल पर (१७) वनस्पस्पतिभ्योनमः। घर के उत्तर-पूर्व कोने या खाट के सिरहाने की ओर (१८) श्रियै स्वाहा। घर के दक्षिण-पश्चिम कोने या खाट के पांव के भाग की ओर (१९) भद्रकाल्यैनमः। मकान के मध्य में (२०) वास्तोष्पतिभ्यां नमः, आकाश में (२१) विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः, दिन में (२२) दिवाचरेभ्यो भूतेभ्योनमः, रात में (२३) नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्योनमः। काठ पर अथवा अपने पीछे, (२४) सर्वात्मभूतये नमः, दक्षिण मुख हो और जनेऊ को अपसव्य(बायें) कर (२५) स्वधा पितृभ्यः, इस मंत्र से दक्षिण दिशा में बचे अन्न की बलि देवे। थोड़ा दूसरा अन्न लेकर, (२६) श्वभ्योनमः.(२७) पतितेभ्ययो नमः, (२८) पापरोगिभ्योनमः, (२९) वायसेभ्योनमः और (३०) कृमिभ्योनमः इन मंत्रों से जमीन पर बलि देवे। इसके बाद अतिथि को भोजन करवावे।

बहुत धनी होने पर भी जब कभी श्राद्ध और यज्ञ करे तो देवयज्ञ में दो और श्राद्ध में तीन अथवा दोनों में एक ही एक ब्राह्मण खिलावे, अधिक नहीं। बहुत ब्राह्मण खिलाने से एक तो अच्छे और सुपात्र ब्राह्मण नहीं मिलते, दूसरे, उनका सत्कार ठीक नहीं होता, तीसरे

उत्तम स्थान और चौथे, उत्तम काल में उन्हें भीड़ के कारण खिला नहीं सकते और पांचवें, पवित्रता भी नहीं रह जाती। इसलिये अधिक ब्राह्मणों को भोजन न करावे। अत्यन्त योग्य और वेदशास्त्र के जानने वाले ही ब्राह्मण को यज्ञ अथवा श्राद्ध में भोजन करवाना चाहिये, तभी फल मिलता है। यज्ञ और श्राद्ध में एक एक भी विद्वान ब्राह्मण को खिलाने से महाफल की प्राप्ति होती है, न कि बहुत से मूर्खों के खिलाने से। कोई ब्राह्मण ज्ञानी, कोई तपस्वी, कोई वेद पढ़ने वाले और कोई यज्ञ आदि कर्म करने वाले होते हैं। उनमें से श्राद्ध में केवल ज्ञानी को खिलाना चाहिये, परन्तु देव कार्य में चारों प्रकार के ब्राह्मण को। यदि इस प्रकार के योग्य ब्राह्मण मिल सकें, तभी उन्हें श्राद्ध आदि में भोजन करावे। परन्तु ऐसे ब्राह्मणों के न मिलने पर सर्वदा सत्पुरुष जिन्हें खिलाया करते हैं वे ये हैं, अपने नाना, मामा, बहन के लड़के, श्वसुर, आचार्य, माता, पिता, लड़की के पुत्र, दामाद, भाई बिरादर, और यज्ञ कराने और करने वाले इनको श्राद्ध में भोजन करावे। देव कार्य में तो खिलाने के समय ब्राह्मणों की विशेष परीक्षा न भी करे, परन्तु श्राद्ध में तो यत्नपूर्वक परीक्षा करे। दवा करने वाले (वैद्य), मूर्ति दिखाकर पैसे मांगने वाले, मांस बेचने वाले, रुपया लेकर पढ़ने और पढ़ाने वाले, नाचने और गाने वाले, शूद्र अथवा अन्य जाति की स्त्री को रखने वाले, पतितों (नीचों) के साथ पठन पाठन करने वाले, हाथी, गाय, घोड़े और ऊँटों को फँसाने वाले, ज्योतिषी, भ्रष्टाचारी, नपुंसक, नित्य याच्ञा करने वाले, अपने हाथों हल जोतने वाले, फील पांव वाले, और सत्पुरुषों द्वारा निन्दित इत्यादि निषिद्ध, पंक्ति में बैठाने' के अयोग्य और अधम ब्राह्मणों को बुद्धिमान कभी यज्ञ या श्राद्ध में भोजन न करावे।

याज्ञवल्क्य स्मृति में भी लिखा है कि, युवावस्था वाले, वेदों के विलक्षण ज्ञाता, सामान्यतः वेदों और उनके अर्थों के जानने वाले, सामवेद, ऋग्वेद और यजुर्वेद के कुछ कुछ अंशों के पण्डित, बहन के लड़के, यज्ञ कराने वाले, दायाद, यज्ञ करने वाले श्वसुर, मामा, लड़की के लड़के, शिष्य, दायाद, (भाई बिरादर), नातेदार, कर्मकाण्डी और तपस्वी, अन्य योग्य ब्राह्मण, पाँचो अग्नियों की उपासना करने वाले, ब्रह्मचारी और माता पिता के भक्त ब्राह्मण, इतने ही लोगों को श्राद्ध में भोजन करवाना उत्तम है।

श्राद्ध का काल भी सामान्यतः मनुजी ने आगे कह दिया है:—

यथाचैवापरः पक्षः पूर्वपक्षाद्विशिष्यते।
तथा श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यिते॥ २७९।:
रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी कीर्त्तिता हि सा।
सन्ध्ययोरुभयोश्चैव सूर्येचैवाचिरोदिते ॥ २८०।

अर्थात् 'जैसे श्राद्ध के लिये शुक्ल पक्ष की आपेक्षा कृष्णपक्ष उत्तम है वैसे ही दिन के पूर्वार्द्ध भाग से उत्तरार्द्ध श्रेष्ठ है। रात्रि राक्षसी है, इसीलिए रात्रि को, दिन रात के सन्धिकाल में और सूर्य निकलने के बाद ही तुरन्त श्राद्ध न करे'।

घर या सपिंड (मरे या जन्मे से ७वीं पीढ़ी तक) में किसी के मर जाने या जन्म लेने से ब्राह्मण दस दिन तक अशुधि रहता और यदि जन्म या मरण के दस दिन के भीतर ही दूसरा जन्म या मरण हो जाये, तो साधारणतया दस दिन के बाद ही दूसरे जन्म और मरण का, भी आशौच मिट जाता है। जैसा कि मनु भगवान ने पांचवे अध्याय में लिखा है :—

अन्तर्दशाहे स्यातां चेत्पुनर्मरणजन्मनी।
तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्स्यात्तवनिर्दशम् ॥ ७९ ॥
शुद्धयेद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः।
वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्धयति ॥ ८३ ॥

अर्थात 'यदि जन्म के दस दिन के भीतर ही फिर जन्म और मरण हो जावे तो प्रथम के दस दिन पूरे होने तक ही ब्राह्मण अशुचि रहता है। ब्राह्मण जन्म और मरण में दस दिन तक अशुचि रहता है, क्षत्रिय बारह दिन तक, वैश्य पन्द्रह दिन तक और शूद्र एक मास तक अशुचि रहता है। इस विषय का विशेष प्रचार आगे उत्तर परिशिष्ट में मिलेगा। आशौच काल में नैमित्तिक कर्म दान आदि तो नहीं ही करने चाहिये। यही सभी ऋषियों का मत है। परन्तु नित्य कर्म सन्ध्या आदि में विवाद है। किसी का मत है कि:--

सन्ध्यां पञ्चमहायज्ञान्नैत्यकं स्मृतिकर्म च।
तन्मध्ये हापयेदेषां दशाहान्ते पुनः क्रिया ॥
मरणाशौचमाख्यातं जननेऽप्येवमेव च ॥ जाबालि ॥

अर्थात ' जाबालि स्मृति में लिखा है कि जन्म या मरण काल में दस दिन तक संध्या, पंच महायज्ञ, अन्य नित्य कर्म और प्रतिभा पूजा आदि इन सभी का त्याग कर देना और उसके बाद करना चाहिये'।

परन्तु निर्णय सिन्धु आदि ग्रन्थों में यह सिद्ध किया है कि आशौच काल में भी नित्य कर्मों का त्याग नहीं होता है। इसलिये अन्य ग्रन्थकारों ने यह लिखा है कि संध्या वगैरह नित्यकर्मों में भी जितने कर्म बिना जल के होवें, उन्हें तो कर लेवे, परन्तु आचमन या सूर्य को अर्ध प्रदानादि न करे । इसीलिये यह विषय विवाद का हो गया और इनमें बहुत से मत हो गये। ऐसी दशा में चाहे बिल्कुल ही करे या केवल गायत्री आदि जप ले और प्राणायाम कर लेवे, इसमें मर्जी की बात है। परन्तु प्रतिमा की पूजा आदि तो नहीं ही करे। यह भी लिखा है कि: --

अजागावौ महिष्यश्च ब्राह्मणी च प्रसूतिका ।
दशरात्रेण शुद्धयन्ति भूमिस्थं च नवोदकम् ॥

अर्थात 'बकरी, गाय, भैंस और ब्राह्मणी ये सब पुत्र जन्म के दस दिन बाद शुद्ध हो जाती हैं और जमीन पर पड़ा हुआ नया पानी भी शुद्ध ही होता है'। सन्ध्या काल में प्राणायाम का मंत्र यह है:---

''ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोम्:

जैसा योगी याज्ञवल्क्य ने लिखा है कि:--

सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्री शिरसा सह ।
त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥

अर्थात 'ओंकार, सप्तव्याहृति, गायत्री मंत्र और 'आपोज्योती' इत्यादि सिर मन्त्र इन सब को मिला तीन बार पढ़कर प्राणों के रोकने का नाम प्राणायाम है।'

गायत्री मंत्र से शिखा बन्धन करना और सूर्य को अर्ध भी देना चाहिये। जैसा लिखा है कि:--

स्मृत्वोंकारं च गायत्री० निबध्नीयाच्छिरवां ततः ।
कराभ्यां तोयमादाय गायत्र्या चाभिमंत्रितम् ॥
आदित्याभिमुखस्तिष्ठेंस्त्रिरुर्ध्व० सन्ध्ययोः क्षिपेत् ।
सकृदेव तु मध्याह्ने क्षेपणीयं द्विजातिभिः ॥

अर्थात् 'ओंकार सहित गायत्री पढ़कर शिखा बांधे। दोनों हाथों की अंजलि में जल ले, गायत्री पढ़कर प्रातः और सायंकाल सूर्य की तरफ ऊपर को उसे तीन बार फेंके परन्तु मध्याह्न में एक ही बार।

गायत्री मंत्र के विषय में प्रतिदिन के लिये लिखा है कि:--

अष्टोत्तरशतं नित्यमष्टाविंशतिरेव वा ।
विधिनादशकं वापि त्रिकालेषुजपेद्बुधः । व्यास ॥
आरभ्यानामिकामध्यं पर्वाण्युक्तान्यनुक्रमात् ।
तर्ज्जनीमूलपर्यन्तं जपेद्दशसु पर्वसु ॥
मध्यमांगुलिमूले तु यत्पर्वद्वितयं भवेत् ।
तं वै मेरुं विजानीयाज्जपे तं नातिलंघयेत् ॥गा. क.- ॥

अर्थात 'प्रतिदिन १०८, २८ अथवा कम से कम १० बार तीनों काल में जप करे। अनामिका अंगुली के मध्य पर्व (पोर) से आरम्भ कर क्रम से १० पर्वों पर बराबर जपे। परन्तु मध्यमा अंगुली की जड़के दो पर्वों को छोड़ देवे, क्योंकि वे अंगुली के मेरु हैं और जप में मेरु का लंघन नहीं किया जाता है'।

गायत्री मन्त्र का अर्थ यह है कि :--ॐ-ओंकार स्वरुप वा सर्वरक्षक । भूर्भुवः स्वः-तीनों लोकस्वरूप, या स्वयम्भु, सर्वाधार और आनन्द स्वरुप। तत्--सम्पूर्ण वेदों और शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित। वरेण्य--सब के भजन और प्रार्थना के योग्य । सवितुः--जगत् और प्राणियों के कल्याण को उत्पन्न करने वाले । देवस्य--स्वयं प्रकाश स्वरुप परमात्मा के । भर्गः---ज्योतिः स्वरुप को । धीमहि--हमलोग ध्यान करते हैं। यः--जो ज्योतिः स्वरूप। नः-- हमलोगों की। धियः---बुद्धियों को। प्रचोदयात्-अपनी ओर, विचार और सत्कर्मों में लगावे। अर्थात् 'सम्पूर्ण जगत को रचने वाले और प्राणियों के कल्याणकारी स्वयं प्रकाश स्वरुप परमात्मा के उस ज्योतिःस्वरुप का ध्यान हमलोग करते हैं, जो ओंकार स्वरूप, और सर्वरक्षक तीनों लोक स्वरूप और स्वंयभू, सर्वाधार,आनन्द स्वरुप सब शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित और सभी लोगों की प्रार्थना एवं भजन के योग्य है । वह ज्योतिः स्वरूप हमारी बुद्धियों को अपनी ओर, सत्कर्म और विचार में लगावे।

पुराने यज्ञोपवीत (जनेऊ) के त्यागने का मन्त्र यह है:--

एतावद्दिनपर्यन्तं ब्रह्म त्वं धारितं मया।
जीर्णत्वात्परित्यागो गच्छ सूत्र यथासुखम्।

इस मन्त्र से जनेऊ को सिर की तरफ से निकाल कर पवित्र स्थान में रख देवे। नवीन यज्ञोपवीत धारण करने के बाद पुराने को निकालना चाहिये। धारण करने का मन्त्र यह है:--

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तुतेजः
यज्ञो पवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि।

इस मन्त्र को पढ़कर गृहस्थ को सर्वदा दो जनेऊ और ब्रह्मचारी को एक धारण करना चाहिये। जनेऊ के विषय में ऐसा लिखा हुआ है:—

पृष्ठवंशे च नाभ्यां च धृतं यद्विन्दते कटिम्।
तद्धार्यमुपवीतं स्याः न्नातिलम्बं नचोच्छितम्। छं० प०॥
ब्रह्मचारिण एकं स्यात्स्नातस्य द्वे बहूनि वा॥
विना यज्ञोपवीतेन तोयं पिबति यो द्विजः।
उपवासेन चैकेन पंचगव्येन शुद्धयति॥
विना यज्ञोपवीतेन विण्मूत्रोत्सर्गकृद्यदि।
उपवासद्वयं कृत्वा दानैर्होमैस्तु शुद्धयति॥
सूतके मृतके चैव गते मासचतुष्टये।
नव यज्ञोपवीतानि धृत्वा जीर्णानि संत्यजेत्॥ संग्रह॥

अर्थ यह है कि 'नाभि और पीठ पर होता हुआ जो यज्ञोपवीत कमर तक पहुँच जावे वही उत्तम और धारण करने योग्य है, उससे छोटा या बड़ा नहीं। ब्रह्मचारी को एक और गृहस्थ को साधारणतः दो जनेऊ पहनने चाहिये। जो द्विज बिना जनेऊ के पानी पी लेता है वह एक दिन उपवास करने और पंचगव्य पीने से शुद्ध हो जाता है। यदि बिना जनेऊ के मल-मूत्र का त्याग कर देवे तो दो दिनों के उपवास के बाद दान और होम द्वारा शुद्ध हो जाता है। सूतक में, मृतक में और चार मास बीतने पर नये यज्ञोपवीत को पहन कर पुराने को त्याग देना चाहिये'। जनेऊ बनाने के विषय में मदन पारिजात में लिखा है कि पवित्र देश में हाथ के कते पवित्र सूत ९६ चतुरंगुल (चौआ) का जनेऊ बनावे। चतुरंगुल (चौआ) चारों अंगुलियों को सटाकर उनकी जड़ में बनाना चाहिये और दस बार गायत्री को पढ़ कर जल से जनेऊ का अभिमन्त्रण करना चाहिये। प्रवरगन्थि भी रहे।

स्नान काल में प्रतिदिन नीचे लिखे मन्त्रों से तर्पण करना चाहिये। देव तर्पण में जनेऊ सीधा ही रहे, पितृ तर्पण में बायें कन्धे पर और ऋषि तर्पण में गले में लटकना चाहिये, और देव तर्पण में प्रत्येक मन्त्र से एक-एक अंजली, ऋषि तपर्ण में दो-दो और पितृतर्पण में तीन-तीन देनी चाहिये।

देव तर्पण- ऊँ ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम्। ओं भूर्देवास्तृप्यन्ताम्। ओं भुवर्देवास्तृप्यन्ताम्। ओं स्वर्देवास्तृप्यन्ताम्। ओं भूर्भवःस्वर्देवास्तृप्यन्ताम्॥ ऋषितर्पण—ओं ऊं भूऋषयस्तृप्यन्ताम् ऊं सनकादिद्वैपायनादयोऋषयस्तृप्यन्ताम्। ऊं भुवर्ऋषयस्तृप्न्ताम्। ऊं स्वर्ऋषयस्तृप्यन्ताम् ओं भूर्भुवः स्वऋर्ष्यस्तृप्यन्ताम्॥ पितृ तर्पण--ओंकव्यवाडनलादयः पितरस्तृप्न्ताम्। ऊं भूः पितरस्तृप्यन्ताम्। ओं भुवः पितरस्तृ प्यन्ताम्। ओं स्वः पितृरस्तृप्यन्ताम्। ओं भूर्भुवः स्वःपितरस्तृप्यन्ताम्॥

इसके बाद आचमन कर, जनेऊ को सीधा करके 'यक्ष्म' तर्पण करे, अर्थात नीचे लिखे मन्त्र से जल के किनारे एक अंजली देवे। मन्त्र—

यन्मया दूषितं तोयं शारीरमलसम्भवात्।
तस्य पापस्य शुद्धयर्थं यक्ष्मैतत्ते तिलोदकम्॥

इसके बाद अपनी दक्षिण ओर तृण अथवा लता आदि में शिखा के जल को निचोड़ देवे। मन्त्र यह है —

लतागुल्मेषु वृक्षेषु पितरो ये व्यवस्थिताः।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु मयोत्सृष्टैः शिखोदकैः॥

ब्राह्मण को भोजन काल में संक्षेपतः यह विधि करनी चाहिये:—

जल अथवा भस्म से चौकोना मण्डल □बनाकर उसके ऊपर अन्न का पात्र रखे और 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' इस मन्त्र से हाथ में जल लेकर दाहिनी तरफ से थाली के चारों ओर गिरावे। इसे पंक्ति वारण कहते हैं। पुनः हाथ जोड़ कर अन्न की स्तुति करे। उसका मन्त्र यह है:—'ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च' इसके बाद हाथ में जल लेकर दिन में 'सत्यन्त्वर्त्तेनपरिषिञ्चामि' इस मन्त्र से और रात में 'ऋतं त्वा सत्येन परिषिञ्चामि' इस मन्त्र से उस जल को अन्न पर छिड़क कर हाथ से अन्न का स्पर्श करे। उसका मन्त्र यह है, तेजोसि शुकमस्यमृतमसि धामनामासि। प्रियं देवानामनाधृष्टं देव यजनमसि। फिर इन तीन मन्त्रों को पढ़ कर थाली से उत्तर एक से उत्तर दूसरी और उससे उत्तर तीसरी इस प्रकार तीस बलि देवे। मन्त्र ये हैं :— 'ओं भूपतये स्वाहा नमः। ओं भुवनपतये स्वाहा नमः। ओं भूतानां पतये स्वाहा नमः।' बाद को बायें हाथ में जल लेकर 'ओं अमृतोपस्तरणमसि' इस मन्त्र से उसे पी जावे। और फिर जरा अन्न लेकर पाँच प्राणाहुति करे, अर्थात नीचे के मन्त्रों को पढ़-पढ़ कर पाँच बार मुख में डाले। मन्त्र ये हैं:—ओं प्राणाय स्वाहा। ओं अपनाय, स्वाहा। ओं व्यानाय स्वाहा। ओं समानाय स्वाहा। ओं उदानाय स्वाहा'। फिर बायें हाथ में जल लेकर नेत्रों में लगावे। पंक्तिवारण, प्राणाहुति और नेत्र में जल लगाना, ये तीन काम तो भोजन काल में अवश्य करके फिर भोजन करे। याद रहे, प्राणाहुति पर्यन्त जितनी बलि वगैरह दी जाती है वह केवल घृत या मीठा से मिश्रित अन्न या केवल अन्न की होवे, न कि उसमें नमक का सम्बन्ध हो। इसके अनन्तर विष्णु के स्मरणपूर्वक बाएँ हाथ से शिखा को खोल कर चुपचाप भोजन करे। भोजन के बाद उच्छिष्ट अन्न में से बैर के फल भर की चित्राहुति पात्र की बायीं ओर देवे। फिर दाहिने हाथ में जल लेकर 'ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा' यह मन्त्र पढ़ कर उसका आधा पीकर शेष उसी 'चित्राहुति' पर गिरा देवे। फिर चुपचाप बाएँ हाथ से शिखा बाँध, उस चित्राहुति आदि को काकों को देकर हाथ, मुँह आदि धो डाले और एक आचमन करके

अगस्त्यं वैनतेयं च शनिं च वडवानलम्।
अन्नस्य परिणामार्थं स्मरेद्भीमं च पंचमम्॥

इस मन्त्र को पढ़ता हुआ पेट पर हाथ फेरे। इति भोजन विधिः।

इति श्री ब्रह्मर्षि वंश विस्तरे पूर्व परिशिष्टम्॥

॥ श्री ॥

ब्रह्मर्षि वंश विस्तर ।

उत्तर परिशिष्ट ।

(१) वाटधान

इस ग्रन्थ के ५६ आदि पृष्ठों में प्रसंगवश जिन वाटधान ब्राह्मणों का उल्लेख हुआ है उसके सम्बन्ध में लोगों के दिलों में जो एकाध शंकायें हुआ करती हैं उन्हें दूर कर देना जरूरी है। यद्यपि उन ब्राह्मणों से हमें कोई विशेष तात्पर्य नहीं है और न हमारे या किसी और के ही पास कोई ऐसा सबूत है कि उन्हीं के वंशज महियाल, तगे या भूमिहार आदि हैं और न हमने ऐसा स्पष्ट रूप से कहीं लिखा ही है। तथापि न्याय के नाते ही हमें ऐसा करना पड़ता है। न जाने क्यों कुछ दिनों से साधारणः लोगों की यह धारणा हो चली थी कि राज्य, युद्ध या कृषि आदि ब्राह्मणों के धर्म नहीं हैं। फलतः इसी भ्रान्त धारणा के आधार पर कितने अनर्थ हो गये हैं जिनका दिग्दर्शन और इस धारणा का निराकरण ग्रन्थ में किया जा चुका है, अस्तु। इसी धारणा से लोगों का यह कहना है कि यदि वाटधान ब्राह्मण शुद्ध ब्राह्मण होते तो एक तो पाण्डव उनके साथ युद्ध कर उन्हें परास्त न करते। दूसरे, वे लोग नजर देने के समय दरवाजे पर ही रोक न दिये जाते। भीतर यज्ञशाला में अवश्य जाने पाते। मगर वे रोके गये यह तो द्वारि तिष्ठन्ति वारिताः, प्रवेशं लेभिरे न च-वे दरवाजे पर ही रोक दिये गये, भीतर न जाने पाये, से स्पष्ट ही है। इसलिए मानना होगा कि वे शुद्ध नहीं, किन्तु व्रात्य वा पतित ब्राह्मण थे, जैसा उन्हीं श्लोकों की टीका में नीलकण्ठ ने भी अपने भारत भाव प्रदीप में लिख दिया है कि 'वारिता इत्यनन तेषामत्यन्तहीनता दर्शिता--- द्वार पर रोके जाने से उनकी अत्यन्त नीचता सूचित होती है।' इसलिये वे ही ब्राह्मण थे जिनके बारे में मनु ने १० वें अध्याय में लिखा है कि---

व्रात्यात्तु जायते विप्रात्पापात्मा भूर्जकण्टकः।
आवन्त्यवाटधानौ च पुष्पधः शैख एव च ॥ २१॥

'यथा समय उपनयनादि संस्कार रहित जो पतित वा व्रात्य ब्राह्मण हो उसके ही वशंज भूर्जकण्टक, आवन्त्य, वाटधान, पुष्पध और शैख कहाते है।

यद्यपि इस शंका का विचार करके ही ग्रन्थ के उसी प्रसंग के ५४ वें पृष्ठ में टिप्पणी दे दी गई है कि विचारवान उनके रोके जाने का असली कारण समझ कर शान्त हो जावेंगे। मगर जिन्हें उतनी भी बुद्धि नहीं और जिन्होंने महाभारतादि ग्रन्थ पढ़े भी नहीं, हैं, उनके लिये उस विचार का स्पष्टीकरण किया जाता है। पहली शंका जो युद्ध के बारे में है उसका उत्तर तो यही है कि वे आततायी थे और आततायी के साथ युद्ध करने या उसे मारने में कोई दोष नहीं है चाहे वह कोई हो। अतएव मनु ने (८-३५०, ४५१) लिखा है कि--

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
आतातायिनमायान्यं हन्यादेवाविचारयन्॥
नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन॥

'गुरु, बालक, वृद्ध अथवा सर्व वेदशास्त्रज्ञ ब्राह्मण आततायी के चढ़ आने पर बिना

विचारे ही उसे मार डाले। इससे मारने वाले को कोई दोष नहीं होता'। अब रही आततायी की बात। उसका स्वरूप वसिष्ठ स्मृति (३-१६) में यों है--

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः।
क्षेत्रदारापहर्ता च षडेते ह्याततायिनः॥

घर जलाने वाला, विष देने वाला 'हाथ में हथियार लेकर चढ़ आने वाला, धन हरने वाला और जमीन और स्त्री को लूटने वाला, ये छह आततायीं कहाते हैं।' इस प्रकार वाटधान ब्राह्मण और द्रोण, कृपाचार्य और और अश्वत्थामा वगैरह भी आततायी श्रेणी में आ गये। इसी से धर्मप्राण युधिष्ठर ने उन सभी के साथ युद्ध किया। यहां तक कि उन्हें मार भी डाला। इसीलिये अपने विद्यागुरु परशुरामजी के साथ २१ दिनों तक भीष्म ने युद्ध कर उनके दाँत खट्टे कर दिये और बड़े परिश्रम से किसी प्रकार युद्ध से हटाये जा सके। उन्होंने उद्योग पर्व (१७९-२४) में स्पष्ट कह दिया है कि--

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथंप्रतिपन्नस्य न्याय्यं भवति शासनम्

'यदि गुरू भी घमण्ड में चूर हो, विपरीत मार्ग पर चले और कार्य, अकार्य का विचार न करे तो उसका दण्ड करना चाहिये और उसे छोड़ देना चाहिये।'

अब रही द्वार पर रोके जाने की बात। असल में यज्ञ का पूरा ब्योरा न जानने और वहां के न देखने से ही अथवा उसकी विस्मृति से ही लोगों को भ्रम हो गया है। युधिष्ठर के यज्ञ की नजरों का वर्णन सभापर्व में ही है और वहां कहीं-कहीं लिखा है कि 'व्यपागच्छन्युधिष्ठरम्'--लोग नजर लेकर युधिष्ठिर के पास गये।' मगर इसका आशय यह कदापि नहीं है कि नजरें युधिष्ठिर के हाथ दी जाती थीं। वह तो यजमान की दीक्षा ग्रहण कर यज्ञक्रिया में प्रवृत्त थे। उसका आशय सिर्फ यह है कि सभी नजरें युधिष्ठिर के ही लिये थीं उस समय काम बांट दिया गया था, जिसमें दुर्योधन के जिम्मे सिर्फ नजर (भेंट) लेने का काम था जैसा ३५ वें अध्याय में लिखा है--

एवमुक्त्वा स तान्सर्वान्दीक्षितः पाण्डवाग्रजः।
युयोज स यथायोगमधिकारेष्वनन्तरम् ॥ ४॥
भक्ष्यभोज्याधिकारेषु दुःशासनमयोजयत्।
परिग्रहे ब्राह्मणानामश्वत्थामानमुक्तवान् ॥ ५॥
दुर्योधनस्त्वर्हणानि प्रतिजग्राह सर्वशः ॥९॥

'दीक्षा के बाद युधिष्ठिर ने लोगों को यथा योग्य कामों में पृथक-पृथक् नियुक्त कर दिया। इसके अनुसार दुःशासन भोजन के अधिकार पर नियुक्त हुआ, अश्वत्थामा ब्राह्मणों के उठाने बिठाने में और दुर्योधन सभी प्रकार की सर्वशः नजरों के लेने में।' इसी से दुर्योधन को पीछे ताप भी हुआ था, कारण, वह धन उसे असह्य हो गया। इसी दुःख को उसने ४९, ५० अध्यायों में कुछ प्रसिद्ध प्रसिद्ध नजरों का वर्णन करते हुए बताया है, जिसमें उल्लेख योग्य काम्बोज देश के राजा, वाटधान देशीय ब्राह्मणों और समुद्र तथा सोम की अत्यन्त प्रसिद्ध और अभिषेकोपयोगी घृत, मधु, दधि आदि वस्तुएँ ४९ वें अध्याय के १८-२६ श्लोकों में लिखी हैं। अनन्तर विशेषतः लोगों की भीड़ और शंखादि के शब्दोंका वर्णन करते हुये

सामान्यतः धन की बहुलता कही गई है और दुर्योधन ने कहा है कि मुझे चैन नहीं है, मेरे हृदय में आग लगी है-- शान्ति न परिगच्छामि दह्यमानेन चेतसा ।' फिर बदला लेने शकुनी के द्यूतवाली युक्ति बतलाने पर बतलाने पर यह बात धृतराष्ट्र से कही गई है। धृतराष्ट्र और विदुर दोनों ने रोका है कि ऐसा न करो । मगर अन्त में धृतराष्ट्र के भी ढल जाने पर विदुर रंज होकर भीष्म के पास चले गये हैं। इसके बाद ५० वें अध्याय में विदुर की बात को विचार कर फिर धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को रोका और दुःख का वास्तविक कारण पूछा है । पर, दर्योधन ने हठ कर अपना दुखड़ा सुनाना शुरू किया है । और साधारणतया धनाधिक्य दिखला कर कहा है कि मेरे जीने को धिक्कार है । क्योंकि धन का असह्य दुःख तो था ही, सभा में मेरी हँसी भी की गई । यदि उस पर कुछ बोलता तो मारा जाता। 'वहाँ तो इतना धन नजर के रूप में आया था कि उन अमूल्य रत्नों का आर पार ही न था। मुझे ज्येष्ठ भ्राता समझ मेरे सत्कारार्थ युधिष्ठिर ने मुझे ही उन नजरों के लेने को नियत किया था। पर वह धन इतना अधिक था और उसे देख मुझे इतनी खिन्नता हो गई थी कि मेरा हाथ चलता ही न था । इससे दूर-दूर से आये हुये नजर देने वालों को द्वार पर ही खड़ा रह कर प्रतीक्षा करनी पड़ती थी'--

> **जेष्ठोऽयमिति मां मत्वा श्रेष्ठश्चेतिविशांपते ।**
> **युधिष्ठिरेण सत्कृत्य युक्तो रत्नपरिग्रहे ॥ २२ ॥**
> **उपस्थितानां रत्नानां श्रेष्ठानामर्घहारिणाम् ।**
> **नादृश्यत परः पारो नापरस्तत्र भारत ॥ २४ ॥ ।**
> **नमे हस्तः समभवद्वसुतत्प्रतिगृह्णतः ।**
> **अतिष्ठन्त मयि श्रान्ते गृह्य दूराहृतं वसु ॥ २५ ॥**

फिर ५१वें अध्याय में अपने देखे मुख्य मुख्य धनों के नाम सुनाने लगा है----

> **यन्मया पाण्डवेयानां दृष्टं तच्छृणु भारत ।**
> **आहृतं भूमिपालैर्हि वसुमुख्यं ततस्ततः ॥ १ ॥**
> **नाविदं मूढमात्मानं दृष्ट्वाहं तदरेर्धनम् ।**
> **फलतो भूमितो वापि प्रतिपद्यस्व भारत ॥ २ ॥**

यह वर्णन पूरे ५१वें और ५२वें के ४० श्लोकों में पूरा हुआ है। इसी वर्णन प्रसङ्ग में नजर दाताओं के द्वार पर ही रोके जाने के कारण की बात भी कही गई है। बात यह है कि जब दुर्योधन बड़ी-बड़ी कीमती नजरें लेते लेते कुछ तो परिश्रम और कुछ भीतरी जलन से थक गया और फलतः उसका हाथ रुक गया तो नजर वाले गृह के द्वार पर बड़ी भीड़ हो गई और लोगों ने द्वारपालों को दिक करना और पूछना शुरू कर दिया कि हमलोग कब तक यहीं बाहर खड़ा रहेंगे, भीतर जाने क्यों नहीं देते हो? तो उन्होंने सब सुना दिया कि अपनी अपनी पारी आने पर बाहर ही नजरें देकर आपलोग भीतर जाने पावेंगे, यह महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा है'—

> **तत्रस्था द्वारपालैस्ते प्रोच्यन्ते राजशासनात् ।**
> **कृतकालाः सुवलयस्ततो द्वारमवाप्स्यथ ॥ १९ ॥**

उस श्लोक के 'कृतकालाः' पद का अर्थ नीलकण्ठ ने भी 'पारी—आने पर' ही किया है—'कृतकालाः कृतप्रस्तावाः' बस, इसी ५१, ५२ अध्याय के बलिके लगातार वर्णन प्रसङ्ग के वाटधान देशीय ब्राह्मणों की भी नजरों का वर्णन आया है जो ५१वें के ५-७ श्लोकों के हैं । इससे स्पष्ट है कि द्वारपालों ने जो पारी पारी से देकर भीतर जाने को कहा है वह सभी के लिये है, न कि केवल किरात, दरद काश्मीर आदि के निवासियों के लिये है। कारण, प्रसंग और सिलसिला एक ही है और उसी सिलसिले में सभी आये हैं । हां, ४९वें अध्याय के प्रासंगिक वर्णन का यदि इस सिलसिले से कोई सम्बन्ध न हो तो कोई बात भी नहीं है । मगर वही बात ५१, ५२ में कही गई है। जब ५० वें अध्याय के २४ वें श्लोक में दुर्योधन ने साफ साफ कह दिया है कि मेरे हाथ रुक जाने से लोगों को ठहरकर इन्तजार करना पड़ता था और वहाँ नीलकण्ठ ने भी इसे स्वीकार किया है कि:—समभवत् समर्थो नाभवत्' अतिष्ठन्त प्रतीक्षां कृतवन्तो वसुन आहर्त्तारो वसु दातुम्' । तो फिर समझ में नहीं आता कि उन वाटधान ब्राह्मणों के द्वार पर रोके जाने का नीलकण्ठ ने भी दूसरा अभिप्राय क्यों निकाला, न कि औरों के रोके जाने का भी? द्वारि तिष्ठन्ति वारिताः 'प्रवेशं, लेभिरे नच,' 'ये अथवा एतदर्थक दूसरे शब्द पूर्वोक्त दो अध्यायों के लगभग ६, ७, १३, १५,१८, २४, २९, ३१, तथा ७, १२, ३५, ३७ श्लोकों में १२ बार आये है और कई बार 'बलिं च कृत्स्नमादाय द्वारि तिष्ठन्ति वारिताः' यह आधा श्लोक ही आया है। शल्य भगदत्त और पूर्व देशीय सभी राजाओं के लिये भी यही शब्द आये हैं । चोल और पाण्ड्य देशीय राजाओं के लिये भी लिखा गया है कि उन्हें प्रवेश न मिला—चोलपांड्यावपिद्वारं न लेभाते ह्युपस्थितौ ।' फिर रोके ही जाने से और लोग हीन न होकर केवल वाटधान देशीय ब्राह्मण ही क्यों हीन समझे जायँ ? और नीलकण्ठ की इस अकांड तांडव कल्पना में प्रमाण ही क्या ? किसी किसी का यह भ्रम कि उनकी नजरें भी कबूल न हुई, निर्मूल है । क्योंकि वे लोग सोने के कमण्डल वगैरह लाये थे और वे घृतपूर्ण भी थे जैसा 'कमण्डलूनुपादायजातरूपमयान्शुभान्' श्लोक और उसकी नीलकण्ठी टीका 'कमण्डलूनिति घृतपूर्णानिति द्रष्टव्यम्, से स्पष्ट है और वह है अभिषेक सामग्री जिसके लाने वाले सिर्फ वाटधान ब्राह्मण थे जैसा नीलकण्ठ ने स्वयं माना है। फिर उसका इन्कार कैसे किया जा सकता था ? यह कहना तो निरी मूर्खता है।

उक्त श्लोक के 'दासनीयाः' शब्द को देखकर किसी-किसी का यह अनुमान है कि वे ब्राह्मण ही दास योग्य थे। इसीलिये नीच माने गये। मगर यह भी भ्रम ही है । 'दासनीयाश्च' में जो उस शब्द के साथ 'च' है जिसका अर्थ 'और 'है, उससे स्पष्ट है कि उन ब्राह्मणों के सिवाय दास योग्य शूद्रादि भी उनके साथ थे, जो नजरों को साथ में ढोकर लाये थे। इसे नीलकण्ठ भी मानते हैं । एक बात और है। वहां पाठ भेद है। वह शब्द तीन ढंग का मिलता है, दासनीयाः दाशनीयाः और दर्शनीयाः। इनमें 'दर्शनीय' पाठ में तो दर्शन योग्य, यह अर्थ सुगम ही है, मगर दासनीय या दाशनीय का अर्थ दास योग्य न होकर 'बड़े बड़े दाता, यहाँ अधिक उचित है। जैसे प्रवचनीय, मोहनीय, कोपनीय आदि शब्दों के प्रवचनकर्त्ता या पढ़ाने वाला' इत्यादि होते हैं जैसा न्याय दर्शन के वात्स्यायन भाष्य के चतुर्थाध्याय के प्रथमाह्निक के ६ठे सूत्र के भाष्य की तात्पर्यटीका में श्री वाचस्पति मिश्र ने लिखा है। उसी प्रकार 'दाशृ या दाषृ' दाने धातु से अनीयर् प्रत्यय कर्त्ता में करके 'बड़े बड़े दाता' यही अर्थ ठीक होगा ।

एक शंका लोगों को और भी होती है । लोगों का कहना है कि वाटधान, वाह्लीक

गांधार आदि देशों में ब्राह्मण रहते ही नहीं। इस का कुछ उत्तर तो ग्रन्थ में ही दिया जा चुका है। भरत को ननिहाल से लाने के लिये दूतों के जाने के प्रसंग में अयोध्या कांड में वाल्मीकि जी लिखते हैं 'दूत वाह्लीक देश के वेद पारंगत और अंजली से जल पीने वाले ब्राह्मणों को देखते हुए उस देश के बीच मार्ग से सुदामा पर्वत को गये'–

अवेक्ष्यांजलिपानांश्चब्राह्मणान्वेदपारगान्।
ययुर्मध्येनबाल्हीकान्सुदामानंच पर्वतम् ॥ १८ । ६८ ॥

कर्ण पर्व के ४२, ४३ प्रभृति अध्यायों में कर्ण और शल्य का परस्पर वाद-विवाद और हंसी मजाक आया है और परस्पर एक दूसरे को और उसके देशवासियों को भी नीच बनाने का यत्न किया गया है। वहां गांधार आदि अनेक देशों का नाम आया है। अन्त में शल्य ने डपट कर कहा है कि—

सर्वत्र ब्राह्मणाः सन्ति सर्वत्र क्षत्रियाः।
वैश्याः शूद्रास्तथा कर्ण स्त्रियः साध्व्यश्च सुव्रताः ॥४२॥
रमन्ते चावहासेन पुरुषाः पुरुषैः सह।
अन्योन्यमवरक्षन्तो देशे देशे समैथुनाः ॥ ४३ ॥
परवाच्येषु निपुणः सर्वोभवति सर्वदा।
आत्मवाच्यं न जानीते जानन्नपि च मुह्यति ॥ ४४ ॥
सर्वत्र सन्ति राजानः स्वं स्वं धर्ममनुव्रताः।
दुर्मनुष्यान्निगृह्णन्ति सन्ति सर्वत्र धार्मिकाः ॥ ४५ ॥
न कर्ण देशसामान्यात्सर्वः पापं निषेवते।
यादृशाः स्वस्वभावेन देवा अपि न तादृशाः ॥ ४६ । ४५ ॥

हे कर्ण, सभी देशों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा सती स्त्रियां रहा करते हैं सर्वत्र पुरुष मैथुन करने वाले और पुरुषों के साथ हंसी करने वाले होते हैं। सभी दूसरों के दोष देखने में निपुण होते हैं। पर अपना दोष नहीं देखते अथवा देखकर भी भूल जाते हैं। सभी देशों में धर्मात्मा पुरुष एंव स्वधर्म पालक राजा रहा करते हैं जो दुष्टों का निग्रह करते हैं। ऐसा कोई देश नहीं जहाँ सबके सब पापी हों। सभी जगह ऐसे बहुत से पुरुष होते हैं जैसे देवता भी नहीं होते'। इसी प्रसङ्ग में यह भी लिखा है, कि उत्तर दिशा के देशों की रक्षा ब्राह्मणों के सहित भगवान चन्द्रमा करते हैं–उदीचीं भगवान्सोमो ब्राह्मणैः सह रक्षति'। 'उदीची' का अर्थ 'उत्तर के देश' ही है न कि उत्तर दिशा। क्योंकि देशों और वहां के निवासियों का ही प्रसङ्ग है।

एक बात और भी है। यदि गान्धार, मद्र, केकय आदि देशों में जो पश्चिम पञ्जाब में हैं और थे, ब्राह्मण न रहते तो पाण्डु, धृतराष्ट्र और दशरथ के विवाह कैसे होते? क्या ये सब संस्कार बिना आचार्य, पुरोहित आदि के ही वहां के क्षत्रियादि के घर हो जाते थे? केकय देश से भरत के मामा युधाजित् ने अपने गुरु ब्रह्मर्षि अंगिरा के पुत्र को रामचन्द्र के पास कैसे भेजा था? जैसा कि वाल्मीकि रामायण (उ० कां० अ० १०) में लिखा है :–

कस्यचित्त्वथ कालस्य युधाजित्केकयोनृपः।
स्वगुरुं प्रेषयामास राघवायमहात्मने ॥ १ ॥
गार्ग्यमंगिरसः पुत्रं ब्रह्मर्षिममितौजसम् ॥ २ ॥

'कुछ दिनों बाद केकय देश के राजा युधाजित् ने अंगिरा के पुत्र गर्गगोत्री ब्रह्मर्षि और परम प्रतापी अपने गुरु को अयोध्या भेजा' सबसे बड़ी बात यह है कि उन देशों में सारस्वत और काश्मीर आदि ब्राह्मण आज भी पाये ही जाते हैं।

एक बात यह भी ध्यान देने की है कि यदि वे वाटधान ब्राह्मण व्रात्य या व्रात्यों के वंशज होते तो फिर उन्हें तो किसी श्रौतस्मार्त्त कर्म का अधिकार न होता, जैसा पूर्व परिशिष्ट में दिखलाया जा चुका है। मगर वे लोग नीलकण्ठ के अनुसार ही त्रिकर्मा थे। यह बात ग्रन्थ में ही सिद्ध की गई है। इसलिये वाटधान का अर्थ नीलकण्ठ स्वयमेव करते हैं कि 'वाटधान शब्द में व्यधिकरण बहुव्रीहि समास है और वाट शब्द का अर्थ क्षेत्र रक्षा के लिये बनी खाई या वृत्ति और 'धाना' का अर्थ है नई बनी हुई। यह बात विश्वकोश में लिखी है। तदनुसार जिन देशों या देशवासी ब्राह्मणों के पास अन्न वाले खेतों के रक्षार्थ नई-नई खाइयाँ बनी थीं वही वाटधान कहलाये--- वाटाः क्षेत्रादि वृत्तयस्तासां धाना अभिनवोद्‌भेदो येषामितिव्यधिकरणोबहुव्रीहिः, शस्यादिसम्पन्नक्षेत्रादि वृत्तिमन्त इत्यर्थः। वाटो वृत्तो च मार्गे चेति, धाना भृष्टयवे प्रोक्ता धान्याऽकेभिनवोद्भिदीतिविश्वः'। इससे सिद्ध है कि वाटधान देश के रहने कारण ही ब्राह्मण वाटधान कहे गये और वे पवित्र एवं कुलीन ब्राह्मण थे न कि पतितों के वंशज। वे तो कोई दूसरे ही होगें जिनका पता लगाना वैसा ही कठिन है जैसा भूर्जकण्टक, पुष्पध आदि का।

(२) धर्मारण्य और वाडव

जिस धर्मारण्यका विशेष जिक्र ग्रन्थ में आया है और जो सीतापुर से कानपुर तक बताया गया है उसके विषय में भी लोगों में बहुत-सी भ्रान्त धारणायें हैं जिनका निराकरण आवश्यक है। यह भ्रम भी लोगों को प्रायः इसी से हो जाता है कि प्राचीन ग्रन्थों में कई धर्मारण्यों का वर्णन है। परन्तु अन्धों के हाथी की तरह जिसने जहाँ जो देख लिया उसी को मानकर शंका करने लगा कि आपने गलत लिखा है। यदि सभी ग्रन्थों के परिशीलन का सौभाग्य लोगों को मिले तो यह शंका ही न हो। जैसे भृगु, गौतमादि ऋषियों के नाम से बहुत से स्थान प्रसिद्ध हैं और वह सिर्फ इसलिये कि विभिन्न काल में विभिन्न स्थानों पर वे लोग रहे या वहाँ तप आदि किया। ठीक इसी तरह धर्म ने विभिन्न समय में जिन-जिन स्थानों में तप या निवास किया अथवा जो स्थान धर्म प्रधान थे वही धर्मारण्य कहलाये। इस प्रकार अभी तक हमारे जानते तीन स्थान धर्मारण्य के नाम से प्राचीन ग्रन्थों में विख्यात हैं, जिनमें से दो में तो धर्म के यज्ञ और तप करने का भी वर्णन मिला है। एक गया क्षेत्र, दूसरा बरेली सीतापुर वगैरह का प्रदेश जिसे नैमिषारण्य भी कहते हैं और तीसरा पुष्कर क्षेत्र से दक्षिण-पश्चिम सिद्धपुर के निकट मोढ़ेरा के इर्द-गिर्द। इन तीनों का पता महाभारत के वनपर्व के तीर्थ यात्रा प्रकरण, पद्म पुराण के स्वर्ग खण्ड के तीर्थ निरूपण, स्कन्दपुराण के धर्मारण्य प्रकरण और वायु पुराण के गया माहात्म्य से चलता है। वनपर्व में अजमेर (पुष्कर) से पृथिवी की दक्षिणावर्त्त परिक्रमा करने में उसके बाद ही ८२वें अध्याय में लिखा है कि–

कण्वाश्रमं ततो गच्छेच्छीजुष्टं लोकपूजितम्।
धर्मारण्यं हि तत्पुण्यमाद्यं च भरतर्षभ ॥४५॥

'हे युधिष्ठिर, पुष्कर के बाद कण्वाश्रम जाना चाहिये जहाँ लक्ष्मी रहती है और जो

लोक पूजित है । वह सबसे प्रथम का और पवित्र धर्मारण्य है' फिर ८४ वें अध्याय में लिखा है कि:–

ततो गयां समासाद्य ब्रह्मचारी समाहितः ।
अश्वमेधमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ॥ ८२ ॥
ततो ब्रह्मसरो गत्वा धर्मारण्योपशोभितम् ॥ ८५ ॥

'उसके बाद ब्रह्मचर्य पूर्वक मन को एकाग्र करके गया जाने से अश्वमेध का फल और कुल का उद्धार होता है। फिर (गया में ही) ब्रह्मसर में जाना चाहिये जो धर्मारण्य से शोभित है ।' यही बात पद्मपुराण के स्वर्गखण्ड में है । स्कन्दपुराण में तो ब्रह्मखण्ड का एक भाग ही धर्मारण्य है जिसमें धर्म के तप आदि का सविस्तर वर्णन है । जिससे बरेली, सीतापुर वगैरह का प्रदेश या वर्त्तमान नैमिषारण्य ही कुछ विस्तृत रूप में धर्मारण्य सिद्ध होता है । जैसा कि उसके २५वें अध्याय में लिखा है–

सू० उ० अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्
धर्मारण्ये यथानीता सत्यलोकात्सरस्वती ॥ १ ॥
भगवन्नैमिषारण्ये सत्रे द्वादशवार्षिके ।
त्वयावतारिता ब्रह्मन्नदी या ब्रह्मणः सुता ॥ ६॥
मा०- धर्मारण्ये मया विप्राः सत्यलोकात्सरस्वती ।
समानीता सुरेखाद्री शरण्या शरणार्थिनाम् ॥१० ॥

'सूत ने कहा कि हम धर्मारण्य का दूसरा माहात्म्य सुनाते हैं कि जैसे ब्रह्मलोक से वहाँ सरस्वती लाई गई । मुनियों ने मार्कण्डेय से प्रश्न किया कि आप नैमिषारण्य में सरस्वती कैसे लाये । उन्होंने उत्तर दिया कि शरणेच्छुओं को शरण देनेवाली सरस्वती पहले मैं सुरेख पर्वत पर लाकर फिर धर्मारण्य में लाया ।' इससे धर्मारण्य में सरस्वती का लाया जाना सिद्ध है और शल्यपर्व से पता लगता है कि सरस्वती की सात धाराओं में एक नैमिषारण्य में थी । इससे नैमिषारण्य और धर्मारण्य एक ही सिद्ध होते हैं और पूर्व के श्लोकों से भी । आगे चल कर धर्मारण्य में यज्ञ करने के लिये श्री रामचन्द्र जी की यात्रा का वर्णन करते हुये ३१वें अध्याय में लिखा है कि अयोध्या से प्रथम थोड़ा उत्तर और फिर पश्चिम जाकर १०वें दिन धर्मारण्य में पहुचे जैसा कि–

वसिष्ठं चाग्रतः कृत्वा महामाण्डलिकैर्नृपैः ।
पुनश्चरविधिं कृत्वां प्रस्थितश्चोत्तरां दिशम् ॥ ५२ ॥
वसिष्ठं चाग्रतः कृत्वा प्रतस्थे पश्चिमां दिशम् ।
ग्रामाद्ग्राममतिक्रम्य देशाद्देशं वनाद्वनम् ॥ ५३ ॥
दशमेऽहनि सम्प्राप्तं धर्मारण्यमनुत्तमम् ॥ ५४ ॥

पहले जमाने में अयोध्या से ८-१० दिनों का पैदल रास्ता, सो भी नौकर चाकर और दल बादल के साथ और उत्तर पश्चिम दिशा में वही बरेली, सीतापुर का प्रदेश ही हो सकता है। वहाँ यह भी लिखा है कि यज्ञ के बाद श्री रामजी ने सीता जी के नाम सीतापुर बसाया है। अब भी सीतापुर में सीता जी की मूर्ति मौजूद है। वाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड के ९१-९२ सर्गों में श्री राम जी का नैमिषारण्य में ही अश्वमेघ करना यों लिखा है–

यज्ञवाटश्च सुमहान्गोमत्या नैमिषे वने ॥ १५ ॥
अनुभूय महायज्ञं नैमिषे रघुनन्दनः ॥ १७ ॥
ऋत्विग्भिर्लक्ष्मणं सार्द्धमश्वेच विनियुज्य च ।
ततोऽभ्यगच्छत्काकुत्स्थः सहसैन्येन नैमिषम् ॥ २ ॥

'श्री रघुनन्दन ने इस बात की आवश्यकता अनुभव की कि अश्वमेघ महायज्ञ गोमती वाले नैमिषारण्य में ही होना चाहिये और वहीं महती यज्ञशाला बननी चाहिये। ऋत्विजों के साथ लक्ष्मण को यज्ञ के अश्व की रक्षा में नियुक्त कर सेना के साथ श्री रामचन्द्र नैमिषारण्य को गये'। इससे निर्विवाद सिद्ध है कि नैमिषारण्य का ही कुछ विस्तृत रूप धर्मारण्य है। सिद्धपुर के निकट और गया के धर्मारण्य न तो अयोध्या के ८=१० दिन के पैदल रास्ते पर हैं, न उत्तर-पश्चिम हैं, न वहाँ गोमती ही है और न उन्हें नैमिषारण्य कहते ही हैं। पर यहाँ एक बात ध्यान रखने की है कि सीतापुर से कानपुर तक विस्तृत रहने पर भी धर्मारण्यतीर्थ, जिसका विशेष माहात्म्य है, उतना विस्तृत न था । किन्तु वह तो संकुचित ही रहा होगा । जैसा काशी बृहत् और लघु पंचक्रोशी ८४ और २५ की होने पर भी उसका माहात्म्य वरुणा और अस्सी के बीच में ही है। इसीलिये वहाँ के ब्राह्मणों के बालकों का धर्मारण्य तीर्थ या क्षेत्र के निकट गायें चराने का वर्णन आया है न कि समूचे धर्मारण्य से बाहर । उसी धर्मारण्य में प्रथम ब्रह्मा, विष्णु और महेश द्वारा जिन १८००० ब्राह्मणों की स्थापना हुई थी उन्हीं को अश्वमेघ के अनन्तर राम चन्द्र जी ने उस धर्मारण्य का राज्य ताम्रपत्र लिख कर दिया। वे ब्राह्मण चुन-चुन कर त्रिदेवों द्वारा अनेक देशों से लाये गये थे और साक्षात् ऋषि थे। हमने ग्रन्थ में यह दिखलाया है कि इन्हीं पवित्रात्मा ब्रह्मर्षियों के वंश में वर्तमान जमींदार, भूमिहार आदि ब्राह्मण हैं, जिनका विस्तार (विस्तर) बहुत दूर तक हुआ है। इसी से ग्रन्थ का नाम भी ब्रह्मषि वंश विस्तर है । मगर इसका यह अभिप्राय नहीं है कि सिर्फ धर्मारण्य के ब्राह्मण (ब्रह्मर्षियों) के वंशज आजकल के अयाचक और याचक, त्यागी, महियाल, जमींदार, भूमिहार, पश्चिमा, चितपावन, नागर, जगद्वंशी, धनञ्जयी, जाजपुरी, मैथिल, कनौजिया, गौड़, सारस्वत आदि ब्राह्मण हैं। उनके वंशधर तो कुछ ही लोग हो सकते हैं। शेष ब्राह्मण तो अन्याय ब्रह्मर्षियों के ही वंशज हैं, जिन्हें गोत्रकार ऋषि भी कहते हैं। अस्तु।

उन धर्मारण्य के ब्राह्मणों की सामाजिक स्थिति का मनोहर और विशद वर्णन ग्रन्थ के ४१वें पृष्ठ में आया है। उन्हें त्रिदेवों ने स्थापित किया था। इसी से त्रैविद्य कहे जाते थे । मगर पीछे राजा कुमारपाल द्वारा राज्य हरण कर लेने पर उनमें से ३००० तो रामेश्वर की ओर हनुमान की सहायता के लिये गये। क्योंकि उन्हें श्री रामजी का आदेश था कि संकट आने पर मेरा और हनुमान का स्मरण करने से वह दूर हो जायगा । शेष १५००० वहीं राजा के बहकावे से और जप, होम, पूजा आदि के लिये भी रहे, जिन्हें राजा ने सुखवास स्थान में रक्खा था। यही लोग पीछे चातुर्विद्य कहे गये। क्योंकि तीन देवों के सिवाय चतुर्थ (राजा) की सहायता इन्होंने अपने रहने में ली । मगर उन ३००० ने दूसरे की सहायता न ली और रामेश्वर की ओर से हनुमान जी की कृपा से दो पुड़िया लेकर आये और जैसा ग्रन्थ में लिखा जा चुका है, एक पुड़िया से राजा कुमारपाल का राजभवन जलाकर उसके शरणागत होने पर दूसरी से अग्नि को शान्त कर दिया और इस प्रकार अपनी तपो महिमा और शक्ति से फिर धर्मारण्य का राज्य प्राप्त कर लिया । क्योंकि राजा ने अपराध क्षमा कराके उनका राज्य उन्हें सौंप दिया। इसीसे वे त्रैविद्य ही कहाते रह गये। यह बात नीचे के

श्लोक से स्पष्ट है—

यस्मिन्स्थाने च ये विप्राः सदाचारशुभव्रताः ।
अशेषधर्मकुशलाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ १९ ॥
तपोज्ञाने महाख्याता ब्रह्मयज्ञपरायणाः ।
स्थापिता ऋषयः सर्वे सहस्राण्यष्टादशैवतु ॥ २० ॥
नानादेशात्समानीय स्थापितास्तत्र वै सुरैः ॥ २१९ ॥
त्रयीविद्यास्तु विख्याताः सर्वे वाडवपुंगवाः ।
सहस्राणि च त्रीण्येव त्रैविद्याअभवन्ध्रुवम् ॥ १२० ॥
पंचदश सहस्राणि ततस्तु द्विजपुंगवाः ।
यथागतं गताः सर्वे चातुर्विद्या द्विजोत्तमाः ॥१२४ ॥
ते पंचदशसाहस्राः पुनस्तानूचुरादरात् ।
अस्माभिरत्रस्थातव्यमग्निसेवार्थतत्परैः ॥१३८ ॥
त्रिसाहस्रास्सदातस्मात्प्रस्थिताद्विजसत्तमाः ।१४७।३६
त्रयीविद्यास्तु ते ज्ञेया स्थापिता ये त्रिमूर्तिभिः ।
चतुर्थेनैव भूपेन स्थापिताः सुखवासने ॥ ८० ॥
ते बभूवुर्द्विजश्रेष्ठाश्चातुर्विद्याः कलीयुगे ।
चातुर्विद्यास्चतेसर्वे धर्मारण्ये प्रतिष्ठिताः ॥८१॥३९॥

इन सभी का निचोड़ यह है कि 'नाना देशों से ढूंढ़कर १८००० वेदशास्त्र पारंगत, सदाचारी, तपस्वी, धर्मात्मा ब्राह्मण महर्षि (ब्रह्मर्षि) ब्रह्मा, विष्णु, महेश द्वारा धर्मारण्य में स्थापित किये गये। यद्यपि सभी त्रैविद्य कहलाते थे। पर, पीछे ३००० ही कहलाते रह गये। १५००० उत्तम ब्राह्मण जैसे आये थे वैसे ही चले गये और वे चातुर्विद्य कहलाये। उन्होंने ३००० विप्रों को कहा कि हम लोग यहीं अग्निहोत्रादि करने के लिये रह जाते हैं। इसलिये उस समय वे ३००० ही रामेश्वर को रवाना हुए। जिन्हें त्रिदेवों ने प्रथम स्थापित किया था वे सभी त्रैविद्य कहाते थे। मगर पीछे जिनको चतुर्थ राजा ने रामेश्वर जाने से रोककर सुखवास नामक स्थान में रख लिया वे लोग कलि में चातुर्विद्य कहलाये। वे सभी श्रेष्ठ ब्राह्मण धर्मारण्य में प्रतिष्ठित हो गये।' उन्हें वाडव भी कहा है और वाडव का अर्थ ब्राह्मण है, जैसा अमरकोश आदि में लिखा है। बडवा ब्राह्मणी को कहते हैं और उसके ब्राह्मण द्वारा जो पुत्र हो उसी का नाम वाडव है। यह बात अमरकोश के द्वितीय काण्ड के ब्राह्मण वर्ग और उसकी टीका रामाश्रमी में स्पष्टतया लिखी है। ग्रन्थ के १०१-१०३ पृष्ठों को देखकर इस इतिहास का मिलान कर लेना चाहिये।

(३) याचक और अयाचक

ग्रन्थ में बहुत जगह जो प्रवृत्त और निवृत्त शब्द आये हैं उनके सम्बन्ध में लोगों का यह कहना है कि ये शब्द सकाम और निष्काम कर्म अथवा सांसारिक और विरक्त के वाचक हैं, न कि याचक और अयाचक या पुरोहित और उससे भिन्न के। हमें इसमें विवाद नहीं है कि इन

शब्दों के उक्त अर्थ भी हो सकते हैं। पर, याचक और अयाचक आदि अर्थ नहीं हो सकते इसे हम न तो मान ही सकते और न यह सम्भव ही है। ग्रन्थ के ७७, ७८ आदि पृष्ठों से आईना की तरह झलकता है कि वहाँ प्रवृत्त और निवृत्त शब्दों के याचक, अयाचक के सिवाय और अर्थ हो ही नहीं सकते। इसमें तो वाद विवाद के लिये स्थान है ही नहीं। लेकिन जिन मूर्खों ने इन शब्दों का द्वैत और अद्वैत अर्थ किया है उन्होंने तो कमाल ही कर डाला है। मगर उनके बारे में कुछ न कहना ही उचित है। क्योंकि यह उनकी अनोखी सूझ है जो कथमपि सम्भव नहीं और न जिसे आज तक किसी ने माना ही है।

बहुत लोगों का कहना है कि पुरोहित याचक नहीं हो सकता, पुरोहित और याचकता एक चीज नहीं है। निस्सन्देह पुरोहिती और याचकता कभी एक चीज नहीं हैं और न हमने ऐसा लिखा ही है। पर पुरोहित समाज को हमने याचक अवश्य लिखा है और यह अनुचित नहीं, ठीक ही है। याचक नाम है मांगने वाले का, दो–देहि कहने वाले का। फिर भी मांगने वाला हाथ फैलाता है और पुरोहित भी दान लेने के समय या दक्षिणा के समय अवश्य हाथ फैलाता है। इसी समानता से पुरोहित को भी याचक कहा है। जैसे श्येन नाम बाज पक्षी का है। मगर अभिचार कर्म का नाम श्येन इसी कारण रक्खा गया है कि जैसे श्येन दूसरे पक्षियों को अपने चगुंल में फँसा लेता है उसी तरह वह अभिचार कर्म भी शत्रु को फंसाकर मार डालता है। यह वैदिक कर्म के ज्ञाता मीमांसकों को विदित है। इसी प्रकार 'सिंहो' देवदत्तः देवदत्त–तो सिंह है, इत्यादि व्यवहारों में भी जान लेना चाहिये। सिंह कहने से देवदत्त जंगल का जानवर नहीं हो जाता अथवा आजकल के सिंह नामधारी पशु नहीं है।

रह गई एक बात। कभी-कभी लोग यह कह बैठते हैं कि जो अयाचक हैं, या उस दल के हैं वे पुरोहिती नहीं कर सकते। नहीं तो फिर अयाचक कैसे रहेंगे, या उनका दल अयाचक क्योंकर कहलायेंगा? मगर विचारना तो यह है कि पुरोहितों में भी बहुतों के अयाचक रहने पर भी जैसे उनका दल याचक कहलाता है। कारण, उनमें प्रधानता या मनोवृत्ति अधिकांश लोगों की उसी तरफ पाई जाती है। मालूम होता है कि उन पर गोया पुरोहिती की छाप लगी हुई है। ठीक उसी प्रकार अयाचक दल में भी कुछ पुरोहितों के होने से वह दल अयाचक ही कहलायेगा। क्योंकि प्रधानता या छाप तो उसी की है और मनोवृत्ति भी वैसी ही है। नियम भी है कि जिसकी प्रधानता होती है उसी से व्यवहार किया जाता है। जैसे जिस गाँव में ब्राह्मणों की प्रधनता हो वह ब्राह्मणों का गाँव कहाता है। मगर इसका यह अर्थ नहीं कि उस गांव में दो चार घर भी शूद्रादि न होंगे। यह बात ग्रन्थ में भी लिखी जा चुकी है। एक बात यह भी कह ही चुके हैं कि पुरोहिती का ग्रहण या त्याग तो व्यक्तिगत धर्म है न कि ब्राह्मणों में कोई ऐसा समाज हो सकता है जो पुरोहिती से एक बारगी ही अलग हो। फिर क्षत्रियों में और उस समाज में बाहरी व्यवहार में फर्क क्या रह जायगा? दुनिया तो व्यवहार ही देखती है। शास्त्र कौन देखने जाता है? इसलिये इच्छा हुई तो हमने आज पुरोहिती की और कल छोड़ दी। फिर परसों कर ली। इसका कोई नियम न तो हो सकता है और न होना उचित है। शास्त्रकारों ने इसके लिये कोई बन्धन नहीं रक्खा है और शास्त्र दृष्टि से ब्राह्मणों में याचक या अयाचक नाम का कोई दल हो नहीं सकता। हां, व्यक्तिगत रूप से प्रवृत्त, निवृत्त या याचक, अयाचक ये दो प्रकार के ब्राह्मण हो सकते हैं। एक भाई याचक है तो दूसरा अयाचक। अभी तक यही होता भी आया है। मगर यह दलबन्दी तो बहुत हाल की है, जैसे गौड़, मैथिल आदि दलबन्दी। मगर यह वहीं तक ठीक है जहां तक व्यवहार और शास्त्र का विरोध

न हो। मगर यदि पुराहिती के न करने और करने का किसी दल विशेष को अधिकार दे दिया जावे तो फिर शास्त्र और व्यवहार दोनों का विरोध होगा। फलतः अत्याचार होना अनिवार्य है, जैसा देख भी रहे हैं। मनुस्मृति के चौथे अध्याय के प्रारम्भ के श्लोकों से स्पष्ट है कि याचित और अयाचित वृत्तियों से ब्राह्मण जीविका करते हैं और यह उनकी मर्जी पर है कि चाहे जिसे करे। मगर वहां की याचिकवृत्ति पुरोहिती नहीं है किन्तु भिक्षा।

इसी सम्बन्ध में एक बात दक्षिणा और प्रतिग्रह की है। इन दोनों का अर्थ और इनका भेद ग्रन्थ में प्रतिपादित है। जिसका निचोड़ यह है कि दक्षिणा तो कर्म कराने की मजदूरी है और प्रतिग्रह किसी के पापों को हटाने के लिये अपना ब्रह्मतेज या तपोवल देकर उसके बदले में अन्न, धनादि के स्वीकार को कहते हैं। और पुरोहिती के अन्तर्गत प्रतिग्रह खामख्वाह आ भी नहीं जाता। हां, दक्षिणा तो पुरोहित को लेनी ही पड़ती है और वह ठीक भी है, जिसे वह अपने काम में ला सकता है। मगर प्रतिग्रह के लिये तो वह मजबूर नहीं है और चाहे तो लेकर किसी परोपकार कार्य में लगा सकता है। इसलिये दक्षिणा और प्रतिग्रह या दान लेने को एक समझकर जो पुरोहिती करने में होहल्ला मचाया जाता है वह नितांत अनुचित और हेय है।

(४)आशौच और उसका संकर

पूर्व परिशिष्ट में ब्राह्मण के जन्म और मरण के आशौच का साधारण विचार किया गया है। कभी कभी ऐसा होता है कि दो तीन आशौच एक साथ या आगे पीछे पड़ जाते हैं। उनके विषय में मनु जी का मोटा और साधारण सिद्धांत यही बताया गया है कि पहले आशौच के दस दिन के भीतर यदि दूसरा आशौच हो जावे तो पहले ही से दूसरे की निवृत्ति हो जाती है। तथापि उसके विषय में थोड़ा सा सूक्ष्म विचार भी कर लेना आवश्यक है। साधारणतया यही नियम है कि ब्राह्मण के सपिण्ड को दस दिन का और सो (समानो) दक को तीन दिन का आशौच होता है। जैसा मनु ने ५वें अध्याय में लिखा है–'दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते।५९। त्र्यहादुदकदायिनः ।५४। जन्मन्येकोदकानांतु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते। ७१।' जन्मे या मरे से सातवीं पीढ़ी तक पिता के वंश में और माता के कुल में पांचवी पीढ़ी तक को सपिंड कहते हैं और उसके बाद तो जहांतक कुल के किसी पुरुष के जन्म और नाम का ज्ञान हो वहां तक पिता पक्ष में सोदक कहलाते हैं। जैसा याज्ञवल्क्य और मनु ने कहा है–

पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वम् मातृतः पितृतस्तथा ॥ या० ५३ ॥
समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने ।म० ५।६० ॥

परन्तु यदि पुत्र व पुत्री नामकरण से प्रथम ही मरजावे तो स्नान मात्र से शुद्धि हो जाती है। उसके बाद और दाँत निकलने से पहले ही मरने पर यदि दाह करे तो एक दिन में और यदि न करे तो स्नान मात्र से शुद्ध होती है। दाँत निकलने पर प्रथम वर्ष में ही मुण्डन से प्रथम ही मरने पर एक दिन में और उसके बाद मुण्डन हो जाने पर तीन वर्ष पर्यन्त तीन दिन में पुत्र का और कन्या का तो वाग्दान से पहले मुण्डन न होने तक स्नान मात्र से और मुंडन हो चुकने पर एक दिन में आशौच निवृत्त हो जाता है। पर, कन्या के विषय में सपिंडता वाग्दान से प्रथम तीन ही पुरुष तक मानी जाती है। यदि पुत्र का मुंडन तीन वर्ष तक भी न हुआ हो तो एक ही दिन का आशौच होता है। तीन वर्ष के बाद तो मुंडन न होने पर भी

उपनयन पर्यन्त तीन दिन का आशौच होता है और उपनयन के बाद दस दिन का। वाग्दान (तिलक) के बाद और विवाह से पहले कन्या का आशौच पिता और पति दोनों कुल में तीन दिन का लगता है और विवाह हो जाने पर सिर्फ पति कुल को ही दस दिन का आशौच का होता है। दाँत निकलने के बाद और तीन वर्ष से पहले मरने पर दाह और पिंडदानादि करना न करना अपनी इच्छा पर है। पर, बाद को तो करना ही होगा। दो वर्ष से कम अवस्थावाले का दाह न कर शुद्ध भूमि में गाड़ देना चाहिये। पर गंगा जल में निक्षेप करने के लिये कोई रोक टोक नहीं है। जिसे चाहें फेंक सकते हैं। सभी आशौच मालूम होने पर ही होते हैं। न मालूम होने पर नहीं। यही मनु, याज्ञवल्क्य और मिताक्षरा आदि का निचोड़ है। जैसा–

आदन्तजन्मनः सद्य आचूडान्नैशिकी स्मृता।
त्रिरात्रमाव्रतादेशाद्दशरात्रमतःपरम्। या० प्रा० २३॥
ऊनद्विवार्षिकंप्रेतं निदध्युर्बान्धावा बहिः।
अलंकृत्य शुचौभूमावस्थिसंचयवावृते ॥६८ ॥
नात्रिवर्षस्य कर्त्तव्या बांधवैरुदकक्रिया।
जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वापिकृतेसति ॥७०।
स्त्रीणामसंस्कृतानांतु त्र्यहाच्छुध्यन्तिबान्धवाः।
यथोक्तेनैव कल्पेन शुद्ध्यन्तितु सनाभयः ॥ ७२ ॥ म० ॥

प्राङ्नामकरणात्सद्यः शौचन्तदूर्ध्वं दन्तजननादर्वागग्निसंस्कार क्रियायामेकाहः, इतरथा सद्यःशौचम्। जातदन्तस्य च प्रथमवार्षिकाच्चौलादर्वागेकाहः,। प्रथमवर्षादूर्ध्वं त्रिवर्ष पर्यन्तं कृत चूडस्यत्र्यहम् इतरस्यत्वेकाहः। वर्षत्रयादूर्ध्वमकृतचूडस्यापित्र्यहम्। उपनयनादूर्ध्वं सर्वेषां ब्राह्मणादीनां दशरात्रादिकम्। अप्रत्तानांतुस्त्रीणां त्रिपुरुषी (सपिण्डता) विज्ञायतइतिवसिष्ठस्मरणादितिमिताक्षराः या० प्रा० । २३, २४॥

आशौच में एक बात का और भी विचार रहना चाहिये कि वह दो प्रकार का होता है, एक तो स्पर्श की अयोग्यता और दूसरी कर्म की अयोग्यता। इनमें मरणाशौच में तो दोनों प्रकार का आशौच साधारणतया माना जाता है। परन्तु जन्म में माता को तो दोनों प्रकार का होता है। परन्तु स्नान के बाद पिता स्पर्श योग्य हो जाता है और अन्य सपिण्ड तो सदा ही स्पर्श योग्य होते हैं। परन्तु कर्म की योग्यता नहीं रहती है जब तक पूरे दिन न बीत जावें। मनु जी का यही अभिप्राय नीचे के श्लोक से स्पष्ट है–

सर्वेषां शावमाशौचं मातापित्रोस्तु सूतकम्।
सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥ ५ । ६२ ॥

इसलिए जो कोई सपिण्ड विदेश में हो तो दशाह के बाद और एक वर्ष के भीतर जन्म या मरण की खबर मिलने पर तीन दिन तक कर्म का अनधिकारी रहता है। मगर सवस्त्र स्नान के बाद छूने योग्य हो जाता है। मगर एक वर्ष के बाद खबर मिलने पर तो सिर्फ स्नान कर लेने पर पवित्र हो जाता है। जैसा मनु ने कहा है–––

अतिक्रान्ते दशाहे च त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्।
संवत्सरेव्यतीते तु स्पृष्ट्वैवापो विशुध्यति ॥ ७६ ॥
निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च।
सवासा जलमाप्लुत्य शुद्धो भवति मानवः ॥ ५ । ७७।

गर्भपात हो जाने पर जितने महीने का गर्भ हो उतने दिनों तक स्त्री अपवित्र रहती है। किसी का मत है कि तीन महीने के बाद के गर्भ का यह नियम है और छठे मास तक के ही लिये। इसके बाद तो पूरा आशौच लगता है। रजस्वला स्त्री तीन दिन तक अपवित्र रहती है। और चौथे दिन स्नान करने पर शुद्ध होती है। जैसा मनु ने कहा है–

रात्रिभिर्मासतुल्याभिः गर्भस्रावे विशुध्यति।
रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला॥ ५। ६॥

समान, असमान, सजातीय विजातीय इस तरह आशौच चार प्रकार का होता है और इनमें से दो से अधिक यदि एक साथ या आगे पीछे प्रथम की निवृत्ति के पहले ही पड़ जावें तो उसे आशौचसंकर कहते हैं। जिन आशौचों की दिन संख्या बराबर होवे वे समान और जिनकी बराबर न होवे वे असमान हैं। इसी तरह जन्म सम्बन्धी सभी आशौच परस्पर सजातीय हैं और मरण सम्बन्धी भी। परन्तु मरण और जन्म एक दूसरे के विजातीय हैं। सजातीय आशौच का यह नियम है कि यदि अधिक दिन वाले के भीतर उसका सजातीय कम दिन वाला या बराबर वाला आशौच हो जावे तो पहले से ही दूसरे की भी निवृत्ति हो जाती है। परन्तु यदि अधिक दिन वाला कम दिन वाले सजातीय के भीतर आ पड़े तो अधिक दिन वाले से ही कम दिन वाला निवृत्त होता है। जैसा याज्ञवल्क्य और उसकी मिताक्षरा में उशना का वचन है कि—

अन्तरा जन्ममरणे शेषाहोभिर्विशुध्यति। प्रा० २०।
स्वल्पाशौचस्य मध्येतु दीर्घाशौचं भवेद्यदि।
नपूर्वेणविशुद्धिःस्यात्स्वकालेनैव शुध्यति॥ उश०॥

विजातीय का यह नियम है कि चाहे मरण में जन्म हो या जन्म में मरण पर मरणाशौच की निवृत्ति से ही जननाशौच की भी निवृत्ति होती है। फिर चाहे मरण समान हो या असमान। जैसा अंगिरा का वचन है कि

सूतके मृतकं चेत्स्यान्मृतकेत्वथ सूतकम्।
तत्राधिकृत्य मृतकं शौचं कुर्यान्न सूतकम्॥

परन्तु माता,पिता के मरण के संकर में मिताक्षराकार ने लिखा है कि यदि माता के मरने पर बीच में ही पिता मर जावे तो पिता के आशौच की निवृत्ति से माता के भी आशौच की शुद्धि होती है। और यदि पिता के बाद माता मरी हो तो पिता के आशौच के बाद दो दिन और उनके बीच की रात बिताकर शुद्ध होता है। जैसा—

मातर्यग्रे प्रमीतायामशुद्धौ म्रियते पिता।
पितुः शेषेण शुद्धिः स्यान्मातुःकुर्यात्तु पक्षिणीम्।

यद्यपि पूर्व प्रदर्शित याज्ञवल्क्य के वचनानुसार और मनु ने भी लिखा है कि दस दिन भीतर यदि फिर दूसरा जन्म या मरण हो जावे तो तभी तक आशौच रहता है जब तक दस दिन पूरा नहीं होता। जैसा

अन्तर्दशाहे स्यातां चेत्पुनर्मरणजन्मनी।
तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्स्यात्तदनिर्दशम्॥ ५॥ ७९॥

तथापि यही सिद्धान्त किया गया है कि दस दिन के भीतर का अर्थ है नौवें दिन और रात के तीन पहर तक। इसलिए यदि उस समय तक कोई दूसरा आशौच आ जावे तो पूर्व से ही वह निवृत्त हो जावेगा। जैसा बौधायन ने प्रथम प्रश्न के पाँचवें अध्याय में कहा—

अथ यदि दशरात्रात्सन्निपतेयुराद्यंदशरात्र माशौचमानवमाद्दिवसात् -।१२४।

परन्तु उसके बाद दसवें दिन की शाम तक दूसरे आशौच के हो जाने पर पहले के पूरा होने के दो दिन बाद शुद्धि होती है और शाम के बाद एक पहर रात रहे तक होने पर तीन दिन और बिताना पड़ता है। रात्रि का संस्कृत नाम त्रियामा है, जिससे तीन ही पहर की रात मानते हैं और शेष पहर प्रातः काल कहलाता है। यह बात गौतम, वसिष्ठ, शातातप स्मृतियों में लिखी है। जैसा–

रात्रिशेषे सतिद्वाभ्यांप्रभाते सति तिसृभिः। व०४।२३।
रात्रिशेषे त्र्यहाच्छुद्धिर्यामशेषेशुचिस्त्र्यहात्। शाता०।

आशौच के अन्तिम या दसवें दिन गाँव से बाहर स्नान करना, कपड़ा बदलना, दाढ़ी मूँछ आदि बनवाना और नख शिख कटवाना चाहिए, न कि उसके बाद या पहले जैसा–

दशमेऽहनि संप्राप्तेस्नानं ग्रामाद्बहिर्भवेत्।
तत्रत्याज्यानिवासांसि केशश्मश्रुनखानच। देवल ०॥

प्रेत (मरे) के लिये सोलह श्राद्ध किये जाते हैं जिनका नाम षोडशी है। जिनके नाम ये है—ऊन मासिक, प्रथम मासिक, त्रिपाक्षिक, द्वितीय मा०, तृ मा०, च०, पं० ऊनषाण्मासिक, षाण्मासिक स०, अ०, न०, दश०, एका०ऊनवार्षिक, वार्षिक,। यदि बीच में अधिमास हो जावे तो १७ और न्यूनमास हो तो १५ ही होते हैं। इनमें पहला एकादशाह को करते हैं और शेष यथासमय। प्राचीन नियम यही था कि वार्षिक श्राद्ध जो १२ वें मास में होता है उसी के बाद सपिंडीकरण श्राद्ध किया जावे और बिना सपिण्डी के कोई मंगल कार्य घर में न होवे। मगर अब ऐसा नियम है कि साधारणतया एकादशाह को पहला श्राद्ध करके शेष १५ को द्वादशाह के दिन करते हैं और उसी दिन सपिण्डन भी किया जाता है। अथवा सोलहों श्राद्ध एकादशाह को कर डालते हैं। सिर्फ सपिण्डन द्वादशाह को करते हैं। दोनों प्रकार के वचन मिलते हैं। मगर फिर सपिण्डन के बाद भी मासिक आदि श्राद्ध किये जाते हैं और उन्हें अवश्य करना चहिए और पूरा वर्ष बीतने पर वार्षिक होना चाहिए, न कि बीच में ही, क्योंकि उसका नाम ही वार्षिक है। जब सपिण्डन हो गया तो फिर मंगल कार्य करनेमें कोई हर्ज नहीं है। ब्रह्मभोज भी श्राद्ध के दिन ही होना चाहिए, यही निचोड़ है।

(५) गोत्र, प्रवर और साधारण होम

विवाह आदि संस्कारों में और साधारणतया सभी धार्मिक कामों में गोत्र, प्रवर और शाखा आदि की आवश्यकता हुआ करती है। इसलिये उन सभी का संक्षिप्त विवरण आवश्यक है। समान गोत्र प्रवर की कन्या के साथ विवाह करने से जो सन्तान होती है वह चाण्डाल श्रेणी में गिनी जानी चाहिये। जैसा यमस्मृति का वचन है कि -

आरूढपतितापत्यं ब्राह्मण्यां यश्चशूद्रजः।
सगोत्रोढासुतश्चैव चाण्डालास्त्रयईरिताः॥

'संन्यासी का पुत्र, ब्राह्मणी स्त्री से शूद्र का पुत्र और समान गोत्र वाली कन्या से विवाह करके जन्माया पुत्र, ये तीनों चाण्डाल कहाते हैं' पर देखते हैं कि सभी देशों के ब्राह्मण आदि समाजों में ऐसा बहुधा होता है। यहाँ तक कि बहुतों को तो गोत्र का ज्ञान भी नहीं होता। प्रवर, शाखा आदि की बात ही दूर रहे। और विवाह तो गोत्र भिन्न रहने पर भी यदि प्रवरों की एकता हो जावे तो भी नहीं होना चाहिये। जैसा पूर्वपरिशिष्ट में लिखा गया है।

गोत्र नाम है कुल, सन्तति, वंश, वर्ग का। यद्यपि पाणिनीय सूत्रों के अनुसार 'अपत्यं पौत्रप्रभृतिगोत्रम्' ४-१-१६२ पौत्र आदि वशंजों को गोत्र कहते हैं। तथापि वह सिर्फ व्याकरण के लिये संकेत है। इसी प्रकार यद्यपि वंश या सन्तति को ही गोत्र कहते हैं तथापि विवाह आदि में जिस गोत्र का विचार है वह भी सांकेतिक ही है और सिर्फ विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप और अगस्त्य, इन आठ ऋषियों या इनके वंशज ऋषियों की ही गोत्र संज्ञा है। जैसा बौधायन के महाप्रवराध्याय में लिखा है कि–

विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमः।
अत्रिर्वसिष्ठः कश्यपइत्येसप्तर्षयः॥ सप्तानामृषी
णामगस्त्याष्टमानां यदपत्यं तद्गोत्रमित्युच्यते॥

इस तरह इन आठ ऋषियों की वंश परम्परा में जितने ऋषि (वेदमंत्र द्रष्टा) आ गये वे सभी गोत्र कहलाते हैं। और आज कल ब्राह्मणों में जितने गोत्र मिलते हैं वे उन्हीं के अन्तर्गत हैं। सिर्फ भृगु अंगिरा के वंश वाले ही उनके सिवाय और हैं जिन ऋषियों के नाम से भी गोत्र व्यवहार होता है। इस प्रकार कुल दस ऋषि मूल में है। इस प्रकार देखा जाता है कि इन दसों के वंशज ऋषि लाखों हो गये होंगे और उतने ही गोत्र भी होने चाहिये। तथापि इस समय भारत में उतने गोत्रों का तो पता है नहीं। प्रायः ८० या १०० गोत्र मिलते हैं।

जो गोत्र के नाम से ऋषि आये हैं वही प्रवर भी कहाते हैं। ऋषि का अर्थ है वेदों के मंत्रों को समाधि द्वारा जानने वाला। इस प्रकार प्रवर का अर्थ हुआ कि उन मंत्रद्रष्टा ऋषियों में जो श्रेष्ठ होवे। प्रवर का एक और अर्थ है। यज्ञ के समय अध्वर्यु या होता के द्वारा ऋषियों का नाम लेकर अग्निकी प्रार्थना की जाती है । उस प्रार्थना का अभिप्राय यह है कि जैसे अमुक अमुक ऋषि बड़े ही प्रतापी और योग्य थे। अतएव उनके हवनको देवताओं ने स्वीकार किया। उसी प्रकार हे अग्निदेव, यह यजमान भी उन्हीं का वशंज होने के नाते हवन करने योग्य है। इस प्रकार जिन ऋषियों का नाम लिया जाता है वही प्रवर कहलाते हैं। यह प्रवर किसी गोत्र के एक, किसी के दो, किसी के तीन और किसी के पाँच तक होते हैं न तो चार प्रवर किसी गोत्र के होते हैं और न पाँच से अधिक। यही परम्परा चली आती है। पर, मालूम नहीं कि ऐसा नियम क्यों है। ऐसा ही आपस्तम्ब आदि का वचन लिखा है। हाँ, यह अवश्य है कि किसी ऋषि के मत से सभी गोत्रों केतीन ही प्रवर होते हैं। जैसा–

त्रीन्वृणीते मंत्रकृतोवृणीते॥ ७॥ अथैकेषामेकं
वृणीते द्वौवृणीते त्रीन्वृणीते न चतुरोवृणीते न
पञ्चातिवृणीते॥८॥

जो दस गोत्र कर्त्ता ऋषि मूल में बताये गये हैं, उनके वंश का विस्तार बहुत हुआ और आगे चलकर जहाँ जहाँ से एक एक वंश की शाखा अलग होती गई वहाँ वहाँ से उसी शाखा का नाम गण कहलाता है और उस शाखा के आदि ऋषि के नाम से ही वह गण बोला

जाता है। इस प्रकार उन दस ऋषियों के सैकड़ों गण हो गये हैं और साधारणतया यह नियम है कि उन गणों के भीतर जितने गोत्र हैं न तो उनका अपने अपने गण भर में किसीदूसरे के साथ विवाह होता है और न एक मूल ऋषि के भीतर जितने गण हैं उनका भी परस्पर विवाह हो सकता है। क्योंकि सब का मूल ऋषि एक ही है। हाँ, भृगु और अंगिरा के जितने गण हैं उनमें हरएक का अपने गण के भीतर तो विवाह नहीं हो सकता, पर, गण से बाहर दूसरे गण में तभी विवाह होगा जब दोनों के प्रवर एक न हो जावें। प्रवर एक होने का भी यह अर्थ नहीं कि दोनों के ३ या ५ जितने प्रवर हैं सब एक ही रहें। बल्कि यदि दोनों के तीन ही प्रवर हों और उनके दो ऋषि दोनों में हों तो यह प्रवर एक ही कहलावेगा। इसी प्रकार यदि पाँच प्रवर हों तो तीन के एक होने से एक ही होगा। सारांश, आधे से अधिक ऋषि यदि एक हों तो समान प्रवर हो जाने से विवाह नहीं होना चाहिये। जैसा बौधायन ने लिखा है—

द्व्यार्षेयसन्निपातेऽविवाहस्त्र्यार्षेयाणांत्र्यार्षेयसन्निपातेऽविवाहः पञ्चार्षेया णामसमानप्रवरैर्विवाहः॥

इसीलिये बौधायन आदि ने गोत्र का जो सांकेतिक अर्थ किया है उसमें भृगु और अंगिरा को न कहकर आठ ही को गिनाया है नहीं तो जैसे अत्रि आदि के गणों में जहाँ तक एक गोत्र कर्त्ता ऋषि उनके किसी गोत्र के प्रवरों में विद्यमान रहें वे वास्तव में एक ही गोत्र कहलाते हैं, चाहे व्यवहार के लिये भिन्न ही क्यों न हों और चाहे उनके प्रवर तीन हों या पाँच। उसी प्रकार भृगु और अंगिरा के भी गणों के प्रवरों में सिर्फ एक ऋषि के समान होने से उनके तीन और पाँच प्रवर वाले गोत्रों का विवाह नहीं हो पाता। मगर अब हो सकता है। क्योंकि एक ऋषि की समानता का नियम सिर्फ आठ ऋषियों के लिये है, न कि भृगु और अंगिरा के लिये भी। जैसा–

एक एव ऋषिर्यावत्प्रवरेष्वनुवर्त्तते।
तावत्समानगोत्रत्वमन्यत्रांगिरसोभृगोः॥

भृगु और अंगिरा के वंशजों के जो गण हैं उनमें कुछ तो गोत्र के उन आठ ऋषियों के ही गण में आ गये हैं और कुछ अलग हैं। इस प्रकार भृगु और केवल भृगु एवं अंगिरा और केवल अंगिरा इस तरह के उनके दो दो विभाग हो गये हैं। भृगु के ७ गणों में वत्स, विद और आर्ष्टिषेण ये तीन तो जमदग्नि के भीतर आ गये। शेष यस्क, मित्रयुव, वैन्य और शुनक ये केवल भार्गव कहाते हैं। इसी प्रकार अंगिरा के गौतम, भारद्वाज और केवल आंगिरस ये तीन गण हैं। उनमें दो तो आठ के भीतर ही हैं। गौतम के १० गण हैं, अयास्य, शरद्वन्त, कौमण्ड, दीर्घतमस, औशनस, करेणुपाल, रहूगण, सोमराजक, वामदेव, बृहदुक्थ। इसी प्रकार भारद्वाज के चार हैं, भारद्वाज, गर्ग, रौक्षायण, कपि। केवलांगिरस के पाँच हैं, हरित, कण्व, रथीतर, मुद्गल, विष्णुवृद्ध। इस तरह सिर्फ भृगु और अंगिरा के ही २३ गण हो गये। इससे स्पष्ट है कि भरद्वाज या भारद्वाज गोत्र का गर्ग या गार्ग्य के साथ विवाह नहीं हो सकता। क्योंकि उनका गण एक ही है।

अत्रि के चार गण हैं, पूर्वात्रेय, वाद्भुतक, गविष्ठिर, मुद्गल।

विश्वामित्र के दस हैं, कुशिक, रोहित, रौक्ष, कामकायन, अज्ञ, अघमर्षण, पूरण, इन्द्रकौशिक, धनञ्जय, कत,। धनञ्जय और कौशिक का परस्पर विवाह नहीं हो सकता।

कश्यप के पाँच हैं, कश्यप, निध्रुव, रेभ, शांडिलय, लौगक्षि, शांडिल्य, कश्यप, काश्यप,

लौगाक्षि का परस्पर विवाह असम्भव है।

वसिष्ठ के पाँच हैं, वसिष्ठ, कुण्डिन, उपमन्यु, पराशर और जातूकर्ण्य। वसिष्ठ और पराशर आदि का परस्पर विवाह ठीक नहीं है।

अगस्त्य का कोई अन्तर्गण नहीं है। इस प्रकार कुल ५१ गण हैं। किसी के मत से कुछ कम या अधिक भी हैं।

कोई कोई गोत्र द्व्यामुष्यायण कहलाते हैं, जैसे सांकृति या सांकृत्य और लौगाक्षि आदि। इसका अर्थ है कि इन ऋषियों का सम्बन्ध दो गोत्रों से है। ये ऋषि किसी कारण से दोनों गोत्रों से सम्बन्ध रखते हैं, न कि एक छोड़कर दूसरे में मिल गये। इसीलिए सांकृति का वसिष्ठ के साथ और लौगक्षिका भी वसिष्ठ के साथ, एवं लौगाक्षि का और सांकृति का भी परस्पर विवाह नहीं होगा। क्योंकि लौगाक्षि और सांकृति दोनों वसिष्ठ गोत्र में गये हैं और साथ ही सांकृति का केवलांगिरस के गण में और लौगाक्षि का कश्यप के गण में जन्म है।

भरद्वाज, भारद्वाज, कश्यप, काश्यप, गर्ग, गार्ग्य, भृगु, भार्गव ये अलग-अलग गोत्र हैं, न कि कश्यप और काश्यप आदि एक ही हैं। परन्तु विवाह तो फिर भी कश्यप काश्यप आदि का परस्पर नहीं हो सकता। कारण, मूल ऋषि एक ही है।इसी प्रकार यद्यपि भृगु के वंश में ही वत्स हुए, तथापि वत्सगोत्र अलग ही है। विश्वामित्र के प्रकरण में इन्द्र कौशिक गोत्र है जो कौशिक से भिन्न ही है। इसी प्रकार धृत गोत्र भी उसी में है। मगर कहीं-कहीं सर्यूपारियों में धृत कौशिक को एक ही गोत्र मान कर व्यवहार करते हैं। यह भूल है। इसी प्रकार गर्दभीमुख नाम के ऋषि कश्यप के गण में हैं और शाण्डिय भी। पर इसका अर्थ न समझ लोगों ने गर्दभीमुख का कल्पित अर्थ कर डाला है और श्रीमुख नाम का एक दूसरा गोत्र भी मान रखा है। उनके विचार से शांडिल्य गोत्र के ही ये दो भेद हैं। मगर बात यह नहीं है। यह तो परस्पर नीच ऊँच के भावों का फल है । श्रीमुख कोई गोत्रकार ऋषि नहीं है। हाँ, गर्दभीमुख हैं। पर शाण्डिल्य से भिन्न हैं। फिर भी, कश्यप के अन्तर्गत होने से दोनों का परस्पर विवाह नहीं हो सकता । कोई-कोई इन्द्र और कौशिक ये दो गोत्र मानते हैं। और धृत को घृत पढ़ते हैं। पाठ भेद हो सकता है। पर हरिवंश के सातवें अध्याय में धृत ही मिलता है और उनको धर्मभृत भी कहा है। इससे धृत पाठ ही अधिक माननीय है।

गोत्रों के प्रवर के सिवाय वेद, शाखा, सूत्र, पाद, शिखा और देवता का भी विचार है। ऐसा सम्प्रदाय अभी तक बराबर चला आता है। इनमें से वेद का अभिप्राय यह है कि उस गोत्रकार ऋषि ने उसी वेद के पठन-पाठन या प्रचार में विशेष ध्यान दिया और उस गोत्र वाले प्रधानतया उसी वेद का अध्ययन और उसमें कहे गये कर्मों का अनुष्ठान करते आये। इसलिए किसी का गोत्र यजुर्वेद है तो किसी का सामवेद और किसी का ऋग्वेद है तो किसी का अथर्ववेद। उत्तर के देशों में प्रायः साम और यजुर्वेद का ही प्रचार था। किसी-किसी का ही अथर्ववेद मिलता है। जब आगे चल कर लोग सम्पूर्णतया एक वेद भी न पढ़ सके, किन्तु उसकी अनेक शाखाओं में से सिर्फ एक ही, तो फिर उन गोत्रों के लोगों ने शाखा का व्यवहार करना शुरू किया। सूत्रों का तो सिर्फ यही अर्थ है कि उन वेदों की उन-उन शाखाओं में कहे गये कर्मों की विधि और उनके अंगों के क्रम आदि के विचार के लिये ऋषियों ने जिन-जिन श्रौत या गृह्य सूत्रों का निर्माण किया है, उन्हीं के अनुसार विभिन्न गोत्रों की पद्धतियाँ तैयार की गई हैं और उन्हीं के अनुसार कर्म कलाप होते हैं। हरएक वेद के ये सूत्र विभिन्न ऋषियों द्वारा बनाये गये हैं। जैसे यजुर्वेद का कात्यायन ने बनाया है, सामवेद का

गोभिल ने, ऋग्वेद का आश्वलायन ने और अथर्ववेद का कौशिक ने। और भी ऋषि हैं जिनके सूत्र वेदों की शाखाओं पर हैं।*हरएक ऋषि ने अपनी ही शाखा का सूत्र ग्रन्थ बनाया है। हरएक वेद या उसकी शाखा के पढ़ने वाले किसी विशेष देवता की आराधना करते थे। वही उनके देवता कहे गये। इसी तरह तुरन्त पहचान के लिये उनके बाहरी व्यवहार में भी कुछ अन्तर रक्खा जाता था। जैसे कोई शिखा में जो ग्रन्थि देता था वह बायीं तरफ घुमाकर और कोई दाहिनी तरफ। इसी प्रकार पूजा के समय प्रथम कोई बायाँ पँव धोता या धुलाता था और कोई दाहिना। बस, वही व्यवहार अब तक कहने मात्र को रह गया है और वही पाद कहलाता है। प्रायः यही नियम था कि सामवेदियों की बायीं शिखा और बायाँ ही पाद और विष्णु देवता हों। इसीप्रकार यजुर्वेदियों की दाहिनी शिखा, दाहिना पाद और शिव देवता। कहीं-कहीं शिखा और पाद में शायद उलट-पलट है। परन्तु वह हमारे जानते काल पाकर भूल से बदल गया होगा। क्योंकि जब और बातों में नियम है तो यहां भी एक ही नियम होना चाहिए। इसी तरह सामवेदियों की कौथुमी शाखा और गोभिल सूत्र एवं यजुर्वेदियों की माध्यंदिनीय शाखा और कात्यायन सूत्र है। चारों वेदो के चार उपवेद भी हैं और उनका भी व्यवहार पाया जाता है। यजुर्वेद का धनुर्वेद, ऋग्वेद का आयुर्वेद, सामवेद का गान्धर्व वेद और अथर्ववेद का अर्थवेद वा अर्थशास्त्र है।

किस गोत्र का कौन वेद है, इसमें इस समय बड़ी गड़बड़ी है, कारण, व्यवहार और सम्प्रदाय हर प्रदेश में कुछ न कुछ बदल गये हैं। कान्यकुब्जों और सर्यूपारियों में पाँच गोत्रों का और कहीं-कहीं छह का सामवेद बताया है। वे पाँच कश्यप, काश्यप, वत्स, शाण्डिल्य और धनञ्जय हैं और छठा कौशिक है। परन्तु इसके विपरीत मैथिलों में सिर्फ एक शाण्डिल्य का सामवेद लिखा है, शेष गोत्रों का यजुर्वेद ही। हालांकि उनकी एक वंशावली में, जो पिलखवाड़ ग्राम के पञ्जीकार श्री जयनाथ शर्मा की लिखी है लिखा है कि—

कश्यपो वत्सशांडिल्यौ कौशिकश्च धनंजयः।
षडेते सामगा विप्राः शेषा वाजसनेयिनः॥

इससे पूर्व के छह गोत्र सामवेदी सिद्ध होते हैं। कान्यकुब्ज वंशावली में लिखते हैं कि पांच ही सामवेदी हैं, कौशिक नहीं—

कश्यपः काश्यपो वत्सः शांडिल्यश्च धनंजयः।
पञ्चैते साम गायन्ति यजुरध्यायिनोऽपरे।।

यह बात असम्भव सी भी मालूम होती है कि सिर्फ शाण्डिल्य ने सामवेद का प्रचार किया और दूसरे किसी ऋषि ने नहीं। इससे पांच या छह गोत्रों का ही सामवेद मानना ठीक है। इसलिए त्यागी, पश्चिमा, जमींदार या भूमिहार आदि आयाचक ब्राह्मणों में भी इसी के अनुसार संस्कार आदि और प्रचार होना चाहिये। गौड़, जिझौतिया वगैरह में भी इसी का प्रचार है।

आजकल एक गोत्र पाया जाता है जिसका उल्लेख पुराने ग्रन्थों में कहीं नहीं मिलता। वह है कविस्त, काविस्त अथवा कावित्स। अत्रि के ऋषि का नाम गविष्ठिर है। सम्भव है इस का विपर्यास हो गया हो। लेकिन प्रवर में भेद है।

प्रवरों के विषय में बड़ा मतभेद और वाद-विवाद है। एक प्रवर तो सिर्फ चार प्रचलित गोत्रों में हैं। वसिष्ठ का वासिष्ठ, शुनक का शौनक, मित्र युव का बाध्र्यश्व और अगस्त्य का

आगस्त्य। कश्यप के ही सिर्फ दो प्रवर हैं, देवल और असित।मगर इनके भी तीन प्रवर लिखे हैं। इसी प्रकार पांच प्रवर गर्ग, सावर्णि, वत्स, भार्गव, भरद्वाज, भारद्वाज, जमदग्नि और गौतम के हैं। मगर तीन प्रवर भी इनके लिखे हैं। हरएक गोत्र के प्रवरों की जितनी संख्या हो उतनी ग्रन्थि जनेऊ में दी जाती है।

कुछ प्रसिद्ध गोत्रों के प्रवर आदि नीचे लिखे हैं।

(१) कश्यप, (२) काश्यप के काश्यप, असित, देवल अथवा काश्यप, आवत्सार, नैध्रुव तीन प्रवर हैं। इस गोत्र के ब्राह्मण ये हैं—जैथरिया, किनवार, बरुवार, दन्सवार, मनेरिया, कुढ़नियाँ, नोनहुलिया, तटिहा, कोलहा, करेमुवा, भदैनी चौधरी, त्रिफला पाण्डे, परहापै, सहस्रामै, दीक्षित, जुझौतिया, बवनडीहा, मौवार, दधिअरे, मरैं, सिरियार, धौलानी, डुमरैत, भूपाली आदि।

(३) पराशर के वसिष्ठ, शक्ति, पराशर तीन प्रवर हैं। इस गोत्र के ब्राह्मण एकसरिया, सहदौलिया, सुरगणे, हस्तगामे आदि हैं।

(४) वसिष्ठ के वसिष्ठ, शक्ति, पराशर अथवा वसिष्ठ, भरद्वसु, इन्द्रप्रमद ये तीन प्रवर हैं। ये ब्राह्मण कस्तुवार, डरवलिया, मार्जनी मिश्र आदि हैं।कोई वसिष्ठ, अत्रि प्रवर मानते हैं।

(५) शांडिल्य के शांडिल्य, असित, देवल तीन प्रवर हैं। दिघवैत, कुसुमीतिवारी, नैनजोरा, रमैयापाण्डे, कोदरिये, अनरिये, कोरौंचे, चिकसौरिया, करमहे, ब्रह्मपुरिये, पहितीपुर पाण्डे, बटाने, सिहोगिया आदि इस गोत्र के ब्राह्मण हैं।

(६) भरद्वाज, (७) भारद्वाज के आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज अथवा आंगिरस, गार्ग्य, शैन्य तीन प्रवर हैं। दुमटिकार, जठरवार, हीरापुरी पाण्डे, बेलौंचे, अमवरिया, चकवार, सोनपखरिया, मचैयांपाण्डे, मनछिया आदि ब्राह्मण इस गोत्र के हैं।

(८) गर्ग (९) गार्ग्य के आंगिरस, गार्ग्य, शैन्य तीन अथवा घृत, कौशिक, माण्डव्य, अथर्व, वैशम्पायन पांच प्रवर हैं। मामखोर के शुक्ल, बसमैत, नगवाशुक्ल, गर्ग आदि ब्राह्मण इस गोत्र के हैं।

(१०) सावर्ण्य के भार्गव, च्यवन, आप्नवान, और्व, जामदग्न्य पाँच, या सावर्ण्य, पुलस्त्य, पुलह तीन प्रवर हैं। पनचोभे, सवर्णियां, टिकरा पाण्डे, अरापै, बेमुवार, आदि ब्राह्मण इस गोत्र के हैं।

(११) वत्स के भार्गव, च्यवन, आप्नवान, और्व, जामदग्न्य पांच, या भार्गव, च्यवन, आप्नवान, तीन प्रवर हैं। दोनवार, गानामिश्र, सोनभदरिया, बगोछिया, जलैवार, शमसेरिया, हथोरिया, गंगटिकैत आदि ब्राह्मण इस गोत्र के हैं।

(१२) गौतम के आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज, या अंगिरा, वसिष्ठ, गार्हपत्य, तीन या अंगिरा, उतथ्य, गौतम, उशिज, कक्षीवान पाँच प्रवर हैं। पिपरामिश्र, गौतमिया, करमाई, सुरौरे, बड़रमियां दात्यायन, वात्स्यायन आदि ब्राह्मण इस गोत्र वात्स्यायन के हैं।

(१३) भार्गव के भार्गव, च्यवन, आप्नवान, तीन, या भार्गव, च्यवन आप्नवान, और्व, जामदग्न्य, पाँच प्रवर हैं, भृगुवंश, अरिया, कोठहा आदि ब्राह्मण इस गोत्र के हैं।

(१४) सांकृति के सांकृति, सांख्यायन, किल, या शक्ति, गौरुवीत, सांकृति या आंगिरस,

गौड़वीत, सांकृति तीन प्रवर हैं। सकरवार, मलैयांपाण्डे, फतूहाबादी मिश्र आदि इस गोत्र के ब्राह्मण हैं।

(१५) कौशिक के कौशिक, अत्रि, जमदग्नि, या विश्वामित्र, अघमर्षण, कौशिक तीन प्रवर हैं। कुसौंझिया, टेकार के पाण्डे, नेकतीवार आदि इस गोत्र के ब्राह्मण हैं।

(१६) कात्यायन के कात्यायन, विश्वामित्र, किल या कात्यायन, विष्णु, अंगिरा तीन प्रवर हैं। वदर्का मिश्र, लमगोड़िया तिवारी, श्रीकान्तपुर के पाण्डे आदि इस गोत्र के ब्राह्मण हैं।

(१७) विष्णुवृद्ध के अंगिरा, त्रसदस्यु, पुरुकुत्स तीन प्रवर हैं। इस गोत्र के कुथवैत आदि ब्राह्मण हैं।

(१८) आत्रेय (१९) कृष्णात्रेय के आत्रेय आर्चनानस, श्यावाश्व तीन प्रवर हैं। मैरियापांडे, पूले, इनरवार इस गोत्र के ब्राह्मण हैं।

(२०) कौण्डिन्य के आस्तीक, कौशिक, कौण्डिन्य या मैत्रावरुण, वासिष्ठ, कौण्डिन्य तीन प्रवर हैं। इनका अथर्व वेद भी है। अथर्व, विजलपुरिया आदि इस गोत्र के हैं।

(२१) मौनस के मौनस, भार्गव, वीतहव्य (वेधस) तीन प्रवर हैं।

(२२) कपिल के अंगिरा, भारद्वाज, कपिल तीन प्रवर हैं।

इस गोत्र के ब्राह्मण जसरायन आदि हैं।

(२३) ताण्ड्य गोत्र के तांड्य, अंगिरा, मौद्गल्य तीन प्रवर हैं।

(२४) लौगाक्षि के लौगाक्षि, बृहस्पति, गौतम तीन प्रवर हैं।

(२६) कण्व के आंगिरस, आजमीढ़, काण्व, या आंगिरस, घौर, काण्व तीन प्रवर हैं।

(२७) धनञ्जय के विश्वामित्र, मधुच्छन्दस, धनञ्जय तीन प्रवर हैं।

(२८) उपमन्यु के वसिष्ठ, इन्द्रप्रमद, अभरद्वसु तीन प्रवर हैं।

(२९) कौत्स के आंगिरस, मान्धाता, कौत्स तीन प्रवर हैं।

(३०) अगस्त्य के अगस्त्य, दार्ढ्यच्युत, इध्मवाह तीन प्रवर हैं। अथवा केवल अगस्त्य ही।

इसके सिवाय और गोत्रों के प्रवर प्रवरदर्पण आदि से अथवा ब्राह्मणों की वंशावलियों से जाने जा सकते हैं।

होम की साधारण विधि इस प्रकार है :—

सभी होम के प्रारम्भ में सात प्रायश्चित्त आहुतियाँ, पाँच पंचवारुणी, कुल बारह आहुतियां दी जाती हैं। वे इस प्रकार हैं:—

(१) ॐ प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये नमम। (२) ॐ इन्द्राय स्वाहा इदमिन्द्राय नमम। (३) ॐ अग्नये स्वाहा इदमग्नये नमम। (४) ॐ सोमाय स्वाहा इदं सोमाय नमम। (५) ॐ भूः स्वाहा इदमग्नये नमम। (६) ॐ भुवः स्वाहा इदं वायवे नमम। (७) ॐ स्वः स्वाहा इदं सूर्याय नमम।

इसके बाद नीचे लिखा मंत्र पढ़कर जल छिड़के, या केवल मंत्र पढ़ देवे—

यथा बाण महाराणां कवचं वारकं भवेत्। तद्वद्दैवोपघातानां शांतिर्भवति वारिका। शांतिरस्तुड पुष्टिरस्तु वृद्धिरस्तु यत्पापं तत्प्रतिहतमस्तु द्विपदे चतुष्पदे सुशांतिर्भवतु।

फिर पंचवारुणी होम करे—

(१) ॐ त्वन्नोअग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडो अवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा इदमग्नीवरुणाभ्यां नमम। (२) ॐ सत्वन्नोऽअग्नेवमोभवोती नेदिष्ठो अस्या उषसोव्युष्टौ। अवयक्ष्वनोवरुणंरराणो वीहि मृडीकं सुहेवो न एधि स्वाहा इदमग्नीवरुणाभ्यां नमम । (३) ॐ अयाश्चाग्नेस्यनभिशस्तिपाश्च सत्वमित्वमयाअसि। अयानो यज्ञं वहास्ययानो धेहि भेषजं स्वाहा इदमग्नये नमम। (४) ॐ येते शतं ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तमिर्नोऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च नमम। (५) ॐ उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय। अथावयमादित्यव्रते तवानागसोऽअदितये स्याम स्वाहा इदं वरुणाय नमम । इसके बाद थोड़ा जल गिराकर नवग्रह आदि देवताओं के नाम लेकर और जिस देवता का होम करना हो उसका भी नाम लेकर स्वाहा शब्द के साथ चतुर्थ्यन्त उच्चारण करके आहुतियाँ देवे और अन्त में 'ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा इदमग्नये स्विष्टकृते नमम' पढ़कर आहुति देवे और पूर्णाहुति करे। होम के आरम्भ में संकल्प करके होम शुरू करे और अन्त में भी पूर्णाहुति का संकल्प करे। यदि दूसरा आदमी होम करने वाला हो तो भी संकल्प स्वयं पढ़ना चाहिये और 'इदं प्रजापतये नमम-' इत्यादि प्रति मंत्र के अन्त में स्वयं बोलना चाहिये और उसी के साथ आहुति छोड़नी चाहिये, न कि 'स्वाहा' के साथ। इसका नाम त्याग है और इसके बोलने का अधिकार केवल यजमान को है। इसके बिना आहुति अधूरी रह जाती है।

(६) ब्राह्मणों की पदवियाँ

यद्यपि ब्राह्मणों की पुरानी और नवीन पदवियों के विषय में अच्छी तरह लिखा जा चुका है और कुछ नाम भी पदवियों के साथ लिखे गये हैं। तथापि कुछ अधिक नामों और पदवियों के दिखला देने से लोगों को बहुत दिनों की भ्रान्त धारणा के दूर होने में आसानी होगी। हम हरएक ब्राह्मण दला के कुछ इनेगिने नाम ही दिखलावेंगे। सभी नाम वर्तमान लोगों के ही नहीं हैं।

कान्यकुब्ज

(१) चौधरी खुमान सिंह, बिठूर, कानपुर। (२) चौधरी हरनारायण सिंह, सुलतानगंज, फतहपुर। (३) पंडित अयोध्या सिंह तिवारी, जहानागंज, फतहगढ़। (४) ठाकुर नारायण सिंह, सीरू के अवस्थी। (५) रुद्रसाह, खजुहा, फतहपुर। (६) खांडेराय, फतहपुर। (७) लालसाह, फतहपुर। (८) रनजीतराय, फतहपुर। इसके सिवाय (९) सावर्णि। (१०) ठकुरिया। (११) राउत। (१२) मैरहा। (१३) अध्वर्यु इत्यादि पदवियां भी प्रचलित हैं।

सर्यूपारी

(१) बाबू बैजनाथ सिंह, कुरौना, बनारस। (२) श्रीयुतविवेकी सिंह, सिंहनपुरा, शाहाबाद। (३) त्रिपाठी बूआ सिंह बेरौधा, बांदा। (४) त्रिपाठी नृपति सिंह, मंडौर, बांदा। (५) श्री रामशरण सिंह, चरवा, इलाहाबाद। (६) ब्रह्मदत्त सिंह, टाडा, इलाहाबाद। (७) कल्लू सिंह, धरी, मिर्जापुर। (८) श्री त्रिभुवन सिंह, गंगहरा, मिर्जापुर। (९) श्री बलदेव सिंह, पुरवापाल, रीवांराज्य। (१०) श्री शम्भु सिंह, मनिकबरा, रीवा राज्य।

गौड़

(१) पं० अमर सिंह, एम० ए०, तहसीलदार, दिल्ली। (२) राजा फतह सिंह, शेखूपुरा, लाहौर, सभापति, गौड़ सभा। (३) पं० रघुवीर सिंह, डिप्टी कलक्टर, हिसार। (४) पं० बद्रीप्रसाद, निरीक्षक, गौड़सभा, कुरुक्षेत्र। (५) पं० रामस्वरूप चौधरी रईस, शिकारपुर। (६) श्री भाऊराम स्वामी, कोराली, अम्बाला।

सनाढ्य

(१) कुंवर हनुमान सिंह, आनरेरी मजिस्ट्रेट, अलीगढ़। (२) रायसाहिब ठाकुर सिंह, रईस, मथुरा। (३) कुंवर सुजान सिंह, रईस, जिला अलीगढ़ (४) रायबहादुर पलिया राबोधा रत्तीराम, रईस, अलीगढ़। (५) मटैले श्याम बिहारी लाल, रईस, जिला एटा। (६) पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय, निजामाबाद, आजमगढ़।

पालीवाल

(१) शाह रामचन्द्र शर्म्मा, रईस, रामपुर, मैनपुरी, सभापति, पालीवाल सभा। (२) सेठ भगवान दास, रईस, सुकीट, एटा, उपसभापति। (३) शाह किशोरी लाल, रईस, बाजीपुर, अलीगढ़, मंत्री। (४) शाह मोहन लाल शर्मा, ताल्लुकेदार, सिसरा, आगरा। (५) शाह दुर्गा प्रसाद शर्म्मा, ताल्लुकेदार।

मैथिल

(१) सर रामेश्वर सिंह, महाराजा बहादुर, दरभंगा। (२) महाराजा लक्ष्मीश्वर सिंह, (३) बाबू तुलापति सिंह, महाराज दरभंगा के चाचा। (४) महामहोपाध्याय श्री कृष्णसिंह ठाकुर, दरभंगा। (५) पंडित बबुआ खाँ, बनगाँव, दरभंगा। (६) पंडित गुणपति सिंह, वीरसायर। (७) बाबू यदुनन्दन सिंह झा, चनौर। (८) कुमार सूर्यानन्द सिंह, बनैली, रामनगर। (९) पं० मुक्तिनाथ ठाकुर, अथरी, मुजफ्फरपुर। (१०) पं० जीवनाथ राय, व्याकरण तीर्थ, वीरसायर। (११) तुरन्तलाल चौधरी, दुलारपुर। (१२) सेठ रामाश्रय सिंह, केवटा। (१३) खेदू ईश्वर, मरौंची, मुंगेर। (१४) पं० योगानन्द कुंवर, भूतपूर्व सम्पादक, मिथिला मिहिर, दरभंगा।

जिझौतिया।

(१) श्रीयुत दर्याव सिंह जागीरदार, चित्रकूट। जुझौतियों की वंशावली में ही उनकी (२) राव (राउ) त, (३) राय, (४) अरिजरिया, (५) नायक, (६० भंड़ेरिया, (७) पटैरिया, (८) गंगेले, (९) सुल्लेरे, (१०) फौजदार, (११) बोहरे या बहोरे, (१२) दीन, (१४) घड़ियाली, (१५) पारसाई, (१६) सराफ आदि पदवियाँ लिखी हैं।

भूमिहार, पश्चिमा, जमींदार।

(१) द्विजराज काशिराज श्रीमत्प्रभुनारायण सिंह शर्म्मा (२) श्रीमानादित्य नारायण सिंह शर्म्मा, महाराज कुमार, बनारस। (३) श्री कवीन्द्र नारायण सिंह, जगतगंज, काशी। (४) श्री इन्द्रजीत प्रताप बहादुर साही, राजा साहब तमकुही। (५) श्री गुरुमहादेव आश्रम प्रसाद साही, महाराजा हथुवा (६) श्री वेनी प्रसाद सिंह, सराय गोवर्धन, काशी। (७) पं० रघुनाथ प्रसाद साही शर्म्मा, सांढ़ा, मुजफ्फरपुर (८) पं० राम दास राय मिश्र,

काव्यतीर्थ, प्रोफेसर, भू० ब्रा० कालेज, मुजफ्फरपुर (९) राजा हरिहर प्रसाद नारायण सिंह, अमाव (१०) पं० सन्तप्रसाद सिंह शर्म्मा, बकठपुर, मुजफ्फरपुर

त्यागी।

(१) श्री चौधरी रघुवीर नारायण सिंह, ताल्लुकेदार, असौढ़ा मेरठ (२) पं० पद्मसिंहशर्म्मा, नायकनगला बिजनौर (३) चौधरी अनूप सिंह, नहटौर, बिजनौर (४) चौधरी बैजनाथ सिंह, रतनगढ़, बिजनौर (५) पं० रामावतार शास्त्री, रतनगढ़, बिजनौर (६) चौधरी रूपचन्द शर्म्मा, गोवर्धनपुर, सहारनपुर (७) पं० शालिग्राम शर्म्मा, चरथावल, मुजफ्फरनगर (८) पं० कूड़ेरामजी शर्म्मा, खरखौदा, मेरठ। (९) प्रोफेसर पं० धर्मवीर शर्म्मा।

महियाल

(१) बाबू शिवनाथ सिंह, गाजीपुर। (२) महते योगध्यान सिंह, प्रधान, महियाल सभा, लाहौर। (३) बा० हीरा सिंह जी दत्त, मन्त्री महियाल सभा। (४) रामभज दत्त चौधरी, लाहौर। (५) रायजादा नत्थूराम वैद्य, मंत्री, महियाल सभा, शिमला। (६) रामरिक्खा मलदत्त, मंत्री, महियाल सभा, झेलम। (७) श्री युत दीवान भीमसेन, सेनापति, राजा सूचित सिंह, जम्मू (८) दीवान हेम राज, सेनापति, जम्मू। (९) रिसालदार मेजर हुकुम सिंह। (१०) सूबेदार सन्ध्यादास, २५वीं पंजाबी पैदल सेना। (११) सूबेदार लाखा सिंह, पहली सिख पैदल सेना। (१२) जमादार रामसिंह, दूसरी पंजाब घुड़सवार फौज।

इसके सिवाय पूर्व के प्रदर्शित इन सभी ब्राह्मण दलों में मिश्र, चौबे, दूबे, तिवारी, पांडे, पाठक, शुक्ल, ओझा, झा, उपाध्याय वगैरह पदवियाँ पाई जाती हैं, जिनका दिग्दर्शन ग्रन्थ में ही कराया जा चुका हैं। इसी लिये जान बूझकर उन्हें यहाँ नहीं लिखा है।

(७) चरम उपसंहार और समर्पण।

प्रसंगादपमानोक्तिः कटूक्तिर्यविवोद्गताः।
निवर्त्त्यसन्तस्तां क्षान्तिसाञ्जलिः प्रार्थयाम्यहम् ॥१॥
भाद्रमासिसिते पक्षे शुभे चन्द्रजवासरे।
द्वितीयायां तिथौ रात्रौ गुणाश्वांकेन्दुवत्सरे ॥२॥
अविमुक्ते निवसता परोपकृतिबुद्धिना।
रचितः सहजानन्दसरस्वत्याख्यदण्डिना ॥३॥
वर्द्धितश्च पुनर्भाद्रे भूवस्वंकमहीमिते।
ब्रह्मर्षिवंशविस्तरः सोऽयं सर्वाङ्ग संयुतः ॥४॥
सुमनोऽञ्जलिरूपेण सुमनोमोददायिना।
अमुना पार्वतीजानिः प्रीयतां जगतीपतिः ॥५॥

इति श्रीवाराणसेयदशाश्वमेधघट्टस्थमठभूतपूर्वालङ्कारश्रीमद्विश्वरूपसरस्वतीपूज्यपादविनेयपरम्परा प्रविष्ट, श्रीमत्स्वामिवर्याद्वैतानन्द सरस्वती पूज्य चरणाम्बुज भृङ्गायमाण स्वामि सहजानन्द सरस्वती विरचिते ब्रह्मर्षि वंश विस्तरे उत्तर परिशिष्टाख्यं चतुर्थ प्रकरणम्॥

॥ समाप्तश्चायं ग्रन्थः॥ शुभम्भूयादनिशम्॥